



ॐ नमः सिद्धेभ्यः

श्रीमद्भगवत्पुष्पदंतभूतबलिविरचितः

षट्खण्डावतारः

तृतीयो ग्रन्थः

(द्रव्यप्रमाणानुगम-क्षेत्रानुगमनामानुयोगद्वारद्वयसमन्वितः)

(गणिनी ज्ञानमती विरचिता टीका)

सिद्धान्तचिन्तामणिटीकासमन्वितः

मंगलाचरणम्

रामहणूसुग्रीवो, गवयगवक्खो य णीलमहणीलो।

णवणवदीकोडीओ, तुंगीगिरिणिव्वुदे वंदे।।१।।

श्रीरामचन्द्रहनुमत्सुग्रीव-गवगवाख्य-नीलमहानीलादि-नवनवतिकोटि-महापुरुषा निजात्मनि शुद्धात्मानमाराध्य व्यवहाररत्नत्रयबलेन स्वशुद्धात्मोत्थपरमानन्दामृतपानसंतृप्त-निश्चयरत्नत्रयलक्षणकारणसमय-सारपरिणामेन कार्यसमयसारस्वरूपानन्तदर्शनज्ञानसुखवीर्यानन्तचतुष्टयं लब्ध्वा नवकेवललब्धिपतयः

अब तृतीय ग्रंथ में द्रव्य प्रमाणानुगम नाम का अनुयोगद्वार प्रारंभ किया जाता है—

मंगलाचरण

श्लोकार्थ — राम, हनुमान, सुग्रीव, गव, गवाख्य, नील, महानील आदि निन्यानवे करोड़ मुनिराजों की निर्वाणभूमि तुंगीगिरि की हम वंदना करते हैं।

श्रीरामचन्द्र-हनुमान-सुग्रीव-गव-गवाख्य-नील-महानील आदि निन्यानवे करोड़ महापुरुषों ने निज आत्मा में शुद्धात्मा की आराधना करके व्यवहार रत्नत्रय के बल से अपनी ही शुद्ध आत्मा से उत्पन्न परमानन्दरूपी अमृतपान से संतृप्त, निश्चय रत्नत्रय है लक्षण जिसका, ऐसे कारणसमयसारस्वरूप अनन्तदर्शन, ज्ञान, सुख और वीर्य इन अनन्तचतुष्टयों को प्राप्त करके नव केवललब्धियों से समन्वित “अरिहन्त परमात्मा” इस

‘अर्हत्परमात्मानः’ इति संज्ञामवाप्य यस्मात् पर्वतात् अनन्तानन्तगुणरत्नसमन्वितं मोक्षधामजग्मुः, तस्मै श्रीमांगीतुंगीनामधेयसिद्धक्षेत्राय तेभ्यश्च परमसिद्धपदप्राप्तश्रीरामचन्द्रादिमहासाधुभ्यः अस्माकं नमोऽस्तु नमोऽस्तु नमोऽस्तु।

तथा च याः निकटभाविकाले पञ्चकल्याणकैः प्रतिष्ठेयाश्चतुर्विंशतितीर्थकरजिनप्रतिमाः प्राणप्रतिष्ठां अवाप्य साक्षात् भगवत्स्वरूपा भविष्यन्ति अत्र क्षेत्रे विराजमानाः ताः सर्वा जिनप्रतिमाश्चापि जगति मंगलं कुर्वन्तु।

अथ श्रीमद्भगवद्धरसेनाचार्यवर्यमुखकमलादधीत्य श्रीपुष्पदन्तभूतबलिसूरिभ्यां भव्यजनानुग्रहार्थं

संज्ञा से संयुक्त होकर जिस पर्वत से अनन्तानन्त गुणरत्नों से समन्वित मोक्षधाम—निर्वाणपद को प्राप्त किया है, उस श्री मांगीतुंगी नामक सिद्धक्षेत्र को तथा परम सिद्धपद को प्राप्त श्रीरामचन्द्रादि महामुनिराजों को हमारा नमोऽस्तु, नमोऽस्तु, नमोऽस्तु होवे।

तथा अभी निकट भविष्य में पंचकल्याणक प्रतिष्ठा द्वारा प्रतिष्ठित की जाने वाली चौबीस तीर्थकरों की जिनप्रतिमाएँ प्राणप्रतिष्ठा पूर्वक साक्षात् भगवान् स्वरूप बनेंगी, वे समस्त जिनप्रतिमाएँ तथा यहाँ क्षेत्र पर विराजमान सभी प्रतिमाएँ जगत् में मंगल करें।

विशेषार्थ—पूज्य गणिनी श्री ज्ञानमती माताजी ने इस सूत्र ग्रंथ की टीका लेखन का शुभारंभ वीर निर्वाण संवत् २५२२ (सन् १९९६) में वैशाख शुक्ला द्वादशी के दिन (३० अप्रैल को) महाराष्ट्र प्रान्त के मांगीतुंगी सिद्धक्षेत्र में प्रारंभ किया था इसीलिए उन्होंने मंगलाचरण में उस पवित्र पर्वत को एवं वहाँ से मोक्ष जाने वाले महामुनियों को नमन करके “सिद्धान्तचिंतामणि” टीका शुरू की है।

इस सिद्धक्षेत्र पर अनेक वर्षों से जिस पंचकल्याणक प्रतिष्ठा में व्यवधान पड़ा हुआ था, उसे निर्विघ्न सम्पन्न कराने के उद्देश्य से ही पूज्य माताजी ससंघ हस्तिनापुर से विहार करके ५ माह में मांगीतुंगी पहुँचीं और वहाँ उनकी पावन प्रेरणा से १९ मई से २३ मई १९९६ (ज्येष्ठ शुक्ला द्वितीया से षष्ठी) तक पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव होने जा रहा था जिसमें लगभग १५०० जिनप्रतिमाओं की प्राणप्रतिष्ठा हुई थी इसीलिए माताजी ने गद्य में उन प्रतिष्ठेय प्रतिमाओं का उल्लेख करते हुए जगत् के मंगल की अभिलाषा भी व्यक्त की है।

भविष्य के लिए यह ऐतिहासिक तथ्य शोधकर्ताओं के लिए निश्चित ही इस प्रमाण को पुष्ट करेंगे कि षट्खण्डागम की इस टीका का रचनास्थल मांगीतुंगी सिद्धक्षेत्र है तथा वहाँ का प्रतिष्ठा महोत्सव उन्हीं दिनों सम्पन्न हुआ है। इससे सिद्ध होता है कि जिस प्रकार से दो हजार वर्ष पूर्व श्री कुन्दकुन्दाचार्य गिरनार सिद्धक्षेत्र की वंदना हेतु संघ सहित गये थे तथा एक हजार वर्ष पूर्व आचार्यश्री नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती के पावन सानिध्य में गोम्मटेश्वर भगवान् बाहुबली की पंचकल्याणक प्रतिष्ठा सम्पन्न हुई थी अर्थात् साधु संघों के विहार जिस प्रकार पहले तीर्थयात्रा करते हैं वहाँ अनेक धार्मिक प्रभावनाजन्य आयोजनों में अपना सानिध्य भी प्रदान करते हैं। इसी शृंखला में मांगीतुंगी तीर्थक्षेत्र कमेटी के ट्रस्टियों के निवेदन पर पूज्य माताजी की उत्तर भारत से दक्षिण भारत की यह यात्रा भी ऐतिहासिक पृष्ठों में अंकित हो गई।

श्रीमान् भगवान् श्री धरसेनाचार्यवर्य के मुखकमल से अध्ययन करके श्री पुष्पदन्त-भूतबली आचार्यों ने

षट्खण्डागमनामधेयो ग्रन्थोः विरचितः। अस्मिन् आगमे जीवस्थानक्षुद्रकबंध-बंधस्वामित्वविचय-वेदनाखण्ड-वर्गणाखण्ड-महाबन्धाश्चेति षट्खण्डाः सन्ति।

अत्र षष्ठ्यखण्डमन्तरेण पञ्चखण्डेषु वर्तमानमुद्रितषोडश ग्रन्थेषु—पुस्तकेषु षट्सहस्र-अष्टशत-एकचत्वारिंशत्सूत्राणि सन्ति।

तत्र प्रथमखण्डे षट् ग्रन्थाः सन्ति। तेषु द्विसहस्र-त्रयशतपञ्चसप्ततिसूत्राणि सन्ति।

प्रथमग्रन्थे सप्तसप्तत्यधिकशतसूत्राणि, द्वितीयग्रन्थे सूत्राणि न सन्ति, तृतीयग्रन्थे चतुरशीत्यधिक-द्विशतसूत्राणि, चतुर्थग्रन्थे सप्तविंशत्यधिकपंचशतसूत्राणि, पंचमग्रन्थे द्वासप्तत्यधिकाष्टशतसूत्राणि, षष्ठ्यग्रन्थे पञ्चदशाधिकपञ्चशतसूत्राणि सन्तीति ज्ञातव्यं।

अधुना जीवस्थाननामप्रथमखण्डस्य विषयाः प्रतिपाद्यन्ते—

अस्य षट्खण्डागमग्रन्थस्य आदौ श्रीमत्पुष्पदन्ताचार्यैः मंगलाचरणे महामंत्रं णमोकारमंत्रं लिखितम्। पुनश्च सूत्रमवतारितानि—

“एतो इमेसिं चोद्दसण्हं जीवसमासाणं मगणट्टदाए तत्थ इमाणि चोद्दस चेवट्टाणाणिणायव्वाणि भवन्ति।।२।।

तं जहा।।३।।

गइ इंदिए काए जोगे वेदे कसाए णाणे संजमे दंसणे लेस्सा भविय सम्मत्त सण्णि आहारए चेदि।।४।।

एदेसिं चेव चोद्दसण्हं जीवसमासाणं परूवणट्टदाए तत्थ इमाणि अट्ट अणियोगहाराणि णायव्वाणि भवन्ति।।५।।

भव्यप्राणियों पर अनुग्रह करने हेतु षट्खण्डागम नाम का ग्रन्थ रचा है। इस आगम ग्रंथ में जीवस्थान, क्षुद्रकबन्ध, बन्धस्वामित्वविचय, वेदनाखण्ड, वर्गणाखण्ड और महाबन्ध ये छह खण्ड हैं।

यहाँ छह खंडों से कहे गये षट्खण्डागम में छठे खंड को छोड़कर पाँच खंडों में वर्तमान के प्रकाशित सोलह ग्रंथ—पुस्तकों में छह हजार आठ सौ इकतालिस (६८४१) सूत्र हैं।

उनमें से प्रथमखंड में छह ग्रंथ हैं। उनमें दो हजार तीन सौ पचहत्तर (२३७५) सूत्र हैं।

प्रथम ग्रंथ में एक सौ सत्तर (१७७) सूत्र हैं, द्वितीय ग्रंथ में सूत्र नहीं हैं (क्योंकिहसमें केवल आलाप अधिकार का वर्णन है), तृतीय ग्रंथ में दो सौ चौरासी (२८४) सूत्र हैं, चतुर्थ ग्रंथ में पाँच सौ सत्ताईस (५२७) सूत्र हैं, पंचम ग्रंथ में आठ सौ बहत्तर (८७२) सूत्र हैं और छठे ग्रंथ में पाँच सौ पन्द्रह (५१५) सूत्र हैं, ऐसा ज्ञाना चाहिए।

अब जीवस्थान नाम के प्रथम खण्ड का विषय बतलाते हैं—

इस षट्खण्डागम ग्रन्थ की आदि में श्री पुष्पदन्त आचार्य ने मंगलाचरण में णमोकार महामंत्र को लिखा है, पुनः सूत्र अवतरित किये हैं—

सूत्रार्थ—

इस द्रव्यश्रुत और भावश्रुतरूप प्रमाण से इन चौदह गुणस्थानों के अन्वेषणरूप प्रयोजन के होन पर वहाँ ये चौदह ही मार्गणास्थान जानने योग्य हैं ॥२॥

वे चौदह मार्गणास्थान जैसे ॥३॥

गति, इन्द्रिय, काय, योग, वेद, कषाय, ज्ञान, संयम, दर्शन, लेश्या, भव्यत्व, सम्यक्त्व, संज्ञी और आहार ये चौदह मार्गणां हैं और इनमें जीव खोजे जाते हैं ॥४॥

इन ही चौदह जीवसमासों के (गुणस्थानों के) निरूपण करनेरूप प्रयोजन के होने पर वहाँ आगे कहे जाने वाले ये आठ अनुयोगद्वार समझना चाहिए ॥५॥

तं जहा ॥६॥

संतपरूवणा दव्वपमाणाणुगमो खेत्ताणुगमो फोसणाणुगमो कालाणुगमो अंतराणुगमो भावाणुगमो अप्पबहुगाणुगमो चेदि ॥७॥

संतपरूवणादए दुविहो णिहेसो ओघेण आदेसेण य ॥८॥

अत्र आचार्यदेवैः चतुर्दशमार्गणाज्ञानप्राप्त्यर्थं अष्टौ अनुयोगद्वाराणि कथितानि-सत्प्ररूपणा, द्रव्यप्रमाणानुगमः, क्षेत्रानुगमः स्पर्शनानुगमः, कालानुगमः, अन्तरानुगमः भावानुगमः अल्पबहुत्वानुगमश्चेति।

तत्र प्रथमग्रन्थे सत्प्ररूपणानाम अनुयोगद्वारमस्ति। अस्मिन् ग्रन्थे ओघेन चतुर्दशगुणस्थानानि निरूपितानि। आदेशेन चतुर्दश मार्गणाः प्ररूपिताः। पुनश्च मार्गणासु गुणस्थानानि प्ररूपितानि संति।

द्वितीयग्रंथे सत्प्ररूपणान्तर्गतालापाः कथिताः। अतोऽयं ग्रन्थः आलापाधिकारैः प्रसिद्धोऽस्ति। अस्मिन् ग्रन्थे सूत्राणि न सन्ति। श्रीवीरसेनाचार्य विरचित धवला टीका एवास्ति।

तृतीयग्रन्थे द्रव्यप्रमाणानुगम-क्षेत्रानुगमानुयोगद्वारे द्वे स्तः। अस्माद् ग्रन्थादारभ्य सूत्राणि श्री-भूतबलिसूरिवर्यविरचितानि सन्ति। कथितं च श्रीमद्वीरसेनाचार्यदेवैः-

“संपहि चोदसण्हं जीवसमासाणमत्थित्तमवगदाणं सिस्साणं तेसिं चेव परिमाणपडिबोहणट्ठं भूदबलिआइरियो सुत्तमाह^१”-

अस्मिन् ग्रन्थे जीवानां संख्या गुणस्थानेषु मार्गणास्वपि अस्ति। पुनश्चालौकिकगणितमध्ये

वे आठ अधिकार जैसे ॥६॥

सत्प्ररूपणा, द्रव्यप्रमाणानुगम, क्षेत्रानुगम, स्पर्शनानुगम, कालानुगम, अन्तरानुगम, भावानुगम और अल्पबहुत्वानुगम ये आठ अनुयोगद्वार हैं ॥७॥

सत्प्ररूपणा में ओघ अर्थात् सामान्य की अपेक्षा से और आदेश अर्थात् विशेष की अपेक्षा से इस तरह दो प्रकार का कथन है ॥८॥

यहाँ आचार्यदेव ने चौदह मार्गणाओं का ज्ञान प्राप्त करने के लिए आठ अनुयोगद्वार कहे हैं—

सत्प्ररूपणा, द्रव्यप्रमाणानुगम, क्षेत्रानुगम, स्पर्शनानुगम, कालानुगम, अन्तरानुगम, भावानुगम और अल्पबहुत्वानुगम।

उनमें से प्रथम ग्रंथ में सत्प्ररूपणा नाम का अनुयोगद्वार है। इस ग्रंथ में ओघ शब्द से चौदह गुणस्थानों का निरूपण किया है। आदेश शब्द से चौदह मार्गणाएं प्ररूपित हैं पुनः मार्गणाओं में गुणस्थानों का प्ररूपण किया है।

द्वितीय ग्रंथ में सत्प्ररूपणा के अंतर्गत आलाप कहे गये हैं अतः यह ग्रंथ आलाप अधिकार के नाम से प्रसिद्ध है। इस ग्रंथ में सूत्र नहीं हैं, केवल श्रीवीरसेनाचार्य द्वारा रचित धवला टीका ही है।

तृतीय ग्रंथ में द्रव्यप्रमाणानुगम और क्षेत्रानुगम नाम के दो अनुयोगद्वार हैं। इस ग्रंथ से श्रीभूतबली आचार्य द्वारा रचित सूत्र प्रारंभ हुए हैं।

श्रीवीरसेनाचार्य देव ने कहा भी है—“जिन्होंने चौदहों गुणस्थानों के अस्तित्व को जान लिया है, ऐसे शिष्यों को अब उन्हीं चौदहों गुणस्थानों के अर्थात् चौदह गुणस्थानवर्ती जीवों के परिमाण (संख्या) का ज्ञान कराने के लिए भूतबली आचार्य आगे का सूत्र कहते हैं—”

इस ग्रंथ में जीवों की संख्या गुणस्थानों में और मार्गणाओं में भी कही गई है पुनः अलौकिक गणित

बीजगणितापेक्षया विस्तृत-विवेचनं टीकाकारैः कृतं। अस्यां सिद्धान्तचिन्तामणिटीकायां मया गणितं न गृहीष्यते। तत्प्रकरणं धवलाटीकायामेव पठितव्यम्।

अस्मिन्नेव ग्रन्थे क्षेत्रानुगमानुयोगद्वारे त्रिलोकानां वर्णनं, शंख-भ्रमर-महामत्स्यादीनां उत्कृष्टावगाहना-क्षेत्रफलादिकं कथितं, देवनारकाणां च शरीरावगाहनादीनां विवेचनं कृतं वर्तते। क्षेत्रस्य वर्तमाननिवासस्यापेक्षया गुणस्थानेषु मार्गणासु विस्तृतकथनमस्ति। अहं तु संक्षेपेणैव कथयिष्यामि।

चतुर्थग्रन्थे स्पर्शनानुगम-कालानुगमानुयोगद्वारे द्वे भविष्यतः। स्पर्शनानुगमानुयोगद्वारे गुणस्थानमार्गणासु जीवानां त्रिकालापेक्षया स्पर्शनं कथितं, अत्र प्रकरणे ज्योतिर्लोकस्य विशदविवेचनं दृश्यते। अस्मिन्नेव ग्रन्थे कालानुगमानुयोगद्वारे जीवानां कस्मिन् कस्मिन् गुणस्थाने कियत्कालपर्यंतमवस्थानमिति प्रतिपादनमस्ति। कस्यां कस्यां मार्गणायां कियत्कियत्कालमवस्थानं वर्तते इत्यपि विवेचितमस्ति।

पंचमग्रन्थे अन्तरानुगम-भावानुगम-अल्पबहुत्वानुगमनामानि त्रीणि अनुयोगद्वाराणि वर्णितानि। अन्तरानुगमे जीवानामन्तरं-विरहकालः गुणस्थानापेक्षया मार्गणापेक्षया च प्रतिपादितं। भावानुगमे औपशमिकादिपञ्चभावानां प्रतिपादनं गुणस्थानेषु मार्गणास्वपि च वर्तते। अल्पबहुत्वानुगमनाम्नि अष्टमेऽनुयोगद्वारे जीवानां गुणस्थानमार्गणयोः अल्पबहुत्वकथनमस्ति। यथा-उपशमश्रेण्यारोहकाः त्रयगुणस्थानवर्तिनो मुनयः सर्वतः स्तोकाः, एतेषामधिका उपशान्तगुणस्थानवर्तिन इत्यादयः।

षष्ठग्रन्थे-नवचूलिकाः कथिताः-प्रकृतिसमुत्कीर्तना-स्थानसमुत्कीर्तना-प्रथममहादण्डक-द्वितीयमहादण्डक-

के अन्तर्गत बीजगणित की अपेक्षा से टीकाकार ने विस्तृत विवेचन किया है। इस ग्रंथ की सिद्धान्तचिन्तामणि टीका में मैंने गणित को नहीं लिया है, उस गणित के प्रकरण को धवला टीका में ही पढ़ना चाहिए।

इसी ग्रंथ के क्षेत्रानुगम अनुयोगद्वार में तीनों लोकों का वर्णन है, शंख-भ्रमर-महामत्स्य आदि जीवों की उत्कृष्ट अवगाहना, क्षेत्रफल आदि बताया है, देव और नारकियों के शरीर की अवगाहना आदि का विवेचन किया गया है। क्षेत्र की वर्तमान निवास की अपेक्षा गुणस्थानों में, मार्गणाओं में विस्तृत कथन है। मैं तो इस ग्रंथ में इन सभी का संक्षेप में ही कथन करूँगी।

चतुर्थ ग्रंथ में स्पर्शनानुगम और कालानुगम नाम के दो अनुयोगद्वार रहेंगे। उसमें से स्पर्शनानुयोगद्वार में गुणस्थान और मार्गणाओं के अन्दर जीवों का त्रिकाल की अपेक्षा स्पर्शन कहा है, इस प्रकरण में ज्योतिर्लोक का विशद विवेचन देखा जाता है। इसी ग्रंथ में कालानुगम नाम के अनुयोगद्वार में जीवों का किस-किस गुणस्थान में कितने काल तक अवस्थान रहता है यह प्रतिपादित है। किस-किस मार्गणा में कितने-कितने समय तक अवस्थान रहता है, इसका विवेचन भी इसमें है।

पाँचवें ग्रंथ में अन्तरानुगम, भावानुगम और अल्पबहुत्वानुगम नाम के तीन अनुयोगद्वार वर्णित हैं। उनमें से अन्तरानुगम में जीवों का अन्तर—विरहकाल गुणस्थानों की अपेक्षा और मार्गणाओं की अपेक्षा प्रतिपादित है। भावानुगम में औपशमिक आदि पाँचों भावों का गुणस्थान और मार्गणाओं में प्रतिपादन है। अल्पबहुत्वानुगम नाम के आठवें अनुयोगद्वार में गुणस्थान और मार्गणाओं में जीवों के अल्पबहुत्व का कथन है। जैसे—

उपशम श्रेणी में आरोहण करने वाले तीन गुणस्थानवर्ती मुनि सबसे कम होते हैं, उनसे अधिक ग्यारहवें उपशांतकषाय गुणस्थानवर्ती मुनि रहते हैं।

छठे ग्रंथ में नव चूलिकाएं कही हैं—प्रकृति समुत्कीर्तना, स्थानसमुत्कीर्तना, प्रथम महादण्डक,

तृतीयमहादण्डक-उत्कृष्टस्थिति-जघन्यस्थिति-सम्यक्त्वोत्पत्ति-गत्यागतिनामधेयाः नव सन्ति।

एवमष्टभिरनुयोगद्वारैः नवचूलिकाभिश्च षट् ग्रन्थाः जीवस्थाननाम्नि प्रथमखण्डे विभाजिताः ज्ञातव्याः।

अयं पीठिकाबन्धः प्ररूपितः।

संप्रति अस्मिन् तृतीयग्रन्थे चत्वारो महाधिकाराः सन्ति। प्रथमतस्तावत् द्रव्यप्रमाणानुगमानुयोगद्वारे द्वौ महाधिकारौ स्तः। पुनश्च क्षेत्रानुगमानुयोगद्वारेऽपि द्वौ महाधिकारौ वर्तते।

तस्मिन्नपि प्रथममहाधिकारे द्रव्यप्रमाणानुगमे गुणस्थानप्ररूपणाः सन्ति। द्वितीयमहाधिकारे मार्गणासु संख्या अवधार्यन्ते। तृतीयमहाधिकारे क्षेत्रानुगमे गुणस्थानेषु क्षेत्रं कथ्यते ततश्च चतुर्थमहाधिकारे क्षेत्रापेक्षया मार्गणाः वक्ष्यन्ते।

तत्र तावत् द्रव्यप्रमाणानुगमे प्रथममहाधिकारे पातनिकाव्याख्यानं क्रियते।

अथ षट्खण्डागमग्रन्थराजस्य प्रथमखण्डे द्रव्यप्रमाणानुगमो-नाम द्वितीयोऽनुयोगद्वारः प्रकृतोऽस्ति। तत्र तावत् द्वौ महाधिकारौ स्तः। तस्मिन्नपि प्रथममहाधिकारे अधिकारशुद्धिपूर्वकत्वेन पातनिकासहितं व्याख्यानं क्रियते।

तत्रादौ जिननमस्कार मंगलाचरणपूर्वकं “द्वपमाणाणुगमेण” इति प्रतिज्ञासूत्रमादिं कृत्वा द्रव्य-काल-क्षेत्र-भावप्रमाणैः मिथ्यादृष्टिजीवराशि-निरूपणपरत्वेन प्रथमस्थले ‘ओघेण’ इत्यादिसूत्रपंचकं। तदनंतरं द्वितीयस्थले सासादनसम्यग्दृष्टेरारभ्याप्रमत्तपर्यन्तानां द्रव्यप्रमाणप्रतिपादनपरत्वेन “सासणसम्माइट्ठि” इत्यादिसूत्रत्रयं। तदनु तृतीयस्थले अपूर्वकरणदिउपशान्तकषायवर्तिमुनीनां चतुरूपशामकानां

द्वितीय महादण्डक, तृतीय महादण्डक, उत्कृष्ट स्थिति, जघन्यस्थिति, सम्यक्त्वोत्पत्ति और गत्यागति इन नाम वाली नौ चूलिकाएँ हैं। इस प्रकार आठ अनुयोगद्वारों के द्वारा और नव चूलिकाओं के द्वारा छह ग्रंथ जीवस्थान नाम के प्रथम खण्ड में विभाजित हैं, ऐसा जानना चाहिए।

यह पीठिकाबन्ध प्ररूपित किया गया है।

इस तृतीय ग्रंथ में चार महाधिकार हैं। उनमें से प्रथम द्रव्यप्रमाणानुगम नाम के अनुयोगद्वार में दो महाधिकार हैं पुनः क्षेत्रानुगम नाम के अनुयोगद्वार में भी दो महाधिकार हैं। उसमें भी प्रथम महाधिकार द्रव्यप्रमाणानुगम में गुणस्थान प्ररूपणाएँ हैं। द्वितीय महाधिकार में मार्गणाओं में संख्या का अवधारण—कथन है। तृतीय महाधिकार क्षेत्रानुगम में गुणस्थानों में क्षेत्र का कथन किया है, उसके बाद चतुर्थ महाधिकार में क्षेत्र की अपेक्षा मार्गणाओं का कथन करेंगे।

अब उनमें से द्रव्यप्रमाणानुगम नामक प्रथम महाधिकार में पातनिका का व्याख्यान किया जा रहा है।

अब षट्खण्डागम ग्रंथराज के प्रथम खण्ड में द्रव्यप्रमाणानुगम नामका द्वितीय अनुयोगद्वार प्रकरण प्रारंभ होता है। इस द्रव्यप्रमाणानुगम में दो महाधिकार हैं, उसमें प्रथम महाधिकार में गुणस्थानों का वर्णन है तथा द्वितीय महाधिकार में मार्गणाप्ररूपणा को कहेंगे। उसमें भी प्रथम महाधिकार में अधिकारशुद्धिपूर्वक पातनिका सहित व्याख्यान किया जा रहा है।

उसमें आदि में जिनभगवान को नमस्कार करने रूप मंगलाचरणपूर्वक “द्वपमाणाणुगमेण” इस प्रतिज्ञा सूत्र को आदि में करके द्रव्य, काल, क्षेत्र और भाव प्रमाणों के द्वारा मिथ्यादृष्टि जीव राशि के निरूपण की मुख्यता से प्रथम स्थल में “ओघेण” इत्यादि पाँच सूत्र हैं। उसके पश्चात् द्वितीय स्थल में सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थान से प्रारंभ करके अप्रमत्त नामक सातवें गुणस्थान तक के जीवों के द्रव्यप्रमाण का प्रतिपादन करने वाले “सासणसम्माइट्ठि” इत्यादि तीन सूत्र हैं। पुनः तृतीयस्थल में अपूर्वकरण गुणस्थान से लेकर उपशान्तकषाय

संख्याप्ररूपणपरत्वेन “चदुण्हमुवसामगा” इत्यादिसूत्रद्वयं। ततः परं चतुर्थस्थले क्षपकाणां अयोगिनां चापि संख्यानिरूपणत्वेन “चउण्हं” इत्यादिसूत्रद्वयं। तत्पश्चात् पंचमस्थले सयोगिवेवल्लिनां द्रव्यप्रमाणप्रतिपादनत्वेन “सजोगिकेवली” इत्यादिसूत्रद्वयम्।

एवं चतुर्दशगुणस्थानवर्तिजीवानां संख्याप्रतिपादनपरैः पंचभिरन्तरस्थलैः चतुर्दशसूत्रैः ओघद्रव्य-प्रमाणानुगमस्य समुदायपातनिका अस्ति।

संप्रति गुणस्थानेषु मार्गणास्थानेषु च जीवानां संख्यानिरूपणार्थं श्रीभूतबलिसूरिवर्यः प्रतिज्ञा सूत्रमवतारयति —

द्व्यप्रमाणानुगमेण दुविहो णिद्दसो ओघेण आदेसेण य।।१।।

सिद्धान्त चिन्तामणि टीका — अस्मिन् षट्खण्डागमग्रन्थे सत्प्ररूपणाप्रतिपादकानि सप्तसप्तत्य-धिकशतसूत्राणि श्रीपुष्पदन्ताचार्यविरचितानि सन्ति। ततः परं अतः प्रभृति द्रव्यप्रमाणानुगमादिप्रतिपादकानि सूत्राणि श्रीभूतबल्य्याचार्यविरचितानि सन्ति इति ज्ञातव्यं भवद्भिः। तथैवोक्तं श्रीवीरसेनाचार्येण —

“संपहि चोद्दसण्हं जीवसमासाणमत्थित्तमवगदाणं सिस्साणं तेसिं चेव परिमाणपडिबोहणट्ठं भूदबलियाइरियो सुत्तमाह” — ”

गुणस्थानवर्ती मुनियों में से चार उपशामक — उपशम श्रेणी पर चढ़ने वालों के संख्या प्ररूपण की मुख्यता से “चदुण्हमुवसामगा” इत्यादि दो सूत्र हैं।

इसके बाद चतुर्थस्थल में क्षपक श्रेणी पर आरोहण करने वाले मुनियों तथा अयोगकेवली गुणस्थानवर्ती भगवन्तों की संख्या का निरूपण करने वाले “चउण्हं” इत्यादि दो सूत्र हैं। तत्पश्चात् पंचमस्थल में सयोगकेवलियों के द्रव्यप्रमाण का प्रतिपादन करने वाले “सजोगिकेवली” इत्यादि दो सूत्र हैं।

इस प्रकार चौदहगुणस्थानवर्ती जीवों की संख्या का प्रतिपादन करने वाले पाँच अन्तरस्थलों में चौदह सूत्रों के द्वारा ओघद्रव्यप्रमाणानुगम के सूत्रों की समुदायपातनिका हुई।

अब गुणस्थानों एवं मार्गणास्थानों में जीवों की संख्या का निरूपण करने हेतु श्रीभूतबली आचार्यप्रवर प्रतिज्ञासूत्र का अवतार करते हैं —

सूत्रार्थ —

द्रव्यप्रमाणानुगम की अपेक्षा निर्देश दो प्रकार का है — ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश।।१।।

सिद्धान्तचिन्तामणि टीका — इस षट्खण्डागम ग्रंथ में सत्प्ररूपणा का प्रतिपादन करने वाले एक सौ सतत्तर (१७७) सूत्र श्री पुष्पदन्त आचार्य के द्वारा रचित हैं। उसके आगे यहाँ इस द्रव्यप्रमाणानुगम के प्रथम सूत्र से द्रव्यप्रमाणानुगम आदि का प्रतिपादन करने वाले ये सभी सूत्र श्रीभूतबली आचार्य के द्वारा विरचित हैं, ऐसा आप लोगों को जानना चाहिए।

उसी बात को श्रीवीरसेन आचार्य ने भी कहा है —

“जिन्होंने चौदहों गुणस्थानों के अस्तित्व को जान लिया है, ऐसे शिष्यों को अब उन्हीं चौदहों गुणस्थानों के अर्थात् चौदहों गुणस्थानवर्ती जीवों के परिमाण (संख्या) का ज्ञान कराने के लिए भूतबलि आचार्य आगे का सूत्र कहते हैं” —

यस्य सदन्युयोगद्वारे चतुर्दशमार्गणास्थानैः चतुर्दशगुणस्थानानामस्तित्वं प्ररूपितं तस्यैव जीवद्रव्यस्य प्रमाणं संख्या द्रव्यप्रमाणमिति। यथावस्त्वबोधः अनुगमः केवलिश्रुतकेवलिभिरनुगतानुरूपेणावगमो वा। द्रव्यप्रमाणस्य द्रव्यप्रमाणयोर्वा अनुगमः द्रव्यप्रमाणानुगमः, तेन द्रव्यप्रमाणानुगमेनेति निमित्ते तृतीया^१।

दुविहो णिहेसो-श्रोतृणां यथा निश्चयो भवति तथा देशः-कथनं निर्देशः। अथवा 'णिः' इति अतिशये वर्तते, कुतीर्थपाखण्डिनः अतिशय्य कथनं वा निर्देशः^२। स द्विविधः—द्विप्रकारः। ओघेण—ओघेन चतुर्दशगुणस्थानानां प्रमाणप्ररूपणं—ओघ निर्देशः। आदेसेणय-गत्यादिविभिन्न चतुर्दश जीव समास प्ररूपणं-चतुर्दशमार्गणाप्ररूपणं आदेशः तेन ओघेन आदेशेन च निर्देशः क्रियते इत्यर्थः।

तस्य द्रव्यस्य किं लक्षणं यस्य प्रमाणं निरूप्यते?

द्रवति द्रोष्यति अदुद्रुवत् पर्यायानिति द्रव्यं। अथवा द्रूयते द्रोष्यते अद्रावि पर्यायः इति द्रव्यम्। तच्च द्रव्यं द्विविधम्—जीवद्रव्यं अजीवद्रव्यं चेति। तत्र तावत् जीवद्रव्यस्य लक्षणमुच्यते—

व्यपगतपंचवर्णः व्यपगतपंचरसः व्यपगतद्विगन्धः व्यपगताष्टस्पर्शः सूक्ष्मः अमूर्तिकः अगुरुकलघुकः,

तृतीय पुस्तक के प्रारंभ में यह भूमिका श्री भूतबली आचार्य ने बनाई है इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि आगे के सभी सूत्र श्री भूतबली आचार्य द्वारा बनाये गये हैं।

जिसके सदन्युयोगद्वार में चौदह मार्गणास्थानों के द्वारा चौदह गुणस्थानों के अस्तित्व का प्ररूपण है, उसी जीवद्रव्य के प्रमाण—संख्या का कथन द्रव्यप्रमाण कहलाता है। वस्तु के अनुरूप ज्ञान को अनुगम कहते हैं अथवा केवली और श्रुतकेवलियों के द्वारा परम्परा से आये हुए अनुरूप ज्ञान को अनुगम कहते हैं। द्रव्यगत प्रमाण के अथवा द्रव्य और प्रमाण के अनुगम को द्रव्यप्रमाणानुगम कहते हैं। उससे अर्थात् द्रव्यप्रमाणानुगम की अपेक्षा, इस प्रकार द्रव्यप्रमाणानुगम पद के साथ सूत्र में जो तृतीया विभक्ति जोड़ी है, वह निमित्तरूप अर्थ में जानना चाहिए।

निर्देश के दो भेद हैं—जिस प्रकार के कथन करने से श्रोताओं को पदार्थ के विषय में निश्चय होता है उस प्रकार के कथन करने को निर्देश कहते हैं अथवा “नि” का अर्थ अतिशय है इससे निर्देश पद का यह अर्थ होता है कि कुतीर्थ अर्थात् सर्वथा एकान्तवाद के प्रस्थापक पाखण्डियों को उल्लंघन करके अतिशयरूप कथन करने को निर्देश कहते हैं। वह निर्देश दो प्रकार का है। प्रथम ओघ—चौदहों गुणस्थानवर्ती जीवों के प्रमाण का प्ररूपण करने वाला ओघनिर्देश है। द्वितीय निर्देश आदेश—मार्गणारूप है, गति आदि विभिन्न चौदह जीवसमासों का प्ररूपण अर्थात् जिसमें चौदह मार्गणाओं का कथन किया जाता है वह आदेश कहलाता है। उस ओघ और आदेश इन दो के द्वारा निर्देश—कथन किया जाता है, ऐसा अर्थ हुआ।

जिसका प्रमाण निरूपित किया जाता है, उस द्रव्य का क्या लक्षण है?

जो पर्यायों को प्राप्त होता है, प्राप्त होगा और पहले प्राप्त हुआ था, उसे 'द्रव्य' कहते हैं। अथवा जिसके द्वारा पर्याय प्राप्त की जाती है, प्राप्त की जायेगी और पूर्व में भी प्राप्त की गई थी, वह 'द्रव्य' कहलाता है।

वह द्रव्य दो प्रकार का है—जीवद्रव्य और अजीवद्रव्य।

उनमें से जीवद्रव्य का लक्षण कहते हैं—

जो पाँच प्रकार के वर्ण से रहित है, पाँच प्रकार के रस से रहित है, दो प्रकार के गंध से रहित है, आठ

असंख्यातप्रदेशी अनिर्दिष्टसंस्थानः इति एवं जीवस्य साधारणलक्षणं। ऊर्ध्वगतिः भोक्ता स्वपरप्रकाशकः इति जीवद्रव्यस्यासाधारणलक्षणं।

यदजीवद्रव्यं तद्विविधं — रूपि-अजीवद्रव्यं अरूपि-अजीवद्रव्यं चेति। तत्र यद् रूपि-अजीवद्रव्यं तस्य लक्षणमुच्यते—“रूपरस-गंधस्पर्शवन्तः पुद्गलाः१।” रूपि अजीवद्रव्यं शब्दादिः। तद्रूपि अजीवद्रव्यं षड्विधं—पृथिवी-जल-छाया-चतुरिन्द्रियविषय-कर्मस्कंध-परमाणवश्चेति।

यद् अरूपि-अजीवद्रव्यं तच्चतुर्विधं—धर्मद्रव्यं अधर्मद्रव्यं आकाशद्रव्यं कालद्रव्यं चेति। तत्र धर्मद्रव्यस्य लक्षणं—व्यपगतपंचवर्णं व्यपगतपंचरसं व्यपगतद्विगंधं व्यपगताष्टस्पर्शं जीवपुद्गलानां गमनागमनकारणं असंख्यातप्रदेशि लोकप्रमाणं धर्मद्रव्यं। एवं चैवाधर्मद्रव्यमपि, अत्र विशेषो—जीवपुद्गलानां इदं स्थितिहेतुः।

प्रकार के स्पर्श से रहित है, सूक्ष्म है, अमूर्तिक है, अगुरुलघु गुण सहित है, असंख्यातप्रदेशी है और संस्थान—आकार रहित है, वह जीव है। इस प्रकार यह जीव का साधारण लक्षण है तथा ऊर्ध्वगति स्वभावपना, भोक्तृत्व और स्वपरप्रकाशकपना ये सब जीव द्रव्य के असाधारण लक्षण हैं।

दूसरा जो अजीवद्रव्य है, उसके दो भेद हैं—१. रूपी अजीव द्रव्य २. अरूपी अजीवद्रव्य।

उनमें से जो रूपी अजीवद्रव्य है, उसका लक्षण कहते हैं—

“रूप, रस, गंध और वर्ण से सहित पुद्गल होते हैं।” अर्थात् पुद्गल में ये गुण पाये जाते हैं। शब्द आदि रूपी अजीव द्रव्य कहलाते हैं, उस रूपी अजीवद्रव्य के छह भेद हैं—पृथिवी, जल, छाया, चार इन्द्रिय के विषय, कर्मस्कंध और परमाणु।

द्वितीय जो अरूपी अजीवद्रव्य है, उसके चार भेद हैं—

धर्म द्रव्य, अधर्मद्रव्य, आकाशद्रव्य और कालद्रव्य। उनमें से धर्मद्रव्य का लक्षण कहते हैं—जो पाँच प्रकार के वर्ण से रहित है, पाँच प्रकार के रस से रहित है, दो प्रकार के गंध से रहित है, आठ प्रकार के स्पर्श से रहित है, जीव और पुद्गलों के गमन और आगमन में साधारण कारण है, असंख्यातप्रदेशी है, एवं लोकाकाश प्रमाण है, वह धर्मद्रव्य है।

इसी प्रकार अधर्मद्रव्य भी है। उसमें धर्मद्रव्य की अपेक्षा यह विशेषता होती है कि वह जीव और पुद्गलों की स्थिति—ठहरने में सहायक होता है।

इसी प्रकार आकाशद्रव्य भी है किन्तु उसमें यह विशेषता है कि आकाशद्रव्य अनन्तप्रदेशी, सर्वगत है तथा अवगाहनलक्षण वाला होता है।

कालद्रव्य भी इसी प्रकार है। उसमें विशेषता यह है कि कालद्रव्य अपने और दूसरे द्रव्यों के परिणमन में कारण है, अप्रदेशी—एक प्रदेशी है तथा लोकाकाश के जितने प्रदेश हैं, उतने ही कालाणु हैं। इस प्रकार ये छह द्रव्य हैं।

विशेषार्थ—द्रव्यप्रमाणानुगम नामक इस षट्खण्डागम के द्वितीय अनुयोगद्वार के प्रथम महाधिकार में सर्वप्रथम द्रव्य का स्वरूप और उसके भेदों का वर्णन किया गया है। उसके अन्तर्गत द्रव्य के मूल में दो भेद बताकर पुनः छह भेदों का निरूपण किया है। आचार्यश्री नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती ने इन सिद्धान्तग्रंथों के साररूप में “द्रव्यसंग्रह” नामक ग्रंथ रचकर वास्तव में भव्यजीवों पर महान् उपकार किया है।

एवमाकाशद्रव्यमपि, तत्र विशेषः—आकाशद्रव्यमनन्तप्रदेशि सर्वगतमवगाहनलक्षणं। एवं चैव कालद्रव्यमपि, तत्रापि विशेषः—स्वपरपरिणामहेतु अप्रदेशि लोकप्रदेशपरिमाणं। एतानि षड्द्रव्याणि।

एतेषु षड्द्रव्येषु केन द्रव्येण प्रयोजनम् ?

अस्मिन् ग्रन्थे जीवद्रव्येणैव प्रयोजनम् वर्तते।

तदपि कथम्?

“मिच्छादृष्टी केवडिया” इति जीवद्रव्यपरिमाणप्ररूपकसूत्रात् ज्ञायते इति।

उन्होंने सर्वप्रथम द्रव्य को दो भेदों में विभक्त कर जीव द्रव्य के नौ अधिकारों का वर्णन किया है—

जीवो उवओगमओ अमुत्तिकत्ता सदेहपरिमाणो।

भोक्ता संसारत्थो सिद्धो सो विस्ससोड्ढगई॥२॥

शंभु छंद — जो जीता है सो जीव कहा, उपयोगमयी वह होता है।

मूर्ती विरहित कर्ता स्वदेह-परिमाण कहा औ भोक्ता है।।

संसारी है औ सिद्ध कहा, स्वाभाविक ऊर्ध्वगमनशाली।

इन नौ अधिकारों से वर्णित, है जीव द्रव्य गुणमणिमाली॥२॥

अर्थात् प्रत्येक प्राणी जीव है, उपयोगमय है, अमूर्तिक है, कर्ता है, स्वदेहप्रमाण रहने वाला है, भोक्ता है, संसारी है, सिद्ध है और स्वभाव से ऊर्ध्वगमन करने वाला है।

इन नौ अधिकारों में विभक्त जीवद्रव्य का व्यवहारनय एवं निश्चयनय से वर्णन करके द्वितीय अजीवद्रव्य के मूर्तिक-अमूर्तिक भेदों का स्पष्टीकरण किया है—

अज्जीवो पुण णोओ, पुगल धम्मो अधम्म आयासं।

कालो पुगल मुत्तो, रूवादिगुणो अमुत्ति सेसा दु॥१५॥

शंभु छंद — पुद्गल औ धर्म अधर्म तथा, आकाश काल ये हैं अजीव।

इन पाँचों में पुद्गल मूर्तिक, रूपादि गुणों से युत सदीव।।

बाकी के चार अमूर्तिक हैं, स्पर्श वर्ण रस गंध रहित।

चैतन्य प्राण से शून्य अतः, ये द्रव्य अचेतन ही हैं नित॥१५॥

अर्थात् पाँच प्रकार के अजीव द्रव्यों में से एक पुद्गल द्रव्य मूर्तिक है, शेष चारों अमूर्तिक होते हैं। इस प्रकार छह द्रव्यों में से एक कालद्रव्य को छोड़कर शेष पाँच द्रव्यों को अस्तिकाय भी कहा है। कालद्रव्य रत्नों की राशि के समान पृथक्-पृथक् रूप से लोकाकाश के एक-एक प्रदेश पर कालाणुरूप से स्थित होने के कारण असंख्यात होते हैं।

इन द्रव्यों की अनादिकालीन सत्ता जानकर इस मानवपर्याय को सार्थक करने हेतु आत्मतत्त्व का श्रद्धान करते हुए कालद्रव्य के एक-एक क्षण का सदुपयोग करना चाहिए।

प्रश्न — इन छहों द्रव्यों में से यहाँ किस द्रव्य से प्रयोजन है?

उत्तर — इस ग्रंथ में यहाँ जीवद्रव्य से ही प्रयोजन है।

प्रश्न — यह बात कैसे जानी गई कि यहाँ जीव द्रव्य से ही प्रयोजन है?

उत्तर — “मिथ्यादृष्टि जीव कितने हैं” इस प्रकार जीव द्रव्य के परिमाण का प्ररूपण करने वाले सूत्र से

अन्यत्र ग्रंथे^१ द्रव्यस्य लक्षणं प्ररूपितं—

“सद्द्रव्यलक्षणम्।”

सत् शब्दस्य कोऽर्थः इति चेत् ?

“उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत्।”

अथवा “गुणपर्ययवद्द्रव्यम्।”

श्रीसमन्तभद्रस्वामिनापि प्रोक्तम्—

नयोपनयैकान्तानां त्रिकालानां समुच्चयः।

अविभ्राद्भावसम्बन्धो द्रव्यमेकमनेकधा^२॥१०७॥

यद् नैगमादिनयानां तेषां शाखोपशाखारूपोपनयानां विषयभूतत्रिकालवर्तिपर्यायाणां अभिन्नसंबन्धरूपं समुदयं तद्द्रव्यम् कथ्यते। तद्द्रव्यं कथंचिदेकरूपं कथंचिदनेकरूपं चापि विद्यते।

तात्पर्यमेतत्—अधुनास्मिन् ग्रंथे जीवद्रव्यस्य प्रमाणं केवलिश्रुतकेवलिकथितागमाधारेण वक्ष्यते श्रीभूतबलिसूरिवर्येणेति। एवं प्रतिज्ञासूत्रं गतम्।

यह जाना जाता है कि यहाँ पर एक जीवद्रव्य से ही प्रयोजन है।

अन्यत्र दूसरे ग्रंथ में द्रव्य का लक्षण बताया है—

“सद्द्रव्यलक्षणं” अर्थात् द्रव्य का लक्षण सत् (अस्तित्व) है।

‘सत्’ शब्द का क्या अर्थ है? ऐसा पूछने पर समाधान दिया जाता है—

जो उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य सहित होता है, वह सत् कहलाता है।

दूसरी प्रकार से भी द्रव्य का लक्षण कहा गया है—“गुणपर्ययवद्द्रव्यं” अर्थात् जिसमें गुण एवं पर्याय दोनों पाये जाते हैं, उसे द्रव्य कहते हैं।

श्री समन्तभद्रस्वामी ने भी कहा है—

कारिकार्थ—त्रिकालविषयक, नय और उपनयों के एकांत का जो समुच्चय है और अविभ्राद्भाव संबंध—अपृथक् स्वभाव संबंधरूप है, वही द्रव्य है और वह एक भी है, अनेक प्रकार का भी है॥१०७॥

जो नैगमादि नयों के शाखा-उपशाखारूप उपनय हैं उनके विषयभूत त्रिकालवर्ती पर्यायों का अभिन्न संबंधरूप समुदाय है, वही द्रव्य कहलाता है। वह द्रव्य कथंचित् एकरूप और कथंचित् अनेकरूप भी होता है।

तात्पर्य यह है कि यहाँ इस ग्रंथ में जीवद्रव्य का प्रमाण केवली-श्रुतकेवली के द्वारा कहे गये आगम के आधार से ही श्रीभूतबली आचार्यदेव कहेंगे। इस प्रकार प्रतिज्ञासूत्र पूर्ण हुआ।

विशेषार्थ—धवला टीका में आचार्य श्री वीरसेन स्वामी ने इस विषय का अच्छा स्पष्टीकरण किया है जो यहाँ प्रसंगोपात्त उल्लिखित किया जा रहा है—

एयदवियम्मि जे अत्थपज्जया वयणपज्जया चावि ।

तीदाणागदभूदा तावदियं तं हवदि दव्वं ॥५८२॥ (गोम्मटसार जीवकाण्ड)

अर्थात् एक द्रव्य में अतीत, अनागत और ‘अपि’ शब्द से वर्तमान पर्यायरूप जितने अर्थपर्याय और व्यंजनपर्याय हैं, तत्प्रमाण वह द्रव्य होता है।

यद्यपि इस प्रकार द्रव्य और प्रमाण में भेद होता है फिर भी द्रव्य के गुणों की प्ररूपणा के द्वारा ही द्रव्य

की प्ररूपणा हो सकती है क्योंकि द्रव्य के गुणों की प्ररूपणा के बिना द्रव्यप्ररूपणा का कोई उपाय नहीं है। कहा भी है—

नानात्मतामप्रजहत्तदेकमेकात्मतामप्रजहच्च नाना।

अंगांगिभावान्तव वस्तु यत्तत् क्रमेण वाग्वाच्यमनन्तरूपम्॥ (युक्त्यनुशासन)

अर्थात् अपने गुणों और पर्यायों की अपेक्षा नानास्वरूपता को न छोड़ता हुआ वह द्रव्य एक है और अन्वयरूप से एकपने को नहीं छोड़ता हुआ वह अपने गुणों और पर्यायों की अपेक्षा नाना है। इस प्रकार अनन्तरूप जो वस्तु है वही है जिन! आपके मत में क्रमशः अंगांगी भाव से वचनों द्वारा कही जाती है।

अतः द्रव्य के गुणरूप प्रमाण के प्ररूपण कर देने पर द्रव्य का कथन हो ही जाता है। इस प्रकार सूत्र में द्रव्य और प्रमाण की प्ररूपणा है ही, अतएव द्वन्द्व समास भी विरोध को प्राप्त नहीं होता है। इस प्रकार तत्पुरुष, कर्मधारय और द्वन्द्वसमास को छोड़कर शेष समासों की यहाँ संभावना नहीं है।

वे बहुव्रीहि, अव्ययीभाव, द्वन्द्व, तत्पुरुष, द्विगु और कर्मधारय इस प्रकार छह समास होते हैं।

शंका—यहाँ द्रव्यप्रमाण इस पद में उपर्युक्त तीन समासों को छोड़कर दूसरे समासों की संभावना क्यों नहीं है ?

समाधान—क्योंकि यहाँ पर उनका अर्थ घटित नहीं होता है इसलिये अन्य समासों का ग्रहण नहीं किया।

शंका—उन छहों समासों का क्या अर्थ है ?

समाधान—अन्य अर्थप्रधान बहुव्रीहि समास है। उत्तर पदार्थप्रधान तत्पुरुष समास है। अव्ययीभाव समास में पूर्व पदार्थप्रधान है। द्वन्द्व समास की प्रत्येक पद में प्रधानता रहती है।

संख्यापूर्वक तत्पुरुष को द्विगु समास कहते हैं, जैसे पंचनद इत्यादि। जहाँ पर दो पदार्थों का एक आधार दिखाया जाता है ऐसे तत्पुरुष को कर्मधारय समास कहते हैं।

शंका—यहाँ पर शंकाकार कहता है कि संख्या एकरूप ही है, क्योंकि एक को छोड़कर दो आदिक संख्याएं नहीं पाई जाती हैं और वह एकरूप संख्या संपूर्ण पदार्थों में रहती है ऐसा जाना जाता है। यदि ऐसा न माना जाय तो उन संपूर्ण पदार्थों का अस्तित्व ही नहीं बन सकता है इसलिये यहाँ पर उस संख्या की प्ररूपणा से क्या प्रयोजन है?

समाधान—आगे उपर्युक्त शंका का परिहार करते हैं। संपूर्ण पदार्थों के नियम से एक ही संख्या होती है, यदि ऐसा मान लिया जाय तो वे संपूर्ण पदार्थ एकरूप संख्या से अभिन्न हो जाते हैं इसलिये उन सबको एकत्व का प्रसंग आ जाता है और ऐसा मान लेने पर एक पदार्थ का ज्ञान होने पर संपूर्ण पदार्थों का ज्ञान, एक पदार्थ के विनाश होने पर संपूर्ण पदार्थों का विनाश और एक पदार्थ की उत्पत्ति होने पर संपूर्ण पदार्थों की उत्पत्ति होने लगेगी परन्तु ऐसा है नहीं, क्योंकि ऐसा देखा नहीं जाता है, इसलिये पदार्थों में भेद मान लेना चाहिये। इस प्रकार पदार्थों में भेद के सिद्ध हो जाने पर उनमें रहने वाली संख्या में भेद सिद्ध हो ही जाता है क्योंकि अनेक पदार्थों में रहने वाली संख्याओं में एकत्व अर्थात् अभेद मानने में विरोध आता है।

शंका—एक यह संख्या ही अनेक रूप हो जाओ, परन्तु उससे भिन्न संख्या नहीं पाई जाती है ?

समाधान—ऐसा नहीं है क्योंकि एक संख्या को बहुत रूप मानने में विरोध आता है।

शंका—यह एक संख्या एकत्व के प्रति समान होने से एकरूप है और द्रव्य, क्षेत्र, काल तथा भाव के

भेद से नानारूप है, इसलिये एक संख्या में बहुत्व विरोध को प्राप्त नहीं होता है ?

प्रतिशंका — यदि ऐसा है तो एक संख्या से कथंचित् भिन्न होने के कारण दो आदि संख्याओं का उससे भेद क्यों नहीं मान लेते हो ?

शंका — एक संख्या से दो आदि संख्याओं का भेद कैसे है ?

समाधान — द्रव्य, क्षेत्र आदि भेदों की अपेक्षा से दो आदि संख्याओं का भेद है और इसीलिये संख्याओं में दो आदि रूपता बन जाती है क्योंकि एकपने की अपेक्षा दोनों में समानता देखी जाती है।

द्रव्यार्थिकनय की विवक्षा से एक और नाना इन दोनों में एकत्व है। पर्यायार्थिकनय की विवक्षा होने पर विवक्षित एक संख्या से शेष एक संख्याएं भिन्न हैं, इसलिये उनमें नानात्व है तथा नैगमनय की विवक्षा होने पर द्वित्व आदि भाव बन जाता है। इस प्रकार (संख्या के कथंचित् एकरूप और कथंचित् नानारूप सिद्ध हो जाने पर उनमें से) यहाँ प्रकृत में तो नैगमनय की विवक्षा से संख्याभेद ही ग्रहण करना चाहिये।

वस्तु के अनुरूप ज्ञान को अनुगम कहते हैं। अथवा केवली और श्रुतकेवलियों के द्वारा परंपरा से आये हुए अनुरूप ज्ञान को अनुगम कहते हैं। द्रव्यगत प्रमाण के अथवा द्रव्य और प्रमाण के अनुगम को द्रव्यप्रमाणानुगम कहते हैं। उससे अर्थात् द्रव्यप्रमाणानुगम की अपेक्षा इस प्रकार द्रव्यप्रमाणानुगम पद के साथ सूत्र में जो तृतीया विभक्ति जोड़ी है, वह निमित्तरूप अर्थ में जानना चाहिए।

निर्देश दो प्रकार है। जिस प्रकार के कथन करने से श्रोताओं को पदार्थ के विषय में निश्चय होता है। उस प्रकार के कथन करने को निर्देश कहते हैं। अथवा 'नि'का अर्थ अतिशय है, इससे निर्देश पद का यह अर्थ होता है कि कुतीर्थ अर्थात् सर्वथा एकान्तवाद के प्रस्थापक पाखण्डियों को उल्लांघन करके अतिशयरूप कथन करने को निर्देश कहते हैं। वह निर्देश शरीर के स्वभाव, रूप, प्रकृति, शील और धर्म के निर्देश के समान दो प्रकार का है।

उनमें से एक ओघनिर्देश है। ओघ, वृन्द, समूह, संघात, समुदाय, पिण्ड, अविशेष, अभिन्न और सामान्य ये सब पर्यायवाची शब्द हैं। इस ओघनिर्देश का प्रकृत में स्पष्टीकरण इस प्रकार हुआ कि गत्यादि मार्गणास्थानों से विशेषता को नहीं प्राप्त हुए केवल चौदहों गुणस्थानों के अर्थात् चौदहों गुणस्थानवर्ती जीवों के प्रमाण का प्ररूपण करना ओघनिर्देश है।

शंका — वह ओघनिर्देश चौदहों गुणस्थानविशिष्ट संपूर्ण जीवराशि के प्रमाण का प्ररूपण करने वाला होने से आदेशनिर्देश क्यों नहीं कहलाता है ?

समाधान — नहीं, क्योंकि, ओघनिर्देश में संपूर्ण जीवराशि के निरूपण की प्रतिज्ञा नहीं की गई है।

शंका — तो फिर आचार्य ने ओघनिर्देश की किस विषय में प्रतिज्ञा की है ?

समाधान — आचार्य ने ओघनिर्देश से जीवसमासों के प्रमाण के निरूपण में प्रतिज्ञा की है।

शंका — आचार्य ने ओघनिर्देश से जीवसमासों के प्रमाण के निरूपण में प्रतिज्ञा की है, यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान — 'एतो इमेसिं चोदसण्हं जीवसमासाणं' इत्यादि सूत्र से जाना जाता है कि ओघनिर्देश से जीवसमासों के विषय में आचार्य की प्रतिज्ञा है।

शंका — संपूर्ण जीवराशि को छोड़कर चौदह गुणस्थान पाये नहीं जाते हैं, इसलिये चौदह गुणस्थानों

संप्रति मिथ्यादृष्टीनां संख्या निरूपणार्थं सूत्रावतारः क्रियते श्रीभूतबलिभट्टारकेण —

ओघेण मिच्छाइट्ठी दव्वपमाणेण केवडिया, अणंता॥२॥

ओघेण — सामान्येन गुणस्थानापेक्षया वा मिच्छाइट्ठी — मिथ्यात्वगुणस्थानवर्तिनो जीवाः दव्वपमाणेण —
द्रव्यप्रमाणेन केवडिया — कियन्तः? इति प्रश्ने सति तत्रैवोत्तरं दीयते। अणंता — अनन्ताः इति ज्ञातव्यं।

अत्र सूत्रे 'केवडिया' इति पृच्छा शब्दः कथं प्रयुज्यते?

अत्र स्वकर्तृत्वनिराकरणद्वारेणाप्तकर्तृत्वप्रतिपादनफलं दृश्यते पृच्छा शब्दस्य प्रयोजनमिति।

तदपि कथमिति चेत्?

“वक्तृप्रामाण्याद् वचनप्रामाण्यम्।” इति न्यायात् वचनस्यास्य प्रामाण्यप्रदर्शनफलम्।

पुनः भूतबल्यादीनामाचार्याणां क्व व्यापारः इति चेत्?

तेषां व्याख्यातृत्वाभ्युपगमात्।

के निरूपण करने पर भी तो संपूर्ण जीवराशि का ही निरूपण हो जाता है ?

समाधान — नहीं, क्योंकि ओघनिर्देश के निरूपण में समस्त जीवसमुदाय अविवक्षित है। यद्यपि गुणस्थानों में संपूर्ण जीवराशि का अन्तर्भाव हो जाता है, फिर भी एक जीव के भी एक पर्याय में संपूर्ण गुणस्थान संभव हैं, इसलिये यह कहा गया है कि ओघनिर्देश में संपूर्ण जीवराशि के कथन करने की विवक्षा नहीं की गई है। आदेश से कथन करने को आदेशनिर्देश कहते हैं। आदेश, पृथग्भाव, पृथक्करण, विभजन, विभक्तीकरण इत्यादि पर्यायवाची शब्द हैं। आदेशनिर्देश प्रकृत में स्पष्टीकरण इस प्रकार है कि गति आदि मार्गणाओं के भेदों से प्राप्त हुए चौदह गुणस्थानों का प्ररूपण करना आदेशनिर्देश है।

अब मिथ्यादृष्टि जीवों की संख्या निरूपण के लिए श्रीभूतबली आचार्य सूत्र का अवतार करते हैं —

सूत्रार्थ —

ओघ से मिथ्यादृष्टि जीव द्रव्यप्रमाण की अपेक्षा कितने हैं? अनंत हैं ॥२॥

ओघ से — सामान्य से अथवा गुणस्थान की अपेक्षा मिथ्यात्वगुणस्थानवर्ती जीव द्रव्यप्रमाण से कितने हैं ? ऐसा प्रश्न होने पर सूत्र में ही उत्तर भी प्रदान कर दिया है कि वे मिथ्यादृष्टि जीव अनंत हैं, ऐसा जानना चाहिए।

प्रश्न — यहाँ सूत्र में 'केवडिया' ऐसा प्रश्नवाचक — पूछनेरूप शब्द का प्रयोग क्यों किया है ?

उत्तर — अपने कर्तृत्व का निराकरण करके आप्तकर्तृत्व के प्रतिपादन का फल यहाँ देखा जाता है, यही पृच्छा शब्द का प्रयोजन है।

प्रश्न — ऐसा क्यों कहा ?

उत्तर — “वक्ता की प्रमाणता से वचनों में प्रमाणता आती है” इस न्याय से “अनंत हैं ” इस वचन की प्रमाणता का प्रदर्शन ही इसका फल है।

प्रश्न — पुनः भूतबली आदि आचार्यों का व्यापार (कथन) कहाँ पर होता है ?

उत्तर — उनको आप्त के वचनों का व्याख्याता स्वीकार किया है, इसलिए आप्त के वचनों का व्याख्यान करना ही उनका व्यापार कहलाता है।

अत्रानन्ताः इति प्रमाणे कथिते सति तदपि अनन्तमनेकविधं। नामानन्त-स्थापनानन्त-द्रव्यानन्त-शाश्वतानन्त-गणनानन्त-अप्रदेशिकानन्त-एकानन्त-उभयानन्त-विस्तारानन्त-सर्वानन्त-भावानन्तैरनन्तस्य एकादश भेदाः सन्ति।

तत्र कारणनिरपेक्ष संज्ञा इति नामानन्तं। काष्ठादिकर्मसु तदिदमनन्तं इति स्थापनानन्तं। वर्तमानपर्यायनिरपेक्षं द्रव्यानन्तं। न विद्यते अन्तो विनाशो यस्य तदनन्तं द्रव्यं शाश्वतानन्तं। यद् गणनानन्तं तद् बहुवर्णनीयं अनन्तरमेव प्रतिपाद्यते। एकप्रदेशे परमाणौ अप्रदेशानन्तः।

लोकमध्ये आकाशप्रदेशानां एकश्रेणीं दृश्यमाने अन्ताभावात् एकानन्तं। लोकमध्ये आकाशप्रदेशपंक्तीनां उभयदिशोः अवलोक्यमाने अन्ताभावाद् उभयानन्तं। आकाशस्य प्रतरूपेणावलोक्यमाने अन्तो नास्ति इति विस्तारानन्तं। तदेवाकाशस्य घनरूपेणावलोक्यमाने अन्तो नास्तीति सर्वानन्तं। त्रिकालजातानन्तपर्यायपरिणतजीवादिद्रव्यं भावानन्तमिति।

एषु एकादशविधानन्तेषु केनानन्तेन प्रयोजनमिति चेत् ? अत्र प्रकृते गणनानन्तेन प्रयोजनम्। तदपि गणनानन्तं त्रिविधम् — परीतानन्तं युक्तानन्तं अनन्तानन्तमिति।

यहाँ सूत्र में “अनन्त” इस प्रमाण शब्द का कथन करने पर वह अनन्त शब्द भी अनेक प्रकार का माना गया है —

नाम अनन्त, स्थापना अनन्त, द्रव्य अनन्त, शाश्वत अनन्त, गणना अनन्त, अप्रदेशिक अनन्त, एक अनन्त, उभय अनन्त, विस्तार अनन्त, सर्व अनन्त और भाव अनन्त इस प्रकार अनन्त के ग्यारह भेद हैं।

उनमें से कारण के बिना ही संज्ञा का होना नाम अनन्त है।

काण्ड आदि कर्मों में यह अनन्त है, इस प्रकार की स्थापना करना स्थापनानन्त है अर्थात् काष्ठकर्म, चित्रकर्म, पुस्तकर्म, लेप्यकर्म, लेनकर्म, शैलकर्म, भित्तिकर्म, गृहकर्म, भेंडकर्म अथवा दन्तकर्म में अथवा अक्ष(पासा) हो या कोड़ी हो अथवा दूसरी कोई वस्तु हो उसमें यह अनन्त है, ऐसी स्थापना कर देना स्थापना अनन्त कहलाता है।

वर्तमान पर्याय की अपेक्षा के बिना ही उसे अनन्तरूप कथन करना द्रव्य अनन्त है। जिसका कोई अंत नहीं होता, जो कभी नष्ट नहीं होता है वह अनन्तद्रव्य शाश्वतानन्त कहलाता है। जो गणना में अनन्त है, वह बहुवर्णनीय है एक परमाणु को अप्रदेशिकानन्त कहते हैं।

लोक के मध्य से आकाश-प्रदेशों की एक श्रेणी को देखने पर उसका अन्त नहीं पाया जाता है, इसलिए उसे एकानन्त कहते हैं।

लोक के मध्य से आकाशप्रदेश पंक्ति को दो दिशाओं में देखने पर उसका अन्त नहीं पाया जाता है, इसलिए उसे उभयानन्त कहते हैं। आकाश को प्रतरूप से देखने पर उसका अंत नहीं पाया जाता है अतः उसे विस्तारानन्त कहते हैं उसी आकाश को घनरूप से देखने पर उसका अन्त नहीं पाया जाता है इसलिए उसे सर्वानन्त कहते हैं। त्रिकालजात — तीनों कालों में उत्पन्न होने वाली अनन्त पर्यायों से परिणत जीवादि द्रव्य नोआगम भावानन्त हैं।

प्रश्न — इन ग्यारह प्रकार के अनन्तों में से यहाँ किस प्रकार के अनन्त से प्रयोजन है ?

उत्तर — यहाँ प्रकृत में गणनानन्त से प्रयोजन है। वह गणनानन्त भी तीन प्रकार का होता है — परीतानन्त, युक्तानन्त और अनन्तानन्त।

अत्र मिथ्यादृष्टयो जीवाः अनन्तानन्ता इति ज्ञातव्या भवन्ति। इदं अनन्तानन्तमपि त्रिविधं — जघन्यानन्तानन्तं उत्कृष्टानन्तानन्तं मध्यमानन्तानन्तं चेति।

तर्हि एषु मध्ये अत्र केन प्रयोजनम् वर्तते?

अत्र अजघन्यानुत्कृष्टानन्तानन्तेन मध्यमानन्तानन्तेन प्रयोजनमस्ति इति ज्ञातव्यं भवद्भिः।

मिथ्यादृष्टीनां राशिः तावन्मात्रा इति कथं निश्चीयते?

सूत्रे 'अणन्ता' इति बहुवचनात् निश्चीयते। यद् मिथ्यादृष्टीनां संख्या मध्यमानन्तानन्तप्रमाणमेवेति।

एतद्वचनमसत्यं कथं न भवेदिति चेत्?

नैतद् वक्तव्यम्। "असच्चकारणमुक्क जिणवयणकमलविणिग्गयत्तादो। ण च पमाणपडिग्गहिओ पयत्थो पमाणन्तेरेण परिकिखज्जदि, अव्ववट्ठाणादो" असत्यवचनकारणोन्मुक्तजिनेन्द्रदेवमुखकमलविनिर्गतत्वात् एव एतद्वचनं असत्यं न भवितुं शक्नोति। तथा च प्रमाणपरिगृहीतः पदार्थः प्रमाणान्तरेण न परीक्ष्यते, अव्यवस्थादोषादिति।

तात्पर्यमेतत् — अत्र एकादशसु अनन्तभेदेषु गणनानन्तभेदेन संख्या कथिता भवति तत्रापि मध्यमानन्तानन्तभेदेनैवेति द्रव्यापेक्षया मिथ्यादृष्टयो जीवाः प्ररूपिता जाताः। एतज्ज्ञात्वा मिथ्यात्वं त्यक्त्वा सम्यग्दर्शनं स्थिरीकर्तव्यं जिनेन्द्रदेवस्य भक्तिप्रभावेणेति। पुनश्च अनन्तानन्तसंख्याया व्याख्यां ज्ञातुं इच्छा भवेत्तर्हि श्रीवीरसेनाचार्यस्य धवलाख्या टीका विलोकनीया भवद्भिरिति। किञ्च गणितज्ञानाल्पज्ञया मया विस्तरभयेन चापि नात्र प्रतन्यते।

यहाँ यह जानना चाहिए कि मिथ्यादृष्टि जीव अनन्तानंत होते हैं।

इस अनन्तानंत के भी तीन भेद होते हैं — जघन्य अनन्तानंत, उत्कृष्ट अनन्तानंत एवं मध्यम अनन्तानंत।

प्रश्न — यहाँ इन तीनों अनन्तानंतों में किस अनन्तानंत से प्रयोजन है ?

उत्तर — यहाँ अजघन्यानुत्कृष्टानन्त अर्थात् मध्यम अनन्तानंत से प्रयोजन है, ऐसा जानना चाहिए।

प्रश्न — मिथ्यादृष्टि जीवों की राशि इतनी ही है यह कैसे निश्चित किया जाता है ?

उत्तर — सूत्र में "अणन्ता" ऐसा बहुवचनान्त पद दिया है जिससे जाना जाता है कि मिथ्यादृष्टिराशि मध्यम अनन्तानन्त प्रमाण होती है।

प्रश्न — यह वचन असत्यपने को क्यों नहीं प्राप्त हो जाता है ?

उत्तर — ऐसा नहीं कहना चाहिए क्योंकि ये वचन असत्य बोलने के कारणों से रहित जिनेन्द्रदेव के मुखकमल से विनिर्गत — निकले हुए हैं अतः इन्हें अप्रमाण नहीं माना जा सकता है। जो पदार्थ प्रमाण सिद्ध है, उसकी परीक्षा दूसरे प्रमाणों से नहीं की जाती है क्योंकि ऐसा मानने पर अव्यवस्था हो जायेगी।

तात्पर्य यह है कि यहाँ यद्यपि अनन्त के ग्यारह भेदों में गणनानन्त भेद के द्वारा संख्या का कथन हुआ है फिर भी द्रव्य की अपेक्षा मध्यमानन्तानन्त के भेद से ही मिथ्यादृष्टि जीवों का वर्णन किया गया है, ऐसा जानकर जिनेन्द्र भगवान की भक्ति के बल पर मिथ्यात्व को त्याग करके अपने सम्यग्दर्शन को स्थिर करना चाहिए पुनः यदि अनन्तानन्त संख्या की व्याख्या के बारे में जानने की इच्छा होवे तो आप लोगों को श्री वीरसेनाचार्य द्वारा रचित धवला टीका का अवलोकन — स्वाध्याय करना चाहिए।

यहाँ विस्तार के भय से तथा गणितज्ञान से शून्य मुझ अल्पज्ञ के द्वारा इसका विस्तृत कथन नहीं किया गया है।

अधुना कालापेक्षया मिथ्यादृष्टिजीवानां संख्यानिरूपणार्थं सूत्रस्यावतारो भवति—

अणंताणंताहि ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीहि ण अवहिरंति कालेण।।३।।

कालेन मिथ्यादृष्टयो जीवाः अणंताणंताहि — अनंतानंताभ्यां ओसप्पिणि — उस्सप्पिणीहि अवसर्पिण्युत्स-
र्पिणीभ्यां ण अवहिरंति-अपहृताः न भवन्तीति।

इतो विस्तरः— एकत्र अनंतानंतावसर्पिण्युत्सर्पिणीनाम् समयान् स्थापयित्वा अन्यत्र मिथ्यादृष्टिजीवराशीश्च संस्थाप्य कालेभ्यः एकः समयः मिथ्यादृष्टिराशिभ्यः एको जीवश्च निष्कासयितव्यः। एवं क्रियमाणे अनंतानंतावसर्पिण्युत्सर्पिणीनां सर्वे समयाः समाप्तिमवाप्नुवन्ति किन्तु मिथ्यादृष्टिजीवराशिप्रमाणं न समाप्यते इति ज्ञातव्यम्।

कालस्य त्रयो भेदाः— अनागतवर्तमानातीतभेदात्। अत्रातीतकालेन जीवराशिप्रमाणं विज्ञायते।

तात्पर्यमेतत्— अतो मिथ्यादृष्टिजीवराशिप्रमाणं न समाप्यते किन्तु अतीतकालानां सर्वे समयाः समाप्नुवन्तीति। ततश्च अतीतकालसमयाः स्तोकाः, मिथ्यादृष्टिजीवराशिप्रमाणं ततोऽधिकमिति निश्चेतव्यम्।

कियन्तोऽधिका इति चेत्?

अतीतकालेभ्यः मिथ्यादृष्टिजीवाः अनंतगुणाः सन्ति। अतोऽतीतकालस्य सर्वे समयाः अपहृता भवन्ति, परं तु मिथ्यादृष्टिजीवराशयोऽपहृता न भवन्ति इति सिद्ध्यति।

अब काल की अपेक्षा से मिथ्यादृष्टि जीवों की संख्या निरूपण के लिए सूत्र का अवतार होता है—
सूत्रार्थ—

काल की अपेक्षा मिथ्यादृष्टि जीव अनन्तानन्त अवसर्पिणियों और उत्सर्पिणियों के द्वारा अपहृत नहीं होते हैं।।३।।

अब इसी का विस्तार करते हैं—

एक तरफ अनन्तानन्त अवसर्पिणी और अनन्तानन्त उत्सर्पिणी काल के समयों को स्थापित करके दूसरी तरफ मिथ्यादृष्टि जीवों की राशि करके काल के समयों में से एक-एक समय और उसी के साथ मिथ्यादृष्टि जीवराशि के प्रमाण में से एक-एक जीव कम करते जाना चाहिए—निकालते जाना चाहिए। इस प्रकार करते रहने पर अनंतानंत अवसर्पिणियों और उत्सर्पिणियों के सब समय समाप्त हो जाते हैं, किन्तु मिथ्यादृष्टि जीवराशि का प्रमाण समाप्त नहीं होता है ऐसा जानना चाहिए।

काल के तीन भेद हैं— अनागत (भविष्यकाल), वर्तमान और अतीतकाल (भूतकाल)।

इनमें से अतीतकाल के द्वारा सम्पूर्ण जीवराशि का प्रमाण जाना जाता है।

तात्पर्य यह है कि संसार में मिथ्यादृष्टि जीवों की संख्या समाप्त नहीं होती है किन्तु भूतकाल के सभी समय समाप्त हो जाते हैं अतः सारांशरूप में यह निश्चित करना चाहिए कि अतीतकाल के समय कम हैं और मिथ्यादृष्टि जीवराशि का प्रमाण उससे अधिक है।

प्रश्न— मिथ्यादृष्टि जीव उस अतीतकालराशि से कितने अधिक हैं ?

उत्तर— अतीतकाल की समयराशि से मिथ्यादृष्टि जीव अनन्तगुणे अधिक हैं। इसीलिए अतीत काल के सभी समय अपहृत— समाप्त हो जाते हैं, परन्तु मिथ्यादृष्टि जीव समाप्त नहीं होते हैं यह बात सिद्ध हो जाती है।

अत्र कालप्रमाणं किमर्थमुच्यते?

मोक्षं गच्छतः जीवान् अपेक्ष्य संसारिजीवराशेः व्यये सत्यपि मिथ्यादृष्टिजीवराशीनां सर्वथा विच्छेदो न भवति एतज्ज्ञापयितुमत्र कालापेक्षया प्रमाणमुच्यते।

प्रश्न — यहाँ पर काल की अपेक्षा प्रमाण किसलिए कहा गया है ?

उत्तर — मोक्ष जाने वाले जीवों की अपेक्षा संसारी जीवराशि का व्यय होने पर भी मिथ्यादृष्टि जीवराशि का सर्वथा विच्छेद नहीं होता है, इस बात को बतलाने के लिए यहाँ काल की अपेक्षा प्रमाण कहा है।

विशेषार्थ — इस सूत्र का विशेष विस्तार करते हुए धवला टीकाकार श्रीवीरसेनस्वामी ने कहा है कि क्षेत्रप्रमाण को उलंघन करके कालप्रमाण का कथन करने का यहाँ उद्देश्य यही है कि जो स्थूल और अल्पवर्णनीय होता है उसका कथन पहले ही करने के न्यायानुसार यहाँ कालप्रमाण का वर्णन लिया गया है।

पुनः इसमें शंका उपस्थित होती है कि —

कालप्रमाण की अपेक्षा क्षेत्रप्रमाण बहुवर्णनीय कैसे है ?

उसका समाधान दिया है कि —

क्षेत्रप्रमाण में लोक का प्ररूपण करना योग्य है। उसका भी जगच्छ्रेणी के प्ररूपण बिना ज्ञान नहीं हो सकता है इसलिए जगच्छ्रेणी का प्ररूपण करना चाहिए। जगच्छ्रेणी का भी रज्जु के प्ररूपण किये बिना ज्ञान नहीं हो सकता है इसलिए रज्जु का प्ररूपण करना चाहिए। रज्जु का भी उसके अर्धच्छेदों का कथन किये बिना ज्ञान नहीं हो सकता है इसलिए रज्जु के छेदों का भी प्ररूपण करना चाहिए। रज्जु के छेदों का भी द्वीपों और सागरों के प्ररूपण के बिना ज्ञान नहीं हो सकता है, इसलिए द्वीपों और सागरों का प्ररूपण करना चाहिए परन्तु कालप्रमाण में ऐसी बड़ी प्ररूपणा नहीं है, इसलिए कालप्रमाण की प्ररूपणा की अपेक्षा क्षेत्रप्रमाण की प्ररूपणा अतिसूक्ष्मरूप से वर्णित है।

इस विषय में कितने ही आचार्य ऐसा कथन करते हैं कि जो बहुत प्रदेशों से उपचित होता है, वह सूक्ष्म होता है। कहा भी है —

सुहुमो य हवदि कालो तत्तो य सुहुमदरं हवदि खेत्तं।

अंगुल-असंख भागे हवंति कप्पा असंखेज्जा ।।

अर्थात् कालप्रमाण सूक्ष्म है और क्षेत्रप्रमाण उससे भी सूक्ष्म है क्योंकि अंगुल के असंख्यातवें भाग में असंख्यात कल्प होते हैं।

परन्तु उनका इस प्रकार का व्याख्यान करना घटित नहीं होता है क्योंकि ऐसा मान लेने पर क्षेत्रप्ररूपणा के अनंतर द्रव्यप्ररूपणा का प्रसंग प्राप्त होता है।

यह कैसे? क्योंकि अनंत परमाणुरूप प्रदेशों से निष्पन्न एक द्रव्यांगुल में अवगाहना की अपेक्षा एक क्षेत्रांगुल ही है किन्तु गणना की अपेक्षा अनंत क्षेत्रांगुल होते हैं इसलिए जो बहुत प्रदेशों से उपचित होता है वह सूक्ष्म होता है, यह कहना ठीक नहीं है। निम्न गाथासूत्र के द्वारा भी इस बात को बताया गया है —

सुहुमं तु हवदि खेत्तं, तत्तो य सुहुमदरं हवदि दव्वं।

खेत्तंगुला अणंता, एगे दव्वंगुले होंति।।

अर्थात् क्षेत्र सूक्ष्म होता है और उससे भी सूक्ष्मतर द्रव्य होता है क्योंकि एक द्रव्यांगुल में अनन्त क्षेत्रांगुल होते हैं।

यहाँ पर यह बात विशेषरूप से जाननी चाहिए कि मिथ्यादृष्टि जीवराशि का प्रमाण निकालने में अतीत काल का ही ग्रहण किया गया है क्योंकि सिद्धान्तग्रंथों में सभी द्रव्यों का प्रमाण पृथक्-पृथक् मापों से किया जाता है। जैसे — प्रस्थ के बारे में कथन है कि लोक में प्रस्थ तीन प्रकार से विभक्त है — अनागत, वर्तमान और अतीत। उनमें से जो निष्पन्न नहीं हुआ है, वह अनागत प्रस्थ है, जो बनाया जा रहा है वह वर्तमान प्रस्थ है और जो निष्पन्न हो चुका है तथा व्यवहार के योग्य है व अतीत प्रस्थ है। उनमें से अतीत प्रस्थ के द्वारा सम्पूर्ण बीज मापे जाते हैं।

इसी प्रकार से तीन प्रकार के कालों में से अतीतकाल के द्वारा सम्पूर्ण जीवराशि का प्रमाण जाना जाता है, इसमें कोई संदेह नहीं करना चाहिए तथा काल का महत्त्व जानकर अपने वर्तमानकालिक महान कार्यकलापों के द्वारा भविष्यकाल को उच्चतम बनाने का पुरुषार्थ करना चाहिए।

यहाँ सोलह पदिक अल्पबहुत्व के द्वारा विभिन्न जीवों का प्रमाण भी बहुत अच्छे रूप में स्पष्ट किया है कि— तीनों कालों में वर्तमान काल सबसे स्तोक है। अभव्य जीवों का प्रमाण उससे अनन्तगुणा है। अभव्यराशि से सिद्धकाल अनन्तगुणा है। काल के गुणकार का लक्षण बताया गया है कि छह महीनों के अष्टम भाग में एक मिला देने पर जो संख्या आवे, उससे भक्त — विभाजित अतीतकाल का अनन्तवाँ भाग गुणकार है।

उस अनन्तगुणे सिद्धकाल से सिद्ध संख्यातगुणे हैं। यह गुणकार यहाँ किस रूप में है ? दस पृथक्त्वरूप गुणकार की यहाँ अपेक्षा है। सिद्ध जीवों से असिद्धकाल असंख्यातगुणा है। इस गुणकार में यहाँ संख्यात आवलिकाएं विवक्षित हैं। असिद्धकाल से अतीतकाल विशेष अधिक है। कितना विशेष अधिक है ? सिद्धकाल का जितना प्रमाण है, उतने विशेष से अधिक हैं अर्थात् असिद्धकाल में सिद्धकाल का प्रमाण मिला देने पर अतीतकाल का प्रमाण हो जाता है। अतीतकाल से भव्य मिथ्यादृष्टि जीव अनन्तगुणे हैं। यह गुणकार भव्यमिथ्यादृष्टियों का अनन्तवाँ भाग प्रमाण है। भव्य मिथ्यादृष्टियों से भव्य जीव विशेष अधिक हैं। कितने अधिक हैं? सासादन गुणस्थान से लेकर अयोगकेवली गुणस्थान तक जीवों का जितना प्रमाण है, उतने विशेषरूप अधिक हैं। अर्थात् भव्य मिथ्यादृष्टियों के प्रमाण में सासादन आदि तेरह गुणस्थानवर्ती जीवों के प्रमाण मिला देने पर समस्त भव्यजीवों का प्रमाण होता है। भव्य जीवों से सामान्य मिथ्यादृष्टि जीव विशेष अधिक हैं। कितने विशेषरूप अधिक हैं ? अभव्यराशि में से सासादन आदि तेरह गुणस्थानवर्ती जीवों के प्रमाण को कम कर देने पर जो राशि शेष बचे, उतने विशेष से अधिक हैं। अर्थात् भव्यराशि में से सासादन आदि तेरह गुणस्थान वालों का प्रमाण कम करके अभव्यराशि को मिला देने पर सामान्य मिथ्यादृष्टि जीवों का प्रमाण होता है। सामान्य मिथ्यादृष्टियों से संसारी जीव विशेष अधिक हैं। कितने अधिक हैं ? सासादन आदि तेरह गुणस्थानवर्ती जीवों का जितना प्रमाण है, उतने विशेष अधिक हैं। संसारी जीवों से संपूर्ण जीव विशेष अधिक हैं। कितने अधिक हैं? सिद्ध जीवों का जितना प्रमाण है, उतने अधिक हैं।

सम्पूर्ण जीवराशि से पुद्गलद्रव्य अनन्तगुणा है। यहाँ पर गुणकार क्या है? सम्पूर्ण जीवराशि से अनन्तगुण गुणकार यहाँ विवक्षित है। पुद्गलद्रव्य से अनागतकाल अनन्तगुणा है। यह गुणकार सम्पूर्ण पुद्गलद्रव्य से अनन्तगुणारूप है। अनागतकाल से सम्पूर्णकाल विशेष अधिक है। कितना अधिक है ? वर्तमान और अतीतकालमात्र विशेष से अधिक है। सम्पूर्ण काल से अलोकाकाश अनन्तगुणा है। यहाँ पर कैसा गुणकार है ? सम्पूर्ण काल से अनन्तगुणा यहाँ पर गुणकार है। अलोकाकाश से सम्पूर्ण आकाश विशेष

संप्रति क्षेत्रापेक्षया मिथ्यादृष्टीनां प्रमाणप्ररूपणार्थं सूत्रावतारः क्रियते श्रीभूतबलिसूरिणा —
खेत्तेण अणंता लोगा ॥४॥

क्षेत्रापेक्षया मिथ्यादृष्टयो जीवा अनंतलोकप्रमाणाः सन्ति।

क्षेत्रप्रमाणेन मिथ्यादृष्टिजीवराशिः कथं माप्यते?

बुद्ध्यामाप्यते आगमाधारेणेति।

बुद्ध्या पि सा राशिः कथं माप्यते?

तदेव कथयन्ति, एकैकस्मिन् लोकाकाशप्रदेशे एकमेकं मिथ्यादृष्टिजीवं निक्षिप्य एको लोकः इति मनसा संकल्पयितव्यः। एवं पुनः पुनः माप्यमाने मिथ्यादृष्टिजीवराशिः अनंतलोकमात्रो भवति।

उक्तं आचार्यदेवैः —

लोगागासपदेसे, एक्केक्के णिक्खवेवि तह दिट्ठिं।

एवं गणिज्जमाणे, हवंति लोगा अणंता दुं१॥

को लोकः इति चेत् ?

जगच्छ्रेणीघनो लोकः इति कथ्यते।

अधिक है। कितना अधिक है ? लोकाकाश के जितने प्रदेश हैं, उतना विशेषरूप से अधिक है।

इस प्रकार के सोलहपदिक अल्पबहुत्व से यह अर्थ निकल जाता है कि अतीतकाल से मिथ्यादृष्टि जीव अनन्तगुणे हैं अतः अतीतकाल के सम्पूर्ण समय समाप्त हो जाते हैं परन्तु मिथ्यादृष्टि जीवराशि समाप्त नहीं होती है, यह बात सिद्ध हो जाती है।

अब क्षेत्र की अपेक्षा मिथ्यादृष्टि जीवों का प्रमाण बतलाने के लिए श्रीभूतबली आचार्य सूत्र का अवतार करते हैं —

क्षेत्रप्रमाण की अपेक्षा अनन्त लोकप्रमाण मिथ्यादृष्टि जीवराशि का प्रमाण है ॥४॥

हिन्दी टीका — क्षेत्र की अपेक्षा मिथ्यादृष्टि जीव अनन्तलोकप्रमाण माने गये हैं।

प्रश्न — क्षेत्रप्रमाण के द्वारा मिथ्यादृष्टि जीवराशि कैसी मापी जाती है ?

उत्तर — आगम के आधार से बुद्धि के द्वारा मिथ्यादृष्टि जीव मापे जाते हैं।

प्रश्न — बुद्धि से वे जीव कैसे मापे जाते हैं ?

उत्तर — उसी को कहते हैं — लोकाकाश के एक-एक प्रदेश पर एक-एक मिथ्यादृष्टि जीव को निक्षिप्त करके एक लोक हो गया, इस प्रकार मन से संकल्प करना चाहिए। इस प्रकार पुनः पुनः माप करने पर मिथ्यादृष्टि जीवराशि अनन्तलोकप्रमाण होती है।

आचार्यदेव के द्वारा कहा भी है —

श्लोकार्थ — लोकालोक के एक-एक प्रदेश पर एक-एक मिथ्यादृष्टि जीव को निक्षिप्त करे, इस प्रकार पूर्वोक्त लोकप्रमाण के क्रम से गणना करते जाने पर अनन्तलोक हो जाते हैं।

प्रश्न — लोक किसे कहते हैं ?

उत्तर — जगच्छ्रेणी के घन-समूह को लोक कहते हैं।

का जगच्छ्रेणी?

सप्तरज्जुप्रमाणाकाशप्रदेशानां आयामः जगच्छ्रेणी भण्यते।

का रज्जुः इति चेत्?

तिर्यग्लोकस्य मध्यमविस्तारो रज्जुः कथ्यते। इयं रज्जुः जगच्छ्रेण्याः सप्तभागप्रमाणा वर्तते।

क्व तिर्यग्लोकस्य पर्यवसानम्?

त्रयाणां वातवलयाणां बाह्यभागे तिर्यग्लोकस्यावसानम्।

तदपि कथं ज्ञायते?

“‘लोको वादपदिद्विदो’” इति व्याख्याप्रज्ञप्तिवचनाद् ज्ञायते।

स्वयंभूरमणसमुद्रस्य बाह्यवेदिकायाः परतः कियत्स्थानं गत्वा तिर्यग्लोकसमाप्तिर्भवति इति भण्यमाने सर्वद्वीप-समुद्राणां व्यासेन यावन्ति योजनानि रुद्धानि, तेभ्यः संख्यातगुणानि असंख्यातयोजनानि गत्वा तिर्यग्लोकस्य समाप्तिर्भवति।

अत्र कश्चिदाह — यो योजनसहस्रायामो महामत्स्यः स्वयंभूरमणसमुद्रस्य बाह्ये तटे वेदनासमुद्रघातेन पीडितः कापोतलेश्यया^१-वातवलयेन लग्नः इति एतेन वेदनासूत्रेण सह विरोधः किं न भवति इति चेत्?

आचार्यः प्राह — न भवति, स्वयंभूरमणसमुद्रस्य बाह्यवेदिकायाः परभागस्थितपृथिव्याः ग्रहणं भवति ‘बाह्यतट’ इति पदेन।

यदि एतत् तर्हि अपि महामत्स्यः कापोतलेश्यया संसक्तो न भवितुं अर्हति? इति चेत्?

प्रश्न — जगच्छ्रेणी किसे कहते हैं ?

उत्तर — सात रज्जुप्रमाण आकाशप्रदेशों की लम्बाई को जगच्छ्रेणी कहते हैं।

प्रश्न — रज्जु किसे कहते हैं ?

उत्तर — तिर्यग्लोक के मध्यम विस्तार को रज्जु कहते हैं। यह रज्जु जगच्छ्रेणी के सातवें भागप्रमाण होता है।

प्रश्न — तिर्यग्लोक का अन्त कहाँ पर होता है ?

उत्तर — तीनों वातवलयों के बाह्य भाग में तिर्यग्लोक का अन्त होता है।

प्रश्न — यह भी कैसे जाना जाता है?

उत्तर — “‘लोक वातवलयों से प्रतिष्ठित है ” इस व्याख्याप्रज्ञप्ति के वचन से जाना जाता है।

स्वयंभूरमण समुद्र की बाह्य वेदिका से उस ओर कितना स्थान जाकर तिर्यग्लोक की समाप्ति होती है? ऐसा पूछने पर सब द्वीपों और समुद्रों के व्यास से जितने योजन रुके हुए हैं, उनसे संख्यातगुणे-संख्यातगुणे असंख्यात योजन जाकर तिर्यग्लोक की समाप्ति होती है।

यहाँ कोई कहता है कि जो एक हजार योजन का महामत्स्य है, वह वेदना समुद्रघात से पीड़ित हुआ स्वयंभूरमण समुद्र के बाह्य तट पर कापोतलेश्या अर्थात् तनुवातवलय से लगता है, इस वेदनाखंड के सूत्र के साथ पूर्वोक्त व्याख्यान विरोध को क्यों नहीं प्राप्त होता है ?

इस प्रश्न के उत्तर में आचार्यदेव कहते हैं कि नहीं होता है क्योंकि यहां पर “‘बाह्यतट ” इस पद से स्वयंभूरमण समुद्र की बाह्य वेदिका के परभाग में स्थित पृथिवी का ग्रहण किया गया है।

प्रश्न — यदि ऐसा माना जाय तो महामत्स्य कापोत लेश्या से संसक्त नहीं हो सकता है ?

१. अत्र कापोतलेश्यापदेन वातवलयो गृह्यते उक्तं च टिप्पण्यां—“काउलेस्सियाए लग्गो णाम तदियो वादवलयो॥१॥ सूत्र, धवला, पत्र ८८१-८८२।

नैतत् शंकनीयं, किंच पृथिवीस्थितप्रदेशेषु अधस्तन वातवलयानामवस्थानं विद्यते एव। एष अर्थः यद्यपि पूर्वाचार्यसंप्रदायविरुद्धस्तर्ह्यपि आगमयुक्तिबलेन श्रीवीरसेनाचार्येण प्ररूपितः।

उक्तं च धवलाटीकायां—“एसो अत्थो जइवि पुव्वाइरियसंपदायविरुद्धो तो वि तंतजुत्तिबलेण अम्हेहिं परुविदो। तदो इदमित्थमेवेत्ति णेहासंगहो कायव्वो, अइंदियत्थविसए छदुमत्थवियप्पिदजुत्तीणं णिण्णयहेउत्ताणुववत्तीदो। तम्हा उवएसं लब्धूण विसेसणिण्णयो एत्थ कायव्वो त्ति”।”

अत्र क्षेत्रप्रमाणप्ररूपणा किमर्थं क्रियते?

असंख्यातप्रदेशिनि लोकाकाशे अनंतलोकमात्रोऽपि जीवराशिः सम्माति इति ज्ञापनार्थम्। अथवा अष्टसु मानेषु लोकमानेन माप्यमाने एतावन्तो लोकाः भवन्तीति ज्ञापनार्थम्।

तात्पर्यमेतत्—लोकः एक एव, किंतु बुद्ध्या एतज्ज्ञातव्यं यत् मिथ्यादृष्टिजीवानां संख्याः अनंतलोकमात्रा भवितुं शक्नोति। एतत्कथनं केवलबुद्धिविषयमेव न च कदाचिदपि लोकाः अनंता भविष्यन्ति इति।

अधुना भावप्रमाणप्ररूपणार्थं सूत्रावतारः क्रियते आचार्यवर्येण—

तिण्हं पि अधिगमो भावपमाणं॥५॥

तिण्हं पि—पूर्वोक्तानां त्रयाणां अपि द्रव्याणां कालानां क्षेत्राणां च अधिगमो—ज्ञानं भावपमाणं—

उत्तर—ऐसी शंका नहीं करनी चाहिए, क्योंकि पृथिवी स्थित प्रदेशों में अधस्तन वातवलय का अवस्थान रहता ही है। यह अर्थ यद्यपि पूर्वाचार्यों के सम्प्रदाय से विरुद्ध है तो भी आगम के आधार पर युक्ति के बल से श्रीवीरसेनाचार्य द्वारा प्रतिपादित किया गया है।

जैसाकि धवला टीका में कहा भी है—

“यद्यपि यह अर्थ पूर्वाचार्यों के सम्प्रदाय से विरुद्ध है, तो भी आगम के आधार पर युक्ति के बल से हमने इस अर्थ का प्रतिपादन किया है। इसलिए यह अर्थ इस प्रकार भी हो सकता है, इस विकल्प का संग्रह यहाँ छोड़ना नहीं, क्योंकि अतीन्द्रिय पदार्थों के विषय में छद्मस्थ जीवों के द्वारा कल्पित युक्तियों के विकल्प रहित निर्णय के लिए हेतुता नहीं पाई जाती है। इसलिए उपदेश को प्राप्त करके इस विषय में विशेष निर्णय लेना चाहिए।

प्रश्न—यहाँ क्षेत्रप्रमाण का वर्णन किसलिए किया गया है?

उत्तर—असंख्यातप्रदेशी लोकाकाश में अनन्तलोकप्रमाण जीवराशि भी समाविष्ट हो जाती है, इस बात को बतलाने के लिए यहाँ क्षेत्रप्रमाण का वर्णन किया गया है। अथवा आठ प्रकार के मानों में से लोकमान के द्वारा जीवों की गणना करने पर इतने लोक हो जाते हैं इस बात का ज्ञान कराने के लिए यहाँ क्षेत्रप्रमाण का वर्णन किया गया है।

तात्पर्य यह है कि लोक तो एक ही है किन्तु बुद्धि के द्वारा ऐसा जानना चाहिए कि मिथ्यादृष्टि जीवों की संख्या अनन्तलोकप्रमाण भी हो सकती है ऐसा कथन केवल बुद्धि का विषय ही हो सकता है और लोक कभी भी अनन्त नहीं हो सकते हैं।

अब भावप्रमाण को बतलाने हेतु आचार्यदेव सूत्र का अवतार करते हैं—

सूत्रार्थ—

पूर्वोक्त तीनों प्रमाणों का ज्ञान ही भावप्रमाण है ॥५॥

सिद्धान्तचिन्तामणि टीका—पूर्वोक्त—पूर्व में कहे गये द्रव्यप्रमाण, कालप्रमाण और क्षेत्रप्रमाण

भावप्रमाणमिति ज्ञातव्यं।

अधिगमो ज्ञानं प्रमाणमिति एकार्थः। सोऽपि अधिगमः पञ्चविधः — मतिश्रुतावधिमनःपर्ययकेवलज्ञान-भेदेन। तत्र पंचसु ज्ञानेष्वपि प्रत्येकं द्रव्यक्षेत्रकालभेदेन त्रिविधं। द्रव्यविषयज्ञानं द्रव्यभावप्रमाणं, क्षेत्रविशिष्टद्रव्यस्य ज्ञानं क्षेत्रभावप्रमाणं, तथैव कालभावप्रमाणमपि ज्ञातव्यं।

सूत्रे भावप्रमाणस्य कथनं किं न कृतम्?

नैतत्, तस्य अनुक्तसिद्धिर्भवति। किं च, भावप्रमाणमन्तरेण त्रयाणां प्रमाणाणां सिद्धिर्न भवति, मुख्यप्रमाणाभावे गौणप्रमाणासंभवात्। अथवा भावप्रमाणं बहुवर्णनीयमिति। हेतुवादाहेतुवादानां अवधारणसमर्थशिष्याणां अभावाद्वा।

अस्मिन् प्रकरणे मिथ्यादृष्टिजीवराशिप्रमाणविषये श्रोतॄणां निश्चयोत्पादनार्थं मिथ्यादृष्टिराशिप्रमाणप्ररूपणं वर्गस्थाने खण्डित-भाजित-विरलित-अपहृत-प्रमाण-कारण-निरुक्ति-विकल्प-द्वारैः अस्तीति विशेष जिज्ञासुभिस्तृतीयपुस्तकं द्रष्टव्यम्।^१

एवं मिथ्यादृष्टिजीवानां द्रव्यादिभिः प्रमाणप्रतिपादनपरैः प्रथमस्थले प्रतिज्ञासूत्रसमन्वितेन सूत्रपञ्चकं गतम्।

इन तीनों प्रमाणों का ज्ञान भावप्रमाण जानना चाहिए।

अधिगम और ज्ञानप्रमाण ये दोनों एक ही अर्थवाचक पर्यायवाची शब्द हैं। वह अधिगम भी मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान और केवलज्ञान के भेद से पाँच प्रकार का है। उन पाँचों ज्ञानों में से प्रत्येक ज्ञान के द्रव्य, क्षेत्र और काल ये तीन-तीन भेद होते हैं। उन तीनों में से द्रव्यों को विषय करने वाले ज्ञान को द्रव्यभावप्रमाण कहते हैं। क्षेत्रविशिष्ट द्रव्य के ज्ञान को क्षेत्रभावप्रमाण कहते हैं। इसी प्रकार से कालभावप्रमाण को भी जानना चाहिए।

प्रश्न — सूत्र में भावप्रमाण का कथन स्वतंत्ररूप से क्यों नहीं किया है ?

उत्तर — ऐसा नहीं समझना, क्योंकि बिना कहे ही उस भावप्रमाण की सिद्धि हो जाती है। दूसरी बात यह है कि भावप्रमाण के बिना शेष तीनों प्रमाणों की सिद्धि नहीं हो सकती है, क्योंकि मुख्य प्रमाण के अभाव में गौण प्रमाण का होना तो असंभव ही है। अथवा भावप्रमाण बहुवर्णनीय है अथवा हेतुवाद और अहेतुवाद को अवधारण करने में समर्थ शिष्यों का अभाव होने से सूत्र में पृथक् रूप से भावप्रमाण का कथन नहीं किया गया है।

इस प्रकरण में मिथ्यादृष्टि जीवों की राशि के प्रमाण के विषय में श्रोताओं को निश्चय उत्पन्न कराने के लिए मिथ्यादृष्टिराशिप्रमाण का प्ररूपण वर्गस्थान में खण्डित, भाजित, विरलित, अपहृत, प्रमाण, कारण, निरुक्ति और विकल्प के द्वारा बताई गई है। इस विषय में विशेष जिज्ञासुओं को धवला टीका की तृतीय पुस्तक देखनी चाहिए अर्थात् उसमें आचार्य श्री वीरसेन स्वामी ने इस विषय का विस्तृत वर्णन किया है।

इस प्रकार मिथ्यादृष्टि जीवों का द्रव्यादिक प्रमाण के प्रतिपादनरूप से प्रथम स्थल में प्रतिज्ञा सूत्र से समन्वित पांच सूत्र पूर्ण हुए।

अधुना सासादनसम्यग्दृष्ट्यादिजीवानां प्रमाणनिरूपणार्थं सूत्रावतारो भवति—

**सासणसम्माइट्ठिप्पहुडि जाव संजदासंजदा त्ति दव्वपमाणेण केवडिया?
पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो। एदेहि पलिदोवमामवहिरदि अंतोमुहुत्तेण।।६।।**

सासादनसम्यग्दृष्टयः सम्यङ्मिथ्यादृष्टयोऽसंयतसम्यग्दृष्टयः संयतासंयताश्च द्रव्यप्रमाणेन कियन्तः सन्ति इति प्रश्ने सति पल्योपमस्य असंख्येयभागप्रमिताः सन्ति इति ज्ञातव्यं भवति। एषु चतुःषु गुणस्थानेषु प्रत्येकगुणस्थानवर्तिनां जीवानां प्रमाणापेक्षया अन्तर्मुहूर्तेन पल्योपमोऽपहृतो भवति।

इतो विस्तरः—“द्वितीयेगुणस्थाने द्वापञ्चाशत्कोटयः ५२०००००००। तृतीये गुणस्थाने चतुरधिकशतकोटयः १०४०००००००। चतुर्थगुणस्थाने सप्तशतकोटयः ७०००००००००। पंचमगुणस्थाने त्रयोदशकोटयः १३०००००००।”

कश्चिदाह—अत्र क्षेत्रप्रमाणेन कालप्रमाणेन च सासादनसम्यग्दृष्ट्यादिजीवराशिप्ररूपणं कथं न कृतम्? तस्योत्तरं दीयते—यथा मिथ्यादृष्टेः जीवराशेः क्षेत्रप्रमाणापेक्षया कालप्रमाणापेक्षया च प्ररूपणकारणमस्ति तथैवात्र सासादनसम्यग्दृष्टिजीवराशेः प्ररूपणकारणं नास्तीति।

तदपि किं कारणं इति चेत् ?

अब सासादन सम्यग्दृष्टि आदि जीवों का प्रमाण बतलाने के लिए सूत्र का अवतार होता है—

सूत्रार्थ—

सासादन सम्यग्दृष्टि गुणस्थान से लेकर संयतासंयत गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीव द्रव्यप्रमाण की अपेक्षा कितने हैं? पल्योपम के असंख्यातवें भागमात्र हैं। इन चार गुणस्थानों में प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीवों के प्रमाण की अपेक्षा अन्तर्मुहूर्त से पल्योपम अपहृत होता है ।।६।।

हिन्दी टीका—सासादन सम्यग्दृष्टि,सम्यग्मिथ्यादृष्टि ,असंयत सम्यग्दृष्टि और संयतासंयत जीव द्रव्यप्रमाण से कितने हैं? ऐसा प्रश्न होने पर उत्तर में पल्योपम के असंख्यातभागप्रमाण हैं, ऐसा जानना चाहिए।

इन चारों गुणस्थानों में प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीवों के प्रमाण की अपेक्षा अन्तर्मुहूर्त के द्वारा पल्योपम अपहृत होता है।

इसी का विस्तार करते हैं—द्वितीय गुणस्थान में जीवराशि का प्रमाण बावन करोड़ है। तृतीय गुणस्थान में एक सौ चार करोड़, चतुर्थ गुणस्थान में सात सौ करोड़ और पंचम गुणस्थान में तेरह करोड़ है।

यहाँ कोई शंका करता है—

यहाँ क्षेत्रप्रमाण और कालप्रमाण से सासादन सम्यग्दृष्टि आदि जीवों की राशि का प्ररूपण क्यों नहीं किया ? इसका उत्तर देते हैं—

जिस प्रकार मिथ्यादृष्टि जीवराशि का क्षेत्रप्रमाण और कालप्रमाण की अपेक्षा से प्ररूपण करने का कारण था, उस प्रकार यहाँ सासादन सम्यग्दृष्टि जीवराशि के प्ररूपण करने का कोई कारण नहीं है।

प्रश्न—उन मिथ्यादृष्टि जीवों की भी राशिप्ररूपण करने का यहाँ क्या कारण है ?

तस्य समाधानं — मिथ्यादृष्टयो जीवाः अनन्तानन्ताः तर्हि कथं असंख्यातप्रदेशिनि लोकाकाशे सम्मान्ति? इति प्रश्ने सति क्षेत्रप्रमाणापेक्षया प्ररूपणा कृता मिथ्यादृष्टिजीवानां, तथैव सिद्ध्यतां जीवानां अपेक्षया मिथ्यादृष्टिजीवराशेः व्ययस्तु निरन्तरं वर्तते परं तु न तेषां वृद्धिः कदाचित् भवति अतस्तेषामभावो भविष्यतीति आशंकायां कालप्रमाणापेक्षया तेषां मिथ्यादृष्टीनां प्ररूपण कृता भवति। नैतत्कारणं सासादन-सम्यग्दृष्ट्यादिजीवानां इति।

अधुना प्रमत्तसंयतानां संख्यानिरूपणार्थं सूत्रावतारो भवति—

प्रमत्तसंयता द्रव्यप्रमाणेण केवडिया? कोटिपुथक्त्वं॥७॥

सिद्धांत चिन्तामणि टीका — प्रमत्तसंयताः षष्ठगुणस्थानवर्तिनो मुनयः द्रव्यप्रमाणेन कियन्तः? इति प्रश्ने सति उत्तरयति आचार्यदेवः कोटि पृथक्त्वमिति।

पृथक्त्वमिति कोऽर्थः?

आगमभाषया तिसृणां कोटीनामुपरि नवानां कोटीनामधस्तात् पृथक्त्वमिति संज्ञा। तथापि प्रमत्तसंयता न निर्धारयितुं शक्याः, तेन तत्संख्या कथ्यते — कोटिपंचकं त्रिनवतिलक्षा अष्टानवतिसहस्राः शतद्वयं षट् च वेदितव्याः ५९३९८२०६।

एवमेत्तियं होदि त्ति कथं णव्वदे?

“आइरियपरंपरागदजिणोवदेसादो।”

उत्तर — मिथ्यादृष्टि जीव तो अनन्तानन्त हैं तो असंख्यातप्रदेशी लोकाकाश में वे कैसे समाते हैं

ऐसा प्रश्न होने पर क्षेत्रप्रमाण की अपेक्षा मिथ्यादृष्टि जीवों की प्ररूपणा की गई है, उसी प्रकार सिद्ध्यमान — सिद्ध होते हुए जीवों की अपेक्षा मिथ्यादृष्टि जीवराशि का निरन्तर व्यय — विच्छेद होता है परन्तु उनकी वृद्धि कदाचित् भी नहीं होती है अतः उनका अभाव हो जाएगा, ऐसी आशंका करने पर कालप्रमाण की अपेक्षा उन मिथ्यादृष्टि जीवों की प्ररूपणा की गई है। सासादन सम्यग्दृष्टि आदि गुणस्थानवर्ती जीवों में यह कारण नहीं पाया जाता है।

अब प्रमत्तसंयत गुणस्थानवर्ती जीवों की संख्या निरूपण करने के लिए सूत्र का अवतार होता है —

सूत्रार्थ —

प्रमत्तसंयत जीव द्रव्यप्रमाण की अपेक्षा कितने हैं? कोटिपृथक्त्वप्रमाण हैं॥७॥

हिन्दी टीका — छठे गुणस्थानवर्ती प्रमत्तसंयत मुनि द्रव्यप्रमाण की अपेक्षा कितने हैं? ऐसा प्रश्न होने पर आचार्यदेव उत्तर देते हैं कि उनकी संख्या कोटिपृथक्त्वप्रमाण है, ऐसा जानना चाहिए।

कोटिपृथक्त्व का क्या अर्थ है?

आगम की भाषा के द्वारा तीन कोटि के ऊपर नव कोटि के नीचे की संख्या पृथक्त्व संज्ञा से जानी जाती है, फिर भी प्रमत्तसंयत गुणस्थानवर्ती जीवों की संख्या को निर्धारित करना शक्य नहीं है।

उसके द्वारा वह संख्या कही जा रही है— पाँच करोड़ तिरानवे लाख अठानवे हजार दो सौ छह (५९३९८२०६) जानना चाहिए।

प्रश्न — यह संख्या इतनी है, यह कैसे जाना जाता है?

उत्तर — आचार्यपरम्परा से आए हुए जिनेन्द्र भगवान के उपदेश से यह संख्या प्रमाणितरूप से जानी जाती है।

संप्रति अप्रमत्तसंयतमुनीनां संख्यानिरूपणार्थं सूत्रावतारः क्रियते आचार्यश्रीभूतबलिदेवेन —

अप्पमत्तसंजदा दव्वपमाणेण केवडिया? संखेज्जा॥८॥

अप्रमत्तसंयताः सप्तमगुणस्थानवर्तिनो मुनयः द्रव्यप्रमाणेन कियन्तः सन्ति इति प्रश्ने सति संख्येयाः भवन्तीति उत्तरं वर्तते।

सा संख्या न ज्ञायते इति चेत् ?

उच्यते — कोटिद्वयं षण्णवतिलक्षा नवनवतिसहस्राः शतमेकं त्रयाधिकम्। प्रमत्तसंयतार्धपरिमाणा इत्यर्थः २९६९९१०३।

अप्रमत्तद्रव्यात् प्रमत्तद्रव्यं केन कारणेन द्विगुणं?

अप्रमत्तसंयतकालात् प्रमत्तसंयतकालस्यद्विगुणत्वादिति।

एवं सासादनाद्यप्रमत्तपर्यन्तानां प्रमाणप्रतिपादनत्वेन द्वितीयस्थले सूत्रत्रयं गतम्।

संप्रति उपशामकानां संख्यानिरूपणार्थं सूत्रावतारो भवति —

चदुण्हमुवसामगा दव्वपमाणेण केवडिया? पवेसेण एक्को वा दो वा तिणिण वा, उक्कस्सेण चउवण्णं॥९॥

अब अप्रमत्तसंयत गुणस्थानवर्ती मुनियों की संख्या बतलाने हेतु श्री भूतबली आचार्यदेव सूत्र का अवतार करते हैं —

सूत्रार्थ —

अप्रमत्तसंयत जीव द्रव्यप्रमाण की अपेक्षा कितने हैं? संख्यात हैं ॥८॥

हिन्दी टीका — अप्रमत्तसंयत नामक सप्तम गुणस्थानवर्ती मुनियों की संख्या द्रव्यप्रमाण से कितनी है? ऐसा प्रश्न होने पर “वे संख्यात होते हैं” यह उत्तर प्राप्त होता है।

शंका — वह संख्या तो जानी नहीं जा रही है?

ऐसा प्रश्न होने पर कहते हैं —

समाधान — दो करोड़ छ्यानवे लाख निन्यानवे हजार एक सौ तीन की संख्या है। अर्थात् प्रमत्तसंयत जीवों से आधी प्रमाण संख्या है, ऐसा अर्थ हुआ-२९६९९१०३।

शंका — अप्रमत्तसंयत के द्रव्य से प्रमत्तसंयत का द्रव्य किस कारण से द्विगुणित — दूना है?

समाधान — क्योंकि अप्रमत्तसंयत के काल से प्रमत्तसंयत का काल दुगुणा है, ऐसा ही आर्षवचन है।

इस प्रकार सासादन गुणस्थानवर्ती जीवों से लेकर अप्रमत्तसंयतपर्यन्त जीवों के प्रमाण का प्रतिपादन करने की मुख्यता से द्वितीय स्थल में तीन सूत्र पूर्ण हुए।

अब उपशम श्रेणी आरोहण करने वाले जीवों की संख्या निरूपण करने हेतु सूत्र का अवतार होता है —

सूत्रार्थ —

उपशम श्रेणी के चारों गुणस्थानवर्ती जीवों की द्रव्यप्रमाण की अपेक्षा कितनी संख्या है? प्रवेश की अपेक्षा एक या दो अथवा तीन और उत्कृष्टरूप से चौवन (५४) होते हैं ॥९॥

सिद्धांत चिन्तामणि टीका — चतुर्णां अपूर्वकरणादिगुणस्थानाना उपशामकाः संयताः कियन्तः? इति प्रश्ने सति उत्तरं दीयते—प्रवेशेन एकस्मिन् समये एकैकगुणस्थाने चारित्रमोहनीयं उपशमयन-जघन्येन एको जीवः प्रविशति, द्वौ वा त्रयो वा इति, उत्कृष्टेन चतुःपञ्चाशत्, एतत्कथनं सामान्येन।

विशेषेण तु अष्टसमयाधिकवर्षपृथक्त्वाभ्यन्तरे उपशमश्रेणिप्रायोग्या-अष्टौ समया भवन्ति। तेषु प्रथमसमये एकजीवमादिं कृत्वा उत्कृष्टेन षोडश जीवा उपशमश्रेणिं आरोहन्ति। द्वितीयसमये एकजीवं आदिं कृत्वा यावदुत्कृष्टेन चतुर्विंशतिजीवा इति उपशमश्रेणिमारोहन्ति। तृतीयसमये एकजीवमादिं कृत्वा उत्कृष्टेन त्रिंशद्जीवा उपशमश्रेणिमारोहन्ति। एवमेव चतुर्थसमये षट्त्रिंशत्, पंचमसमये द्विचत्वारिंशत्, षष्ठसमये अष्टचत्वारिंशत्, सप्तमाष्टमसमययोः चतुःपञ्चाशत् चतुःपञ्चाशत् जीवा उपशमश्रेणिमारोहन्ति।

तात्पर्यमेतत् — निरंतरं अष्टसमयेषु उपशमश्रेणिमारोहत्सु जीवेषु अधिकतमा इयं संख्या ज्ञातव्या भवति। अधुना कालापेक्षया उपशमकानां संख्यानिरूपणार्थं सूत्रावतारो भवति —

अब्द्धं पडुच्च संखेज्जा।।१०।।

सिद्धांतचिन्तामणि टीका — अब्द्धं — कालं पडुच्च — प्रतीत्य उपशमश्रेण्यां संचिताः सर्वे जीवाः संखेज्जा — संख्येया भवन्तीति।

पूर्वोक्ताष्टसमयेषु एकैकस्मिन् गुणस्थाने उत्कृष्टरूपेण संचिताः सर्वे जीवाः मेलापकेन चतुरधिकत्रिंशतानि

हिन्दी टीका — अपूर्वकरण आदि चार गुणस्थानों (अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण, सूक्ष्मसांपराय और उपशांतकषाय) के उपशामक संयतों की संख्या कितनी है? ऐसा प्रश्न होने पर उत्तर देते हैं — प्रवेश की अपेक्षा से एक समय में एक-एक गुणस्थान में चारित्रमोहनीय कर्म का उपशम करते हुए जघन्य से एक जीव प्रवेश करता है, दो अथवा तीन जीव प्रवेश करते हैं। उत्कृष्ट से चौवन जीव भी प्रवेश करते हैं, यह कथन सामान्यरूप से जानना चाहिए।

विशेष कथन की अपेक्षा आठ समय अधिक वर्ष पृथक्त्व के अन्दर उपशमश्रेणी के योग्य आठ समय होते हैं। उनमें से प्रथम समय में एक जीव को आदि लेकर उत्कृष्टरूप से सोलह जीव तक उपशम श्रेणी पर चढ़ते हैं। दूसरे समय में एक जीव को आदि लेकर उत्कृष्टरूप से चौबीस जीव उपशम श्रेणी में आरोहण करते हैं। तीसरे समय में एक जीव को आदि लेकर उत्कृष्टरूप से तीस जीव उपशम श्रेणी में चढ़ते हैं। चौथे समय में एक जीव को आदि लेकर उत्कृष्ट रूप से छत्तीस जीव तक उपशम श्रेणी पर आरोहण करते हैं। पांचवें समय में एक जीव को आदि लेकर उत्कृष्टरूप से ब्यालीस जीव उपशम श्रेणी पर चढ़ते हैं। छठे समय में एक जीव को आदि लेकर उत्कृष्ट रूप से अड़तालीस जीव तक उपशम श्रेणी में प्रवेश करते हैं। सातवें और आठवें इन दोनों समयों में एक जीव को आदि लेकर उत्कृष्टरूप से चौवन-चौवन जीव तक उपशम श्रेणी पर चढ़ते हैं।

तात्पर्य यह है कि लगातार आठ समयों में उपशम श्रेणी पर चढ़ने वाले जीवों की अधिकतम यह संख्या जानना चाहिए।

अब काल की अपेक्षा उपशामक जीवों की संख्या बतलाने के लिए सूत्र का अवतार किया जाता है—
सूत्रार्थ —

काल की अपेक्षा उपशम श्रेणी में संचित हुए सभी जीव संख्यात होते हैं ।।१०।।

हिन्दी टीका — पूर्वोक्त आठ समयों में एक-एक गुणस्थान में उत्कृष्टरूप से संचित सभी जीवों को एकत्रित करने पर वे तीन सौ चार होते हैं। सर्वोत्कृष्टप्रमाण वाले जीवों से सहित सभी समय एक साथ नहीं

भवन्ति। सर्वोत्कृष्टप्रमाणजीवसहिताः सर्वे समया युगपत् न प्राप्नुवन्ति इति केऽपि आचार्याः पूर्वोक्तप्रमाणं पंचोनं कुर्वन्ति।

उक्तं च धवलाटीकायां —

“एदं पंचूणवक्खाणं पवाइज्जमाणं दक्खिणमाइरियपरंपरागयमिदि जं वुत्तं होइ। पुव्वुत्तवक्खाणम-
पवाइज्जमाणं वायुं आइरियपरंपराए-अणागदमिदि णायव्वं^१।”

इदं पंचोनव्याख्यानं प्रवाह्यमानं दक्षिणमाचार्यपरंपरागतमिति यदुक्तं भवति। पूर्वोक्तव्याख्यानमप्रवाह्यमानं वामं आचार्यपरंपरा नागतमिति ज्ञातव्यम्।

एतद् दक्षिणमाचार्य परंपरागत व्याख्यानमेव तत्त्वार्थवृत्तौ लभ्यते —

तथाहि — “अपूर्वकरण-अनिवृत्तिकरण-सूक्ष्मसांपराय-उपशान्तकषायाः चत्वार उपशमकाः। ते प्रत्येकं एकत्रैकत्र गुणस्थाने अष्टसु अष्टसु समयेषु एकस्मिन्नेकस्मिन् समये यथासंख्यं षोडश-चतुर्विंशति-त्रिंशत्-षट्त्रिंशत्-द्विचत्वारिंशत्-अष्टचत्वारिंशत्-चतुष्षष्ट्याशत्-चतुष्षष्ट्याशत् भवन्तीति। अष्टसमयेषु चतुर्गुणस्थानवर्तिनां सामान्येन उत्कृष्टा संख्या — १६/२४/३०/३६/४२/४८/५४/५४। विशेषेण तु प्रथमादिसमयेषु एको वा द्वौ वा त्रयो वा चेत्यादि षोडशाद्युत्कृष्टसंख्या यावत् प्रतिपत्तव्याः।

ते तु स्वकालेन समुदिताः संख्येया भवन्ति नवनवत्यधिकशतद्वयपरिमाणा एकत्रैकत्र गुणस्थाने भवन्तीत्यर्थः। तदुक्तं — “णवणवदो एककठाण उवसंता।”

ननु चाष्टसमयेषु षोडशादीनां समुदितानां चतुरधिकं शतत्रयं भवति। कथमुक्तं नवनवत्यधिकं शतद्वयम्? सत्यम्, अष्टसमयेषु औपशमिका निरन्तरा भवन्ति परिपूर्णा न लभ्यन्ते किन्तु पंचहीना भवन्ति, इति

प्राप्त होते हैं, ऐसा कोई आचार्य पूर्वोक्त प्रमाण में पाँच की संख्या कम करके कहते हैं।

धवला टीका में कहा है —

“पूर्वोक्त प्रमाण में से पाँच कम का यह व्याख्यान प्रवाहरूप से आ रहा है, दक्षिण भारत की आचार्य परम्परागत यह प्रमाण है, यह इस कथन का तात्पर्य है तथा पूर्वोक्त व्याख्यान (३०४ का) प्रवाहरूप से नहीं आ रहा है यह उत्तर भारत की आचार्यपरम्परा से अनागत है, ऐसा जानना चाहिए।”

यह दक्षिण आचार्य परम्परा से चला आया व्याख्यान ही तत्त्वार्थवृत्ति ग्रंथ में भी प्राप्त होता है जो इस प्रकार है — अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण, सूक्ष्मसांपराय और उपशान्तकषाय ये चार गुणस्थान उपशमक (उपशमश्रेणी वाले) कहलाते हैं। इनमें प्रत्येक गुणस्थान के आठ-आठ समय होते हैं और आठ समयों में क्रमशः सोलह, चौबीस, तीस, छत्तिस, ब्यालीस, अड़तालीस, चौवन, चौवन उत्कृष्ट संख्या है।

आठ समयों में ये चार गुणस्थानवर्ती जीवों की सामान्यरूप से उत्कृष्ट संख्या — १६, २४, ३०, ३६, ४२, ४८, ५४, ५४ होती है। विशेषरूप से प्रथम आदि समयों में एक अथवा दो अथवा तीन से लेकर सोलह आदि उत्कृष्ट संख्या तक जानना चाहिए।

वे सभी अपने काल की अपेक्षा समुदायरूप से संख्यात होते हैं अर्थात् प्रत्येक गुणस्थान में २९९ उपशमक होते हैं। कहा भी है कि एक गुणस्थान में २९९ उपशमक होते हैं।

शंका — सोलह आदि आठ समयों की कुल संख्या ३०४ होती है, फिर २९९ कैसे बतलाया?

समाधान — आपका यह कथन सत्य है, आठ समयों में औपशमिक जीव निरंतर होते हैं किन्तु पूरी

१. षट्खण्डागम पु. ३ (धवला टीका समन्वित) पृ. ९२। २. तत्त्वार्थवृत्ति, अ. १, सूत्र ८।

चतुर्गुणस्थानवर्तिनामपि उपशमकानां समुदितानां षण्णवत्यधिकानि एकादश शतानि भवन्ति^१-११९६।”

एवं उपशमश्रेण्यारोहकाणां संख्यानिरूपणत्वेन तृतीयस्थले द्वे सूत्रे गते।

संप्रति क्षपकमुनीनां अयोगिकेवलिनां संख्यानिरूपणार्थं सूत्रावतारः क्रियते श्रीभूतबलिभट्टारकेन —

चउण्हं खवा अजोगिकेवली दव्वपमाणेण केवडिया? पवेसेण एक्को वा दो वा तिण्णि वा, उक्कस्सेण अट्ठोत्तरसदं।।११।।

अष्टसमयाधिक-षण्मासाभ्यन्तरे क्षपकश्रेणिप्रायोग्या अष्टसमया भवन्ति। तेषां समयानां विशेषविवक्षां अकृत्वा सामान्यप्ररूपणायां जघन्येन एको जीवः—महामुनिः क्षपकश्रेणिमारोहति। उत्कृष्टेन अष्टोत्तरशतमात्रजीवाः क्षपकगुणस्थानं प्रतिपद्यन्ते। विशेषमाश्रित्य प्ररूपणायां प्रथमसमये एकजीवमादिं कृत्वा यावत् उत्कृष्टेन द्वात्रिंशत् जीवा इति क्षपकश्रेणिमारोहन्ति। एवं उत्कृष्टेन द्वितीयसमये अष्टचत्वारिंशत्, तृतीयसमये षष्टिः, चतुर्थसमये द्वासप्ततिः, पंचमसमये चतुरशीतिः, षष्ठसमये षण्णवतिः, सप्तमसमये अष्टोत्तरशतजीवाः, अष्टमसमये चाष्टोत्तरशतजीवाः इति क्षपकश्रेणिं आरोहन्ति।

अधुना कालापेक्षया सर्वेषां एतेषां संख्यानिरूपणार्थं सूत्रावतारः क्रियते—

अद्धं पडुच्च संखेज्जा।।१२।।

संख्या में पाँच कम होते हैं अतः चारों गुणस्थानों के उपशमकों की संख्या ११९६ होती है।

इस प्रकार उपशमश्रेणी में आरोहण करने वाले जीवों की संख्या निरूपण की मुख्यता से तृतीयस्थल में दो सूत्र पूर्ण हुए।

अब क्षपक श्रेणीवाले मुनियों की और अयोगकेवलियों की संख्या निरूपित करने हेतु श्रीभूतबली भट्टारक आचार्यदेव के द्वारा सूत्र का अवतार किया जा रहा है—

सूत्रार्थ—

चारों गुणस्थानों के क्षपक और अयोगकेवली जीव द्रव्यप्रमाण की अपेक्षा कितने हैं? प्रवेश की अपेक्षा एक या दो अथवा तीन और उत्कृष्टरूप से एक सौ आठ हैं।।११।।

हिन्दी टीका—छह महीने आठ समय के भीतर क्षपक श्रेणी के योग्य आठ समय होते हैं। उन समयोंके विशेष कथन की विवक्षा न करके सामान्यरूप से कथन करने पर जघन्य से एक जीव क्षपक गुणस्थान को प्राप्त करता है अर्थात् क्षपक श्रेणी में आरोहण करता है। उत्कृष्टरूप से मात्र एक सौ आठ जीव क्षपक गुणस्थान को (आठवां-नवमां-दशवां-बारहवां गुणस्थान) प्राप्त करते हैं। विशेष का आश्रय लेकर प्ररूपण करने पर प्रथम समय में एक जीव को आदि करके उत्कृष्टरूप से बत्तीस (३२) जीव तक क्षपक श्रेणी पर चढ़ते हैं एवं उत्कृष्टरूप से द्वितीय समय में अड़तालीस (४८) जीव तक क्षपकश्रेणी में आरोहण करते हैं, तृतीय समय में साठ (६०) जीव, चतुर्थ समय में बहत्तर (७२) जीव, पाँचवें समय में चौरासी (८४), छठे समय में छियानवे (९६), सातवें समयमें एक सौ आठ (१०८) जीव तथा आठवें समय में एक सौ आठ (१०८) तक महामुनि क्षपकश्रेणी पर चढ़ते हैं

अब काल की अपेक्षा से इन सभी संख्याओं का निरूपण करने हेतु सूत्र का अवतार किया जा रहा है—

सूत्रार्थ—

काल की अपेक्षा संचित हुए क्षपक जीव संख्यात होते हैं।।१२।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका — अद्धं — कालं पडुच्च — प्रतीत्य, संखेज्जा — संख्येयाः भवन्तीति।
अष्टसमयसंचितसर्वजीवानां मेलापकेन अष्टोत्तरषट्शतमात्रा जीवाः भवन्ति। एषा उत्तरप्रतिपत्तिः। एतेषु
दशापनीते दक्षिणप्रतिपत्तिः भवति।

उक्तं च —

तिसदं वदंति केइं, चउरुत्तरमत्थपंचयं केइं।
उवसामगेसु एदं, खवगाणं जाण तददुगुणं।।
चउरुत्तरतिणिसयं, पमाणमुवसामगाण केई तु।
तं चेव य पंचूणं, भणंति केइं तु परिमाणं।।

पुनश्च एकैकगुणस्थानेषु उपशमक-क्षपकानां प्रमाणप्ररूपणगाथा —

एक्केक्कगुणट्ठाणे, अट्टसु समयेसु संचिदाणं तु।

अट्टसय सत्तणवदी, उवसम-खवगाण परिमाणं।।^१

एवं एकस्मिन्-एकस्मिन् गुणस्थाने उपशमकानां २९९+क्षपकाणां ५९८=८९७ संख्या भवति। एषा
दक्षिणप्रतिपत्तिरेव तत्त्वार्थवृत्तिग्रन्थे वर्तते। तथाहि —

अपूर्वकरण-अनिवृत्तिकरण-सूक्ष्मसांपराय-क्षीणकषाय-अयोगकेवलिनश्च एतेषां अष्टधा समयक्रमः

हिन्दी टीका —

पूर्वकथित आठ समयों में संचित हुए सम्पूर्ण जीवों को मिला देने से कुल सभी जीवों की संख्या छह सौ
आठ (६०८) हो जाती है, यह उत्तरप्रतिपत्ति है। इस ६०८ की संख्या में से १० की संख्या कम कर देने पर
दक्षिणप्रतिपत्ति होती है।

कहा भी है —

गाथार्थ — कुछ आचार्य उपशमक जीवों का प्रमाण तीन सौ (३००) कहते हैं, कुछ आचार्य तीन सौ
चार कहते हैं और कुछ आचार्य तीन सौ चार में से पाँच कम अर्थात् दो सौ निन्यानवे कहते हैं। इस प्रकार यह
उपशमक जीवों का प्रमाण है और क्षपकों का प्रमाण इससे दुगुना जानना चाहिए।

कितने ही आचार्य उपशमक जीवों का प्रमाण तीन सौ चार कहते हैं और कितने ही आचार्य पांच कम
तीन सौ अर्थात् दो सौ निन्यानवे की संख्या उपशमक जीवों की मानते हैं।

पुनः एक-एक गुणस्थान में उपशमक और क्षपक जीवों के प्रमाण को प्ररूपित करने वाली गाथा
प्रस्तुत है —

गाथार्थ — एक-एक गुणस्थान में आठ समय में संचित हुए उपशमक और क्षपक जीवों का परिमाण
आठ सौ सत्तानवे है।

इस प्रकार एक-एक गुणस्थान में उपशमकों की संख्या २९९ है एवं क्षपक श्रेणी पर चढ़ने वाले जीवों
की संख्या ५९८ है। अतः कुल मिलाकर दोनों की संख्या ८९७ होती है।

यही दक्षिणप्रतिपत्ति के अनुसार कथन तत्त्वार्थवृत्ति ग्रंथ में भी आया है। उसी को यहाँ देखें —

“अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण, सूक्ष्मसाम्पराय, क्षीणकषाय और अयोगकेवली गुणस्थानवर्ती जीवों के
आठ प्रकार का समयक्रम पूर्ववत् जानना चाहिए, केवल उपशमक जीवों से उनकी संख्या दुगुनी होती है।

पूर्ववद् द्रष्टव्यः, केवलं तेषामुपशमकेभ्यो द्विगुणसंख्या।

स्वकालेन समुदिताः प्रत्येकं अष्टनवत्युत्तरपंचशतपरिमाणा भवन्ति। (५९८)

नन्वत्रापि षट्शतानि अष्टाधिकानि भवन्ति कथमष्टनवत्यधिकानि पञ्चशतान्युक्तानि?

सत्यम्, उपशमकेषु यथा पञ्च हीयन्ते तथा क्षपकेषु द्विगुणहानौ दश हीयन्ते। तेन एकगुणस्थाने पञ्चशतानि अष्टनवत्यधिकानि भवन्ति ५९८। गुणस्थानपञ्चकवर्तिनां क्षपकाणां गुणस्थानवर्तिसमुदितानां दशोनानि त्रीणि सहस्राणि भवन्ति^१। २९९०।

एवं क्षपकश्रेण्यारोहकाणां अयोगिनां च संख्यानिरूपणत्वेन चतुर्थस्थले सूत्रद्वयं गतम्।

अधुना सयोगिकेवलिभगवतां संख्याप्ररूपणार्थं सूत्रावतारो भवति—

सजोगिकेवली द्रव्यपमाणेण केवडिया? पवेसणेण एक्को वा दो वा तिणिण वा, उक्कस्सेण अटुत्तरसयं।।१३।।

सजोगिकेवली — सयोगिकेवलिनो भगवन्तः द्रव्यपमाणेण — द्रव्यप्रमाणेन केवडिया — कियन्तः इति प्रश्ने सति उत्तरं दीयते। पवेसेण — प्रवेशापेक्षया एको वा द्वौ वा त्रयो वा, उक्कस्सेण — उत्कृष्टेन, अटुत्तरसयं — अष्टोत्तरशतजीवा भवन्तीति।

उक्तं च तत्त्वार्थवृत्तौ —

“सयोगकेवलिनामपि उपशमकेभ्यो द्विगुणत्वात् समयेषु प्रथमादिसमयक्रमेण एको वा द्वौ वा त्रयो

अपने समय के द्वारा एकत्रित प्रत्येक की संख्या ५९८ प्रमाण होती है।

शंका — जब यहाँ पर छह सौ आठ संख्या बताई गई है तो पाँच सौ अट्टानवे कैसे कहा गया है ?

समाधान — आपका कथन सत्य है, जैसे—उपशमक जीवों की संख्या में पाँच कम किये गये हैं उसी प्रकार क्षपक जीवों की संख्या में द्विगुणित हानि अर्थात् दश की संख्या कम की जाती है। इसलिए एक गुणस्थान में पाँच सौ अट्टानवे की संख्या बन जाती है। उपर्युक्त पाँच गुणस्थानवर्ती क्षपक जीवों के गुण-स्थानवर्ती मुनियों को एकत्रित करने पर दश कम तीन हजार (२९९०) की संख्या होती है।

इस प्रकार क्षपक श्रेणी में आरोहण करने वाले तथा अयोगकेवली गुणस्थानवर्ती जीवों की संख्या निरूपण करने वाले चतुर्थस्थल में दो सूत्र समाप्त हुए।

अब सयोगकेवली भगवन्तों की संख्या का निरूपण करने हेतु सूत्र का अवतार होता है —

सूत्रार्थ —

सयोगकेवली जीव द्रव्यप्रमाण की अपेक्षा कितने हैं? प्रवेश से एक या दो अथवा तीन और उत्कृष्ट रूप से एक सौ आठ होते हैं।।१३।।

हिन्दी टीका — सयोगकेवली नामक तेरहवें गुणस्थानवर्ती अरिहंत भगवान् द्रव्यप्रमाण से कितने हैं ? ऐसा प्रश्न होने पर उत्तर देते हैं कि प्रवेश की अपेक्षा एक, दो अथवा तीन और उत्कृष्ट की अपेक्षा एक सौ आठ जीव होते हैं।

तत्त्वार्थवृत्ति ग्रंथ में भी कहा है —

सयोगकेवली भगवन्तों की भी उपशमक जीवों से दुगुनी संख्या होने के कारण समय की अपेक्षा प्रथम आदि समय के क्रम से एक, दो, तीन अथवा चार इत्यादि उत्कृष्टरूप से बत्तीस संख्या जहाँ तक होती है, वहाँ

वा चत्वारो वा इत्यादिद्वात्रिंशदाद्युत्कृष्टसंख्या यावत् संख्याभेदः प्रतिपत्तव्यः।

नच्चेवमुदाहृतक्षपकेभ्यो भेदेनाभिधानमेषामनर्थकमिति चेत् ? न, स्वकालसमुदितसंख्यापेक्षया तेषां तेभ्यो विशेषसंभवात्।

संप्रति कालापेक्षया सयोगिजिनानां संख्याप्रतिपादनार्थं सूत्रावतारः क्रियते श्रीभूतबलिसूरिणा —

अद्धं पडुच्च सदसहस्सपुधत्तं ॥१४॥

सिद्धांतचिन्तामणिटीका — अद्धं पडुच्च — कालापेक्षया सर्वे सयोगिजिनाः सदसहस्सपुधत्तं — शतसहस्रपृथक्त्वं — लक्षपृथक्त्वं भवन्तीति।

अथ लक्षपृथक्त्वानयनविधानं उच्यते —

अष्टसमयाधिकषण्मासानामभ्यन्तरे यदि अष्टसिद्धसमया लभ्यन्ते तर्हि चत्वारिंशत्सहस्र-अष्टशत-एकचत्वारिंशन्मात्र-अष्टसमयाधिकषण्मासाभ्यन्तरे कियन्तः सिद्धसमया लभ्यन्ते, इति त्रैराशिके कृते त्रयलक्ष-षड्विंशतिसहस्र-सप्तशत-अष्टाविंशति-मात्र-सिद्धसमया लभ्यन्ते।

पुनः एतस्मिन् सिद्धकाले संचितसयोगिजिनानां प्रमाणानयनं उच्यते —

तद्यथा — षट्सु सिद्धसमयेषु त्रयस्त्रयो जीवाः केवलज्ञानमुत्पादयन्ति, द्वयोः समययोः द्वौ द्वौ जीवौ यदि केवलज्ञानमुत्पादयः, तर्हि अष्टसमयसंचितसयोगिजिना द्वाविंशतिः भवन्ति। अष्टसु समयेषु यदि द्वाविंशतिसयोगिजिना

तक संख्या के भेद जानना चाहिए।

प्रश्न — क्षपकों के समान ही सयोगकेवलियों की संख्या है अतः सयोगकेवलियों की संख्याओं का पृथक् ग्रहण करना व्यर्थ है ?

उत्तर — ऐसा कहना उचित नहीं है, क्योंकि स्वकाल में संग्रहीत संख्याओं की अपेक्षा सयोगकेवलियों की संख्या में क्षपकश्रेणी वालों की संख्या से विशेषता की संभावना है।

अब काल की अपेक्षा से सयोगी जिनों की संख्या का निरूपण करने हेतु श्रीभूतबली आचार्य सूत्र का अवतार करते हैं —

सूत्रार्थ —

काल की अपेक्षा सम्पूर्ण सयोगीजिन लक्षपृथक्त्व होते हैं ॥१४॥

हिन्दी टीका — काल की अपेक्षा से समस्त सयोगकेवली अर्हन्त परमेष्ठी जीवों की संख्या लक्षपृथक्त्व मानी गई है।

अब उसी लक्षपृथक्त्व के लाने की विधि कहते हैं —

आठ समय अधिक छह महीने के भीतर यदि आठ सिद्ध समय प्राप्त होते हैं तो चालीस हजार आठ सौ इकतालीस मात्र अर्थात् इतनी बार आठ समय अधिक छह माह के भीतर कितने सिद्ध समय प्राप्त होंगे, इस प्रकार त्रैराशिक करने पर तीन लाख छब्बीस हजार सात सौ अट्ठाईस सिद्ध समय आते हैं।

पुनः इस सिद्धकाल में संचित हुए सयोगी जीवों का प्रमाण लाने की विधि कहते हैं, वह इस प्रकार है — छह सिद्ध समयों में तीन-तीन जीव केवलज्ञान उत्पन्न करते हैं और दो समयों में दो-दो जीव यदि केवलज्ञान को उत्पन्न करते हैं तो आठ समयों में संचित हुए सयोगीजिन बाईस होते हैं। इसी प्रकार यदि आठ सिद्ध समयों में बाईस सयोगीजिन प्राप्त होते हैं तो तीन लाख छब्बीस हजार सात सौ अट्ठाईस सिद्ध समयों में कितने सयोगी प्राप्त

लभ्यन्ते तर्हि त्रयलक्ष-षड्विंशतिसहस्र-सप्तशत-अष्टाविंशतिमात्रसिद्धसमयेषु कियन्तः सयोगिजिना लभ्यन्ते इति त्रैराशिके कृते अष्टलक्ष-अष्टनवतिसहस्र-द्वयधिकपंचशतमात्राः सयोगिजिना लभ्यन्ते^१।

एवं प्रमत्ताद्ययोगिजिनपर्यन्ताः त्रिहीननवकोटिसंख्याः भवन्ति।

उक्तं च धवलाटीकायां —

“एवं परुविदसव्वसंजदरासिमेगट्टे कदे अट्टकोडीओ णवणउदिलक्खा णवणउदिसहस्स-णवसद-सत्ताणउदिमेत्तो होदि ८९९९९९७।”^२

अन्यत्रग्रन्थेऽपि एवमेवोक्तं —

सत्ताइं अट्ठंता-च्छण्णवमज्झा य संजदा सव्वे।

अंजुलिमउलियहत्थो, तियरणसुद्धो णमंसामि।।^३

अस्यैव स्पष्टीकरणं —

प्रमत्तसंयताः पंच कोट्यः त्रिनवतिलक्षाः अष्टनवतिसहस्राः षडुत्तरं द्विशतं च ५९३९८२०६। अप्रमत्तसंयताः कोटिद्वयं षण्णवतिलक्षाः नवनवतिसहस्राः त्र्यधिकशतं च २९६९९१०३। चतुर्गुणस्थानवर्तिनः उपशामकाः षण्णवत्यधिकानि एकादश शतानि ११९६। चतुर्गुणस्थानवर्तिनः क्षपकाः अयोगिकेवलिनश्च दशोनानि त्रीणि सहस्राणि २९९०। सयोगिकेवलिनः अष्टलक्षाष्टनवतिसहस्रद्वयधिकपंचशतपरिमाणाः ८९८५०२। इमे सर्वे मिलित्वा अष्टकोटिनवनवतिलक्षनवनवतिसहस्रनवशतसप्तनवतिपरिमाणाः भवन्ति प्रमत्ताद्ययोगिजिनपर्यन्ताः

होंगे? इसका त्रैराशिक करने पर आठ लाख अट्टानवे हजार पाँच सौ दो सयोगीजिन प्राप्त हो जाते हैं।

इस प्रकार प्रमत्तसंयत नामक छठे गुणस्थान से लेकर अयोगीजिन (चौदहवें गुणस्थान)पर्यन्त तीन कम नौ करोड़ मुनियों की संख्या हो जाती है।

धवला टीका में श्री वीरसेन स्वामी ने कहा है —

“इस प्रकार प्ररूपण की गई सम्पूर्ण संयत जीवों की राशि को एकत्रित करने पर कुल संख्या आठ करोड़ निन्यानवे लाख निन्यानवे हजार नौ सौ सत्तानवे (८९९९९९७) होती है।”

अन्यत्र ग्रंथ में भी इसी प्रकार का कथन आया है —

गाथार्थ — सात का अंक आदि में और अंत में आठ का अंक लिखकर दोनों के मध्य में छह बार नौ के अंक लिखने पर ८९९९९९७ तीन कम नौ करोड़ संख्याप्रमाण सब संयमियों को मैं हाथों की अंजलि मस्तक से लगाकर मन-वचन-काय की शुद्धि से नमस्कार करता हूँ।

उसी का स्पष्टीकरण करते हैं —

प्रमत्तसंयत मुनियों की संख्या पांच करोड़ तिरानवे लाख अट्टानवे हजार दो सौ छह (५९३९८२०६) है।

अप्रमत्तसंयत मुनियों की संख्या दो करोड़ छियानवे लाख निन्यानवे हजार एक सौ तीन (२९६९९१०३) है।

चार गुणस्थानवर्ती (आठवें, नवमें, दशवें और ग्यारहवें गुणस्थानवर्ती) उपशामक मुनि ग्यारह सौ छियानवे (११९६) होते हैं तथा क्षपक श्रेणी सम्बन्धी चार गुणस्थानवर्ती और अयोगकेवली जीवों की संख्या दश कम तीन हजार (२९९०) है। तेरहवें गुणस्थानवर्ती सयोगकेवली जीव आठ लाख अट्टानवे हजार पाँच सौ दो (८९८५०२) प्रमाण हैं। इस प्रकार यह सम्पूर्ण संख्या मिलकर आठ करोड़ निन्यानवे लाख निन्यानवे

१. षट्खण्डागम पु. ३ (धवला टीका समन्वित) पृ. ९५-९६। २. षट्खण्डागम पु. ३ (धवला टीका समन्वित) पृ. ९७।

३. गोम्मटसार जीवकांड, ६३३।

संयताः इति। एकस्मिन् काले सप्तत्यधिकशतकर्मभूमिगतसंयताः अधिकतमाः इत्यन्तो भवन्तीति।

एषा दक्षिणप्रतिपत्तिः।

उपर्युक्तगाथानां कथनं न भद्रं इति केऽपि आचार्या युक्तिबलेन भणन्ति। का युक्तिः? उच्यते —

सर्वतीर्थकरापेक्षया पद्मप्रभभट्टारकस्य शिष्यपरिवारोऽधिकः, त्रयलक्षत्रिंशत्सहस्रसंख्यः। इयं संख्या सप्तत्यधिकशतेन गुणिते सति कोटिपंचकं एकषष्टिलक्षाः संयताः भवन्ति। परंतु इमाः संख्याः पूर्वकथितसंयतानां प्रमाणं न प्राप्नुवन्ति अतः पूर्वकथितप्रमाणं न भद्रम् इति चेत्? तस्य समाधानं क्रियते —

सर्वावसर्पिण्यपेक्षया वर्तमानकाले इयं हुंडावसर्पिणी वर्तते। अतो युगमाहात्म्येन ह्रस्वभावं प्राप्तहुंडावसर्पिणीकालसंबंधितीर्थकराणां शिष्यपरिवारान् गृहीत्वा पूर्वोक्तगाथासूत्राणि दूषयितुं न शक्यन्ते, शेषावसर्पिणीतीर्थकरेषु बहुशिष्यपरिवारोपलम्भत्वात्। अन्यच्च — न च भरतैरावतक्षेत्रयोः मनुष्याणां बहुत्वमस्ति, येन तदुभयक्षेत्रसंबंधि-एकतीर्थकरशिष्यपरिवारैः विदेहक्षेत्रस्यैकतीर्थकरशिष्यपरिकरः सदृशो भवेत्। किंतु भरतैरावतक्षेत्रयोः मनुष्याणां विदेहक्षेत्रस्य मनुष्याः संख्यातगुणाः सन्ति।

“तं जहा — सव्वत्थोवा अंतरदीवमणुस्सा। उत्तरकुरुदेवकुरुमणुवा संखेज्जगुणा। हरिम्मयवासेसु मणुआ संखेज्जगुणा। हेमवदहेरणवदमणुआ संखेज्जगुणा। भरहेरावदमणुआ संखेज्जगुणा। विदेहे मणुआ संखेज्जगुणा ति।”

बहुमनुष्येषु येन संयताः बहवश्चैव तेनात्रतनसंयतानां प्रमाणं प्रधानं कृत्वा यददूषणं भणितं तन्न

हजार नौ सौ सत्तानवे अर्थात् तीन कम नौ करोड़ प्रमाण हो जाती है और ये सभी प्रमत्तसंयत से लेकर अयोगकेवलीजिनपर्यन्त संयत — मुनि की संज्ञा से जाने जाते हैं। एक समय में एक सौ सत्तर कर्मभूमियों में होने वाले संयत इतनी संख्याप्रमाण होते हैं, ऐसी दक्षिणप्रतिपत्ति है।

उपर्युक्त गाथाओं का कथन उचित नहीं है, ऐसा कोई आचार्य युक्ति के बल से बताते हैं। वह कौन सी युक्ति है? उसे कहते हैं —

सभी तीर्थकरों की अपेक्षा पद्मप्रभ भट्टारक (भगवान्) का शिष्य परिवार सबसे अधिक — तीन लाख तीस हजार संख्याप्रमाण है। यह संख्या एक सौ उत्तर से गुणित करने पर पांच करोड़ इकसठ लाख संयतों की संख्या होती है परन्तु यह संख्या पूर्वकथित संयतों की संख्याप्रमाण नहीं प्राप्त होती है। इसलिए पूर्वकथित प्रमाण उचित नहीं है ऐसा कहने पर उसका समाधान किया जाता है —

समस्त अवसर्पिणी कालों की अपेक्षा वर्तमान काल में यह हुण्डावसर्पिणी काल चल रहा है इसलिए युग के माहात्म्य से घटकर ह्रस्वभाव को प्राप्त हुए हुण्डावसर्पिणी कालसम्बन्धी तीर्थकरों के शिष्यपरिवार को ग्रहण करके गाथासूत्र को दूषित करना शक्य नहीं है, क्योंकि शेष अवसर्पिणियों के तीर्थकरों के बड़ा शिष्यपरिवार पाया जाता है। अन्य और भी कथन है कि भरत और ऐरावत क्षेत्र में मनुष्यों की अधिक संख्या नहीं पाई जाती है जिससे उन दोनों क्षेत्रसम्बन्धी एक तीर्थकर के संघ के प्रमाण से विदेहक्षेत्रसम्बन्धी एक तीर्थकर का संघ समान माना जाय किन्तु भरत और ऐरावत क्षेत्र के मनुष्यों से विदेहक्षेत्र के मनुष्यों की संख्या संख्यातगुणी अधिक है।

अन्तर्द्वीपों के मनुष्य सबसे थोड़े हैं। उत्तरकुरु और देवकुरु के मनुष्य उनसे संख्यातगुणे हैं। हरि और रम्यक् क्षेत्रों के मनुष्य उत्तरकुरु और देवकुरु के मनुष्यों से संख्यातगुणे हैं। हैमवत और हैरण्यवत क्षेत्रों के मनुष्य हरि और रम्यक् के मनुष्यों से संख्यातगुणे हैं। भरत और ऐरावत क्षेत्रों के मनुष्य हरि और रम्यक् के मनुष्यों से संख्यातगुणे हैं। विदेह क्षेत्र के मनुष्य भरत और ऐरावत के मनुष्यों से संख्यातगुणे हैं।

बहुत मनुष्यों में क्योंकि संयत बहुत ही होंगे, इसीलिए इस क्षेत्रसम्बन्धी संयतों के प्रमाण को प्रधान

प्राप्नोति तस्य एतेनाल्पबहुत्वेन सह विरोधत्वादिति।

अधुना उत्तरप्रतिपत्तिं दर्शयति श्रीवीरसेनाचार्यः—

अत्रोत्तरप्रतिपत्त्या प्रमत्तसंयतानां प्रमाणं चतुःकोट्यः षट्षष्टिलक्षाः षट्षष्टिसहस्राः षट्शतचतुःषष्टिमात्रा भवति ४६६६६६६४। अप्रमत्तसंयतानां प्रमाणं द्विकोटि-सप्तविंशतिलक्ष-नवनवतिसहस्र-चतुःशतअष्टनवतिमात्राः। २२७९९४९८। उपशामक-क्षपक-अयोगिकेवलिनं संख्या पूर्वोक्त कथनीया। तथा च उपशामकानां संख्या षण्णवत्यधिकानि एकादश शतानि ११९६। क्षपकाणां अयोगिकेवलिनश्च संख्या द्विसहस्रनवशतनवतिप्रमाणानि। पुनश्च सयोगिकेवलिनः संख्याप्ररूपका गाथा—

“पंचेव सयसहस्सा, होंति सहस्सा तहेव उणतीसा।

छच्च सया अडयाला, जोगिजिणाणं हवदि संखा।।

एदे सव्वसंजदे एयट्टे कदे सत्तर-सद-कम्मभूमिगद-सव्वरिसओ भवन्ति। तेसिं पमाणं छक्कोडीओ णवणउडलक्खा णवणउदिसहस्सा णवसय-छण्णउदिमेत्तं हवदि।” (६९९९९९९६)

अत्र श्रीवीरसेनाचार्येण दक्षिणोत्तरप्रतिपत्तिभ्यां द्वौ मतौ व्याख्यातौ। तौ द्वौ अपि पूर्वाचार्यनिरूपितगाथानां उद्धृतं कारं कारमेव। पुनश्च धवलाटीकाकारेण दक्षिणप्रतिपत्तेः व्याख्यानं प्रवाह्यमानं आचार्यपरंपरागतं वर्तते उत्तरप्रतिपत्तेः व्याख्यानं अप्रवाह्यमानं आचार्यपरंपरानागतं अस्ति इति पूर्वमेव कथितमासीत्। अनेनैतज्ज्ञायते यत्—

करके जो दूषण कहा गया है, वह दूषण प्राप्त नहीं हो सकता है क्योंकि इस कथन का इसी अल्पबहुत्व के साथ विरोध आता है।

अब आचार्य श्री वीरसेन स्वामी उत्तरप्रतिपत्ति का दिग्दर्शन कराते हैं—

उत्तर प्रतिपत्ति-मान्यता के अनुसार प्रमत्तसंयतों का प्रमाण चार करोड़ छयासठ लाख छयासठ हजार हजार छह सौ चौंसठ (४६६६६६६४) है।

अप्रमत्तसंयतों का प्रमाण दो करोड़ सत्ताइस लाख निन्यानवे हजार चार सौ अट्टानवे (२२७९९४९८) है।

उपशामक, क्षपक और अयोगकेवली महामुनियों की संख्या पूर्वोक्त ही है तथा उपशामक संयतों की संख्या ग्यारह सौ छियानवे (११९६) है।

क्षपक संयतों एवं अयोगकेवली जिन संयतों की संख्या दो हजार नौ सौ नब्बे प्रमाण (२९९०) है तथा सयोगकेवली संयतों की संख्या का प्ररूपण करने वाली गाथा निम्न प्रकार है—

गाथार्थ—तेरहवें गुणस्थानवर्ती सयोगकेवली जिनों की संख्या पाँच लाख उनतीस हजार छह सौ अड़तालीस है।

इन सभी संयतों की संख्या एकत्रित करने पर एक सौ सत्तर कर्मभूमिगत जो सम्पूर्ण ऋषि होते हैं, उन सबका प्रमाण छह करोड़ निन्यानवे लाख निन्यानवे हजार नौ सौ छियानवे (६९९९९९९६) है।

यहाँ श्रीवीरसेनाचार्य ने दक्षिण और उत्तर इन दोनों प्रतिपत्तियों के द्वारा दो मतों का व्याख्यान किया है। उन दोनों मतों को भी पूर्वाचार्यों द्वारा निरूपित गाथाओं का उद्धरण दे देकरके ही किया है पुनः धवला टीकाकार के द्वारा दक्षिणप्रतिपत्ति का व्याख्यान प्रवाह्यमान आचार्यपरम्परागत है तथा उत्तरप्रतिपत्ति का व्याख्यान प्रवाहरूप से नहीं आ रहा है तथा आचार्यपरम्परा से अनागत है ऐसा पूर्व में ही कहा गया है। इस प्रकरण से ऐसा ज्ञात होता है कि—

श्रीवीरसेनाचार्यपर्यन्त दक्षिणाचार्यपरंपरा अविच्छिन्नासीत् उत्तराचार्यपरंपरा व्युच्छिन्ना इति।

तात्पर्यमेतत् — दक्षिणप्रतिपत्त्यानुसारेणैव वर्तमानकाले त्रिहीननवकोटिसंयतानां संख्या प्रसिद्धास्ति।

तथाहि —

सिद्धान्तचक्रवर्तिश्रीनेमिचन्द्राचार्येण गोम्मटसारे एषा एव संख्या कथिता। सिद्धान्तचक्रवर्तिश्रीवसुनन्दि-
आचार्येण मूलाचारे तात्पर्यवृत्तिटीकायां कथिता। बहुषु अपि ग्रन्थेषु च श्रूयते —

गुरुभक्त्या वयं सार्ध-द्वीपद्वितयवर्तिनः।

वंदामहे त्रिसंख्योन-नवकोटिमुनीश्वरान्॥

एवं द्रव्यार्थिकनयमवलम्ब्य स्थितशिष्याणामनुग्रहार्थं सामान्येन चतुर्दशगुणस्थानेषुद्रव्यप्रमाणप्ररूपणा संजाता।

इत्थं अर्हतां भगवतां सयोगिकेवलिनानां प्रमाणप्रतिपादनपरत्वेन सूत्रद्वयं गतम्। एवंविधं चतुर्दशगुण-
स्थानवर्तिनां जीवानां प्रमाणनिरूपणपरैश्चतुर्दशसूत्रैः ओघसंख्याप्ररूपकः प्रथमोऽधिकारो वर्णितः।

इति श्रीमद्भगवत्पुष्पदंतभूतबलिप्रणीतषट्खंडागमस्य प्रथमखण्डे तृतीयग्रन्थे द्रव्यप्रमाणा-

नुगमनाम्नि द्वितीयप्रकरणे धवलाटीकाप्रमुखानेकग्रन्थाधारेण जंबूद्वीपरचनाप्रेरिका-

गणिनीज्ञानमतीकृत सिद्धान्तचिन्तामणिटीकायां चतुर्दशगुणस्थान-

संख्यानिरूपकः प्रथमोमहाधिकारः समाप्तः।

श्री वीरसेनाचार्यपर्यन्त दक्षिण की आचार्यपरम्परा अविच्छिन्न परम्परा थी और उत्तर की आचार्य
परम्परा व्युच्छिन्न परम्परा है।

तात्पर्य यह है कि दक्षिणप्रतिपत्ति के अनुसार ही वर्तमान काल में तीन कम नौ करोड़ संयत — मुनियों
की संख्या प्रसिद्ध है। उसी को कहते हैं —

सिद्धान्तचक्रवर्ती श्रीनेमिचन्द्राचार्य ने गोम्मटसार ग्रंथ में इसी तीन कम नौ करोड़ संख्या का कथन
किया है। श्रीवसुनन्दि सिद्धान्तचक्रवर्ती आचार्य ने मूलाचार की तात्पर्यवृत्ति टीका में यही संख्या लिखी है तथा
अन्य अनेक ग्रंथों में भी ऐसा ही सुना जाता है —

श्लोकार्थ — ढाई द्वीपों में जो तीन कम नव करोड़ मुनिराज हैं, उन सबकी हम गुरुभक्तिपूर्वक वन्दना करते हैं।

इस प्रकार द्रव्यार्थिक नय का अवलम्बन लेकर स्थित हुए शिष्यों पर अनुग्रह करने हेतु सामान्यरूप से
चौदह गुणस्थानों में द्रव्यप्रमाणप्ररूपणा हुई है।

इस प्रकार सयोगकेवली अरिहंत भगवन्तों के प्रमाण कथन की मुख्यता से दो सूत्र पूर्ण हुए। इसी प्रकार
चौदहों गुणस्थानवर्ती जीवों के प्रमाण के निरूपण की प्रमुखता से चौदह सूत्रों के द्वारा ओघ संख्या का
प्ररूपण करने वाले प्रथम अधिकार का वर्णन हुआ है।

इस प्रकार श्रीमान् भगवत्पुष्पदंत एवं भूतबली आचार्य द्वारा प्रणीत षट्खण्डागम ग्रंथ के प्रथम

खंड में इस तृतीय ग्रंथ में द्रव्यप्रमाणानुगम नाम के द्वितीय प्रकरण में धवला टीका को

प्रमुख करके तथा अनेक ग्रंथों के आधार से जम्बूद्वीप रचना निर्माण की प्रेरिका

गणिनी आर्थिका ज्ञानमती द्वारा रचित सिद्धान्तचिन्तामणि टीका में

चौदह गुणस्थानों की संख्या का निरूपण करने

वाला प्रथम महाधिकार समाप्त हुआ।

अथ द्वितीयो महाधिकारः

नमः श्रीमुनिसुव्रतनाथतीर्थकराय।

यो भगवान् वर्तमानवीरनिर्वाणाब्द-द्वाविंशत्यधिकपंचविंशतिशतकतमात् एकादशलक्ष-षडशीतिसहस्र-पंचशतकचतुर्विंशतिवर्षपूर्वं मोक्षं जगाम। यस्य च शासने नवलक्षवर्षपूर्वं श्रीरामचन्द्रादयो नवनवतिकोटि-मुनयस्तुंगीगिरिचूलिकातः मुक्तिश्रियमवापुः, अतएव तस्य भगवतः श्रीविंशतितमतीर्थकरस्य चतुर्दशहस्तोत्तुंग (२१ फुट उत्तुंग) प्रतिमां अत्र प्रतिष्ठाप्य ज्येष्ठशुक्लाषष्ठ्यां बृहज्जनसमूहमध्ये महामस्तकाभिषेकः संजातः पुनः पुनश्च तस्मै नमो नमः।

अथ षट्खण्डागमस्य प्रथमखण्डस्य तृतीय ग्रन्थे द्रव्यप्रमाणानुगमस्य प्रकरणस्य द्वितीयमहाधिकारे चतुर्दशाधिकाराः संति। तस्मिन् प्रथमे चतुर्गतिप्ररूपकेऽधिकारे चत्वारोऽन्तराधिकाराः सन्ति। तत्र तावत्

अथ द्वितीय महाधिकार प्रारम्भ

“ तीर्थकर श्री मुनिसुव्रतनाथ भगवान को नमस्कार हो ”

जिन मुनिसुव्रत भगवान ने वर्तमान वीर निर्वाण संवत् पच्चीस सौ बाईस (२५२२) से ग्यारह लाख छियासी हजार पाँच सौ चौबीस वर्ष पूर्व मोक्षधाम को प्राप्त किया है एवं जिनके शासन में आज से नौ लाख वर्ष पूर्व श्री रामचन्द्र आदि निन्यानवे करोड़ मुनियों ने तुंगीगिरि पर्वत की चूलिका — चोटी से मुक्तिलक्ष्मी को प्राप्त किया इसलिए उन बीसवें तीर्थकर भगवान मुनिसुव्रतनाथ की चौदह हाथ (इक्कीस फुट) उत्तुंग खड्गासन प्रतिमा उस मांगीतुंगी सिद्धक्षेत्र पर ज्येष्ठ शुक्ला षष्ठी तिथि (सन् १९९६, वीर नि.सं. २५२२) के दिन विराजमान करके विशाल जनसमूह के मध्य उनका महामस्तकाभिषेक महोत्सव सम्पन्न किया गया, उन भगवान मुनिसुव्रत को मेरा पुनः पुनः नमस्कार है।

भावार्थ — यहाँ संस्कृत टीकाकर्त्री चारित्रचन्द्रिका पूज्य गणिनी प्रमुख आर्यिका शिरोमणि श्री ज्ञानमती माताजी ने प्रसंगवश मांगीतुंगी सिद्धक्षेत्र एवं मुनिसुव्रत तीर्थकर भगवान को विशेषरूप से इस द्वितीय अध्याय के प्रारंभ में स्मरण किया है। उसका अभिप्राय यह है कि अप्रैल सन् १९९६ में पूज्य माताजी ससंघ मांगीतुंगी पहुँचीं, वहाँ मई (ज्येष्ठ मास) में उनके सानिध्य में विशाल नूतन मंदिर में प्रतिष्ठापित भगवान मुनिसुव्रतनाथ की २१ फुट ऊंची प्रतिमा एवं चौबीसों तीर्थकरों की ५-५ फुट खड्गासन प्रतिमाओं (पंचम पट्टाचार्य स्व. आचार्य श्री श्रेयांससागर महाराज की प्रेरणा से निर्मित) की पंचकल्याणक प्रतिष्ठा सम्पन्न हुई पुनः वहीं पर संघ का वर्षायोग सम्पन्न हुआ, उसी प्रवास के मध्य पूज्य माताजी ने इस ग्रंथ की टीका लिखी है इसीलिए भगवान मुनिसुव्रत को पुनः पुनः नमस्कार किया है।

यहाँ यह ज्ञातव्य है कि निन्यानवे करोड़ मुनिराजों में सभी भगवान् रामचंद्र के साथ ही मोक्ष नहीं गये हैं, कई करोड़ मुनि रामचंद्र से पहले भी मोक्ष गये होंगे और अनेकों उनके अनंतर मोक्ष गये होंगे। इसीलिए यहाँ उस पर्वत से मोक्ष जाने वाले मुनियों की कुल संख्या ९९ करोड़ कही गई है।

इस षट्खण्डागम ग्रंथ के प्रथम खण्ड के इस तृतीय ग्रंथ (पुस्तक) में द्रव्यप्रमाणानुगम नाम के द्वितीय प्रकरण के द्वितीय महाधिकार में चौदह अधिकार हैं उनमें चतुर्गति का प्ररूपण करने वाले प्रथम अधिकार में चार

स्थलद्वयेन नवसूत्रैः प्रथमोनरकगतिनामान्तराधिकारः प्रारभ्यते।

तस्मिन्नपि प्रथमस्थले नरकगतौ प्रथमपृथिव्यां मिथ्यादृष्ट्यादिजीवानां द्रव्यकालक्षेत्रापेक्षया प्रमाणनिरूपणत्वेन 'आदेसेण' इत्यादिसूत्रपंचकं। तदनु द्वितीयादिपृथिव्यां नारकाणां गुणस्थानापेक्षया संख्याप्रतिपादनत्वेन द्वितीयस्थले चत्वारि सूत्राणि। एवं प्रथमान्तराधिकारे स्थलद्वयेन नवसूत्रैः समुदायपातनिका।

संप्रति पर्यायार्थिकनयमवलम्ब्य स्थितशिष्याणामनुग्रहार्थं विशेषेण नारकाणां संख्यानिरूपणाय सूत्रावतारो भवति—

आदेसेण गदियाणुवादेण णिरयगईए णेरइएसु मिच्छाइट्ठी दव्वपमाणेण केवडिया? असंखेज्जा।।१५।।

सिद्धांत चिन्तामणि टीका—आदेसेण—मार्गणापेक्षया—विशेषेण पर्यायार्थिकनयापेक्षया वा गदियाणुवादेण—इयं गतिमार्गणा आचार्यपरंपरया अनादिनिधनरूपेण समागता अस्ति इति ज्ञापनार्थं अनुवादशब्दस्य ग्रहणं वर्तते। णिरयगईए—नरकगतौ णेरइएसु—नारकेषु नरकगतिषु उत्पन्नजीवेषु मिच्छाइट्ठी दव्वपमाणेण केवडिया? मिथ्यादृष्ट्यो जीवाः द्रव्यप्रमाणेन-संख्यया कियन्तः सन्ति? एतत्प्रश्ने सति असंखेज्जा—असंख्याताः सन्तीति ज्ञातव्या भवन्ति। अत्र मध्यम-असंख्यातासंख्यातप्रमाणं ज्ञातव्यं।

अस्मिन् सूत्रे शेषाः गतीः मुक्त्वा पूर्वं नरकगतेः कथनं किमर्थं क्रियते? नैतत् वक्तव्यं, किंच-नारकाणां स्वरूपज्ञानेन समुत्पन्नभयस्य भव्यजीवस्य दशलक्षणे धर्मे निश्चलरूपेण बुद्धिस्तिष्ठतीति कृत्वा पूर्वं तत्प्ररूपणत्वात्।

अन्तराधिकार हैं। उसमें दो स्थल में नौ सूत्रों के द्वारा प्रथम नरकगति नाम का अन्तराधिकार प्रारम्भ होता है। उसमें भी प्रथमस्थल में प्रथम नरकपृथिवी में मिथ्यादृष्टि आदि जीवों के द्रव्य-काल-क्षेत्र की अपेक्षा प्रमाण निरूपण की मुख्यता से “आदेसेण” इत्यादि पाँच सूत्र हैं। उसके बाद द्वितीयादि पृथिवी में नारकियों के गुणस्थान की अपेक्षा संख्याप्रतिपादन की मुख्यता से द्वितीय स्थल में चार सूत्र हैं। इस प्रकार प्रथम अन्तराधिकार में दो स्थल के द्वारा नौ सूत्रों की समुदायपातनिका हुई है।

अब यहाँ पर्यायार्थिक नय का अवलम्बन लेकर स्थित हुए शिष्यों पर अनुग्रह करने हेतु विशेषरूप से नारकी जीवों की संख्या निरूपण करने के लिए सूत्र का अवतार होता है—

सूत्रार्थ—

आदेश की अपेक्षा गतिमार्गणा के अनुवाद से नरकगति को प्राप्त नारकियों में मिथ्यादृष्टि जीव द्रव्यप्रमाण की अपेक्षा कितने हैं ? असंख्यात हैं ।।१५।।

हिन्दी टीका—विशेषरूप से पर्यायार्थिक नय की अपेक्षा गदियाणुवादेण का अर्थ यह समझना चाहिए कि यह गतिमार्गणा आचार्य परम्परानुसार अनादिनिधनरूप से चली आ रही है, इस बात की सूचना देने के लिए अनुवाद शब्द का ग्रहण किया गया है। यहाँ प्रश्न उठाया गया है कि नरक में उत्पन्न हुए मिथ्यादृष्टि नारकी जीवों में द्रव्यप्रमाण से कितनी संख्या मानी है ? इसका उत्तर मिलता है कि वे असंख्यात होते हैं। यहाँ असंख्यात शब्द से मध्यम असंख्यातासंख्यात प्रमाण जानना चाहिए।

प्रश्न— इस सूत्र में शेष गतियों को छोड़कर सर्वप्रथम नरकगति का ही कथन क्यों किया गया है ?

उत्तर— ऐसा नहीं कहना, क्योंकि नारकियों के स्वरूप का ज्ञान हो जाने से जिसे भय उत्पन्न हो गया

अत्र सूत्रे 'केवडिया' इति पृच्छायाः किं फलं?

जिनानामर्थकर्तृत्वप्रतिपादनमुखेन आत्मनः कर्तृत्वप्रतिषेधफलत्वादेव पृच्छावचनं क्रियते श्रीभूतबलि-सूरिवर्येण। तथाहि—

“एवं गोदमसामिणा पुच्छिदे महावीरभयवंतेण केवलणाणेणावगदतिकालगोचरासेसपयत्थेण असंखेज्जा इति तेसिं पमाणं परूविदं^१।”

अत्र नाम^१-स्थापना^२-द्रव्य^३ शाश्वत-गणना^४-अप्रदेशिक^५-एक^६-उभय^७-विस्तार^८-सर्व^९-भाव^{१०}ैः एकादशविधा असंख्याताः सन्ति। तत्रापि गणनानामपंचमभेदेऽपि परीतासंख्यात-युक्तासंख्यात-असंख्यातासंख्यातनामत्रिविधेषु प्रत्येकमपि उत्कृष्टमध्यमजघन्यभेदैः त्रिविधं। अस्मिन्नपि अत्र मध्यमअसंख्यातासंख्यातप्रमाणं गृहीतव्यमस्तीति सूच्यते आचार्यश्रीवीरसेनेन।

अधुना कालापेक्षया नारकमिथ्यादृष्टीनां प्रमाणप्रतिपादनार्थं सूत्रमवतरति—

असंखेज्जासंखेज्जाहि ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीहि अवहिरंति कालेण।।१६।।

कालेण—कालापेक्षया असंखेज्जासंखेज्जाहि—असंख्यातासंख्याताभिः ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीहि—अवसर्पिणी-उत्सर्पिणीभिः अवहिरंति—अपहृता भवन्तीति।

नारकाणां कालापेक्षया संख्यानिरूपणं कथं क्रियते?

संपूर्णापि असंख्याता जीवराशिः नारकाणां समाप्ता भवितुं शक्नोतीति ज्ञापार्थं कालापेक्षया प्ररूपणा क्रियते।

है, ऐसे भव्य जीव की दशलक्षण धर्म में निश्चलरूप से बुद्धि स्थिर हो जाती है, ऐसा सोचकर ही पहले नरकगति का वर्णन किया है।

प्रश्न—सूत्र में “केवडिया” अर्थात् कितने हैं ? इस पृच्छा का क्या फल है ?

उत्तर—जिनेन्द्रदेव ही अर्थकर्ता हैं इस कथन के प्रतिपादन की मुख्यता से अपने—आचार्य भूतबला के कर्तापन का निषेध करना उक्त पृच्छा का फल है। उसी को देखें धवलाटीकाकार के शब्दों में—

इस प्रकार गौतमस्वामी के द्वारा पूछने पर जिन्होंने केवलज्ञान के द्वारा त्रिकाल के विषयभूत समस्त पदार्थों को जान लिया है, ऐसा भगवान महावीर ने “असंख्यात हैं” इस प्रकार नारकियों के प्रमाण का प्ररूपण किया।

यहाँ नाम, स्थापना, द्रव्य, शाश्वत, गणना, अप्रदेशिक, एक, उभय, विस्तार, सर्व और भाव इस प्रकार ये ग्यारह प्रकार के असंख्यात होते हैं। उनमें भी गणना नाम के पाँचवें भेद में भी परीतासंख्यात, युक्तासंख्यात, असंख्यातासंख्यात, तीन प्रकार के भेदों में प्रत्येक के उत्कृष्ट, मध्यम और जघन्य ये तीन भेद होते हैं। इसमें भी यहाँ मध्यम असंख्यातासंख्यात का प्रमाण ग्रहण करना चाहिए, ऐसा श्री वीरसेनाचार्य द्वारा सूचित होता है।

अब यहाँ काल की अपेक्षा से मिथ्यादृष्टि नारकियों का प्रमाण बतलाने हेतु सूत्र का अवतार होता है—
सूत्रार्थ—

काल की अपेक्षा नारक मिथ्यादृष्टि जीव असंख्यातासंख्यात अवसर्पिणियों और उत्सर्पिणियों के द्वारा अपहृत होते हैं।।१६।।

प्रश्न—मिथ्यादृष्टि नारकियों का काल की अपेक्षा से संख्या का निरूपण क्यों किया गया है ?

उत्तर—सम्पूर्ण असंख्यात जीवराशि भी नारकियों की समाप्त हो सकती है, ऐसा ज्ञापित करने के लिए ही काल की अपेक्षा से प्ररूपणा की गई है।

क्षेत्रप्रमाणमुल्लंघ्य पूर्वं कालप्रमाणं कथं क्रियेत?

नैष दोषः, यदल्पवर्णनीयं तत्पूर्वमेव वर्णयितव्यमिति वचनात्।

कथं क्षेत्रप्रमाणस्य बहुत्वं?

यतः क्षेत्रे जगत्श्रेणी-जगत्प्रतर-विष्कम्भप्ररूपणाणामस्तित्वात्।

अत्र विशेषः — क्षेत्रं सूक्ष्मं, ततोऽपि सूक्ष्मं द्रव्यं, किंच-एकस्मिन् द्रव्यांगुले गणनापेक्षया अनन्ताः क्षेत्रांगुला भवन्ति।

उक्तं च —

सुहुमं तु हवदि खेत्तं, ततो सुहुमं खु जायदे दव्वं।

दव्वंगुलमिह एक्के, हवन्ति खेत्तंगुलाणन्ता^१॥

अत्र कश्चिदाशंकते — एकस्मिन् द्रव्यांगुले एकस्मिन् क्षेत्रांगुले च परमाणुप्रदेशाः आकाशप्रदेशाश्च समाना भवन्ति अतः पूर्वोक्तं व्याख्यानं न घटते?

नैतत् किंच, एकस्मिन् क्षेत्रांगुले अवगाढभूतानन्तद्रव्यांगुलदर्शनात्। असंख्यातासंख्यातानां अवसर्पिण्युत्सर्पिणीणां समयाः शलाकारूपेण एकत्र स्थापयित्वा अन्यत्र च नारकमिथ्यादृष्टीनां राशिं स्थापयित्वा शलाकाराशिभ्यः एकः समयः अपनेतव्यः, ततश्च नारकमिथ्यादृष्टिराशिभ्यः एको जीवः निष्कासयितव्यः। एवं उभयरशिभ्यः पुनः पुनः अपह्रियमाणे शलाकाराशिः मिथ्यादृष्टिनारकजीवराशिश्च युगपत् समाप्ता भवति।

प्रश्न — क्षेत्रप्रमाण का उल्लंघन करके पहले कालप्रमाण का प्ररूपण किसलिये किया जा रहा है ?

उत्तर — इसको कोई दोष मत समझना, क्योंकि “ जो अल्पवर्णनीय होता है, उसका वर्णन पूर्व में ही करना चाहिए ” इस कथनानुसार पहले कालप्रमाण का प्ररूपण किया है।

प्रश्न — काल से क्षेत्रप्रमाण का बहुत्व कैसे है ?

उत्तर — क्योंकि क्षेत्र में जगत्श्रेणी, जगत्प्रतर और विष्कम्भसूची की प्ररूपणा पाई जाती है, इसलिए काल की अपेक्षा क्षेत्र में बहुत्व पाया जाता है अर्थात् क्षेत्र बहुवर्णनीय होता है। यहाँ इस बात को विशेषरूप से इस प्रकार समझना कि — क्षेत्र जितना सूक्ष्म है, उससे भी सूक्ष्म द्रव्य होता है क्योंकि एक द्रव्यांगुल में गणना की अपेक्षा अनन्त क्षेत्रांगुल होते हैं।

धवला टीका में भी कहा है —

गाथार्थ — क्षेत्र सूक्ष्म होता है और उससे भी सूक्ष्म द्रव्य होता है, क्योंकि एक द्रव्यांगुल में अनन्त द्रव्यांगुल पाये जाते हैं ॥

यहाँ कोई शंका करता है कि एक द्रव्यांगुल में और एक क्षेत्रांगुल में परमाणुप्रदेश और आकाशप्रदेश समान होते हैं, इसलिए पूर्वोक्त व्याख्यान घटित नहीं होता है ? किन्तु ऐसा नहीं समझना, क्योंकि एक क्षेत्रांगुल में ठसाठस भरे हुए अनन्त द्रव्यांगुल देखे जाते हैं।

असंख्यातासंख्यात अवसर्पिणियों और उत्सर्पिणियों के समय शलाकारूप से एक ओर स्थापित करके और दूसरी ओर मिथ्यादृष्टि नारकियों की संख्या स्थापित करके शलाकाराशि में से एक समय कम करना चाहिए और नारक मिथ्यादृष्टि जीवराशि में से एक जीव निकालना चाहिए। इस प्रकार शलाकाराशि और नारकमिथ्यादृष्टि जीवराशि में से पुनः-पुनः एक-एक कम करने पर शलाकाराशि और नारक मिथ्यादृष्टि जीवराशि एक साथ समाप्त हो जाती हैं।

अथवा अवसर्पिण्युत्सर्पिण्यौ द्वे अपि मिलित्वा एकः कल्पकालो भवति, तेन कल्पेन कालेन नारकमिथ्या-दृष्टिराशिषु भागे कृते यत् भागलब्धं, तावन्मात्राः कल्पकालाः नारकमिथ्यादृष्टिजीवराशिगणना भवन्ति एवं कालप्रमाणापेक्षया मिथ्यादृष्टिनारकाणां संख्या प्ररूपिता भवति।

संप्रति क्षेत्रापेक्षया मिथ्यादृष्टिनारकाणां प्रमाणनिरूपणार्थं सूत्रावतारो भवति—

**खेत्तेण असंखेज्जाओ सेढीओ जगपदरस्स असंखेज्जदिभागमेत्ताओ।
तासिं सेढीणं विक्खंभसूची अंगुलवग्गमूलं विदियवग्गमूलगुणिदेण।।१७।।**

खेत्तेण—क्षेत्रापेक्षया कथनेन जगपदरस्स असंखेज्जदि भागमेत्ताओ—जगत्प्रतरस्य असंख्यातभागमात्रा असंखेज्जाओ सेढीओ—असंख्यात जगत्श्रेणीप्रमाणा सामान्यनारक-मिथ्यादृष्टिजीवराशिर्भवति। सूच्यंगुलस्य प्रथमवर्गमूलस्य तेनैव द्वितीयवर्गमूलेन गुणिते सति यावल्लब्धा तावन्मात्रा एव तासां जगच्छ्रेणीणां विष्कंभसूची अस्ति।

पल्य-सागर-सूच्यंगुल-प्रतरांगुल-घनांगुल-जगच्छ्रेणी-लोकप्रतर-लोकाः इमाः उपमाप्रमाणभेदाः ज्ञातव्याः।

अस्य द्रव्यप्रमाणानुगमानुयोगद्वारस्य पठनपाठनयोः उपमाप्रमाणस्याभ्यासो विधातव्य एव।

अन्यत्र ग्रंथे सरल भाषायां उक्तं—

“नरकगतौ प्रथमनरकभूमौ नारका मिथ्यादृष्टयोऽसंख्याताः श्रेणयः।

अथवा अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी ये दोनों मिलकर एक कल्पकाल होता है। उस कल्पकाल का नारक मिथ्यादृष्टि जीवराशि में भाग देने पर जो भाग लब्ध आवे, उतने कल्पकाल नारक मिथ्यादृष्टि जीवराशि की गणना में पाये जाते हैं।

इस प्रकार कालप्रमाण की अपेक्षा मिथ्यादृष्टि नारकी जीवों की संख्या का प्ररूपण किया गया है।

अब क्षेत्र की अपेक्षा मिथ्यादृष्टि नारकी जीवों का प्रमाण बतलाने हेतु सूत्र का अवतार होता है—

सूत्रार्थ—

क्षेत्र की अपेक्षा जगत् प्रतर के असंख्यातवें भागमात्र असंख्यात जगत्श्रेणीप्रमाण सामान्य नारक मिथ्यादृष्टि जीवराशि हैं। उन जगत् श्रेणियों की विष्कंभ सूची, सूच्यंगुल के प्रथम वर्गमूल को उसी के द्वितीय वर्गमूल से गुणित करने पर जितना लब्ध आवे, उतनी है।।१७।।

हिन्दी टीका—क्षेत्र की अपेक्षा कथन करने से जगत्प्रतर के असंख्यातवें भागमात्र असंख्यात जगत्-श्रेणीप्रमाण सामान्य मिथ्यादृष्टि नारकियों की संख्या होती है। सूच्यंगुल के प्रथम वर्गमूल को उसी के द्वितीय वर्गमूल के द्वारा गुणित करने पर जो लब्ध आता है, वही जगच्छ्रेणी की विष्कंभसूची जाननी चाहिए।

पल्य, सागर, सूच्यंगुल, प्रतरांगुल, घनांगुल, जगच्छ्रेणी, लोकप्रतर और लोक ये सभी उपमाप्रमाण के भेद जानना चाहिए।

इस द्रव्यप्रमाणानुगम नामक अनुयोगद्वार के पठन-पाठन में उपमाप्रमाण का अभ्यास करने योग्य ही है।

अन्यत्र ग्रंथ में सरल भाषा में कहा है—

“नरक गति में प्रथम नरक भूमि में मिथ्यादृष्टि नारकियों की असंख्यात श्रेणियाँ हैं।” इसका क्या अर्थ है ?

कोऽर्थः?

प्रतरा संख्येयभागप्रमिता इत्यर्थः।

अथ केयं श्रेणिरिति चेत् ?

उच्यते — सप्तरज्जुकमयी मुक्ताफलमालावत् आकाशप्रदेशपंक्तिः श्रेणि रुच्यते, मानविशेष इत्यर्थः।

प्रतरासंख्येयभागप्रमिता इति यदुक्तं-स प्रतरः कियान् भवति?

श्रेणिगुणिता श्रेणिः प्रतर उच्यते।

प्रतरासंख्यातभागप्रमितानामसंख्यातानां श्रेणीनां यावन्तः प्रदेशाः तावन्तः तत्र नारकाः इत्यर्थः^१।”

एवं नारकमिथ्यादृष्टिजीवराशिप्रमाणं निरूपणं जातम्।

अधुना सासादनाद्यसंयतसम्यग्दृष्टिपर्यंतानां नारकाणां संख्याप्रतिपादनार्थं सूत्रावतारो भवति —

सासणसम्माइट्टिप्पहुडि जाव असंजदसम्माइट्टि त्ति दव्वपमाणेण केवडिया? ओघं।।१८।।

नरकगतौ नारकाणां सासादनसम्यग्दृष्टि-सम्यग्मिथ्यादृष्टि-असंयतसम्यग्दृष्टिजीवाः द्रव्यप्रमाणेन कियन्तः? इति प्रश्ने सति ओघं — गुणस्थानप्ररूपणावत् इति उत्तरं वर्तते।

जगत् प्रतर के असंख्यातवें भागप्रमाण उनकी संख्या है, ऐसा अर्थ निकलता है।

प्रश्न — जगत्श्रेणी का क्या अभिप्राय है?

उत्तर — सात राजू वाली मोती की माला के समान आकाशप्रदेश की पंक्ति “श्रेणी” कहलाती है। इसका अभिप्राय मान — प्रमाणविशेष है।

प्रश्न — प्रतर के असंख्यातभाग प्रमाण ऐसा जो कहा गया है, वह प्रतर कितना होता है ?

उत्तर — श्रेणी से गुणित श्रेणी को प्रतर कहते हैं।

प्रतर के असंख्यातभागप्रमाण असंख्यात श्रेणियों के जितने प्रदेश होते हैं, उतने मिथ्यादृष्टि नारकी जीव प्रथम नरक में होते हैं ऐसा अभिप्राय है।

इस प्रकार नारकी मिथ्यादृष्टि जीवराशि के प्रमाण का कथन पूर्ण हुआ।

अब सासादन गुणस्थान से लेकर असंयतसम्यग्दृष्टिपर्यन्त नारकियों की संख्या प्रतिपादन करने के लिए सूत्र का अवतार होता है —

सूत्रार्थ —

सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थान से लेकर असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थान में नारकी जीव द्रव्यप्रमाण की अपेक्षा कितने हैं ? गुणस्थानप्ररूपणा के समान हैं ।।१८।।

हिन्दी टीका — नरकगति में सासादन सम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि नारकी जीव द्रव्यप्रमाण से कितने हैं ? ऐसा प्रश्न होने पर गुणस्थान के समान उनकी प्ररूपणा है, ऐसा उत्तर प्राप्त होता है।

यहाँ कोई शंका करता है कि —

सामान्य से कहे गये चारों गतियों से सम्बन्धित सासादनगुणस्थानवर्ती जीवराशि के समान ही नरकगति

कश्चिदाह — सामान्येन कथितचतुर्गतिसंबंधिसासादनादिगुणस्थानवर्तिजीवराशेः समाना एव नरकगतौ सासादनादिगुणस्थानवर्तिनां राशिः तर्हि तिर्यगादिगतिषु त्रयगुणस्थानवर्तिजीवानां अभावो भवेत्?

आचार्यः प्राह — नैतत्, सासादनादिगुणस्थानवर्तिनारकाणां संख्या चातुर्गतिकजीवानां संख्यां प्रति समाना कथिता तत्र तु पल्योपमस्य असंख्यातभागत्वं प्रति अविशेष एव। तथापि पर्यायार्थिकनयापेक्षया द्वयोर्भेदोऽस्त्येव।

तस्य किंचिदुद्धारणं दीयते — सामान्येन कथितासंयतसम्यग्दृष्टिजीवराशेः असंख्यातबहुभागप्रमिता देवगतौ असंयतसम्यग्दृष्टिजीवराशिः अस्ति।

कथमेतत्?

देवेषु बहूनां सम्यक्त्वोत्पत्तिकारणानामुपलम्भात्।

देवानां सम्यक्त्वोत्पत्तिकारणानि कानि इति चेत्?

उच्यते श्रीवीरसेनाचार्येण —

“जिणबिंबिद्धिमहिमादंसण-जाइस्सरण-महिद्धिंदादिदंसण-जिणपायमूलधम्मसवणादीणि। तिरिक्खणेइया पुण गरुवपावभारेणोद्धत्तादो संकिलिट्ठतरत्तादो मंदबुद्धित्तादो बहूणं सम्मत्तुप्पत्तिकारणाणम-भावादो च सम्माइट्ठिणो थोवा हवंति”।

एवमेव सर्वत्र ज्ञातव्यमिति।

में सासादन आदि तीनों गुणस्थानवर्ती जीवों की राशि होती है, तब तो तिर्यचआदि शेष तीन गतियों में तीनों गुणस्थानवर्ती जीवों का अभाव प्राप्त हो जावेगा ?

इस शंका का समाधान करते हुए आचार्यदेव ने कहा है कि —

ऐसा नहीं है, क्योंकि सासादन आदि गुणस्थानवर्ती नारकियों की संख्या चतुर्गति के जीवों की संख्या के प्रति समान कही है, वहाँ तो तीनों गुणस्थानसम्बन्धी जीवराशि के प्रमाण के साथ पल्योपम के असंख्यातवें भागत्व के प्रति कोई विशेषता नहीं है।

इसलिए दोनों को समान मान लेने पर कोई विरोध की बात नहीं आती है फिर भी पर्यायार्थिकनय की अपेक्षा से दोनों में भेद है ही है।

यहाँ उसका किंचित् उदाहरण देते हैं —

सामान्य से कही गई असंयतसम्यग्दृष्टि जीवराशि का असंख्यात बहुभागप्रमाण देवगति में असंयतसम्यग्दृष्टि जीवराशि है।

प्रश्न — ऐसा क्यों है ?

उत्तर — क्योंकि देवों में सम्यक्त्व की उत्पत्ति के बहुत से कारण पाये जाते हैं। देवों में सम्यक्त्व उत्पत्ति के कौन-कौन से कारण हैं? ऐसा प्रश्न होने पर श्रीवीरसेनाचार्य ने धवला टीका में कहा है —

जिनबिम्बसम्बन्धी अतिशय की महिमा का दर्शन, जातिस्मरण का होना, महर्द्धिक इन्द्रादिक का दर्शन और जिनेन्द्रभगवान के पादमूल में धर्म का श्रवण आदि कारणों से देवों में सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति होती है। किन्तु चूँकि तिर्यच और नारकी गुरुतर पापों के भार से व्याप्त रहते हैं, उनके परिणाम अतिशय संक्लिष्ट रहते हैं, वे मन्दबुद्धि होते हैं इसलिए उनमें सम्यक्त्व की उत्पत्ति के बहुत से कारणों का अभाव पाया जाता है और संख्या में भी वहाँ कम जीवों को सम्यग्दर्शन की प्राप्ति होती है।

इसी प्रकार सर्वत्र जान लेना चाहिए।

विशेषार्थ — धवला आदि सिद्धान्त ग्रंथों में वर्णन आया है कि देवों में पर्याप्तकमिथ्यादृष्टिदेव अन्तर्मुहूर्त काल से लेकर ऊपर कभी भी प्रथम सम्यक्त्व प्राप्त कर सकते हैं, अन्तर्मुहूर्त से पहले नहीं। इसी प्रकार चारों गतियों में सम्यग्दर्शन उत्पत्ति के विभिन्न कारण बतलाते हुए नरक जैसी हीन पर्याय में भी उन कारणों को बतलाया है कि देवों में पर्याप्तक मिथ्यादृष्टि देव अन्तर्मुहूर्त काल से लेकर ऊपर कभी भी प्रथम सम्यक्त्व प्राप्त कर सकते हैं, अन्तर्मुहूर्त से पहले नहीं प्राप्त कर सकते हैं। जिन कारणों से देवों में सम्यक्त्व की उत्पत्ति संभव है उन चार कारणों को तो ऊपर बताया जा चुका है उनमें से देवर्द्धिदर्शन से उत्पन्न होने वाला सम्यक्त्व भी बड़ा महत्वपूर्ण है क्योंकि मिथ्यादृष्टि देवों को जब सौधर्म इन्द्र आदि देवों की महाऋद्धियाँ देखकर यह ज्ञान उत्पन्न होता है कि ये ऋद्धियाँ सम्यग्दर्शन से युक्त संयम पालन करने के फलस्वरूप इन्हें प्राप्त हुई हैं किन्तु मैं सम्यक्त्व रहित द्रव्यसंयम के फल से निम्न जाति का देव हुआ हूँ तब किन्हीं-किन्हीं देवों के सम्यक्त्व प्राप्ति की योग्यता प्रगट हो जाती है और ये बाह्य कारण भी उनके लिए प्रबल निमित्त बन जाते हैं। सम्यक्त्व की उत्पत्ति के उपर्युक्त चार कारण भवनवासी, व्यंतरवासी, ज्यातिर्वासी और प्रथम स्वर्ग से लेकर बारहवें स्वर्ग तक के विमानवासी देवों में होते हैं। आगे आनत, प्राणत, आरण, अच्युत इन चार स्वर्गों के देवों में देवर्द्धिदर्शन को छोड़कर शेष तीन कारण ही होते हैं। नवग्रैवेयक देवों में जातिस्मरण और धर्मोपदेश दो ही कारण होते हैं तथा उसके ऊपर अनुदिश और अनुत्तर विमानों में तो नियम से सम्यग्दृष्टि ही होते हैं। यहाँ कहने का सार यह है कि देवों में सम्यक्त्व उत्पत्ति के लिए कारण अधिकार मिलते ही रहते हैं यद्यपि नरकों में पाप की बहुलता एवं संक्लिष्ट परिणामों के कारण सम्यक्त्व की उत्पत्ति के कारण बहुत कम मिल पाते हैं फिर भी आगम में सम्यक्त्व के कारण बतलाये गये हैं — अर्थात् नरक में स्थित कितने ही नारकी जीव जातिस्मरण से, कितने ही धर्मोपदेश सुनकर और कितने ही वेदना से अभिभूत होकर सम्यक्त्व को प्रगट कर लेते हैं।

यहाँ एक प्रश्न हुआ है कि नारकी जीवों में धर्मश्रवण कैसे संभव है क्योंकि वहाँ तो ऋषियों के गमन का अभाव है ? इसका समाधान यह दिया है कि कोई-कोई सम्यग्दृष्टि देव किसी नारकी को अपने पूर्वभव का सम्बन्धी जान लेते हैं और यदि उसको धर्म में लगाना चाहते हैं तो वे वहाँ प्रथम तीन नरकों तक जाकर उन्हें धर्मोपदेश देकर सम्यक्त्व ग्रहण करा देते हैं।

प्रसंगानुसार यहाँ एक शंका यह भी उत्पन्न की गई है कि नरकों में सम्यग्दृष्टि नारकी जीव ही अन्य नारकियों को धर्मश्रवण क्यों नहीं करा देते हैं? इसका समाधान दिया है कि भव सम्बन्ध से या पूर्व वैर के सम्बन्ध से परस्पर विरोधी नारकी जीवों को अनुगृह्य — अनुग्राहक भाव उत्पन्न होना असंभव है, अर्थात् नारकी परस्पर में एक दूसरे के प्रति उपकार का भाव ही नहीं कर पाते हैं। ऐसा नरकपर्याय एवं नरकधरा का ही प्रभाव होता है।

इसी प्रकार धवला ग्रंथ की छठी पुस्तक में चारों गतियों के जीवों में सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति के कारणों का विस्तृत वर्णन है। उसके अनुसार एवं अन्य भी अनेक ग्रंथों के आधार से पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी ने “प्रवचन निर्देशिका” नामक ग्रंथ में अत्यंत सुन्दर वर्णन किया है जो कि पठनीय है। यहाँ साररूप में यह समझना चाहिए कि सभी जीवों में सम्यक्त्व की उत्पत्ति के लिए बाह्य और अन्तरंग ये दो कारण पाये जाते हैं। जैसाकि श्रीकुन्दकुन्ददेव ने कहा है —

सम्मतस्स णिमित्तं, जिणसुत्तं तस्स जाणया पुरिसा।

अंतरहेऊ भणिदा, दंसणमोहस्स खयपहुदी ॥

अर्थात् जिनसूत्र और उसके जानने वाले पुरुष (महर्षि) सम्यक्त्व के लिए बाह्य निमित्त हैं एवं दर्शनमोहनीय कर्म का क्षय, क्षयोपशम आदि अन्तरंग हेतु है।

द्वादशांग या उसके अंशरूप सूत्र तथा उन सूत्रों के जानने वाले महर्षिगण — आचार्य, उपाध्याय, साधु ये तो बाह्य हेतु हैं एवं दर्शनमोहनीय का क्षय आदि अन्तरंग हेतु है। इस गाथा से यह स्पष्ट है कि परम आध्यात्मिक महर्षि श्रीकुंदकुंददेव भी सम्यक्त्व उत्पत्ति के लिए निमित्तों को स्वीकार करते हैं क्योंकि इन अन्तरंग-बहिरंग निमित्तों के बिना सम्यक्त्व असंभव है।

युक्ति से भी इस बात को अच्छी तरह समझा जा सकता है। देखो ! बाह्य वातावरण-जलवायु आदि का अंतरंग पर कितना प्रभाव पड़ता है ! स्वच्छ जल, वायु, औषधि आदि से स्वास्थ्य लाभ होता है और गन्दे जल, वायु या अपथ्यसेवन आदि से मलेरिया, हैजा आदि अनेकों रोगों के प्रकोप उत्पन्न हो जाते हैं। फूलों के बगीचे में प्रवेश करने से बिना इच्छा के भी फूलों की सुगन्धि नाक में प्रवेश कर जाती है तथा मिट्टी के तेल, पेट्रोल आदि की दुर्गन्धि से प्रायः बहुत से लोगों को वमन तक हो जाता है।

इष्ट वस्तु के वियोग आदि से चिंता होकर मन में क्षोभ बना रहता है, प्रिय वस्तु के संयोग से हृदय आनंदविभोर हो जाता है। अचेतन वस्तुएं अचेतन पर भी अपना विशेष प्रभाव डाल देती हैं। चुम्बक लोहे को अपनी ओर खींच लेता है। विष मारणशक्ति को रखते हुए भी कुछ उचित वस्तुओं के मिश्रण से रसायन बन जाता है। जब ऐसे-ऐसे अगणित उदाहरण लोक व्यवहार में देखे जाते हैं तब पुनः जिनबिम्बदर्शन आदि बाह्य कारण अन्तरंग के दर्शनमोह आदि के उपशम में निमित्त बन जावें, इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है।

इस प्रसंग में एक विशेष बात यह बताई है कि चारों गतियों में सम्यक्त्वोत्पत्ति के जो अनेक कारण बताये हैं, उनमें “जिनबिम्बदर्शन” को सर्वाधिक महत्व दिया है कि जिनबिम्बदर्शन कभी भी निरर्थक नहीं हो सकता है। इससे कदाचित् सम्यक्त्व की उत्पत्ति नहीं भी हुई तो भी अनंत-अनंत जन्म के संचित पापकर्म-समूह का नाश होकर महान पुण्यकर्म का संचय होना पाया ही जाता है। कहा भी है—

अनंतानंत संसार-संततिच्छेद कारणम् ।

जिनराज पदाम्भोज, स्मरणं शरणं मम ॥

एकपि समर्थेयं, जिनभक्तिर्दुर्गतिं निवारयितुम्।

पुण्यानि च पूरयितुं, दातुं मुक्तिश्रियं कृतिनः ॥

अर्थात् जिनेन्द्रदेव के चरणों का स्मरण अनंत-अनंत संसार की परम्परा को समाप्त करने में समर्थ है, वही मेरे लिए शरण है।

यह एक जिनभक्ति ही विद्वानों के दुर्गति निवारण करने में समर्थ है तथा पुण्य को परिपूर्ण करने और मुक्तिलक्ष्मी को देने में समर्थ है।

ऐसे ही अन्य जो भी कारण हैं वे दर्शनमोह आदि के उपशम में निमित्त बन जाते हैं। यहाँ विशेष ज्ञातव्य है कि आजकल इस पंचमकाल में उपशम और क्षयोपशम ये दो ही सम्यक्त्व होते हैं, क्षायिक सम्यक्त्व नहीं होता है, क्योंकि इस काल में केवली या श्रुतकेवली का पादमूल नहीं प्राप्त है।

अधुना प्रथमपृथिवीगतनारकप्रमाणनिरूपणार्थं सूत्रमवतरति —

एवं पढमाए पुढवीए णेरइयाणं॥१९॥

एवं-सामान्येन कथितनारकाणां द्रव्यप्रमाणेन समानम् प्रथमपृथिव्यां नारकाणां द्रव्यप्रमाणमस्ति।

कथमेतत्, एवं मन्यमाने तु द्वितीयादिपृथिवीगतनारकाणामेवाभावो भविष्यति?

नैष दोषः, सामान्यकथनमेत् किन्तु विशेषापेक्षया कथ्यते —

प्रथमपृथिवीगतनारकाणां द्रव्यकालप्रमाणयोः भण्यमानयोः ओघद्रव्यकालप्रमाणे चैव असंख्यातभागहीने भवतः। तत्र क्षेत्रप्रमाणमपि ओघक्षेत्रप्रमाणात् असंख्यातभागान्यूनं भवति^१।

एवं प्रथमपृथिव्यां मिथ्यादृष्ट्याद्यसंयतसम्यग्दृष्टिनारकाणां द्रव्यकालक्षेत्रप्रमाणैः संख्यानिरूपणपरत्वेन प्रथमस्थले सूत्रपंचकं समाप्तम्।

संप्रति द्वितीयादिपृथिवीषु मिथ्यादृष्टिनारकाणां संख्याप्रतिपादनाय सूत्रावतारो भवति —

विदियादि जाव सत्तमाए पुढवीए णेरइएसु मिच्छाइटी दव्वपमाणेण केवडिया? असंखेज्जा॥२०॥

पूर्ववत्सुगममेतत्सूत्रं।

अब प्रथम नरक में उत्पन्न होने वाले नारकियों के प्रमाण का निरूपण करने हेतु सूत्र का अवतार होता है — सूत्रार्थ —

सामान्य नारकियों के द्रव्यप्रमाण के समान पहली पृथिवी में नारकियों का द्रव्यप्रमाण है ॥१९॥

हिन्दी टीका — सामान्य से कथित नारकी जीवों के द्रव्यप्रमाण के समान पहली पृथिवी में नारकियों का द्रव्यप्रमाण है।

प्रश्न — ऐसा क्यों है, क्योंकि ऐसा मानने पर तो द्वितीय आदि पृथिवी में जीवों का अभाव प्राप्त हो जाएगा?

उत्तर — यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि यह सामान्य कथन है किन्तु विशेष की अपेक्षकथन किया जा रहा है —

प्रथम पृथिवी के नारकियों के द्रव्य और काल की अपेक्षा प्रमाण का कथन करने पर सामान्य से कहे गये द्रव्यप्रमाण और कालप्रमाण को असंख्यातवें भाग न्यून कर देने पर पहली पृथिवी के नारकियों का द्रव्य और काल की अपेक्षा प्रमाण प्राप्त होता है।

इस प्रकार प्रथम पृथिवी में मिथ्यादृष्टि से लेकर असंयतसम्यग्दृष्टि तक नारकियों के द्रव्य, काल और क्षेत्र प्रमाणों के द्वारा संख्यानिरूपण की मुख्यता से प्रथम स्थल में पांच सूत्र समाप्त हुए।

अब द्वितीयादि नरक पृथिवियों से लेकर सातवीं पृथिवी तक के मिथ्यादृष्टि नारकियों की संख्या का प्रतिपादन करने के लिए सूत्र का अवतार होता है —

सूत्रार्थ —

दूसरी पृथिवी से लेकर सातवीं पृथिवी तक प्रत्येक पृथिवी में नारकियों में मिथ्यादृष्टि जीव द्रव्यप्रमाण की अपेक्षा कितने हैं? असंख्यात हैं ॥२०॥

यह सूत्र पूर्ववत् ही सुगम है।

अन्यत्रापि उच्यते — “द्वितीयनरकभूम्यादिषु सप्तमीभूमिर्यावत् मिथ्यादृष्टयो नारकाः श्रेण्यसंख्येय-भागप्रमिताः। स चासंख्येयभागः असंख्येययोजनकोटिकोट्यः^१।”

कालापेक्षया द्वितीयादिपृथिवीनारकाणां प्रमाणनिरूपणाय सूत्रावतारो भवति —

असंखेज्जासंखेज्जाहि ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीहि अवहिरंति कालेण।।२१।।

कालप्रमाणापेक्षया द्वितीयपृथिवीतः सप्तमीपृथिवीपर्यन्ताः प्रत्येकपृथिवीगतनारकाः मिथ्यादृष्टिजीवाः असंख्यातासंख्यातावसर्पिणी-उत्सर्पिणीभ्यां अपहृता भवन्ति।

एताः द्रव्यकालप्रमाणप्ररूपणाः स्थूलाः, श्रोतृणां निर्णयानुत्पादनत्वात्। द्रव्यप्ररूपणातः कालप्ररूपणा सूक्ष्मा, असंख्यातासंख्यातसंख्याविशिष्टद्रव्यनिरूपणात्।

अधुना द्रव्यकालप्ररूपणातः सूक्ष्मं क्षेत्रप्रमाणनिरूपणाय सूत्रावतारो भवति —

खेत्तेण सेढीए असंखेज्जदिभागो। तिस्से सेढीए आयामो असंखेज्जाओ जोयम् कोडीओ पढमादियाणं सेढिवग्गमूलाणं संखेज्जाणं अण्णोण्णब्भासो।।२२।।

अन्यत्र भी कहा है — द्वितीय नरकभूमि आदि से लेकर सातवीं भूमि तक श्रेणी के असंख्यात भागप्रमाण मिथ्यादृष्टि नारकी हैं। वह संख्या असंख्यात कोड़ाकोड़ी योजन के असंख्यातवें भागप्रमाण है।

अब काल की अपेक्षा द्वितीय आदि पृथिवी के नारकियों का प्रमाणनिरूपण करने हेतु सूत्र का अवतार होता है — सूत्रार्थ —

कालप्रमाण की अपेक्षा दूसरी पृथिवी से लेकर सातवीं पृथिवी तक प्रत्येक पृथिवी के नारक मिथ्यादृष्टि जीव असंख्यातासंख्यात अवसर्पिणियों और उत्सर्पिणियों के द्वारा अपहृत होते हैं।।२१।।

हिन्दी टीका — दूसरी नरक पृथिवी से लेकर सातवें नरक तक प्रत्येक नरक के मिथ्यादृष्टि नारकी जीव कालप्रमाण की अपेक्षा असंख्यातासंख्यात अवसर्पिणियों और उत्सर्पिणियों के द्वारा अपहृत होते हैं।

ये द्रव्य और कालप्रमाण की अपेक्षा प्ररूपणाएं सभी स्थूलरूप से कही गई हैं, क्योंकि श्रोताओं को इस प्ररूपणा से निर्णय नहीं हो सकता है। द्रव्यप्ररूपणा से भी कालप्ररूपणा सूक्ष्म है, क्योंकि कालप्ररूपणा के द्वारा असंख्यातासंख्यात संख्या से विशिष्ट द्रव्य का प्ररूपण किया गया है।

अब द्रव्य और काल इन दोनों ही प्ररूपणाओं से सूक्ष्म क्षेत्रप्रमाण का प्ररूपण करने के लिए आगे का सूत्र कहते हैं —

सूत्रार्थ —

क्षेत्र की अपेक्षा द्वितीयादि छह पृथिवियों में प्रत्येक पृथिवी के मिथ्यादृष्टि नारकी जीव जगत्श्रेणी के असंख्यातवें भागप्रमाण हैं। उस जगत्श्रेणी के असंख्यातवें भाग की जो श्रेणी है, उसका आयाम असंख्यातकोटि योजन है, जिस असंख्यातकोटि योजन का प्रमाण, जगत्श्रेणी के संख्यात प्रथमादि वर्गमूलों के परस्पर गुणा करने से जितना प्रमाण उत्पन्न हो, उतना है।।२२।।

खेत्तेण — क्षेत्रापेक्षया द्वितीयादिषट्पृथिवीषु प्रत्येकं पृथिवीणां नारकमिथ्यादृष्टिजीवा जगच्छ्रेण्य-
संख्यातभागप्रमाणाः सन्ति। तस्या जगच्छ्रेण्याः असंख्यातभागस्य या श्रेणिः तस्या आयामोऽसंख्यात-
योजनकोटयः। तस्यासंख्यातकोटियोजनस्य प्रमाणं, जगच्छ्रेण्याः संख्यातानां प्रथमादिवर्गमूलानां परस्परगुणिते
सति यावत्प्रमाणमुपलभ्यते तावत्प्रमाणं ज्ञातव्यम्।

हिन्दी टीका — द्वितीय आदिक छह पृथिवियों में प्रत्येक पृथिवी के मिथ्यादृष्टि जीव क्षेत्र की अपेक्षा
जगत्श्रेणी के असंख्यातवें भागप्रमाण हैं। उस जगत्श्रेणी के असंख्यातवें भाग की जो श्रेणी है, उसकी
लम्बाई असंख्यात करोड़ योजन है। उस असंख्यात करोड़ योजन का प्रमाण, जगत्श्रेणी के संख्यात प्रथमादि
वर्गमूलों को परस्पर में गुणित करने पर जितना प्रमाण उत्पन्न हो, उतना प्रमाण जानना चाहिए।

विशेषार्थ — यहाँ सूत्र में जो नारकी मिथ्यादृष्टि जीवों का प्रमाण असंख्यात कहा है, परन्तु वह
असंख्यात पल्य, सागर, अंगुल, जगत्श्रेणी, जगत्प्रतर और लोक आदि के भेद से अनेक प्रकार का है इसलिए
इनमें से यहाँ असंख्यात लिया गया है, यह कुछ नहीं जाना जाता है अतः जगत्श्रेणी और जगत्प्रतर आदि
उपरिम संख्या का निवारण करने के लिए “द्वितीयादि छह पृथिवियों के मिथ्यादृष्टि नारकी जगत्श्रेणी के
असंख्यातवें भाग हैं” ऐसा कहा है। जगत्श्रेणी का असंख्यातवां भाग भी पल्य, सागर, कल्प और अंगुल
आदि के भेद से अनेक प्रकार का है, इसलिए सूच्यंगुल आदि अधस्तन विकल्पों का निषेध करने के लिए
“उस श्रेणी का आयाम असंख्यातकोटि योजन है यह कहा है।

धवला टीका के अनुसार यहाँ किंचित् स्पष्टीकरण और किया जा रहा है कि सूत्र में “सेढीए असंखेज्जदिभागो”
यह पुल्लिङ्ग निर्देश है और “तिस्से” यह स्त्रीलिङ्ग निर्देश है। अतः इन दोनों पदों का समान अधिकरण नहीं है
इसलिए सूत्र में असंबद्धता प्रगट हो रही है किन्तु श्रीवीरसेनस्वामी ने स्वयं कहा है कि यह कोई दोष नहीं है,
क्योंकि यहाँ पर ‘तिस्से सेढीए’ इस पद का श्रेणी के असंख्यातवें भाग का आयाम अथवा जगत्श्रेणी का आयाम
यह अर्थ नहीं करना चाहिए, क्योंकि एक तो भिन्नाधिकरण है और दूसरे विशेषण की कोई सार्थकता नहीं रहती है
किंतु प्रकृत में ‘जगत्श्रेणी के असंख्यातवें भाग की जो श्रेणी अर्थात् पंक्ति है, उस श्रेणी का आयाम’ ऐसा अर्थ करना
चाहिये। असंख्यात कोटि योजन भी प्रतरांगुल और घनांगुल आदि के भेद से असंख्यात प्रकार का है, इसलिए
जगत्श्रेणी के प्रथम वर्गमूल, द्वितीय वर्गमूल आदि नीचे की संख्या का प्रतिषेध करने के लिए सूत्र में ‘जगत्श्रेणी के
प्रथमादि संख्यात वर्गमूलों के परस्पर गुणा करने से’ इतना पद कहा है। उनमें से यहाँ जगत्श्रेणी के प्रथम वर्गमूल
से लेकर नीचे के बारह वर्गमूलों के परस्पर गुणा करने से जितनी संख्या उत्पन्न हो, उतना दूसरी पृथिवी के नारक
मिथ्यादृष्टि राशि का प्रमाण है तथा जगत्श्रेणी के उसी पहले वर्गमूल से लेकर दश वर्गमूलों के परस्पर गुणा करने
पर तीसरी पृथिवी के नारक मिथ्यादृष्टि द्रव्य का प्रमाण होता है तथा जगत्श्रेणी के उसी प्रथम वर्गमूल से लेकर
आठ वर्गमूलों के परस्पर गुणा करने पर जो राशि आवे, उतना चौथी पृथिवी के नारक मिथ्यादृष्टि द्रव्य का प्रमाण
है तथा जगत्श्रेणी के प्रथमादि छह वर्गमूलों के परस्पर गुणा करने से जो राशि उत्पन्न हो, उतना छठी पृथिवी के
मिथ्यादृष्टि द्रव्य का प्रमाण है तथा पहले और दूसरे वर्गमूल के परस्पर गुणा करने से जो राशि उत्पन्न हो, उतना
सातवीं पृथिवी के मिथ्यादृष्टि द्रव्य का प्रमाण है।

शंका — इतने-इतने वर्गमूल के परस्पर गुणा करने पर द्वितीयादि पृथिवी के मिथ्यादृष्टि द्रव्य का
प्रमाण होता है, यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान — आचार्य परम्परा से आए हुए अविरुद्ध उपदेश से जाना जाता है कि इतने-इतने वर्गमूलों

के परस्पर गुणा करने पर द्वितीयादि पृथिवियों के मिथ्यादृष्टि द्रव्य का प्रमाण होता है। अथवा —

नारकियों के द्वितीयादि पृथिवियों का द्रव्य लाने के लिए जगत्श्रेणी का बारहवां, दशवां, आठवां, छठा, तीसरा, और दूसरा वर्गमूल अवहारकाल है और वेदों में सानत्कुमार आदि पाँच कल्पयुगलों का द्रव्य लाने के लिए जगत्श्रेणी का ग्यारहवां, नौवां, सातवां, पांचवां और चौथा वर्गमूल अवहारकाल है।

इन अवहार कालों के प्ररूपण करने वाले इस गाथासूत्र से जाना जाता है। अथवा, परिक्रम के वचन से जाना जाता है कि जगत्श्रेणी के प्रथमादि इतने-इतने वर्गमूलों के परस्पर गुणा करने से द्वितीयादि पृथिवियों का द्रव्य आता है।

एक वर्गात्मक राशि के प्रथम आदि जितने वर्गमूल होंगे, उनमें से जिस वर्गमूल का उक्त वर्गात्मक राशि में भाग देने से जो लब्ध आया, वह जिस वर्गमूल का भाग दिया उस वर्गमूल तक प्रथमादि वर्गमूलों के परस्पर गुणा करने से जो राशि उत्पन्न होगी, उतना ही होगा। उदाहरणार्थ ६५५३६ में उसके चौथे वर्गमूल २ का भाग देने से ३२७६८ लब्ध आते हैं। अब यदि प्रथमादि चार वर्गमूलों का परस्पर गुणा किया, तो भी ३२७६८ प्रमाण ही राशि उत्पन्न होगी। ६५५३६ पहला वर्गमूल २५६, दूसरा १६, तीसरा ४ और चौथा २ है। अब इनके परस्पर गुणा करने से $२५६ \times १६ \times ४ \times २ = ३२७६८$ ही आते हैं। पर नरकों में जो अंकसंदृष्टि की अपेक्षा राशियां बतलाई हैं, उनके निकालने में कल्पित वर्गमूल लिए गए हैं, इसलिए ही वहाँ यह नियम नहीं घटाया जा सकता है।

अब इन पृथिवियों के द्रव्य के महत्त्व का ज्ञान कराने के लिए किंचित् अर्थप्ररूपणा करते हैं। वह इस प्रकार है — उसमें भी पहले दूसरी पृथिवी के मिथ्यादृष्टि द्रव्य को तीसरी पृथिवी के मिथ्यादृष्टि द्रव्य प्रमाण से उत्पन्न करते हैं — जगत्श्रेणी के बारहवें वर्गमूल से जगत्श्रेणी के ग्यारहवें वर्गमूल को गुणित करके जो लब्ध आवे, उससे तीसरी पृथिवी के मिथ्यादृष्टि द्रव्य के गुणित करने पर दूसरी पृथिवी के मिथ्यादृष्टि द्रव्य का प्रमाण होता है। अथवा उक्त गुणकार के (बारहवें वर्गमूल से ग्यारहवें वर्गमूल को गुणा करने से जो लब्ध आया, उसके) जितने अर्धच्छेद हों, उतनी बार तीसरी पृथिवी के मिथ्यादृष्टि द्रव्य के द्विगुणित करने पर भी दूसरी पृथिवी के मिथ्यादृष्टि द्रव्य का प्रमाण होता है। अथवा, उक्त गुणकार की अर्धच्छेद शलाकाओं का विरलन करके और उनको दो रूप करके परस्पर गुणा करने से जो राशि उत्पन्न हो, उससे तीसरी पृथिवी के मिथ्यादृष्टि द्रव्य के गुणित कर देने पर भी दूसरी पृथिवी के मिथ्यादृष्टि द्रव्य का प्रमाण होता है। यहाँ जिस प्रकार उक्त तीन प्रकार से तीसरी पृथिवी के द्रव्य से दूसरी पृथिवी का द्रव्य उत्पन्न किया है, उसी प्रकार चौथी आदि शेष चार पृथिवियों के द्रव्य से उक्त तीन-तीन प्रकार से दूसरी पृथिवी का द्रव्य उत्पन्न कर लेना चाहिए। इस प्रकार उत्पन्न करने पर पन्द्रह भंग प्राप्त होते हैं।

चौथी पृथिवी की अपेक्षा दूसरी पृथिवी का द्रव्य उत्पन्न करते समय जगत्श्रेणी के नौवें वर्गमूल से बारहवें वर्गमूल तक चार वर्गमूलों के परस्पर गुणा करने से जो राशि उत्पन्न हो, उससे चौथी पृथिवी के द्रव्य को गुणित करने पर दूसरी पृथिवी का द्रव्य आता है। पांचवीं पृथिवी की अपेक्षा जगत्श्रेणी के सातवें वर्गमूल से लेकर बारहवें वर्गमूल तक छह वर्गमूलों के परस्पर गुणा करने से जो राशि उत्पन्न हो, उससे पांचवीं पृथिवी के द्रव्य को गुणित करने पर दूसरी पृथिवी का द्रव्य आता है। छठी पृथिवी की अपेक्षा जगत्श्रेणी के चौथे वर्गमूल से लेकर बारहवें वर्गमूल तक नौ वर्गमूलों के परस्पर गुणा करने से जो राशि उत्पन्न हो, उससे छठी पृथिवी के द्रव्य को गुणित करने पर दूसरी पृथिवी का द्रव्य आता है। सातवीं पृथिवी की अपेक्षा जगत्श्रेणी के तीसरे वर्गमूल से लेकर बारहवें वर्गमूल तक दश वर्गमूलों के परस्पर गुणा करने से जो राशि उत्पन्न हो, उससे सातवीं पृथिवी के द्रव्य के गुणित करने पर दूसरी पृथिवी का द्रव्य आता है। गुणाकार राशि के अर्धच्छेदों का विरलनादि

संप्रति सासादनाद्यसंयतसम्यग्दृष्टीनां संख्यानिर्धारणार्थं सूत्रमवतरति —

सासणसम्माइट्टिप्पहुडि जाव असंजदसम्माइट्टि ति ओघं ।।२३।।

सासादनसम्यग्दृष्टिसम्यग्मिथ्यादृष्टि-असंयतसम्यग्दृष्टिजीवानां संख्याद्वितीयादिषट्पृथिवीषु गुणस्थानवत् ज्ञातव्या। अत्रापि पल्योपमस्यासंख्यातभागत्वं प्रति विशेषाभावात् ओघवत् प्ररूपणा कृता द्रव्यार्थिकनयापेक्ष-
शिष्यानुग्रहार्थं, किन्तु पर्यायार्थिकनयावलम्बिशिष्यापेक्षया अस्ति विशेषः। स एवोच्यते —

करते समय भी जहाँ जितने वर्गमूलों का परस्पर गुणा करके जो राशि लाई गई हो, उसी राशि के अर्धच्छेदों का विरलन करके और उस विरलित राशि को दो रूप करके परस्पर गुणा करने से जो लब्ध आवे, उससे उस-उस पृथिवी के द्रव्य को गुणित करना चाहिए। अथवा, इसी क्रम से अर्धच्छेद लाकर उतनी बार उस-उस पृथिवी के द्रव्य को द्विगुणित करना चाहिए। इस प्रकार करने से दूसरी पृथिवी के द्रव्य का प्रमाण आता है।

अब पहली पृथिवी के मिथ्यादृष्टि द्रव्य से दूसरी पृथिवी के मिथ्यादृष्टि द्रव्य के उत्पन्न करने की विधि बतलाते हैं — पहली पृथिवी की मिथ्यादृष्टि विष्कंभ सूची से जगत्श्रेणी के बारहवें वर्गमूल को गुणित करके जो लब्ध आवे, उससे पहली पृथिवी के मिथ्यादृष्टि द्रव्य के भाजित करने पर दूसरी पृथिवी का मिथ्यादृष्टि द्रव्य आता है।

$$\text{उदाहरण — } ४ \times \frac{१९३}{१२८} = \frac{१९३}{३२}; ९८८१६ \div \frac{१९३}{३२} = १६३८४ \text{ द्वि.पू.मि.द्र.}$$

उक्त भागहार के जितने अर्धच्छेद हों, उतनी बार भाज्यमान राशि प्रथम पृथिवी के द्रव्य के अर्धच्छेद करने पर भी दूसरी पृथिवी के मिथ्यादृष्टि द्रव्य का प्रमाण आता है।

अथवा, जगत्श्रेणी के बारहवें वर्गमूल के अर्धच्छेदों में पहली पृथिवी की मिथ्यादृष्टि विष्कंभसूची के अर्धच्छेद मिला देने पर जितना योग हो, उतनी राशि का विरलन करके और उसे दो रूप करके परस्पर गुणा करने से जो राशि उत्पन्न हो, उससे पहली पृथिवी के मिथ्यादृष्टि द्रव्य के भाजित करने पर दूसरी पृथिवी के मिथ्यादृष्टि द्रव्य का प्रमाण आता है। इन तीन भंगों को पूर्वोक्त भंगों में मिला देने पर दूसरी पृथिवी के अठारह भंग होते हैं। इसी प्रकार सभी पृथिवियों में प्रत्येक पृथिवी के अठारह-अठारह भंग उत्पन्न कर लेना चाहिए। इन सब भंगों का जोड़ एक सौ छब्बीस होता है।

अब सासादन गुणस्थान से लेकर असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानपर्यन्त नारकी जीवों की संख्या निरूपण करने के लिए सूत्र का अवतार होता है —

सूत्रार्थ —

सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थान से लेकर असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थान में द्वितीय आदि छह पृथिवियों में से प्रत्येक पृथिवी के नारकी जीव सामान्य प्ररूपणा के समान पल्योपम के असंख्यातवें भाग हैं ।।२३।।

हिन्दी टीका — सासादन सम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीवों की संख्या द्वितीयादि छह नरक पृथिवियों में अपने-अपने गुणस्थान के समान जानना चाहिए। यहाँ भी पल्योपम के असंख्यातवें भागप्रमाण के प्रति विशेषता का अभाव होने से सभी प्ररूपणाएं गुणस्थान के समान ही बताई गई हैं, यह कथन द्रव्यार्थिकनय की अपेक्षा रखने वाले शिष्यों पर अनुग्रह करने की दृष्टि से है किन्तु पर्यायार्थिक नय का अवलम्बन लेने वाले शिष्यों की अपेक्षा उस कथन में कुछ विशेषता है, उसे कहते हैं —

“नारकजीवराशेः असंख्यातखण्डेषु कृतेषु तत्र बहुखण्डभागाः प्रथमपृथिवीगतमिथ्यादृष्टयः सन्ति। शेषैकभागस्य असंख्यातखण्डेषु कृतेषु तत्र बहुखंडभागा द्वितीयपृथ्वीमिथ्यादृष्टयो भवन्ति। एवं तृतीयचतुर्थ-पंचमषष्ठसप्तमपृथिवीनां मिथ्यादृष्टि नारकाणां अव्यामोहेन भागाभागः कर्तव्यः। पुनः सप्तमपृथिवीमिथ्यादृष्टि-नारकाणामनंतरं शेषस्यैकभागस्य असंख्यातेषु भागेषु कृतेषु तत्र बहुभागाः प्रथमपृथिव्याः असंयतसम्यग्दृष्टयो भवन्ति। शेषैकभागस्य असंख्यातेषु भागेषु कृतेषु तत्र बहुभागाः प्रथमपृथिवीसम्यग्दृष्टयो भवन्ति। शेषस्य संख्यातेषु भागेषु कृतेषु तत्र बहुभागाः प्रथमपृथिवीसासादनसम्यग्दृष्टयो भवन्ति। शेषैकभागस्य असंख्यातेषु भागेषु कृतेषु तत्र बहुभागा द्वितीयपृथिवी-असंयतसम्यग्दृष्टयो भवन्ति। शेषस्यैकभागस्य असंख्यातेषु भागेषु कृतेषु तत्र बहुभागाः तत्रतनसम्यग्दृष्टयो भवन्ति। शेषस्यैकभागस्य संख्यातेषु भागेषु कृतेषु तत्र बहुभागाः तत्रतनसासादनसम्यग्दृष्टयो भवन्ति। एवं तृतीयादिपृथ्वीतः सप्तमपृथिवीपर्यंतं गुणस्थान-प्रतिपन्ननारकाणां भागाभागः कर्तव्यः^१।”

इत्थं द्वितीयादि सप्तमपृथिवीपर्यंतनारकाणां गुणस्थानापेक्षया प्रमाणनिरूपणपरत्वेन द्वितीयस्थले चत्वारि सूत्राणि गतानि।

एवं स्थलद्वयेन नवभिः सूत्रैः नारकसंख्याप्ररूपकः
प्रथमोऽन्तराधिकारः समाप्तः।

“सभी नरकों की नारकी जीवराशि के असंख्यात खंड करने पर उनमें से बहुखण्डभाग संख्या प्रथम पृथिवी के मिथ्यादृष्टि नारकियों की है। उनमें अवशेष बचे एक भाग के असंख्यात खण्ड करने पर उनमें से बहुखंडभाग संख्या द्वितीय पृथिवी के मिथ्यादृष्टि नारकियों की है। इसी प्रकार तीसरी, चौथी, पांचवी, छठी और सातवीं पृथिवी की जीवराशि का सावधानीपूर्वक (व्यामोहरहित होकर) भागाभाग कर लेना चाहिए पुनः सातवीं पृथिवी के मिथ्यादृष्टियों के अनन्तर जो एकभाग शेष रहे, उसके असंख्यात भाग करने पर उनमें से बहुभागप्रमाण पहली पृथिवी के असंयतसम्यग्दृष्टि जीव होते हैं। शेष एक भाग के असंख्यात खण्ड करने पर उनमें से बहुभागप्रमाण पहली पृथिवी के सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव होते हैं। शेष एक भाग के संख्यात भाग करने पर उनमें से बहुभागप्रमाण प्रथम पृथिवी के सासादन सम्यग्दृष्टि जीव होते हैं। शेष एक भाग के असंख्यात भाग करने पर उसमें बहुभाग द्वितीय पृथिवी के असंयतसम्यग्दृष्टि होते हैं। शेष एक भाग के असंख्यात भाग करने पर उनमें से बहुभागप्रमाण दूसरी पृथिवी के सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव होते हैं। शेष एक भाग के संख्यात भाग करने पर उनमें से बहुभागप्रमाण दूसरी पृथिवी के सासादनसम्यग्दृष्टि जीव होते हैं। इसी प्रकार तीसरी पृथिवी से लेकर सातवीं पृथिवी तक गुणस्थानप्रतिपन्न जीवों का भागाभाग करना चाहिए।

इस प्रकार द्वितीय पृथिवी से लेकर सातवीं पृथिवी तक के नारकी जीवों का गुणस्थान की अपेक्षा प्रमाण निरूपण की मुख्यता से द्वितीय स्थल में चार सूत्र पूर्ण हुए।

इस प्रकार दो स्थलों में नौ सूत्रों के द्वारा नारकियों की संख्या का प्ररूपण करने वाला प्रथम अन्तराधिकार समाप्त हुआ।



अथ तिर्यग्गतिनामान्तराधिकारः

अथानंतरं स्थलचतुष्टयेन षोडशसूत्रपर्यंतं तिर्यग्गतिनाम द्वितीयोऽन्तराधिकारः प्रारभ्यते। तत्र प्रथमस्थले सामान्यपंचेन्द्रियजीवानां गुणस्थानेषु द्रव्यकालक्षेत्रापेक्षया संख्यानिरूपणपरत्वेन “तिरिक्खगईए” इत्यादिसूत्रपंचकेन व्याख्यानं करोति। तदनु द्वितीयस्थले पंचेन्द्रियपर्याप्ततिरिक्खां गुणस्थानव्यवस्थायां संख्याप्रतिपादनत्वेन “पंचिंदियतिरिक्ख” इत्यादिसूत्रादारभ्य सूत्रचतुष्टयं। ततः परं तृतीयस्थले पंचेन्द्रिय-तिर्यग्योनिमतीषु गुणस्थानव्यवस्थायां प्रमाणनिरूपणत्वेन “पंचिंदियतिरिक्खजोणिणीसु” इत्यादि सूत्रात् चत्वारि सूत्राणि। तत्पश्चात् चतुर्थस्थले पंचेन्द्रियतिर्यगपर्याप्तानां प्रमाणप्ररूपणपरत्वेन “पंचिंदिय” इत्यादिसूत्रादारभ्य त्रीणि सूत्राणि कथ्यन्त इति समुदायपातनिका।

अधुना तिर्यगतौ गुणस्थानेषु सामान्येन प्रमाणप्रतिपादनाय सूत्रावतारः क्रियते श्रीभूतबलिसूरिवर्येण —
तिरिक्खगईए तिरिक्खेसु मिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव संजदासंजदा ति ओघं॥२४॥

तिरिक्खगईए — तिर्यगतौ तिर्यक्षु मिथ्यादृष्टिप्रभृति यावत् संयतासंयता इति ओघवत्-गुणस्थानवत् संख्या ज्ञातव्या।

तिर्यञ्चो मिथ्यादृष्टयः प्रथमगुणस्थानवत् अनन्ताः सन्ति। अत्र द्रव्यार्थिकनयमाश्रित्य सामान्यतिरिक्खां

अब तिर्यचगति नाम का द्वितीय अन्तराधिकार प्रारंभ होता है।

इसके पश्चात् चार स्थलों के द्वारा सोलह सूत्रपर्यन्त तिर्यचगति नाम का द्वितीय अन्तराधिकार प्रारम्भ होता है। उसमें प्रथम स्थल में सामान्य पञ्चेन्द्रिय जीवों का गुणस्थानों में द्रव्य, काल, क्षेत्र की अपेक्षा संख्यानिरूपण की मुख्यता से “तिरिक्खगईए” इत्यादि पाँच सूत्रों के द्वारा व्याख्यान किया जाएगा। उसके बाद दूसरे स्थल में पंचेन्द्रिय पर्याप्त तिर्यचों की गुणस्थान व्यवस्था में संख्या के प्रपिपादन की मुख्यता से “पंचिंदिय तिरिक्ख” इत्यादि सूत्र से आरम्भ करके चार सूत्र हैं। उससे आगे तृतीयस्थल में स्त्रीवेदी पंचेन्द्रिय तिर्यच जीवों में गुणस्थान व्यवस्था में उनके प्रमाण — संख्या का निरूपण करने की मुख्यता से “पंचिंदिय तिरिक्ख जोणिणीसु” इत्यादि चार सूत्र हैं। तत्पश्चात् चतुर्थस्थल में पंचेन्द्रिय तिर्यच अपर्याप्त जीवों के प्रमाण का प्ररूपण करने की मुख्यता से “पंचिंदिय” इत्यादि सूत्र से आरम्भ करके तीन सूत्र हैं ऐसी यह सूत्रों की समुदायपातनिका हुई।

अब तिर्यचगति में गुणस्थानों में सामान्य से प्रमाण का प्रतिपादन करने हेतु श्रीभूतबली आचार्य के द्वारा सूत्र का अवतार किया जा रहा है —

सूत्रार्थ —

तिर्यचगति का आश्रय करके तिर्यचों में मिथ्यादृष्टि से लेकर संयतासंयत तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती तिर्यच सामान्यप्ररूपणा के समान हैं॥२४॥

हिन्दी टीका — तिर्यचगति के मिथ्यादृष्टि तिर्यचों से लेकर संयतासंयत गुणस्थान तक जो तिर्यच जीव हैं, उन सभी की संख्या गुणस्थान के समान जानना चाहिए।

मिथ्यादृष्टि तिर्यच जीव प्रथम गुणस्थान में स्थित जीवों के समान संख्या में अनंत हैं। यहाँ द्रव्यार्थिक

प्ररूपणा ओघवत् संभवति। किन्तु पर्यायार्थिकनयमवलम्ब्य तेषां अस्ति विशेषः।

तदेवोच्यते^१ — संपूर्णजीवराशेः अनंतेषु भागेषु कृतेषु तत्र बहुभागाः तिर्यञ्चो भवन्ति। शेषस्य अनंतेषु भागेषु कृतेषु तत्र बहुभागाः सिद्धाः भवन्ति। शेषस्य असंख्यातेषु भागेषु कृतेषु तत्र बहुभागा देवा भवन्ति। शेषस्य असंख्यातेषु भागेषु कृतेषु तत्र बहुभागा नारकाः भवन्ति। शेषैकभागो मनुष्याः सन्ति^२।”

एवमेव तिरश्चां गुणस्थानेष्वपि विशेषः अस्त्येव। तत्र मिथ्यादृष्टयोऽनन्तानन्ताः। सासादनादिदेश-संयतपर्यन्ताः प्रत्येकं पल्यासंख्येयभागमिताः^३ इति।

अधुना मिथ्यादृष्टिपंचेन्द्रियतिरश्चां संख्यानिरूपणाय सूत्रावतारो भवति —

पंचिन्द्रियतिरिक्खा मिच्छादृष्टी द्रव्यप्रमाणेण केवडिया? असंखेज्जा।।२५।।

पंचेन्द्रियतिर्यञ्चो मिथ्यादृष्टयो जीवा द्रव्यप्रमाणेन कियन्तः? इति प्रश्ने सति असंख्याताः सन्ति। अत्रापि मध्यमासंख्यातासंख्याताः गृहीतव्याः।

संप्रति कालापेक्षया मिथ्यादृष्टितिरश्चां संख्याकथनाय सूत्रमवतरति —

असंखेज्जासंखेज्जाहि ओसप्पिणि-उत्सप्पिणीहि अवहिरंतिकालेण।।२६।।

नय का आश्रय लेकर सामान्य तिर्यचों की प्ररूपणा ओघ-गुणस्थान के समान संभव है किन्तु पर्यायार्थिक नय के अवलम्बन से उनमें कुछ विशेषता पाई जाती है।

उसी का वर्णन करते हैं —

सम्पूर्ण जीवराशि के अनन्त भाग करने पर उनमें से बहुभाग तिर्यच होते हैं। शेष एक भाग के अनन्त भाग करने पर उनमें से बहुभागप्रमाण सिद्ध होते हैं। शेष एक भाग के असंख्यात भाग करने पर उनमें से बहुभागप्रमाण देव होते हैं। शेष एक भाग के असंख्यात भाग करने पर उनमें से बहुभागप्रमाण नारकी होते हैं। शेष एक भागप्रमाण मनुष्य होते हैं।

इसी प्रकार तिर्यच जीवों के गुणस्थानों में भी विशेषता पाई जाती है। उनमें मिथ्यादृष्टि तिर्यच अनन्तानन्त हैं। आगे सासादन गुणस्थान से लेकर देशसंयत नामक पंचम गुणस्थानपर्यन्त प्रत्येक गुणस्थान में तिर्यच जीव पल्य के असंख्यातवें भागप्रमाण हैं ऐसा जानना चाहिए।

अब मिथ्यादृष्टि पंचेन्द्रिय तिर्यचों की संख्या निरूपण के लिए सूत्र का अवतार होता है —

सूत्रार्थ —

पञ्चेन्द्रिय तिर्यच मिथ्यादृष्टि जीव द्रव्यप्रमाण की अपेक्षा कितने हैं? असंख्यात हैं।।२५।।

हिन्दी टीका — पञ्चेन्द्रिय तिर्यच मिथ्यादृष्टि जीव द्रव्यप्रमाण से कितने हैं?

ऐसा प्रश्न होने पर उत्तर मिलता है कि द्रव्यप्रमाण की अपेक्षा से मिथ्यादृष्टि पञ्चेन्द्रिय तिर्यच जीव असंख्यात होते हैं। यहाँ भी असंख्यात शब्द से मध्यम असंख्यातासंख्यात ग्रहण करना चाहिए।

अब काल की अपेक्षा मिथ्यादृष्टि तिर्यच जीवों की संख्या कथन के लिए सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ —

काल की अपेक्षा पञ्चेन्द्रिय तिर्यच मिथ्यादृष्टि जीव असंख्यातासंख्यात अवसर्पिणियों और उत्सर्पिणियों के द्वारा अपहृत होते हैं।।२६।।

१. षट्खण्डागम पु. ३, पृ. २०७-२०८। २. षट्खण्डागम पु. ३ (धवला टीका) पृ. २०७। ३. तत्त्वार्थवृत्ति अ. १, सूत्र ८ के अंतर्गत।

कालेण — कालापेक्षया मिथ्यादृष्ट्यः पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चः असंख्यातासंख्यातारभ्यो अवसर्पिणी-उत्सर्पिणीभ्यां अपहृताः भवन्ति।

कश्चिदाह — कदाचित् असंख्यातासंख्यातावसर्पिणी-उत्सर्पिणीकालेषु अतिक्रमेषु तिर्यग्गतौ पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चां व्युच्छेदो भविष्यति, पञ्चेन्द्रियतिर्यक्स्थितेः उपरि तत्र अवस्थानाभावात्?

आचार्यः प्राह — नैष दोषः, एकेन्द्रिय-विकलेन्द्रियेभ्यो देवनारकमनुष्येभ्यश्चागत्य पञ्चेन्द्रियतिर्यक्षु उत्पद्यमानजीवसंभवात्। या राशिः आयविरहिता व्ययसहिता च तस्या एव व्युच्छेदो भवति, किन्तु एषा पुनः पञ्चेन्द्रियतिर्यङ्मिथ्यादृष्टिजीवराशिः व्ययसहिता आयसहिता चेति अतो न व्युच्छेदं प्राप्नोति। ततश्च “णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा” इति सूत्राद्वा अस्याः राशेः विरहाभावो ज्ञायते^१। एवं कालप्ररूपणा गता।

अधुना क्षेत्रापेक्षया एषां पञ्चेन्द्रियतिर्यङ्मिथ्यादृष्टीनां प्रमाणकथनार्थं सूत्रमवतरति —

खेत्तेण पंचिंदियतिरिक्खमिच्छाइट्ठीहि पदरमवहिरदि देव-अवहारकालादो असंखेज्ज-गुणहीणेण कालेण।।२७।।

हिन्दी टीका — यहाँ आचार्य श्रीभूतबली स्वामी ने बताया है कि काल की अपेक्षा से पञ्चेन्द्रिय तिर्यचों में जो प्रथम मिथ्यादृष्टि गुणस्थानवर्ती तिर्यच हैं वे असंख्यातासंख्यात अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी कालों से अपहृत होते हैं। इस सूत्र के सम्बन्ध में श्रीवीरसेनाचार्य देव ने ध्वला टीका में स्पष्ट किया है कि मूलसूत्र में मिथ्यादृष्टि पद का कथन न होने पर भी अनुवृत्ति से मिथ्यादृष्टि जीवों का चूँकि प्रकरण चला आ रहा है, इसलिए अध्याहार से उसका ग्रहण हो जाता है।

यहाँ कोई शंका करता है कि —

कदाचित् असंख्यातासंख्यात अवसर्पिणियों और उत्सर्पिणियों के निकल जाने पर तिर्यचगति के पञ्चेन्द्रिय तिर्यचों का विच्छेद हो जाएगा क्योंकि पञ्चेन्द्रिय तिर्यच की स्थिति के ऊपर तिर्यचगति में उनका अवस्थान नहीं रह सकता है ?

इसका उत्तर आचार्यदेव ने दिया है कि —

यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि एकेन्द्रियों और विकलेन्द्रियों में से तथा देव, नारकी और मनुष्यों में से आकर पञ्चेन्द्रिय तिर्यचों में उत्पन्न होने वाले जीव संभव हैं। जो राशि आयरहित और व्ययसहित होती है उसका ही सर्वथा विच्छेद होता है परन्तु यह पञ्चेन्द्रिय तिर्यच मिथ्यादृष्टि जीवों की राशि तो आय और व्यय इन दोनों से सहित है, इसलिए इसका कभी विच्छेद नहीं होता है। अथवा “नाना जीवों की अपेक्षा पञ्चेन्द्रिय मिथ्यादृष्टि जीव सर्वकाल रहते हैं” इस सूत्र से पञ्चेन्द्रिय तिर्यच मिथ्यादृष्टियों के विरह का अभाव पाया जाता है। इस प्रकार कालप्ररूपणा समाप्त हुई।

अब क्षेत्र की अपेक्षा इन्हीं मिथ्यादृष्टि पञ्चेन्द्रिय तिर्यचों के प्रमाण को बताने हेतु सूत्र का अवतरण होता है —

सूत्रार्थ —

क्षेत्र की अपेक्षा पञ्चेन्द्रिय तिर्यच मिथ्यादृष्टियों के द्वारा देवों के अवहारकाल से असंख्यातगुणे-हीन काल से जगत्प्रतर अपहृत होता है ।।२७।।

क्षेत्रापेक्षया पंचेन्द्रियतिर्यङ्मिथ्यादृष्टिभिः देवानामवहारकालात् असंख्यातगुणहीनेन कालेन जगत्प्रतरं अपह्रियते।

अत्र अलौकिक गणितज्ञेन जिज्ञासुना धवला टीका विलोकनीया।

हिन्दी टीका — क्षेत्र की अपेक्षा से पञ्चेन्द्रिय मिथ्यादृष्टि तिर्यच जीवों के द्वारा देवों के अवहार काल से असंख्यातगुणा हीन काल के द्वारा जगत्प्रतर अपहृत होता है। यहाँ अलौकिक गणित को जानने वाले जिज्ञासु पाठकों को धवला टीका देखना चाहिए अर्थात् उसका स्वाध्याय करना चाहिए।

विशेषार्थ — यहाँ प्रसंगोपात्त धवला टीका के आधार से इस विषय का स्पष्टीकरण किया जा रहा है। जिसे सर्वप्रथम शंका-समाधान के द्वारा प्रस्तुत किया है कि —

देवों का प्रमाण लाने के लिए जो अवहारकाल कहा है वह असिद्ध है अतः असिद्धदेव-अवहारकाल से पञ्चेन्द्रिय तिर्यच मिथ्यादृष्टियों का अवहारकाल कैसे साधा जाता है ?

इसका समाधान करते हुए आचार्यश्री ने कहा है —

यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि अनादिनिधन आगम असिद्ध नहीं हो सकता है।

शंका — आगम का ज्ञान नहीं होना ही आगम का असिद्धत्व है ?

समाधान — नहीं, क्योंकि, व्याख्यान से आगम के ज्ञान की सिद्धि हो जाती है।

अब बतलाते हैं कि दो सौ छप्पन सूच्यंगुल के वर्ग को आवली के असंख्यातवें भाग के वर्ग से भाजित करने पर पञ्चेन्द्रिय तिर्यच मिथ्यादृष्टियों का अवहारकाल होता है। अथवा, आवली के असंख्यातवें भाग से दो सौ छप्पन सूच्यंगुलों के भाजित करने पर वहाँ जो लब्ध आवे, उसका वर्ग कर देने पर पञ्चेन्द्रिय तिर्यच मिथ्यादृष्टिसंबंधी अवहारकाल होता है। अथवा पहले स्थापित आवली के असंख्यातवें भाग को वर्गित करके जो प्रमाण आवे, उससे पैंसठ हजार पाँच सौ छत्तीस प्रतरांगुलों के भाजित करने पर पञ्चेन्द्रिय तिर्यच मिथ्यादृष्टिसंबंधी अवहारकाल होता है। अथवा पैंसठ हजार पाँच सौ छत्तीस से आवली के असंख्यातवें भाग के वर्ग को अपवर्तित करके जो लब्ध आवे, उससे प्रतरांगुल के भाजित करने पर पञ्चेन्द्रिय तिर्यच मिथ्यादृष्टिसंबंधी अवहारकाल आता है। अब यहाँ खंडित आदिक की विधि को बतलाते हैं। वह इस प्रकार है।

प्रतरांगुल के असंख्यात खंड होने पर उनमें से एक खंडप्रमाण पञ्चेन्द्रिय तिर्यच मिथ्यादृष्टि अवहारकाल होता है। इस प्रकार खंडित का वर्णन समाप्त हुआ। आवली के असंख्यातवें भाग से प्रतरांगुल के भाजित करने पर पञ्चेन्द्रिय तिर्यच मिथ्यादृष्टि अवहारकाल होता है। इस प्रकार भाजित का वर्णन समाप्त होता है। आवली के असंख्यातवें भाग को विरलित करके और इस विरलित राशि के प्रत्येक एक के प्रति प्रतरांगुल को समान खंड करके देयरूप से दे देने पर उनमें से एक विरलन के प्रति प्राप्त एक खंडप्रमाण पञ्चेन्द्रिय तिर्यच मिथ्यादृष्टि अवहार काल होता है। इस प्रकार विरलित का वर्णन समाप्त हुआ। उस आवली के असंख्यातवें भागरूप अवहारकाल को शलाका रूप से स्थापित करके अनन्तर पञ्चेन्द्रिय तिर्यच मिथ्यादृष्टि अवहारकाल के प्रमाण को प्रतरांगुल में से घटा देना चाहिए। एक बार घटाया इसलिये शलाकाराशि में से एक कम कर देना चाहिए। इस प्रकार पुनः पुनः प्रतरांगुल में से आवली के असंख्यातवें भाग को और शलाकाराशि में से एक को उत्तरोत्तर कम करते जाने पर शलाकाराशि और प्रतरांगुल एक साथ समाप्त होते हैं। यहाँ पर आदि में अथवा मध्य में अथवा अंत में एक बार जितना प्रमाण घटाया, उतना पञ्चेन्द्रिय तिर्यच मिथ्यादृष्टि अवहारकाल होता

है। इस प्रकार अपहृत का कथन समाप्त हुआ। उस पञ्चेन्द्रिय तिर्यच मिथ्यादृष्टि अवहारकाल का प्रमाण प्रतरांगुल के असंख्यातवें भाग है जो असंख्यात सूच्यंगुलप्रमाण होता है। इस प्रकार प्रमाण का वर्णन समाप्त हुआ।

शंका — पञ्चेन्द्रिय तिर्यच मिथ्यादृष्टि अवहारकाल का प्रमाण असंख्यात सूच्यंगुल किस कारण से है ?

समाधान — सूच्यंगुल से प्रतरांगुल के भाजित करने पर एक सूच्यंगुल का प्रमाण आता है। सूच्यंगुल के प्रथम वर्गमूल से प्रतरांगुल के भाजित करने पर सूच्यंगुल के प्रथम वर्गमूल का जितना प्रमाण हो, उतने सूच्यंगुल लब्ध आते हैं। इसी प्रकार असंख्यात वर्गस्थान नीचे जाकर आवली के असंख्यातवें भाग से प्रतरांगुल के भाजित करने पर असंख्यात सूच्यंगुल लब्ध आते हैं। इस प्रकार कारण का वर्णन समाप्त हुआ।

आवली के असंख्यातवें भाग से सूच्यंगुल के भाजित करने पर वहाँ जितना प्रमाण लब्ध आवे, उतने सूच्यंगुलप्रमाण पञ्चेन्द्रिय तिर्यच मिथ्यादृष्टि अवहारकाल है। अथवा, आवली के असंख्यातवें भाग से सूच्यंगुल के प्रथम वर्गमूल को अपहृत करके जो लब्ध आवे, उससे सूच्यंगुल के प्रथम वर्गमूल के गुणित करने पर जितना प्रमाणलब्ध आवे, उतने सूच्यंगुलप्रमाण पञ्चेन्द्रिय तिर्यच मिथ्यादृष्टि अवहारकाल है। इसी प्रकार असंख्यात वर्गस्थान नीचे जाकर आवली के असंख्यातवें भाग से आवली के भाजित करने पर जो लब्ध आवे, उससे आवली को गुणित करके पुनः उस गुणित राशि से प्रतरावली को गुणित करके इसी प्रकार सूच्यंगुल के प्रथम वर्गमूल पर्यन्त संपूर्ण वर्गों के निरन्तर परस्पर गुणित करने पर यहाँ जितना प्रमाण लब्ध आवे, उतने सूच्यंगुल आते हैं और यही पञ्चेन्द्रिय तिर्यच मिथ्यादृष्टि अवहारकाल है। इस प्रकार निरुक्ति का वर्णन समाप्त हुआ।

विकल्प दो प्रकार का है—अधस्तन विकल्प और उपरिम विकल्प। उनमें से अधस्तन विकल्प को बतलाते हैं—आवली के असंख्यातवें भाग से सूच्यंगुल के भाजित करने पर जो लब्ध आवे, उससे उसी सूच्यंगुल के गुणित करने पर पञ्चेन्द्रिय तिर्यच मिथ्यादृष्टि अवहारकाल का प्रमाण होता है। अथवा, उसी आवली के असंख्यातवें भागहार से सूच्यंगुल के प्रथम वर्गमूल के भाजित करने पर जो लब्ध आवे, उससे सूच्यंगुल के प्रथम वर्गमूल को गुणित करके जो लब्ध आवे, उससे सूच्यंगुल के गुणित करने पर पञ्चेन्द्रिय तिर्यच मिथ्यादृष्टि अवहारकाल होता है। इसीप्रकार असंख्यात वर्गस्थान नीचे जाकर आवली के असंख्यातवें भाग से आवली के भाजित करने पर जो लब्ध आवे, उससे उसी आवली को गुणित करके पुनः उस गुणित राशि से उस आवली के उपरिम वर्ग को गुणित करके इसी प्रकार गुणित करते हुए सूच्यंगुलपर्यन्त संपूर्ण वर्गों के निरन्तर परस्पर गुणित करने पर पञ्चेन्द्रिय तिर्यच मिथ्यादृष्टि अवहारकाल होता है। इस प्रकार अधस्तन विकल्प समाप्त हुआ।

अब अष्टरूप में अधस्तन विकल्प बतलाते हैं—आवली के असंख्यातवें भाग से सूच्यंगुल को गुणित करके जो लब्ध आवे, उससे घनांगुल के भाजित करने पर पञ्चेन्द्रिय तिर्यच मिथ्यादृष्टि अवहारकाल होता है। उसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है—

सूच्यंगुलका घनांगुल में भाग देने पर प्रतरांगुल आता है पुनः आवली के असंख्यातवें भाग से प्रतरांगुल के भाजित करने पर पञ्चेन्द्रिय तिर्यच मिथ्यादृष्टि अवहारकाल होता है।

अब घनाघन में अधस्तन विकल्प बतलाते हैं—आवली के असंख्यातवें भाग से सूच्यंगुल को गुणित करके जो लब्ध आवे, उससे घनांगुल के प्रथम वर्गमूल को गुणित करके जो लब्ध आवे उससे घनाघनांगुल के प्रथम वर्गमूल के भाजित करने पर पञ्चेन्द्रिय तिर्यच मिथ्यादृष्टि अवहारकाल होता है। इसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है—घनांगुल के प्रथम वर्गमूल से के भाजित करने पर घनांगुल का प्रमाण आता है पुनः सूच्यंगुल से घनांगुल के भाजित करने पर प्रतरांगुल का प्रमाण आता है पुनः सूच्यंगुल से घनांगुल के भाजित करने पर

अधुना पंचेन्द्रियतिरश्चां सासादनादिसंयतासंयतगुणस्थानेषु संख्यां व्यवस्थापयत्सूत्रमवतरति —

सासणसम्माइट्टिप्पहुडि जाव संजदासंजदा त्ति तिरिक्खोयं॥२८॥

सासादनसम्यग्दृष्टिमादिं कृत्वा संयतासंयतगुणस्थानपर्यताः पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चः प्रत्येकं गुणस्थानेषु सामान्यतिर्यग्बत् पल्योपमस्यासंख्यातभागाः सन्ति।

एवं सामान्यपञ्चेन्द्रियतिरश्चां मिथ्यादृष्ट्यादिदेशसंयतगुणस्थानपर्यतं संख्यानिरूपणपरत्वेन पंच सूत्राणि गतानि प्रथमस्थले इति।

संप्रति पर्याप्तनामकर्मोदयसहितपञ्चेन्द्रियतिरश्चां प्रमाणप्ररूपणाय सूत्रावतारः क्रियते —

पंचिंदियतिरिक्खपज्जत्तमिच्छाइट्टी दव्वपमाणेण केवडिया? असंखेज्जा॥२९॥

पञ्चेन्द्रियतिर्यक्पर्याप्तमिथ्यादृष्टयः द्रव्यप्रमाणेन कियन्तः? इति प्रश्ने सति असंख्याताः इति कथ्यन्ते।

प्रतरांगुल का प्रमाण आता है पुनः आवली के असंख्यातवें भाग से प्रतरांगुल के भाजित करने पर पञ्चेन्द्रिय तिर्यच मिथ्यादृष्टि अवहारकाल होता है। इस प्रकार अधस्तन विकल्प समाप्त हुआ।

उपरिम विकल्प तीन प्रकार का है— गृहीत, गृहीतगृहीत और गृहीतगुणकार। उनमें से द्विरूप में गृहीत उपरिम विकल्प को बतलाते हैं— आवली के असंख्यातवें भाग से प्रतरांगुल के भाजित करने पर पञ्चेन्द्रिय तिर्यच मिथ्यादृष्टि अवहारकाल आता है। उक्त भागहार के जितने अर्धच्छेद हों, उतनी बार उक्त भज्यमान राशि के अर्धच्छेद करने पर भी पञ्चेन्द्रिय तिर्यच मिथ्यादृष्टि अवहारकाल होता है। वास्तव में यह मध्यम विकल्प है और इसी की अपेक्षा करके ही अधस्तन और उपरिम संज्ञा संभव है, इसलिए उपचार से यह उपरिम विकल्प कहा जाता है।

अब पञ्चेन्द्रिय तिर्यच जीवों के सासादन गुणस्थान से लेकर संयतासंयत गुणस्थानपर्यन्त संख्या की व्यवस्था बतलाने हेतु सूत्र का अवतार होता है —

सूत्रार्थ —

सासादन सम्यग्दृष्टि गुणस्थान से लेकर संयतासंयत गुणस्थान तक पञ्चेन्द्रिय तिर्यच प्रत्येक गुणस्थान में सामान्य तिर्यचों के समान पल्योपम के असंख्यातवें भाग हैं॥२८॥

हिन्दी टीका — सासादन सम्यग्दृष्टि नामक द्वितीय गुणस्थान को आदि में करके संयतासंयत नामक पंचम गुणस्थानपर्यन्त पञ्चेन्द्रिय जीव प्रत्येक गुणस्थानों में सामान्य तिर्यच के समान पल्योपम के असंख्यातवें भागप्रमाण हैं।

इस प्रकार सामान्य पञ्चेन्द्रिय तिर्यचों के मिथ्यादृष्टि गुणस्थान से लेकर देशसंयत गुणस्थानपर्यन्त संख्या निरूपण की मुख्यता से प्रथमस्थल में पाँच सूत्र हुए।

अब पर्याप्त नाम कर्मोदय से सहित पञ्चेन्द्रिय तिर्यचों का प्रमाण बतलाने के लिए सूत्र का अवतार करते हैं—

सूत्रार्थ —

पञ्चेन्द्रिय तिर्यच पर्याप्त मिथ्यादृष्टि जीव द्रव्यप्रमाण से कितने हैं? ऐसा प्रश्न होने पर वे असंख्यात हैं, ऐसा उत्तर मिलता है॥२९॥

यहाँ सूत्र में पञ्चेन्द्रिय पद का ग्रहण एकेन्द्रिय और विकलेन्द्रियों के निराकरण करने के लिए किया है

अत्र सूत्रे पञ्चेन्द्रियग्रहणं एकेन्द्रियविकलेन्द्रियव्युदासार्थः। तिर्यग्निर्देशः देवनारकमनुष्यनिराकरणार्थः। पर्याप्तनिर्देशो लब्ध्यपर्याप्त व्युदासार्थः। मिथ्यादृष्टिनिर्देशेन शेषगुणस्थानव्युदासः कृतो भवति। अतो ज्ञायते पञ्चेन्द्रियतिर्यक्पर्याप्ता मिथ्यादृष्टयोऽपि असंख्याता एव, असंख्यातस्यासंख्यातविकल्पत्वात्।

अधुना एषामेव पर्याप्तमिथ्यादृष्टीनां कालापेक्षया प्रमाणनिर्देशनाय सूत्रमवतरति —

असंखेज्जासंखेज्जाहि ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीहि अवहिरंति कालेण॥३०॥

कालापेक्षया पञ्चेन्द्रियतिर्यक्पर्याप्तमिथ्यादृष्टयः असंख्यातासंख्याताभ्यां अवसर्पिण्युत्सर्पिणीभ्यां अपहृता भवन्ति।

संप्रति अत्यन्तसूक्ष्मक्षेत्रापेक्षया एषामेवतिरश्चां संख्यानिरूपणाय सूत्रावतारः क्रियते —

खेत्तेण पंचिंदियतिरिक्खपज्जत्तमिच्छाइट्ठीहि पदरमवहिरदि देवअवहार-

कालादो संखेज्जगुणहीणेण कालेण॥३१॥

क्षेत्रापेक्षया पञ्चेन्द्रियतिर्यक्पर्याप्तमिथ्यादृष्टिभिः देवअवहारकालात् संख्यातगुणहीनेन कालेन जगत्प्रतरं अपह्रियते। अत्र सूत्रे प्रतरग्रहणस्य जगत्प्रतरं गृहीतव्यं न च प्रतरांगुलमिति।

तथा तिर्यच पद का कथन देव, नारकी और मनुष्यों के निराकरण करने के लिए किया है। पर्याप्त शब्द का निर्देश लब्ध्यपर्याप्त जीवों के निराकरण के लिए है तथा सूत्र में मिथ्यादृष्टि पद के निर्देश से शेष गुणस्थानों का निराकरण हो जाता है अतः यह ज्ञात होता है कि पञ्चेन्द्रिय तिर्यच पर्याप्त मिथ्यादृष्टि जीव भी असंख्यात ही हैं, क्योंकि असंख्यात के भी असंख्यात विकल्प — भेद होते हैं।

अब इन्हीं पर्याप्त मिथ्यादृष्टि तिर्यचों के काल की अपेक्षा प्रमाण बतलाने हेतु सूत्र का अवतार होता है —
सूत्रार्थ —

काल की अपेक्षा पञ्चेन्द्रिय तिर्यच पर्याप्त मिथ्यादृष्टि जीव असंख्यातासंख्यात अवसर्पिणियों और उत्सर्पिणियों के द्वारा अपहृत होते हैं ॥३०॥

हिन्दी टीका — यहाँ सूत्र में आचार्य श्रीभूतबली स्वामी ने बताया है कि काल की अपेक्षा पञ्चेन्द्रिय तिर्यच पर्याप्त मिथ्यादृष्टि जीव असंख्यातासंख्यात अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी कालों के द्वारा अपहृत होते हैं।

इस सूत्र में असंख्यातासंख्यात के ग्रहण करने का निमित्त कालप्ररूपणा है। अथवा कालप्ररूपणा पल्य, सागर और कल्प से ऊपर की संख्या से विशिष्ट जीवों के ग्रहण कराने में निमित्त है, इसलिए द्रव्यप्ररूपणा से कालप्ररूपणा सूक्ष्म है।

अब अत्यन्त सूक्ष्म क्षेत्र की अपेक्षा इन्हीं तिर्यचों की संख्या निरूपण के लिए सूत्र का अवतार किया जाता है —
सूत्रार्थ —

क्षेत्र की अपेक्षा पञ्चेन्द्रिय तिर्यच पर्याप्त मिथ्यादृष्टियों के द्वारा देव अवहार काल से संख्यातगुणे हीन काल से जगत्प्रतर अपहृत होता है ॥३१॥

हिन्दी टीका — क्षेत्र की अपेक्षा पञ्चेन्द्रिय तिर्यच पर्याप्त मिथ्यादृष्टि जीवों से देव अवहारकाल से संख्यातगुणे हीनकाल के द्वारा जगत्प्रतर अपहृत होता है। यहाँ सूत्र में “ प्रतर ” शब्द के ग्रहण से जगत्प्रतर का ग्रहण किया है, प्रतरांगुल का नहीं।

अथ गुणस्थानेषु संख्यानिरूपणाय सूत्रावतारो भवति —

सासाणसम्माइट्टिप्पहुडि जाव संजदासंजदा त्ति ओघं॥३२॥

सासादनसम्यग्दृष्टिप्रभृति यावत् संयतासंयता इति ओघवत् ज्ञातव्यं। किं च इमे गुणस्थानवर्तिनः तिर्यञ्चः पर्याप्ता एव भवन्ति। एवं पञ्चेन्द्रियपर्याप्ततिरश्चां संख्यानिरूपणपरत्वेन द्वितीयस्थले सूत्रचतुष्टयं गतम्।

अधुना स्त्रीवेदीपञ्चेन्द्रियतिरश्चीषु मिथ्यादृष्टिप्रमाणनिरूपणाय सूत्रमवतरति —

पञ्चिंदियतिरिक्खजोणिणीसु मिच्छाइट्टी दव्वपमाणेण केवडिया?

असंखेज्जा॥३३॥

पञ्चेन्द्रियतिर्यक्स्त्रीवेदिन्यः मिथ्यादृष्टिन्यः द्रव्यप्रमाणेन कियन्तः इति प्रश्ने असंख्याताः सन्ति इत्युत्तरं वर्तते।

विशेषार्थ — धवलाकार के अनुसार यदि ऐसा नहीं माना जाएगा तो “देव अवहारकाल की अपेक्षा संख्यातगुणे हीनकाल से” यह वचन नहीं बन सकता है। देवों के अवहारकाल में संख्यात का भाग देने पर जो लब्ध आवे, वह प्रतरांगुल का संख्यातवां भाग होता है।

यहाँ शंका होती है कि यह कैसे जाना जाता है ? इसका उत्तर देते हुए श्रीवीरसेन स्वामी ने कहा कि संविग्न होकर जिन्होंने पदार्थों का निरूपण किया है, ऐसे आचार्यों के अविरुद्ध उपदेश से जाना जाता है कि देवों के अवहारकाल में संख्यात का भाग देने पर प्रतरांगुल का संख्यातवां भाग लब्ध आता है और यही पञ्चेन्द्रिय तिर्यच पर्याप्त मिथ्यादृष्टि का अवहार काल है। अथवा संख्यात से सूच्यंगुल से भाजित करने पर जो लब्ध आएगा, उसका वर्ग कर देने पर पञ्चेन्द्रिय तिर्यच पर्याप्त मिथ्यादृष्टियों का अवहारकाल होता है। अथवा उस योग्य संख्यात का वर्ग करके और उस वर्गित राशि का प्रतरांगुल में भाग देने पर पञ्चेन्द्रिय तिर्यच पर्याप्त मिथ्यादृष्टियों का अवहारकाल होता है। इस अवहार काल के खंडित आदि भेदों को समझकर कथन करना चाहिए।

अब गुणस्थानों में संख्या का निरूपण करने के लिए सूत्र का अवतार होता है —

सूत्रार्थ —

सासादन सम्यग्दृष्टिगुण स्थान से लेकर संयतासंयत गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती पञ्चेन्द्रिय तिर्यच पर्याप्त जीव ओघप्ररूपणा के समान पल्योपम के असंख्यातवें भाग हैं ॥३२॥

हिन्दी टीका — सासादन सम्यग्दृष्टि से प्रारंभ करके जो संयतासंयत गुणस्थान तक जीव हैं, उनकी संख्या यथायोग्य गुणस्थान के समान जानना चाहिए। इसमें विशेष बात यह है कि सभी गुणस्थानवर्ती तिर्यच पर्याप्तक ही होते हैं।

इस प्रकार पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त तिर्यचों की संख्या निरूपण की मुख्यता से द्वितीय स्थल में चार सूत्र पूर्ण हुए।

अब स्त्रीवेदी पञ्चेन्द्रिय तिर्यचों में मिथ्यादृष्टि जीवों का प्रमाण बतलाने हेतु सूत्र का अवतार होता है—

सूत्रार्थ —

पञ्चेन्द्रिय तिर्यच योनिमती जीवों में मिथ्यादृष्टि जीव द्रव्यप्रमाण की अपेक्षा कितने हैं ? असंख्यात हैं ॥३३॥

हिन्दी टीका — स्त्रीवेदी पञ्चेन्द्रिय तिर्यचों में मिथ्यादृष्टि जीवों की संख्या द्रव्यप्रमाण की अपेक्षा कितनी है ? ऐसा प्रश्न होने पर उनकी संख्या असंख्यात है, यह उत्तर प्राप्त होता है।

तिर्यग्योनिषु द्रव्यपुनपुंसकस्त्रीवेदधारिषु कदाचित् भाववेदवैषम्यं संभवेत्।

उक्तं च —

पुरिसिच्छिसंढवेदोदयेण पुरिसिच्छिसंढओ भावे।

गामोदयेण दव्वे पाएण समा कहिं विसमा^१।।

अतएव अत्र भावस्त्रीवेदः गृहीतव्यः।

अग्रे पञ्चेन्द्रिययोनिमतीतिर्यग्जीवानां कालापेक्षया प्रमाणप्ररूपणाय सूत्रस्यावतारो भवति —

असंखेज्जासंखेज्जाहि ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीहि अवहिरंति कालेण।।३४।।

कालापेक्षया पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिमतीमिथ्यादृष्टिजीवा असंख्यातासंख्याताभ्यां अवसर्पिण्युत्सर्पिणीभ्यां अपहृता भवन्ति।

क्षेत्रापेक्षया तासामेव तिरश्चीनां संख्याप्रतिपादनार्थं सूत्रस्यावतारो भवति —

तिर्यच योनि के जीवों में द्रव्यवेदों की अपेक्षा पुरुष, नपुंसक और स्त्रीवेदधारियों में कदाचित् भाववेद की विषमता भी संभव पाई जाती है। जैसा कि कहा भी है —

गाथार्थ — पुरुष, स्त्री और नपुंसकवेद कर्म के उदय से भावपुरुष, भावस्त्री, भावनपुंसक होता है और नामकर्म के उदय से द्रव्यपुरुष, द्रव्य स्त्री, द्रव्यनपुंसक होता है। सो यह भाववेद और द्रव्यवेद प्रायः करके समान होते हैं परन्तु कहीं-कहीं विषम भी होते हैं।

अतएव यहाँ पर भावस्त्रीवेद को ग्रहण करना चाहिए।

भावार्थ — यहाँ वेद के प्रकरण में विशेष बात यह समझना है कि वेदनामक नोकषाय के उदय से जीवों के भाववेद होता है और निर्माण नामकर्म सहित आंगोपांग नामकर्म के उदय से द्रव्यवेद होता है। ये दोनों वेद प्रायः करके तो समान ही होते हैं, अर्थात् जो भाववेद है वही द्रव्यवेद रहता है परन्तु कहीं-कहीं विषमता भी हो जाती है अर्थात् भाववेद दूसरा और द्रव्यवेद दूसरा भी रह सकता है। यह विषमता तो देवगति और नरकगति में तो सर्वथा नहीं पाई जाती है। मनुष्य और तिर्यचगति में जो भोगभूमिज हैं, उनमें भी नहीं पाई जाती है। बाकी के तिर्यच-मनुष्यों में क्वचित् — कहीं-कहीं वैषम्य भी पाया जाता है।

आगे योनिमती पञ्चेन्द्रिय तिर्यच जीवों का काल की अपेक्षा प्रमाण बतलाने हेतु सूत्र का अवतार होता है —

सूत्रार्थ —

काल की अपेक्षा पञ्चेन्द्रिय तिर्यच योनिमती (स्त्रीवेदी) मिथ्यादृष्टि जीव असंख्याता-संख्यात अवसर्पिणियों और उत्सर्पिणियों के द्वारा अपहृत होते हैं ।।३४।।

हिन्दी टीका — काल की अपेक्षा पञ्चेन्द्रिय स्त्रीवेदी तिर्यच मिथ्यादृष्टि जीव असंख्यातासंख्यात अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी कालों के द्वारा अपहृत होते हैं।

यहाँ मिथ्यादृष्टि शब्द पूर्व के सूत्र से ग्रहण करना है तभी सूत्र का अर्थ समुचित बैठता है। शेष सम्पूर्ण वर्णन पर्याप्त पञ्चेन्द्रिय मिथ्यादृष्टि तिर्यचजीवों का प्रमाण कहने वाले सूत्रानुसार जानना चाहिए।

अब क्षेत्र की अपेक्षा उन्हीं पञ्चेन्द्रिय स्त्रीवेदी मिथ्यादृष्टि जीवों की संख्या का प्रतिपादन करने हेतु सूत्र का अवतार होता है —

**खेत्तेण पंचिन्दियतिरिक्ख जोणिणिमिच्छाइट्ठीहि पदरमवहिरदि
देवअवहारकालादो संखेज्जगुणेण कालेण॥३५॥**

क्षेत्रापेक्षया पंचेन्द्रियतिर्यग्योनिनी मिथ्यादृष्टिभिः देवानामवहारकालात् संख्यातगुणेन कालेन जगत्प्रतरं
अपह्रियते।

सूत्रार्थ —

**क्षेत्र की अपेक्षा स्त्रीवेदी पञ्चेन्द्रिय मिथ्यादृष्टि तिर्यचों के द्वारा देवों के अवहारकाल
से संख्यातगुणे अवहारकाल से जगत्प्रतर अपहृत होता है ॥३५॥**

हिन्दी टीका — इस सूत्र का अभिप्राय यह है कि पञ्चेन्द्रिय योनिमती तिर्यच जीव, जो मिथ्यादृष्टि
गुणस्थानवर्ती हैं, वे काल की अपेक्षा देवों के अवहारकाल से संख्यातगुणे अवहारकाल के द्वारा जगत्प्रतर
रूप में अपहृत होते हैं।

विशेषार्थ — यहाँ धवला टीकाकार के अनुसार इस सूत्र का व्याख्यान इस प्रकार किया गया है।

तीन लाख चौबीस हजार करोड़ संख्या से देवों के अवहारकाल के गुणित करने पर जो लब्ध आवे,
उससे भी संख्यातगुणा पञ्चेन्द्रिय तिर्यच योनिनी मिथ्यादृष्टि संबंधी अवहारकाल है। अथवा, छह सौ योजन के
अंगुल करके वर्ग करने पर इक्कीस सौ कोड़ा कोड़ी, छत्तीस लाख कोड़ी और चौसठ हजार कोड़ी प्रतरांगुल प्रमाण
पंचेन्द्रिय तिर्यच योनिनी मिथ्यादृष्टियों का अवहारकाल है। अथवा, इक्कीस सौ कोड़ाकोड़ी, तेईस कोड़ाकोड़ी,
छत्तीस लाख कोड़ी और चौसठ हजार कोड़ी प्रमाण संख्या से प्रतरांगुल को अपवर्तित करके जो लब्ध आवे,
उसका प्रतरांगुल के उपरिम वर्ग में भाग देने पर पञ्चेन्द्रिय तिर्यच योनिनी मिथ्यादृष्टियों का अवहारकाल होता है।
एक योजन के चार कोस, एक कोस के दो हजार धनुष, एक धनुष के चार हाथ और एक हाथ के चौबीस अंगुल
होते हैं, इसलिये एक योजन के अंगुल करने पर $1 \times 4 \times 2000 \times 4 \times 24 = 96000$ प्रमाण अंगुल आते हैं।
 96000 को 600 से गुणा कर देने पर 600 योजन के $46,08,00000$ प्रमाण अंगुल हो जाते हैं।

$46,08,00000$ संख्यात का वर्ग कर लेने पर $21,23,36,64,0000000000$ प्रमाण प्रतरांगुल होते
हैं। इनका भाग जगत्प्रतर में देने पर पञ्चेन्द्रिय तिर्यच योनिनी मिथ्यादृष्टियों का प्रमाण आता है।

पञ्चेन्द्रिय तिर्यच योनिनियों के अवहारकाल से संबंध रखने वाला यह कितने ही आचार्यों का व्याख्यान
घटित नहीं होता है, क्योंकि तीन सौ योजनों के अंगुलों का वर्गमात्र व्यंतर देवों का अवहारकाल होता है, ऐसा
आगे व्याख्यान देखा जाता है।

शंका — यह पूर्वोक्त पंचेन्द्रि तिर्यच योनिनियों के अवहारकाल का व्याख्यान असत्य है और वाणव्यंतर
देवों का अवहारकाल के प्रमाण का व्याख्यान सत्य है, यह कैसे जाना जाता है?

समाधान — इस विषय में पंचेन्द्रिय तिर्यच योनिनीसंबंधी अवहारकाल का व्याख्यान असत्य ही है
और व्यंतर देवों के अवहारकाल का व्याख्यान सत्य ही है, ऐसा कुछ हमारा एकांत मत नहीं है, किंतु हमारा
इतना ही कहना है कि उक्त दोनों व्याख्यानों में से कोई एक व्याख्यान असत्य होना चाहिए। अथवा, उक्त
दोनों ही व्याख्यान असत्य हैं, यह हमारी प्रतिज्ञा है।

शंका — उक्त दोनों व्याख्यान असत्य हैं, अथवा उक्त दोनों व्याख्यानों में से एक व्याख्यान तो असत्य
है ही, यह कैसे जाना जाता है?

योनिमतीषु सासादनादिगुणस्थानेषु संख्यानिरूपणार्थं सूत्रावतारो भवति —

सासणसम्माइट्टिप्पहुडि जाव संजदासंजदा त्ति ओघं।।३६।।

सासादनसम्यग्दृष्टिप्रभृति यावत् संयतासंयताः इति प्रत्येकं गुणस्थानेषु पंचेन्द्रियतिर्यक् योनिमतीजीवाः तिर्यक्सामान्यप्ररूपणावत् पल्योपमस्यासंख्यातभागाः सन्ति। परन्तु पर्यायार्थिकनयापेक्षया अंतरमस्त्येव।

एवं तिरश्चां स्त्रीभाववेदिनां संख्यानिरूपणपरत्वेन चत्वारि सूत्राणि गतानि।

अधुना अपर्याप्ततिरश्चां संख्यानिरूपणायसूत्रद्वयस्यावतारो भवति —

पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्ता दव्वपमाणेण केवडिया? असंखेज्जा।।३७।।

समाधान — पंचेन्द्रिय तिर्यच योनिनियों से वाणव्यंतर देव असंख्यातगुणे हैं और उनकी देवियाँ वाणव्यन्तर देवों से संख्यातगुणी हैं, इस खुद्रदाबंध के सूत्र से उक्त अभिप्राय जाना जाता है। सूत्र को अप्रमाण करके व्याख्यान प्रमाण है, ऐसा तो कहा नहीं जा सकता है, अन्यथा, अतिप्रसंग दोष आ जायेगा। यदि एक-एक देव में एक-एक ही देवी होती है, यह युक्ति दी जाए, सो भी ठीक नहीं है, क्योंकि, भवनवासी देवों के बहुत सी देवियों का आगम में उपदेश पाया जाता है और देवों से देवियाँ बत्तीस गुणी होती हैं ऐसा व्याख्यान भी देखा जाता है इसलिए वाणव्यन्तर देवों का अवहारकाल तीन सौ योजन के अंगुलों का वर्गमात्र है, यदि ऐसा निर्णय है तो पंचेन्द्रिय तिर्यच योनिनियों के अवहारकाल के उत्पन्न करने के लिए तीन सौ योजन के अंगुलों के वर्ग में जो राशि जिनदेव ने देखी हो, तदनुसार बत्तीस अधिक सौ आदि रूप गुणकार का प्रवेश कराना चाहिए। अथवा पंचेन्द्रिय तिर्यच योनिनियों का अवहारकाल छह सौ योजनों के अंगुलों का वर्गमात्र है, ऐसा निश्चित है तो वाणव्यन्तर देवों का अवहारकाल उत्पन्न करने के लिये तेतीस आदि जो संख्या जिनेन्द्रदेव ने देखी हो, उससे छह सौ योजनों के अंगुलों के वर्ग को अपवर्तित करना चाहिए। अथवा, वाणव्यन्तर और पंचेन्द्रिय तिर्यच योनिनी इन दोनों के अवहारकालों के लिए दोनों स्थानों में भी प्रतरांगुल के उसके योग्य गुणकार दे देना चाहिये।

अब स्त्रीदेवी सासादन गुणस्थानवर्ती तिर्यचों की संख्या निरूपण हेतु सूत्र का अवतार होता है —

सूत्रार्थ —

सासादन सम्यग्दृष्टि गुणस्थान से लेकर संयतासंयत गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थान में पंचेन्द्रिय तिर्यच योनिमती जीव तिर्यच सामान्य प्ररूपणा के समान पल्योपम के असंख्यातवें भाग हैं ।।३६।।

हिन्दी टीका — सासादन सम्यग्दृष्टि गुणस्थान को आदि में लेकर संयतासंयत गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानों में स्त्रीदेवी पंचेन्द्रिय तिर्यच जीव तिर्यच सामान्य प्ररूपणा के समान पल्योपम के असंख्यातवें भागप्रमाण है। परन्तु पर्यायार्थिकनय की अपेक्षा इसमें अंतर है क्योंकि तिर्यच सामान्य प्ररूपणा अथवा पंचेन्द्रिय तिर्यच पर्याप्त सामान्य प्ररूपणा के समान पंचेन्द्रिय तिर्यच योनिमती गुणस्थान प्रतिपन्न जीवों की प्ररूपणा नहीं होती है क्योंकि तीन वेदवाली राशि से एक स्त्रीवेदी जीवराशि की समानता नहीं बन सकती है। इसलिए सामान्य प्ररूपणा से यह प्ररूपणा विशेष होना चाहिए।

इस प्रकार स्त्रीभाव वेदी तिर्यच्चों की संख्या निरूपण करने वाले चार सूत्र पूर्ण हुए।

अब अपर्याप्त तिर्यचों की संख्या निरूपण करने के लिए दो सूत्रों का अवतार होता है —

सूत्रार्थ —

पंचेन्द्रिय तिर्यच अपर्याप्त जीव द्रव्यप्रमाण की अपेक्षा कितने हैं? असंख्यात हैं।।३७।।

असंखेज्जासंखेज्जाहि ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीहिं अवहिरंति कालेण।।३८।।

पंचेन्द्रियतिर्यगपर्याप्ता द्रव्यप्रमाणेन कियन्तः? इति प्रश्ने असंख्याताः इति उत्तरं वर्तते। कालापेक्षया इमे अपर्याप्ताः असंख्यातासंख्याताभ्यां अवसर्पिण्युत्सर्पिणीभ्यां अपहृता भवन्ति।

अत्र अपर्याप्तनामकर्मोदयेन सहिता अपर्याप्ताः पंचेन्द्रियतिर्यञ्चः ज्ञातव्याः।

क्षेत्रापेक्षया तेषामेव संख्याप्रतिपादनार्थं सूत्रमवतरति —

खेत्तेण पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्तेहि पदरमवहिरदि देवअवहारकालादो असंखेज्ज-गुणहीणेण कालेण।।३९।।

क्षेत्रापेक्षया पंचेन्द्रियतिर्यगपर्याप्तैः देवावहारकालात् असंख्यातगुणहीनेन कालेन जगत्प्रतरमपह्रियते। अस्यालौकिकगणितस्य किंचिदवबोधनार्थं भागाभागं कथयिष्यामि।

“पूर्वकथिततिर्यगराशिं अनंतखण्डे कृते तत्र बहुखण्डा एकेन्द्रियविकलेन्द्रियाः सन्ति।

शेषस्य संख्यातखण्डे कृते तत्र बहुखण्डाः पंचेन्द्रियतिर्यगलब्धपर्याप्ता भवन्ति। शेषस्यासंख्यातखण्डे कृते तत्र बहुखण्डाः पंचेन्द्रियतिर्यक्पर्याप्तमिथ्यादृष्टयो भवन्ति। शेषस्यासंख्यातखण्डे कृते तत्र बहुखण्डाः पंचेन्द्रियतिर्यग्योनिमतीमिथ्यादृष्टयो भवन्ति। शेषस्यासंख्यातखंडे कृते तत्र बहुखण्डाः पंचेन्द्रियतिर्यक्त्रि-वेदासंयतसम्यग्दृष्टयो भवन्ति। शेषस्यसंख्यातखण्डे कृते तत्र बहुखण्डाः पंचेन्द्रियतिर्यक्त्रिवेदसम्यङ्मिथ्यादृष्टयो

काल की अपेक्षा पंचेन्द्रिय तिर्यच अपर्याप्त जीव असंख्यातासंख्यात अवसर्पिणी और उत्सर्पिणियों के द्वारा अपहृत होते हैं ।।३८।।

हिन्दी टीका — पंचेन्द्रिय तिर्यच अपर्याप्त जीव द्रव्यप्रमाण से कितने हैं ? ऐसा प्रश्न होने पर वे असंख्यात हैं, ऐसा उत्तर प्राप्त होता है। काल की अपेक्षा ये अपर्याप्त जीव असंख्यातासंख्यात अवसर्पिणी-उत्सर्पिणी कालों से अपहृत होते हैं।

यहाँ अपर्याप्त नामकर्म के उदय से सहित अपर्याप्त पंचेन्द्रिय तिर्यच जीव जानना चाहिए।

क्षेत्र की अपेक्षा उन्हीं अपर्याप्त तिर्यचों की संख्या प्रतिपादन करने के लिए सूत्र का अवतार होता है —

सूत्रार्थ —

क्षेत्र की अपेक्षा पंचेन्द्रिय तिर्यच अपर्याप्तक जीवों के द्वारा देवों के अवहारकाल से असंख्यातगुणे हीनकाल से जगत्प्रतर अपहृत होता है ।।३९।।

हिन्दी टीका — क्षेत्र की अपेक्षा पंचेन्द्रिय तिर्यच अपर्याप्तकों के द्वारा देवों के अवहारकाल से असंख्यातगुणे हीन काल से जगत्प्रतर अपहृत होता है।

यहाँ अलौकिक गणित को किंचित् रूप से जानने के लिए भागाभाग को बताएंगे —

“पूर्व कथित तिर्यच राशि के अनन्त खण्ड करने पर उनमें से बहुखंडप्रमाण एकेन्द्रिय और विकलेन्द्रिय जीव हैं। शेष के संख्यात खण्ड करने पर उनमें से बहुभाग पंचेन्द्रिय तिर्यच लब्धपर्याप्तक जीव हैं। शेष के असंख्यात खण्ड करने पर उनमें से बहुभाग पंचेन्द्रिय तिर्यच पर्याप्त मिथ्यादृष्टि जीव हैं। शेष के असंख्यात खंड करने पर उनमें से बहुभाग पंचेन्द्रिय योनिमती तिर्यच मिथ्यादृष्टि जीव हैं। शेष के असंख्यात खंड करने पर उनमें से बहुभाग पंचेन्द्रिय तिर्यच तीन वेदवाले असंयतसम्यग्दृष्टियों

भवन्ति। शेषस्यासंख्यातखण्डे कृते तत्र बहुखण्डा पंचेन्द्रियतिर्यक्त्रिवेदसासादनसम्यग्दृष्टयो भवन्ति। शेषस्यैकखण्डाः संयतासंयताः भवन्ति^१।”

तिरश्चां पंचभेदाः कथ्यन्ते —

सामान्या पंचिंदी, पज्जन्ता जोणिणी अपज्जन्ता।

तिरिया णरा तहा वि य, पंचिंदियभंगदो हीणा^२।।

सामान्यतिर्यञ्चः पंचेन्द्रियतिर्यञ्चः पर्याप्ततिर्यञ्चः योनिमतीतिर्यञ्चः अपर्याप्ततिर्यञ्चश्च। एषु सामान्यतिर्यक्षु एकेन्द्रिद्विन्द्रियत्रीन्द्रियचतुरिन्द्रियपञ्चेन्द्रियपर्यन्ता सर्वे भवन्ति।

श्रीमद्गौतमस्वामिभिर्मुनीनां दैवसिकप्रतिक्रमणे एषां संख्या निरूपिता।

उक्तं च — तत्थ पढमे महव्वदे पाणादिवादादो वेरमणं, से पुढविकाइया जीवा असंखेज्जासंखेज्जा, आउकाइया जीवा असंखेज्जासंखेज्जा, तेउकाइया जीवा असंखेज्जासंखेज्जा, वाउकाइया जीवा असंखेज्जासंखेज्जा, वणप्फदिकाइया जीवा अणंताणंता, हरिया वीआ इत्यादयः।

वेइंदिया जीवा असंखेज्जासंखेज्जा कुक्खिकिमि इत्यादयः।

तेइंदिया जीवा असंखेज्जासंखेज्जा कुंथुहेहिय.....इत्यादयः।

का द्रव्य है। शेष के संख्यात खंड करने पर उनमें से बहुभाग पंचेन्द्रिय तिर्यच तीन वेद वाले सम्यग्मिथ्यादृष्टियों का द्रव्य है। शेष के असंख्यात खंड करने पर उनमें से बहुभाग पंचेन्द्रिय तिर्यच तीन वेद वाले सासादनसम्यग्दृष्टियों का द्रव्य है। शेष के एक खण्डप्रमाण पंचेन्द्रिय तिर्यच तीन वेद वाले संयतासंयत हैं।

तिर्यच के पाँच भेद कहते हैं —

गाथार्थ — सामान्य तिर्यच, पंचेन्द्रिय तिर्यच, पर्याप्तक तिर्यच, योनिमती तिर्यच और अपर्याप्त तिर्यच ये तिर्यचों के पाँच भेद हैं। मनुष्यों में इनमें से पंचेन्द्रिय वाला भेद नहीं होता है क्योंकि मनुष्यों में पंचेन्द्रिय मनुष्य ही होते हैं, एकेन्द्रिय आदि नहीं होते हैं।

सामान्य तिर्यच, पंचेन्द्रिय तिर्यच, पर्याप्त तिर्यच, योनिमती तिर्यच और अपर्याप्त तिर्यच ये तिर्यचों के पाँच भेद हैं। इन पाँचों भेदों में जो सामान्य तिर्यच हैं उनमें एकेन्द्रिय, दोइन्द्रिय, तीनइन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पंचेन्द्रियपर्यन्त सभी प्रकार के जीव होते हैं।

श्रीमान् गौतम स्वामी ने मुनियों के दैवसिक प्रतिक्रमण में इन जीवों की संख्या बताई है। जैसाकि प्रतिक्रमण सूत्रों में कहा है —

उस प्राणातिपात विरमण-अहिंसा महाव्रत नामक प्रथम महाव्रत में हिंसा से विरत होना है, उसमें पृथिवी कायिक के जीव असंख्यातासंख्यात, जलकायिक जीव असंख्यातासंख्यात, तेज — अग्निकायिक जीव असंख्यातासंख्यात, वायुकायिक जीव असंख्यातासंख्यात और वनस्पतिकायिक जीव अनंतानंत हैं.... इन सभी की हिंसा से विरक्ति ही प्रथम महाव्रत है।

इसी प्रकार मुनियों के अहिंसा महाव्रत पालन में पाँचों इन्द्रिय वाले प्राणियों की संख्या बताई है। अर्थात् — दो इन्द्रिय जीव कुक्षि-कृमि आदि असंख्यातासंख्यात हैं।

कुंथु-देहिक आदि तीन इन्द्रिय जीव असंख्यातासंख्यात हैं।

चउरिंदिया जीवा असंखेज्जासंखेज्जा दंसमसय.....इत्यादयः।

पंचिंदिया जीवा असंखेज्जासंखेज्जा अंडाइया पोदाइया.....इत्यादयः।

तात्पर्यमेतत्-पृथिवीजलाग्निवायुचतुष्का एकेन्द्रिया असंख्यातासंख्याताः द्वीन्द्रियत्रीन्द्रिय-
चतुरिन्द्रियपंचेन्द्रिया जीवा असंख्यातासंख्याताः सन्ति, केवलं वनस्पतिकायिका एव अनंतानंताः सन्ति।
एषु असंख्यातासंख्यातेषु असंख्यातविकल्पत्वात् न च सर्वे समानाः इति ज्ञातव्यं भवद्भिः।
एवं अपर्याप्ततिर्यङ्निरूपणपरत्वेन त्रीणि सूत्राणि गतानि।

इत्थं स्थलचतुष्टयेन षोडशभिः सूत्रैः तिर्यग्गतिप्ररूपको नाम
द्वितीयोऽन्तराधिकारः समाप्तः।

डांस-मच्छर आदि चार इन्द्रिय जीव असंख्यातासंख्यात हैं।

अंडे से जन्म लेने वाले तथा पोत, जरायु आदि प्रकार के गर्भ से जन्म लेने वाले पंचेन्द्रिय जीव भी असंख्यातासंख्यात हैं।

तात्पर्य यह है कि पृथिवी, जल, अग्नि, वायु इन चार स्थावरकायिक एकेन्द्रिय जीव असंख्यातासंख्यात हैं, दो इन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय तक सभी त्रसकायिक जीव असंख्यातासंख्यात हैं तथा केवल वनस्पति कायिक जीव ही अनन्तानन्त होते हैं।

इन असंख्यातासंख्यात जीवों में भी असंख्यात विकल्प हैं, न कि सभी समान होते हैं ऐसा जानना चाहिए।
इस प्रकार अपर्याप्त तिर्यच जीवों के निरूपण की मुख्यता से तीन सूत्र पूर्ण हुए।

इस प्रकार चार स्थलों में सोलह सूत्रों के द्वारा तिर्यचगति
का प्ररूपक द्वितीय अन्तराधिकार
समाप्त हुआ।



मनुष्यगतिनामान्तराधिकारः

अथ स्थलचतुष्टयेन त्रयोदशसूत्रपर्यंतं मनुष्यगतिनाम तृतीयोऽन्तराधिकारः प्रारभ्यते। तेषु प्रथमस्थले सामान्यमनुष्याणां गुणस्थानव्यवस्थासु द्रव्यकालक्षेत्रैः प्रमाणप्रतिपादनत्वेन “मणुसगईए” इत्यादि सूत्रादारभ्य सूत्रपंचकमस्ति। तदनु द्वितीयस्थले पर्याप्तमनुष्येषु गुणस्थानं संख्यां च व्याख्यातुं “मणुसपज्जत्तेसु” इत्यादिसूत्रमादिं कृत्वा त्रीणि सूत्राणि। तदनंतरं तृतीयस्थले भावस्त्रीवेदमनुष्येषु गुणस्थानव्यवस्थायां संख्यानिरूपणपरत्वेन “मणुसिणीसु” इत्यादि सूत्रादारभ्य सूत्रद्वयं। ततः परं चतुर्थस्थले लब्ध्यपर्याप्तमनुष्याणां संख्यासूचकत्वेन “मणुस अपज्जत्ता” इत्यादिना त्रीणि सूत्राणि वक्ष्यन्ते इति समुदायपातनिका व्याख्यानमास्ति।

अधुना मनुष्यगतौ सामान्यमनुष्याणां संख्याप्रतिपादनार्थं सूत्रमवतरति—

मणुसगईए मणुस्सेसु मिच्छाइट्ठी दव्वपमाणेण केवडिया? असंखेज्जा ॥४०॥

मनुष्यगतौ मनुष्येषु पर्याप्तापर्याप्तेषु मिथ्यादृष्टयो जीवा द्रव्यप्रमाणेन कियन्तः? इति प्रश्ने सति असंख्याताः इति उच्यन्ते।

पुनः कालापेक्षया मनुष्याणां प्रमाणनिरूपणाय सूत्रावतारः क्रियते—

असंखेज्जासंखेज्जाहि ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीहि अवहिरंति कालेण ॥४१॥

अब मनुष्यगति नाम का तृतीय अन्तराधिकार प्रारम्भ होता है।

अब चार स्थलों में तेरह सूत्रों के द्वारा मनुष्यगति नाम का तृतीय अन्तराधिकार प्रारम्भ हो रहा है। उसके अन्तर्गत प्रथम स्थल में सामान्य मनुष्यों की गुणस्थान व्यवस्था में द्रव्य-काल-क्षेत्र के द्वारा प्रमाण को बतलाने हेतु “मणुसगईए” इत्यादि सूत्र से आरम्भ करके पाँच सूत्र हैं। उसके बाद द्वितीय स्थल में पर्याप्त मनुष्यों में गुणस्थान और उनकी संख्या का व्याख्यान करने के लिए “मणुसपज्जत्तेसु” इत्यादि सूत्र से प्रारम्भ करके तीन सूत्र हैं। तदनंतर तृतीय स्थल में भावस्त्रीवेदी मनुष्यों में गुणस्थान व्यवस्था में संख्या का निरूपण करने हेतु “मणुसिणीसु” इत्यादि सूत्र से आरम्भ करके दो सूत्र हैं। उसके आगे चतुर्थस्थल में लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्यों की संख्यासूचना की मुख्यता से “मणुस अपज्जत्ता” इत्यादि तीन सूत्र कहेंगे। इस प्रकार सूत्रों की समुदाय पातनिका का व्याख्यान हुआ है।

यहाँ सर्वप्रथम मनुष्यगति में सामान्य मनुष्यों की संख्या का प्रतिपादन करने हेतु सूत्र का अवतार होता है—

सूत्रार्थ—

मनुष्यगति प्रतिपन्न मनुष्यों में मिथ्यादृष्टि जीव द्रव्यप्रमाण की अपेक्षा कितने हैं ? असंख्यात हैं ॥४०॥

हिन्दी टीका—मनुष्यगति में पर्याप्त-अपर्याप्त मिथ्यादृष्टि मनुष्य द्रव्यप्रमाण से कितने हैं ? ऐसा प्रश्न होने पर उनकी संख्या असंख्यात है, ऐसा उत्तर मिलता है।

पुनः काल की अपेक्षा मनुष्यों की संख्या का निरूपण करने हेतु सूत्र का अवतार किया जाता है—

सूत्रार्थ—

काल की अपेक्षा मनुष्य मिथ्यादृष्टि जीव असंख्यातासंख्यात अवसर्पिणियों और उत्सर्पिणियों के द्वारा अपहृत होते हैं ॥४१॥

कालापेक्षया मिथ्यादृष्टयो मनुष्याः असंख्यातासंख्याताभ्यां अवसर्पिण्युत्सर्पिणीभ्यां अपहृता भवन्ति।
क्षेत्रापेक्षया तेषां मनुष्याणां प्रमाणनिरूपणार्थं सूत्रमवतरति —

**खेत्तेण सेढीए असंखेज्जदिभागो। तिस्से सेढीए आयामो असंखेज्जाओ
जोयण-कोडीओ। मणुसमिच्छाइट्ठीहि रूवा-पक्खित्तएहि सेढी अवहिरदि
अंगुलवग्गमूलं तदियवग्गमूलगुणिदेण॥४२॥**

क्षेत्रापेक्षया जगच्छ्रेण्याः असंख्यातभागप्रमाणा मनुष्यमिथ्यादृष्टिः जीवराशिः। तस्याः श्रेण्याः आयामोऽसंख्यातकोटियोजनप्रमाणं। सूच्यंगुलस्य प्रथमवर्गमूलं सूच्यंगुलस्य तृतीयवर्गमूलेन गुणिते सति यल्लब्धं भवेत् तत् शलाकारूपेण स्थापयित्वा रूपाधिकेन-सासादनादित्रयोदशगुणस्थानवर्तिजीवराशेरधिक-मनुष्यमिथ्यादृष्टिराशिना जगच्छ्रेणिः अपहृता भवति।

एषु त्रिषु सूत्रेषु पर्याप्तमनुष्याणां लब्ध्यपर्याप्तमनुष्याणां योनिमतीमनुष्याणां च भेदो नास्ति, त्रयोऽपि भेदाः अंतर्भूता सन्तीति ज्ञातव्यं।

हिन्दी टीका — मिथ्यादृष्टि मनुष्य काल की अपेक्षा असंख्यातासंख्यात अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी कालों से अपहृत होते हैं।

यहाँ सारांश यह है कि द्रव्यप्रमाण की अपेक्षा कालप्रमाण की महत्ता पाई जाने के कारण अथवा कालप्रमाण असंख्यातासंख्यात अवसर्पिणी और उत्सर्पिणीरूप विशेष संख्या का निरूपण करने वाला होने से कालप्रमाण की सूक्ष्मता ही समझनी चाहिए, शेष प्ररूपणा का कथन पहले के समान करना चाहिए।

क्षेत्र की अपेक्षा उन्हीं मनुष्यों की संख्या का निरूपण करने के लिए सूत्र का अवतार होता है—

सूत्रार्थ —

क्षेत्र की अपेक्षा जगत्श्रेणी के असंख्यातवें भागप्रमाण मनुष्य मिथ्यादृष्टि जीवराशि हैं। उस श्रेणी का आयाम (अर्थात् जगत्श्रेणी के असंख्यातवें भागरूप श्रेणी का आयाम) असंख्यात करोड़ योजन है। सूच्यंगुल के प्रथम वर्गमूल को सूच्यंगुल के तृतीय वर्गमूल से गुणित करके जो लब्ध आवे, उसे शलाकारूप से स्थापित करके रूपाधिक (अर्थात् एकाधिक तेरह गुणस्थानवर्ती राशि से अधिक) मनुष्य मिथ्यादृष्टि राशि के द्वारा जगत्श्रेणी अपहृत होती है ॥४२॥

हिन्दी टीका — क्षेत्र की अपेक्षा जगत् श्रेणी के असंख्यातवें भागप्रमाण मनुष्यों में मिथ्यादृष्टि जीवों की राशि है। उस श्रेणी का आयाम असंख्यात करोड़ योजनप्रमाण है। सूच्यंगुल के प्रथम वर्गमूल को सूच्यंगुल के तृतीय वर्गमूल से गुणित करने पर जो लब्ध आवे, उसको शलाकारूप से स्थापित करके रूपाधिक के द्वारा — एक अंक से अधिक सासादन आदि तेरह गुणस्थानवर्ती जीवराशि से अधिक मनुष्य मिथ्यादृष्टि राशि के द्वारा जगत्श्रेणी अपहृत होती है।

इन तीनों सूत्रों में पर्याप्त मनुष्य, लब्ध्यपर्याप्त मनुष्य और योनिमती मनुष्य(भावस्त्रीवेदी) इन तीनों ही प्रकार के मनुष्यों का कथन नहीं किया है सो इनको पूर्व प्रकरण के अनुसार इनमें अन्तर्भूत समझना चाहिए।

विशेषार्थ — “रूपाधिक मनुष्य मिथ्यादृष्टि जीवराशि के द्वारा जगत्श्रेणी अपहृत होती है ” इस सूत्र में

संप्रति सासादनादिसंयतासंयतपर्यन्तमनुष्याणां प्रमाणनिरूपणाय सूत्रमवतरति —

**सासणसम्माइट्ठिप्पहुडि जाव संजदासंजदा दव्वपमाणेण केवडिया?
संखेज्जा।।४३।।**

अत्र सूत्रे संख्याता इति सामान्येन उक्ते सति द्वापञ्चाशत्कोटिमात्राः सासादनसम्यग्दृष्टयो भवन्ति। तेभ्यो द्विगुणाः सम्यग्मिथ्यादृष्टयो भवन्ति। असंयतसम्यग्दृष्टयः सप्तशतकोटिप्रमाणाः सन्ति। संयतासंयतानां प्रमाणं त्रयोदशकोट्यः सन्ति^१।

‘रूवा’ यह बहुवचन निर्देश पाया जाता है, जिससे जाना जाता है कि यहाँ पर उक्त भागहार से जगत्श्रेणी के भाजित करने पर जो लब्ध आवे, उसमें से एक अधिक तेरह गुणस्थानवर्ती जीवराशि अपनयनराशि है।

“रूव पक्खित्तएहिं” इस पद में व्याकरण के नियमानुसार जिसमें पूर्वनिपात हो गया है ऐसा बहुब्रीहि समास होने के कारण “रूप” पद के बहुवचन से रहित होने के कारण भी उससे भी बहुत्व की उपलब्धि हो जाती है। “रूवं पक्खित्तएहिं” इस प्रकार एकवचन भी कहीं देखा जाता है तो भी कोई दोष नहीं आता है क्योंकि बहुत जीवों का जाति द्वारा एकत्व देखने में आता है।

यहाँ पर जाति शब्द से चेतना आदि समान परिणामों का ग्रहण समझना चाहिए, इसलिए उक्त भागहार का जगत्श्रेणी में भाग देने पर जो लब्ध आवे, उसमें से एक अधिक तेरह गुणस्थानवर्ती जीवराशि के कम कर देने पर मनुष्य मिथ्यादृष्टि जीवराशि का प्रमाण होता है, यह सिद्ध हो गया।

सूच्यंगुल के प्रथम और तृतीय वर्गमूल का परस्पर गुणा करके जो लब्ध आवे, उसका जगत्श्रेणी में भाग देने पर एक अधिक मनुष्यराशि का प्रमाण आता है अतएव लब्ध में एक कम कर देने पर सामान्य मनुष्यराशि का प्रमाण होता है परन्तु प्रकृत में मिथ्यादृष्टि मनुष्यराशि लाना है, अतएव उक्त सामान्य मनुष्यराशि में से सासादन आदि तेरह गुणस्थानवर्ती मनुष्यराशि के प्रमाण को और कम कर देना चाहिए, तब मिथ्यादृष्टि मनुष्यराशि का प्रमाण प्राप्त होगा।

जिस प्रकार दूसरी पृथिवी के मिथ्यादृष्टियों के खंडित आदि का कथन कर आए हैं, उसी प्रकार इस मनुष्य मिथ्यादृष्टि जीवराशि के खंडित आदि का कथन करना चाहिए। इतना विशेष है कि यहाँ पर सूच्यंगुल के प्रथम वर्गमूल से तृतीय वर्गमूल को गुणित करने पर अवहारकाल का प्रमाण होता है तथा मनुष्य मिथ्यादृष्टि राशि का प्रमाण लाने के लिए सर्वत्र एक अधिक तेरह गुणस्थानवर्ती जीवराशि का प्रमाण घटा देना चाहिए।

अब सासादन गुणस्थान से संयतासंयत गुणस्थानपर्यन्त मनुष्यों का प्रमाण बतलाने हेतु सूत्र का अवतार होता है —

सूत्रार्थ —

सासादन सम्यग्दृष्टि गुणस्थान से लेकर संयतासंयत गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थान में मनुष्य द्रव्यप्रमाण की अपेक्षा कितने हैं ? संख्यात हैं ।।४३।।

हिन्दी टीका — यहाँ सूत्र में ‘संख्याता’ यह सामान्य से कहने पर “बावन करोड़ मात्र सासादन सम्यग्दृष्टि जीव होते हैं” यह अर्थ होता है। इससे दो गुणे अर्थात् एक सौ चार करोड़ सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव होते हैं। असंयतसम्यग्दृष्टि जीव सात सौ करोड़ प्रमाण हैं तथा संयतासंयत मनुष्यों का प्रमाण तेरह करोड़ है।

केऽपि आचार्याः सासादनसम्यग्दृष्टीनां प्रमाणं पञ्चाशत्कोटिं कथयन्ति तेभ्यः द्विगुणं सम्यग्मिथ्या-
दृष्टीनामिति। कथमेतत् आचार्यपरंपरागततत्वादिति।

उक्तं च—

तेरह कोडी देसे बावण्णं सासणे मुणेदव्वा।
मिस्से वि य तददुगुणा असंजदे सत्तकोडिसया।।

अहवा—

तेरह कोडी देसे पण्णासं सासणे मुणेयव्वा।
मिस्से वि य तददुगुणा असंजदे सत्तकोडिसया।।^१

अधुना प्रमत्ताद्ययोगिकेवल्लिगुणस्थानपर्यंतमनुष्याणां प्रमाणनिरूपणाय सूत्रमवतरति—

प्रमत्तसंजदप्पहुडि जाव अजोगिकेवल्लि त्ति ओघं।।४४।।

प्रमत्तसंयतादि-अयोगिकेवल्लिपर्यंतानां संख्या पूर्वोक्तगुणस्थानवद् ज्ञातव्या।

कुतः? मनुष्यगतिव्यतिरिक्तशेषगतौ प्रमत्तादिगुणस्थानानामसंभवात्।

एवं सामान्यमनुष्याणां संख्याप्रतिपादनत्वेन प्रथमस्थले पंच सूत्राणि गतानि।

कोई-कोई आचार्य सासादन सम्यग्दृष्टि मनुष्यों का प्रमाण पचास करोड़ मानते हैं, उससे दो गुनी संख्या— सौ करोड़ सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवों की कहते हैं। ऐसा क्यों है ?

क्योंकि, आचार्य परम्परा से ऐसा ही कथन प्राप्त हो रहा है।

कहा भी है—

गाथार्थ—संयतासंयत में तेरह करोड़, सासादन में पचास करोड़, मिश्र में सासादन के प्रमाण से दूने और असंयत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान में सात सौ करोड़ मनुष्य जानना चाहिए।

अथवा दूसरी मान्यतानुसार देखें —

गाथार्थ—संयतासंयत में तेरह करोड़, सासादन में पचास करोड़, मिश्र में सासादन के प्रमाण से दूने और असंयत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान में सात सौ करोड़ मनुष्य जानना चाहिए।

अब प्रमत्तसंयत गुणस्थान से लेकर अयोगिकेवली गुणस्थानपर्यन्त मनुष्यों का प्रमाण निरूपण करने हेतु सूत्र प्रस्तुत हो रहा है—

सूत्रार्थ—

प्रमत्तसंयत गुणस्थान से लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थान में मनुष्य सामान्यप्ररूपणा के समान संख्यात हैं ।।४४।।

हिन्दी टीका—छठे गुणस्थान से लेकर चौदहवें गुणस्थान तक के मनुष्यों की संख्या पूर्वोक्त गुणस्थानों के समान जानना चाहिए। क्यों ? क्योंकि मनुष्यगति को छोड़कर शेष तीन गतियों में प्रमत्तसंयत आदि गुणस्थानों का होना असंभव है? अतः मनुष्यों में प्रमत्तसंयत आदि का प्रमाणप्ररूपण सामान्य प्ररूपणा के समान ही है।

इस प्रकार सामान्य मनुष्यों की संख्या के प्रतिपादन की मुख्यता से प्रथम स्थल में पाँच सूत्र पूर्ण हुए।

संप्रति पर्याप्तमनुष्याणां मिथ्यादृष्टिमनुष्यसंख्यानिरूपणाय सूत्रावतारो भवति—

**मणुसपज्जत्तेसु मिच्छाइट्ठी दव्वपमाणेण केवडिया? कोडाकोडाकोडीए
उवरि कोडाकोडाकोडाकोडीए हेट्टदो छण्हं वग्गाणमुवरि सत्तण्हं वग्गाणं
हेट्टदो ॥४५॥**

मनुष्यपर्याप्तेषु मिथ्यादृष्ट्यो द्रव्यप्रमाणेन कियन्त? इति प्रश्ने सति कोटिकोटिकोटीनामुपरि कोटिकोटिकोटिकोटीनामधः षण्णां वर्गाणामुपरि सप्तानां वर्गाणामधः संख्यातप्रमाणाः पर्याप्तमनुष्याः सन्तीति।

संप्रति सासादनादिदेशसंयतमनुष्याणां संख्यानिरूपणाय सूत्रमवतरति—

**सासणसम्माइट्ठिप्पहुडि जाव संजदासंजदा दव्वपमाणेण केवडिया?
संखेज्जा ॥४६॥**

सासादनगुणस्थानात् आरभ्य संयतासंयताः द्रव्यप्रमाणेन कियन्तः? संख्याता इति ज्ञातव्याः। अत्र संगृहीतत्रिवेदत्वेन पर्याप्तभावेन च सामान्यमनुष्यपर्याप्तमनुष्यराशयोः विशेषाभावात्।

अब पर्याप्त मनुष्यों में मिथ्यादृष्टि मनुष्यों की संख्या निरूपण हेतु सूत्र का अवतार होता है—

सूत्रार्थ—

मनुष्य पर्याप्तकों में मिथ्यादृष्टि मनुष्य द्रव्यप्रमाण की अपेक्षा कितने हैं? कोड़ा कोड़ाकोड़ी के ऊपर और कोड़ा कोड़ाकोड़ा कोड़ी के नीचे छह वर्गों के ऊपर और सात वर्गों के नीचे अर्थात् छठवें और सातवें वर्ग के बीच की संख्यातप्रमाण मनुष्य पर्याप्त होते हैं ॥४५॥

हिन्दी टीका— पर्याप्त मनुष्यों में द्रव्यप्रमाण की अपेक्षा मिथ्यादृष्टि मनुष्यों की संख्या कितनी है? ऐसा प्रश्न होने पर उसका उत्तर देते हुए आचार्यदेव ने कहा है कि कोड़ा कोड़ाकोड़ी के ऊपर और कोड़ा कोड़ाकोड़ा कोड़ी के नीचे छह वर्गों के ऊपर और सात वर्गों के नीचे अर्थात् बीच की संख्यारूप पर्याप्त मनुष्यों की संख्या होती है।

अब सासादन गुणस्थान से लेकर देशसंयत गुणस्थान तक के मनुष्यों की संख्या निरूपण हेतु सूत्र अवतरित किया जा रहा है—

सूत्रार्थ—

सासादन सम्यग्दृष्टि गुणस्थान से लेकर संयतासंयत गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थान में पर्याप्त मनुष्य द्रव्यप्रमाण की अपेक्षा कितने हैं ? संख्यात हैं ॥४६॥

हिन्दी टीका— सासादन सम्यग्दृष्टि नामक द्वितीय गुणस्थान से प्रारंभ करके संयतासंयत नामक पंचम गुणस्थानपर्यन्त मनुष्यों की संख्या द्रव्यप्रमाण से कितनी है ? ऐसा प्रश्न होने पर आचार्यश्रीभूतबली स्वामी ने उत्तर दिया है कि उनकी संख्या संख्यातप्रमाण है ऐसा जानना चाहिए। यहाँ संगृहीत तीनों वेदों की अपेक्षा और पर्याप्तपने की अपेक्षा उक्त दोनों राशियों में कोई विशेषता नहीं है।

पुनः पर्याप्तमनुष्येषु प्रमत्तादिअयोगिकेवलपर्याप्तमनुष्याणां संख्याप्रतिपादनाय सूत्रमवतरति—

पमत्तसंजदप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि त्ति ओघं॥४७॥

एतस्य सूत्रस्यार्थः पूर्वं प्ररूपितः इति नात्रोच्यते।

एवं द्वितीयस्थले पर्याप्तमनुष्यसंख्याप्ररूपकानि त्रीणि सूत्राणि गतानि।

अधुना भाववेदिमानुषीषु मिथ्यादृष्टिसंख्याप्रतिपादनाय सूत्रमवतरति—

मणुसिणीसु मिच्छाइट्टी दव्वपमाणेण केवडिया? कोडाकोडाकोडीए उवरि कोडाकोडा-कोडाकोडीए हेट्टदो छण्हं वग्गाणमुवरि सत्तण्हं वग्गाणं हेट्टदो॥४८॥

अस्य सूत्रस्य व्याख्यानं मनुष्यपर्याप्तसूत्रव्याख्यानेन तुल्यं। अंतरं तु एतत् यत्—पंचमवर्गस्य त्रिभागे पंचमवर्गे चैव प्रक्षिप्ते मानुषीणामवहारकालो भवति। तेन सप्तमवर्गस्य भागे कृते मानुषीणां द्रव्यं आगच्छति। लब्धसंख्याभ्यः स्वकत्रयोदशगुणस्थानप्रमाणे अपनीते मानुषीमिथ्यादृष्टिद्रव्यं भवति।

पुनः मानुषीषु सासादनादारभ्य अयोगिकेवलपर्यंतानां संख्यानिरूपणाय सूत्रमवतरति—

पुनः पर्याप्त मनुष्यों में प्रमत्तसंयत से लेकर अयोगिकेवली गुणस्थानपर्यन्त पर्याप्त मनुष्यों की संख्या प्रतिपादन के लिए सूत्र का अवतार होता है।—

सूत्रार्थ—

प्रमत्तसंयत गुणस्थान से लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थान में पर्याप्त मनुष्य सामान्य प्ररूपणा के समान संख्यात हैं ॥४७॥

हिन्दी टीका— इस सूत्र का अर्थ चूँकि पहले कह आए हैं, इसलिए यहाँ नहीं कहा जाता है।

इस प्रकार द्वितीय स्थल में पर्याप्त मनुष्यों की संख्या बतलाने वाले तीन सूत्र पूर्ण हुए।

अब भाववेदी मनुष्यिनियों में मिथ्यादृष्टियों की संख्या प्रतिपादन हेतु सूत्र कहा जा रहा है—

सूत्रार्थ—

मनुष्यिनियों में मिथ्यादृष्टि द्रव्यप्रमाण की अपेक्षा कितने हैं ? कोड़ा कोड़ाकोड़ी ऊपर और कोड़ा कोड़ाकोड़ा कोड़ी के नीचे छठे वर्ग के ऊपर और सातवें वर्ग के नीचे मध्य की संख्याप्रमाण हैं ॥४८॥

हिन्दी टीका— इस सूत्र का व्याख्यान मनुष्य पर्याप्त की संख्या प्रतिपादन करने वाले सूत्र के व्याख्यान के समान ही है। अन्तर केवल इतना है कि पंचम वर्ग के त्रिभाग को पाँचवें वर्ग में प्रक्षिप्त कर देने पर मनुष्यिनियों का प्रमाण लाने के लिए अवहारकाल होता है। उस अवहारकाल से सातवें वर्ग के भाजित करने पर मनुष्यिनियों के द्रव्य का प्रमाण आता है। इस प्रकार जो मनुष्यिनियों की संख्या प्राप्त हो, उसमें से तेरह गुणस्थान के प्रमाण के घटा देने पर मिथ्यादृष्टि मनुष्यिनियों का प्रमाण होता है।

पुनः मनुष्यिनियों में सासादन से प्रारम्भ करके अयोगिकेवलीपर्यन्त संख्या निरूपण के लिए सूत्र अवतरित होता है—

मनुसिणीसु सासणसम्माइट्ठिप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि त्ति दव्वपमाणेण केवडिया? संखेज्जा॥४९॥

मनुष्याणां ओघे कथितसासादनादीनां संख्यातभागः सासादनादीनां गुणस्थानप्रतिपन्नानां प्रमाणं मानुषीषु भवति।

कुतः?

अप्रशस्तवेदोदयेन सह प्रचुरं सम्यग्दर्शनोपलम्भाभावात्।

एतदपि कथं ज्ञायते?

“सव्वत्थोवा णवुंसयवेदअसंजदसम्माइट्ठिणो। इत्थिवेद असंजदसम्माइट्ठिणो असंखेज्जगुणा। पुरिसवेद-असंजदसम्माइट्ठिणो असंखेज्जगुणा।” इदि अप्पाबहुअसुत्तादो कारणस्स थोवत्तं जाणिज्जदे। तदो सासणसम्माइट्ठि आदीणं पि थोवत्तं सिद्धं हवदि। णवरि एत्तियं तेसिं पमाणमिदि ण णव्वदे, संपहि उवएसाभावादो^१।”

एवं तृतीयस्थले भाववेदिमानुषीसंख्याप्रतिपादनाय द्वे सूत्रे गते।

अधुना अपर्याप्तमनुष्यसंख्याप्रतिपादनार्थं सूत्रमवतरति —

मणुसअपज्जत्ता दव्वपमाणेण केवडिया? असंखेज्जा॥५०॥

अत्र निवृत्त्यपर्याप्तान् मुक्त्वा लब्ध्यपर्याप्तानां ग्रहणं कर्तव्यं।

सूत्रार्थ —

मनुष्यिनियों में सासादन सम्यग्दृष्टि गुणस्थान से लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थान में जीव द्रव्यप्रमाण की अपेक्षा कितने हैं ? संख्यात हैं ॥४९॥

हिन्दी टीका — मनुष्यों के गुणस्थान में कथित सासादन आदि गुणस्थानवर्तियों का संख्यातवां भाग सासादन आदि गुणस्थानप्रतिपन्न जीवों का प्रमाण मनुष्यिनियों में होता है।

प्रश्न — ऐसा कैसे ?

उत्तर — क्योंकि, अप्रशस्त वेद के उदय के साथ प्रचुर जीवों को सम्यग्दर्शन का लाभ नहीं होता है।

प्रश्न — यह भी कैसे जाना जाता है?

उत्तर — “नपुंसक वेदी असंयतसम्यग्दृष्टि जीव सबसे स्तोक हैं। स्त्रीवेदी असंयतसम्यग्दृष्टि जीव उनसे असंख्यातगुणे हैं और पुरुषवेदी असंयत सम्यग्दृष्टि उनसे असंख्यातगुणे हैं।” इस अल्पबहुत्व के प्रपिपादन करने वाले सूत्र से स्त्रीवेदियों के अल्प होने का कारण जाना जाता है और इसी से सासादन सम्यग्दृष्टि आदिक के भी स्तोकपना सिद्ध हो जाता है परन्तु इतनी विशेषता है कि उन सासादन सम्यग्दृष्टि आदि योनिनियों का प्रमाण इतना है, यह नहीं जाना जाता है क्योंकि इस काल में यह उपदेश नहीं पाया जाता है।

इस प्रकार तृतीय स्थल में भाववेदी मनुष्यिनियों की संख्या बतलाने हेतु सूत्र का अवतार होता है—

सूत्रार्थ —

लब्ध्यपर्याप्त मनुष्य द्रव्यप्रमाण की अपेक्षा कितने हैं ? असंख्यात हैं ॥५०॥

हिन्दी टीका — द्रव्यप्रमाण से अपर्याप्त — लब्ध्यपर्याप्त मनुष्य कितने होते हैं? ऐसा प्रश्न होने पर

पुनः कालापेक्षया एषामपर्याप्तानां संख्याप्रतिपादनाय सूत्रमवतरति—

असंखेज्जासंखेज्जाहि ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीहि अवहिरंति कालेण।।५१।।

एतस्य सूत्रस्यार्थः पूर्वं बहुशः प्ररूपितः इति पुनः न उच्यते।

अधुना क्षेत्रापेक्षया अपर्याप्तमनुष्यसंख्याप्रतिपादनाय सूत्रमवतरति—

**खेत्तेण सेढीए असंखेज्जदिभागो। तिस्से सेढीए आयामो असंखेज्जाओ
जोयणकोडीओ। मणुस-अपज्जत्तेहि रूवा-पक्खित्तेहि सेढिमवहिरदि
अंगुलवग्गमूलं तदियवग्गमूलगुणिदेव।।५२।।**

क्षेत्रापेक्षया जगच्छ्रेण्याः असंख्यातभागप्रमाणा लब्ध्यपर्याप्तमनुष्याः सन्ति। तस्या जगच्छ्रेण्यसंख्यात-
भागरूपश्रेण्याः आयामोऽसंख्यातकोटियोजनप्रमाणः। सूच्यंगुलस्य तृतीयवर्गमूलेन गुणितं प्रथमवर्गमूलं
शलाकारूपेण स्थापयित्वा रूपाधिकलब्ध्यपर्याप्तकमनुष्यैः जगच्छ्रेणिः अपहृता भवति।

तात्पर्यमेतत्—सामान्यमनुष्यप्रमाणेषु पर्याप्तमनुष्यराशिप्रमाणं अपनीय लब्ध्यपर्याप्तमनुष्यराशिप्रमाणं ज्ञातव्यं।
अत्रापि भागाभागं वक्ष्यामि—

उत्तर मिलता है कि उनकी संख्या असंख्यातप्रमाण होती है। यहाँ अपर्याप्त शब्द से निर्वृत्यपर्याप्त मनुष्यों को छोड़कर लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्यों को ही ग्रहण करना चाहिए।

पुनः काल की अपेक्षा उन अपर्याप्त जीवों की संख्या के प्रतिपादन हेतु सूत्र का अवतार होता है—
सूत्रार्थ—

**काल की अपेक्षा लब्ध्यपर्याप्त मनुष्य असंख्यातासंख्यात अवसर्पिणियों और
उत्सर्पिणियों के द्वारा अपहृत होते हैं।।५१।।**

इस सूत्र का अर्थ पूर्व में कई बार प्ररूपित कर चुके हैं, इसलिए यहाँ पुनः उसे नहीं कहा जा रहा है।
अब क्षेत्र की अपेक्षा अपर्याप्त मनुष्यों की संख्या का प्रतिपादन करने के लिए सूत्र अवतरित होता है—
सूत्रार्थ—

**क्षेत्र की अपेक्षा जगत्श्रेणी के असंख्यातवें भागप्रमाण लब्ध्यपर्याप्त मनुष्य हैं।
उस जगत्श्रेणी के असंख्यातवें भागरूप श्रेणी का आयाम असंख्यात करोड़ योजन
है। सूच्यंगुल के तृतीय वर्गमूल गुणित प्रथम वर्गमूल को शलाकारूप से स्थापित
करके रूपाधिक लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्यों के द्वारा जगत्श्रेणी अपहृत होती है।।५२।।**

हिन्दी टीका—क्षेत्र की अपेक्षा जगत्श्रेणी के असंख्यातवाँ भागप्रमाण लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्यों की संख्या है। उस जगत्श्रेणी के असंख्यातवें भागरूप श्रेणी का आयाम असंख्यात करोड़ योजन प्रमाण है। सूच्यंगुल के तृतीय वर्गमूल के द्वारा गुणित किये गये प्रथम वर्गमूल को शलाकारूप से स्थापित करके रूपाधिक लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्यों के द्वारा जगत्श्रेणी अपहृत होती है।

तात्पर्य यह है कि सामान्य मनुष्यराशि के प्रमाण में से पर्याप्त मनुष्यराशि का प्रमाण घटा देने पर लब्ध्यपर्याप्त मनुष्यराशि का प्रमाण जानना चाहिए।

यहाँ भी भागाभाग को कहते हैं—

मनुष्यराशेः असंख्यातखण्डे कृते बहुखण्डा मनुष्यापर्याप्ता भवन्ति। शेषस्य संख्यातखण्डे कृते बहुखण्डा मनुष्यिनीमिथ्यादृष्टयो भवन्ति। शेषस्य संख्यातखण्डे कृते तत्र बहुखण्डा मनुष्यपर्याप्तमिथ्यादृष्टयो भवन्ति। शेषस्य संख्यातखण्डे कृते बहुखंडाः असंयतसम्यग्दृष्टयो भवन्ति। शेषस्य संख्यातखण्डे कृते बहुखंडाः सम्यग्मिथ्यादृष्टयो भवन्ति। शेषस्य संख्यातखण्डे कृते बहुखण्डाः सासादनसम्यग्दृष्टयो भवन्ति। शेषस्य संख्यातखण्डे कृते बहुखंडाः संयतासंयता भवन्ति। शेषस्य संख्यातखण्डे कृते बहुखण्डाः प्रमत्तसंयताः भवन्ति। शेषस्य संख्यातखण्डे कृते बहुखण्डाः अप्रमत्तसंयताः भवन्ति। एषामुपरि ओघवत् ज्ञातव्यं^१।

अथवा सर्वपरस्थाने अल्पबहुत्वकथनं कर्तव्यं —

सर्वस्तोकाः अयोगिकेवलिनः। चत्वारः उपशामकाः संख्यातगुणाः। चत्वारः क्षपकाः संख्यातगुणाः। सयोगिकेवलिनः संख्यातगुणाः। अप्रमत्तसंयताः संख्यातगुणाः। प्रमत्तसंयताः संख्यातगुणाः। संयतासंयताः संख्यातगुणाः। सासादनसम्यग्दृष्टयः संख्यातगुणाः। सम्यग्मिथ्यादृष्टयः संख्यातगुणाः। असंयतसम्यग्दृष्टयः संख्यातगुणाः। मनुष्यपर्याप्तमिथ्यादृष्टयः संख्यातगुणाः। मनुष्यिनीमिथ्यादृष्टयः संख्यातगुणाः।

मनुष्यराशि के असंख्यात खण्ड करने पर उनमें से बहुभागप्रमाण अपर्याप्त मनुष्य हैं। शेष एक भाग के संख्यात खंड करने पर उनमें से बहुभागप्रमाण मनुष्यिनी मिथ्यादृष्टि जीव हैं। शेष एक भाग के असंख्यात खंड करने पर उनमें से बहुभागप्रमाण मनुष्य पर्याप्त मिथ्यादृष्टि हैं। शेष एक भाग के संख्यात खंड करने पर उनमें से बहुभागप्रमाण असंयतसम्यग्दृष्टि मनुष्य हैं। शेष एक भाग के संख्यात खण्ड करने पर उनमें से बहुभागप्रमाण सम्यग्मिथ्यादृष्टि मनुष्य हैं। शेष एक भाग के संख्यात भाग करने पर उनमें से बहुभागप्रमाण सासादन सम्यग्दृष्टि मनुष्य हैं। शेष एक भाग के संख्यात खंड करने पर उनमें से बहुभागप्रमाण संयतासंयत मनुष्य हैं। शेष एक भाग के संख्यात खंड करने पर उनमें से बहुभागप्रमाण प्रमत्तसंयत मनुष्य — मुनि हैं। शेष एक भाग के संख्यात खंड करने पर उनमें से बहुभागप्रमाण अप्रमत्तसंयत मनुष्य — मुनि हैं। इसके ऊपर सामान्यरूप से गुणस्थानों के समान व्यवस्था जानना चाहिए।

अथवा अब सर्व परस्थान में अल्पबहुत्व का कथन किया जा रहा है —

अयोगिकेवली नामक चौदहवें गुणस्थानवर्ती मनुष्यों की संख्या सबसे कम है, चारों गुणस्थानवर्ती उपशामक — आठवें, नवमें, दशवें और ग्यारहवें गुणस्थानवर्ती उपशमश्रेणी चढ़ने वाले मुनिराजों की संख्या अयोगिकेवलियों से संख्यातगुणी ज्यादा है। चारों गुणस्थानवर्ती क्षपकश्रेणी में चढ़ने वाले मुनियों की संख्या उपशामकों से संख्यातगुणी अधिक है। सयोगिकेवली मनुष्यों की संख्या क्षपकश्रेणी से संख्यातगुणी है। अप्रमत्तसंयत मुनियों की संख्या सयोगियों से संख्यातगुणी अधिक है। प्रमत्तसंयत मनुष्य अप्रमत्तसंयत से संख्यातगुणे हैं। संयतासंयत मनुष्य प्रमत्तसंयतों से संख्यातगुणे अधिक हैं। सासादन सम्यग्दृष्टि मनुष्य संयतासंयतों से संख्यातगुणे हैं।

सम्यग्मिथ्यादृष्टि मनुष्य सासादन सम्यग्दृष्टियों से संख्यातगुणे हैं। असंयतसम्यग्दृष्टि मनुष्य सम्यग्मिथ्यादृष्टियों से संख्यातगुणे अधिक होते हैं।

मनुष्यपर्याप्त मिथ्यादृष्टि जीव असंयतसम्यग्दृष्टियों से संख्यातगुणे अधिक रहते हैं। मनुष्यिनी मिथ्यादृष्टि

मनुष्यापर्याप्तअवहारकालः असंख्यातगुणः। मनुष्यापर्याप्तद्रव्यमसंख्यातगुणं। उपरि यावत् लोकः इति तावत् ज्ञात्वा वक्तव्यं। मानुषीगुणस्थानप्रतिपन्नानां प्रमाणमेतावत् इति न निश्चितमस्ति, तस्मात् सर्वपरस्थानाल्पबहुत्वे तेषां प्ररूपणा न कृता^१।

अत्र इदमपि ज्ञातव्यमस्ति—मनुष्याणां चत्वारो भेदाः—सामान्यमनुष्याः पर्याप्तमनुष्याः योनिमतीमनुष्याः अपर्याप्तमनुष्याश्चेति। तत्र सामान्यमनुष्येषु पर्याप्तापर्याप्ताः त्रिवेदाश्च अंतर्भवन्ति। योनिमतीमनुष्येषु भावस्त्रीवेदधारकाः पुरुषा अपि भवन्ति। चतुर्थभेदे लब्ध्यपर्याप्तमनुष्या एव। एतज्ज्ञात्वा मनुष्यपर्यायं संप्राप्य भेदाभेदरत्नत्रयं पालयित्वा निजात्मोपलब्धिः सिद्धिः विधातव्या इति।

एवं अपर्याप्तमनुष्यप्रतिपादकानि त्रीणि सूत्राणि गतानि।

अनेन प्रकारेण स्थलचतुष्टयेन त्रयोदशभिः सूत्रैः मनुष्यगतिप्ररूपको
नाम तृतीयोऽन्तराधिकारः समाप्तः।

जीवों की संख्या पर्याप्त मनुष्यों से संख्यातगुणी है। अपर्याप्त मनुष्यों का अवहारकाल मनुष्यिनी मिथ्यादृष्टियों से असंख्यातगुणा है। मनुष्य अपर्याप्तकों का द्रव्य उन्हीं के अवहारकाल से असंख्यातगुणा है। इसके ऊपर जहाँ तक लोक है, वहाँ तक जानकर अल्पबहुत्व का कथन करना चाहिए। गुणस्थानप्रतिपन्न मनुष्यिनियों का प्रमाण इतना है यह निश्चित नहीं है, इसलिए सर्व परस्थान अल्पबहुत्व का कथन करते समय गुणस्थान प्रतिपन्न उनके प्रमाण की प्ररूपणा नहीं की गई है।

यहाँ यह भी ज्ञातव्य है कि मनुष्यों के चार भेद हैं—सामान्य मनुष्य, पर्याप्त मनुष्य, योनिमती मनुष्य और अपर्याप्त मनुष्य। उनमें सामान्य मनुष्यों में ही पर्याप्त, अपर्याप्त और तीनों वेद अन्तर्भूत हो जाते हैं। योनिमती मनुष्यों—मनुष्यिनियों में भावस्त्रीवेदी पुरुष भी गर्भित रहते हैं। चतुर्थ अपर्याप्त भेद वाले मनुष्यों में लब्ध्यपर्याप्त मनुष्य ही होते हैं। ऐसा जानकर मनुष्यपर्याय को प्राप्त करके भेदाभेद रत्नत्रय का पालन करके अपनी आत्मा की उपलब्धि—सिद्ध करना चाहिए, ऐसा अभिप्राय हुआ।

इस प्रकार अपर्याप्तमनुष्यों का प्रतिपादन करने वाले तीन सूत्र पूर्ण हुए।

इस प्रकार से चार स्थलों में तेरह सूत्रों के द्वारा
मनुष्यगति का प्ररूपण करने वाला तृतीय
अन्तराधिकार समाप्त हुआ।



अथ देवगतिनाम चतुर्थोऽन्तराधिकारः कथ्यते

अनंतरं स्थलपंचकेन एकविंशतिसूत्रपर्यंतं देवगतिनाम चतुर्थोऽन्तराधिकारः प्रारभ्यते। तत्र तावत्प्रथमस्थले सामान्येन देवानां संख्यां गुणस्थानं च निरूपयितुं “देवगईए” इत्यादिसूत्रमादिं कृत्वा सूत्रचतुष्टयं। तदनु द्वितीयस्थले भवनवासिदेवानां संख्यानिरूपणत्वेन “भवणवासि” इत्यादिसूत्रादारभ्य सूत्रचतुष्टयं। ततः परं तृतीयस्थले व्यंतरदेवानां गुणस्थानेषु संख्याप्रतिपादनत्वेन “वाणवेंतर” इत्यादिसूत्रादारभ्य चत्वारि सूत्राणि। तत्पश्चात् चतुर्थस्थले ज्योतिष्कदेवानां संख्यादिनिरूपणत्वेन “जोइसिय” इत्यादिना सूत्रमेकं। तदनु पंचमस्थले कल्पवासिकल्पातीतदेवानां गुणस्थानानि संख्यां निरूपणपरत्वेन “सोहम्मीसाण” इत्यादिना अष्टौ सूत्राणि कथ्यन्ते। इति समुदायपातनिका।

अधुना देवगतौ देवेषु मिथ्यादृष्टिदेवानां संख्यानिर्धारणार्थं सूत्रमवतरति —

देवगइए देवेसु मिच्छाइट्टी दव्वपमाणेण केवडिया? असंखेज्जा।।५३।।

देवगतिप्रतिपन्नदेवेषु मिथ्यादृष्टयो द्रव्यप्रमाणेन कियन्तः? असंख्याताः।

किमसंख्यातं नाम?

अब देवगति नाम का चतुर्थ अन्तराधिकार कहते हैं —

मनुष्यगति के व्याख्यान के पश्चात् पाँच स्थल के द्वारा इक्कीस सूत्रपर्यंत देवगति नाम का चतुर्थ अन्तराधिकार प्रारंभ किया जा रहा है। उसमें प्रथम स्थल में सामान्य से देवों की संख्या और गुणस्थान निरूपण करने के लिए “देवगईए” इत्यादि सूत्र से प्रारंभ करके चार सूत्र हैं। उसके बाद द्वितीय स्थल में भवनवासी देवों की संख्या निरूपण की मुख्यता से “भवणवासि” इत्यादि सूत्र से आरम्भ करके चार सूत्र कहेंगे। उसके आगे तृतीय स्थल में व्यन्तर देवों की गुणस्थानों में संख्या बतलाने हेतु “वाणवेंतर” इत्यादि सूत्र से प्रारंभ करके चार सूत्र वर्णित हैं। तत्पश्चात् चतुर्थस्थल में ज्योतिषी देवों की संख्या आदि के निरूपण की मुख्यता से “जोइसिय” इत्यादि एक सूत्र है। उसके बाद पंचमस्थल में कल्पवासी और कल्पातीत देवों के गुणस्थान और संख्या का निरूपण करने वाले “सोहम्मीसाण” इत्यादि आठ सूत्र कहेंगे। यह सूत्रों की समुदायपातनिका हुई है।

अब देवगति में देवों में मिथ्यादृष्टि देवों की संख्या का निर्धारण करने हेतु सूत्र का अवतार होता है —

सूत्रार्थ —

देवगति प्रतिपन्न देवों में मिथ्यादृष्टि जीव द्रव्यप्रमाण की अपेक्षा कितने हैं? असंख्यात हैं।।५३।।

हिन्दी टीका — देवगति में उत्पन्न होने वाले देवों में मिथ्यादृष्टि देवों की संख्या कितनी है? ऐसा प्रश्न होने पर उत्तर मिलता है कि वे असंख्यात हैं।

प्रश्न — असंख्यात किसे कहते हैं?

उत्तर — एक-एक संख्या के घटाते जाने पर जो राशि समाप्त हो जाती है, वह राशि यहाँ असंख्यात मानी गई है और जो राशि कभी समाप्त नहीं होती है, वह अनन्त कहलाती है।

प्रश्न — यदि ऐसा है तो व्यय सहित होने से नाश को प्राप्त होने वाला अर्धपुद्गल परिवर्तन काल भी असंख्यात हो जाएगा?

एकैकरूपे अपनीयमाने यो राशिः समाप्यते सोऽत्रासंख्यातः मन्तव्यः। यः पुनः न समाप्यते सः राशिः अनन्तो नाम।

यदि एवं तर्हि व्ययसहितसक्षयाद्धपुद्गलपरिवर्तकालोऽपि असंख्यातो जायते?
भवतु नाम।

कथं पुनः तस्याद्धपुद्गलपरिवर्तस्यानन्तव्यपदेशः?
नैतत्, तस्य उपचारनिबन्धनत्वात्।

“तं जहा — अणंतस्य केवलणाणास्स विसयत्तादो अद्धपोगलपरियट्टकालो वि अणंतो होदि।

अहवा जं संखाणं पंचिंदियविसओ तं संखेज्जं णाम। तदो उवरि जमोहिणाणविसओ तमसंखेज्जं णाम। तदो उवरि जं केवलणाणस्सेव विसओ तमणंतं णाम*।”

अधुना कालापेक्षया सूक्ष्मतरप्ररूपणार्थं सूत्रस्यावतारः क्रियते —

असंखेज्जासंखेज्जाहि ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीहि अवहिरंति कालेण।।५४।।

कालापेक्षया मिथ्यादृष्टयो देवाः असंख्यातासंख्याताभिः अवसर्पिण्युत्सर्पिणीभिः अपहृता भवन्ति।
संप्रति क्षेत्रापेक्षया तेषामेव प्रमाणनिरूपणार्थं सूत्रावतारः क्रियते —

खेत्तेण पदरस्स वेछप्पणंगुलसयवगगपडिभागेण।।५५।।

उत्तर — उसे असंख्यातपना प्राप्त हो जाए, तो होने दो।

प्रश्न — तब तो उस अर्धपुद्गल परिवर्तनरूप काल को अनन्त संज्ञा कैसे दी गई है ?

उत्तर — ऐसा नहीं है, क्योंकि अर्धपुद्गलपरिवर्तनरूप काल को जो अनन्त संज्ञा दी गई है, वह उपचार मात्र है। वह इस प्रकार स्पष्ट किया जाता है — केवलज्ञान का विषय चूँकि अनन्तरूप है, इसलिए अर्धपुद्गल परिवर्तन काल भी अनन्तरूप है ऐसा माना जाता है।

अथवा जो संख्या पाँचों इन्द्रियों का विषय है, वह संख्यात है। उसके ऊपर जो संख्या अवधिज्ञान का विषय है, वह असंख्यात है। उसके ऊपर जो केवलज्ञान के विषय भाव को ही प्राप्त होती है, वह अनन्त है।

अब काल की अपेक्षा अत्यंतसूक्ष्म प्ररूपणा को बतलाने के लिए सूत्र का अवतार करते हैं —

सूत्रार्थ —

काल की अपेक्षा मिथ्यादृष्टि देव असंख्यातासंख्यात अवसर्पिणियों और उत्सर्पिणियों के द्वारा अपहृत होते हैं ।।५४।।

हिन्दी टीका — काल की अपेक्षा से मिथ्यादृष्टि देव असंख्यातासंख्यात अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी कालों के द्वारा अपहृत होते हैं।

अब क्षेत्र की अपेक्षा उन्हीं मिथ्यादृष्टि देवों का प्रमाण बतलाने हेतु सूत्र का अवतार होता है —

सूत्रार्थ —

क्षेत्र की अपेक्षा जगत्प्रतर के दो सौ छप्पन अंगुलों के वर्गरूप प्रतिभाग से देव मिथ्यादृष्टि राशि आती है, अर्थात् दो सौ छप्पन सूच्यंगुल के वर्गरूप भागहार का जगत्प्रतर में भाग देने पर देव मिथ्यादृष्टि जीवराशि आती है ।।५५।।

क्षेत्रापेक्षया जगत्प्रतरस्य षट्पञ्चाशदधिकद्विशतांगुलानां वर्गरूपप्रतिभागेन मिथ्यादृष्टिदेवानां राशिर्भवति। षट्पञ्चाशदुत्तरद्विशतसूच्यंगुलस्य वर्गरूपभागहारेण जगत्प्रतरे भाजिते सति मिथ्यादृष्टिदेवानां राशिरागच्छति।

उक्तं चान्यत्र —

“देवगतौ देवा मिथ्यादृष्टयोऽसंख्येयाः श्रेणयः प्रतरासंख्येयभागप्रमिताः^१।”

अधुना सासादनादिदेवानां प्रमाणप्रतिपादनार्थं सूत्रमवतरति —

सासणसम्माइट्टि-सम्मामिच्छाइट्टि-असंजदसम्माइट्टीणं ओघं।।५६।।

देवगतौ सासादनसम्यग्दृष्टि-सम्यग्मिथ्यादृष्टि-असंयतसम्यग्दृष्टीनां प्रमाणं ओघवत् पल्योपमस्यासंख्यात-भागप्रमाणं ज्ञातव्यं। सामान्येन इदं प्रमाणं भवति, किंतु पर्यायार्थिकनयापेक्षया विशेषोऽस्त्येव, अन्यथा शेषगतिसंबंधिजीवानां एतत्त्रयगुणस्थानवर्तिनामभावो भविष्यति। नैतत् शक्यं। एवं सामान्येन देवानां संख्याप्रतिपादनपराणि चत्वारि सूत्राणि गतानि।

अग्रे भवनवासिदेवानां मिथ्यादृष्टिराशिनिरूपणाय सूत्रमवतरति —

भवनवासियदेवेसु मिच्छाइट्टी दव्वपमाणेण केवडिया? असंखेज्जा।।५७।।

भवनवासिदेवेषु मिथ्यादृष्टयोऽसंख्याताः भवन्ति।

हिन्दी टीका — क्षेत्र की अपेक्षा जगत्प्रतर के दो सौ छप्पन अंगुलों के वर्गरूप प्रतिभाग से मिथ्यादृष्टि देवों की राशि आती है। दो सौ छप्पन सूच्यंगुल के वर्गरूप भागहार का जगत्प्रतर में भाग देने पर मिथ्यादृष्टि देवों की राशि निकलती है। अन्यत्र भी कहा है —

“देवगति में मिथ्यादृष्टि देवों की असंख्यात श्रेणियाँ जगत्प्रतर के असंख्यातभागप्रमाण होती हैं।”

अब सासादन सम्यग्दृष्टि आदि गुणस्थानवर्ती देवों का प्रमाण बतलाने हेतु सूत्र का अवतार होता है —
सूत्रार्थ —

सासादन सम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि सामान्य देवों का द्रव्यप्रमाण ओघप्ररूपणा के समान पल्योपम के असंख्यातवें भाग है ।।५६।।

हिन्दी टीका — देवगति में सासादन सम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानवर्ती देवों का प्रमाण गुणस्थान के समान पल्योपम के असंख्यातवें भागप्रमाण जानना चाहिए। सामान्य से यह प्रमाण होता है, किन्तु पर्यायार्थिकनय की अपेक्षा कुछ विशेषता है। अन्यथा शेष तीन गतियों से सम्बन्धित इन गुणस्थानवर्ती जीवों का अभाव हो जाएगा किंतु ऐसा शक्य नहीं है।

इस प्रकार सामान्य से देवों की संख्या प्रतिपादन करने वाले चार सूत्र पूर्ण हुए।

आगे भवनवासी देवों में मिथ्यादृष्टि देवों की राशि का निरूपण करने के लिए सूत्र का अवतार होता है —

सूत्रार्थ —

भवनवासी देवों में मिथ्यादृष्टि जीव द्रव्यप्रमाण की अपेक्षा कितने हैं ? असंख्यात हैं।।५७।।

हिन्दी टीका — सूत्र का अभिप्राय यह है कि मिथ्यादृष्टि भवनवासी देव असंख्यात होते हैं।

कालक्षेत्रापेक्षया तेषामेव संख्यानिरूपणाय सूत्रद्वयमवतारयति सूरिवर्यः —

असंखेज्जासंखेज्जाहि ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीहि अवहिरंति कालेण ।।५८।।

खेत्तेण असंखेज्जाओ सेढीओ पदरस्स असंखेज्जदिभागो ।। तेसिं सेढीणं विक्खंभसूई अंगुलं अंगुलवग्गमूलगुणिदेण ।।५९।।

कालापेक्षया असंख्यातासंख्यात-अवसर्पिण्युत्सर्पिणीभिः इमे देवाः अपहृताः भवन्ति ।

क्षेत्रापेक्षया इमे भवनवासिमिथ्यादृष्टिदेवाः असंख्यातजगच्छ्रेणिप्रमाणाः सन्ति । इमाः असंख्यात-जगच्छ्रेणयः जगत्प्रतरस्य असंख्यातभागप्रमाणाः । तासां असंख्यातजगच्छ्रेणीनां विष्कंभसूची सूच्यंगुलं सूच्यंगुलस्य प्रथमवर्गमूलेन गुणिते यावत्प्रमाणं लभ्येत तावत्प्रमाणास्ति ।

संप्रति एषामेव देवानां गुणस्थानत्रयसंख्याप्रतिपादनार्थं सूत्रमवतरति —

सासणसम्माइट्ठि-सम्मामिच्छाइट्ठि-असंजदसम्माइट्ठिपरूवणा ओघं ।।६०।।

एषां सासादनादित्रयगुणस्थानवर्तिनां भवनवासिनां संख्या पूर्वोक्तगुणस्थानवद् ज्ञातव्या भवति । द्रव्यार्थिकनयमवलम्ब्य ओघेन सह एकत्वदर्शनात् । पर्यायार्थिकनयापेक्षया अस्ति विशेषः ।।दृष्टे भणिष्यन्ति आचार्यवर्याः।।

काल और क्षेत्र की अपेक्षा उन्हीं देवों की संख्या निरूपण के लिए आचार्यदेव दो सूत्रों को अवतरित करते हैं —

सूत्रार्थ —

काल की अपेक्षा मिथ्यादृष्टि भवनवासी देव असंख्यातासंख्यात अवसर्पिणियों और उत्सर्पिणियों के द्वारा अपहृत होते हैं ।।५८।।

सूत्रार्थ —

क्षेत्र की अपेक्षा भवनवासी मिथ्यादृष्टि देव असंख्यात जगत्श्रेणीप्रमाण हैं, जो असंख्यात जगत्श्रेणियाँ जगत्प्रतर के असंख्यातवें भागप्रमाण हैं । उन असंख्यात जगत्श्रेणी की सूची, सूच्यंगुल के प्रथम वर्गमूल से गुणित करके जो लब्ध आवे, उतनी है ।।५९।।

हिन्दी टीका — काल की अपेक्षा असंख्यातासंख्यात अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी कालों के द्वारा ये देव अपहृत होते हैं ।

क्षेत्र की अपेक्षा ये भवनवासी मिथ्यादृष्टि देव असंख्यात जगच्छ्रेणीप्रमाण हैं । ये असंख्यात जगत्श्रेणियाँ जगत्प्रतर के असंख्यातवें भागप्रमाण हैं । उन असंख्यात जगत्श्रेणियों की विष्कंभसूची सूच्यंगुल को सूच्यंगुल के प्रथम वर्गमूल से गुणित करने पर जितना प्रमाण प्राप्त होता है, उतनी भवनवासी मिथ्यादृष्टियों की विष्कंभसूची है ।

अब उन्हीं भवनवासी देवों के आगे के तीनों गुणस्थानों की संख्या का प्रतिपादन करने के लिए सूत्र का अवतार होता है —

सूत्रार्थ —

सासादन सम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि भवनवासी जीवों की प्ररूपणा सामान्य प्ररूपणा के समान है ।।६०।।

हिन्दी टीका — इन सासादनादि तीनों गुणस्थानवर्ती भवनवासी देवों की संख्या पूर्वोक्त गुणस्थानों के समान ही जानना चाहिए । द्रव्यार्थिकनय का अवलम्बन लेकर ओघप्ररूपणा के साथ गुणस्थानप्रतिपन्न भवनवासी प्ररूपणा की एकता अर्थात् समानता देखी जाती है किन्तु पर्यायार्थिकनय की अपेक्षा दोनों

एवं द्वितीयस्थले भवनवासिनां गुणस्थानेषु संख्यां व्यवस्थापत्सूत्रचतुष्टयं गतं।

अधुना व्यंतरदेवानां संख्याप्रतिपादनाय सूत्रत्रयं कथ्यते आचार्यदेवेन —

वाणवेंतरदेवेसु मिच्छाइट्टी दव्वपमाणेण केवडिया? असंखेज्जा॥६१॥

असंखेज्जासंखेज्जाहि ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीहि अवहिरंति कालेण॥६२॥

एतयोर्द्वयोः सूत्रयोः अर्थः सुगमोऽस्ति।

खेत्तेण पदरस्स संखेज्जजोयणसदवगगपडिभाएण॥६३॥

क्षेत्रापेक्षया जगत्प्रतरस्य संख्यातशतयोजनानां वर्गरूपप्रतिभागेन वानव्यन्तरदेवानां मिथ्यादृष्टि-
राशिरागच्छति — संख्यातशतयोजनानां वर्गरूपभागहारेण जगत्प्रतरे भाजिते सति यल्लब्धं भवेत् तावन्तो
वानव्यन्तरदेवाः भवन्ति।

सासादनादिगुणस्थाने संख्यानिरूपणाय सूत्रमवतरति —

सासणसम्माइट्टि-सम्मामिच्छाइट्टि-असंजदसम्माइट्टी ओघं॥६४॥

प्ररूपणाओं में विशेषता है। उस विशेषता को आगे आचार्यदेव कहेंगे।

इस प्रकार द्वितीय स्थल में भवनवासी देवों के गुणस्थानों की संख्या को बताने वाले चार सूत्र पूर्ण हुए।
अब व्यंतरदेवों की संख्या को प्रतिपादित करने हेतु आचार्यदेव तीन सूत्रों का कथन करते हैं —

सूत्रार्थ —

वानव्यंतर देवों में मिथ्यादृष्टि जीव द्रव्यप्रमाण की अपेक्षा कितने हैं? असंख्यात हैं॥६१॥

काल की अपेक्षा वानव्यंतर देव असंख्यातासंख्यात अवसर्पिणियों और उत्सर्पिणियों के द्वारा अपहृत होते हैं॥६२॥

इन दोनों सूत्रों का सरल है, इसलिए यहाँ अधिक स्पष्टीकरण नहीं किया जा रहा है।

सूत्रार्थ —

क्षेत्र की अपेक्षा जगत्प्रतर के संख्यात सौ योजनों के वर्गरूप प्रतिभाग से वानव्यंतर मिथ्यादृष्टि राशि आती है, अर्थात् संख्यात सौ योजनों के वर्गरूप भागहार का जगत्प्रतर में भाग देने पर जो लब्ध आवे, उतने वान व्यन्तर मिथ्यादृष्टि देव हैं ॥६३॥

हिन्दी टीका — क्षेत्र की अपेक्षा जगत्प्रतर के संख्यात सौ योजनों का वर्गरूप प्रतिभाग करने पर वानव्यंतर जाति के देवों में मिथ्यादृष्टियों की राशि प्राप्त होती है अर्थात् संख्यात सौ योजन के वर्गरूप भागहार का जगत्प्रतर में भाग देने पर जो लब्ध आता है, उतनी संख्या व्यंतर मिथ्यादृष्टि देवों की होती है।

अब सासादन आदि गुणस्थानों में उन्हीं देवों की संख्या निरूपण हेतु सूत्र का अवतार होता है —

सूत्रार्थ —

सासादन सम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि व्यंतरदेव सामान्य प्ररूपणा के समान पल्योपम के असंख्यातवें भाग हैं ॥६४॥

सूत्रस्यार्थः सुगमः। अत्रापि पर्यायार्थिकनयेन भेदोऽस्ति। किंच संग्रहविस्तररुचिशिष्यानुग्रहार्थं द्रव्यार्थिक-पर्यायार्थिक-नययोर्व्यापारो भवति*।

एवं वानव्यंतरदेवानां गुणस्थानव्यवस्थायां प्रमाणप्रतिपादनपराणि चत्वारि सूत्राणि गतानि।

अधुना ज्योतिष्कदेवसंख्याप्रतिपादनाय सूत्रमवतरति —

जोइसियदेवा देवगईणं भंगो।।६५।।

देवगतिप्रतिपन्नसामान्यदेवानां यावत्प्रमाणं कथितं ज्योतिष्कदेवास्तावन्त एव। ज्योतिष्कदेवेषु चतुर्णां गुणस्थानानां प्रमाणप्ररूपणा देवौद्यप्ररूपणाभिः तुल्या। एष निर्देशः द्रव्यार्थिकनयमवलम्ब्य कृतः, पर्यायार्थिकनयस्यावलम्बनेन अस्ति विशेषः। तद्यथा-वानव्यन्तरादिशेषसर्वे देवा ज्योतिष्कदेवानां संख्यातभागमात्रा भवन्ति।

एवं चतुर्थस्थले ज्योतिष्कदेवसंख्यानिरूपणत्वेन एकं सूत्रं गतम्।

संप्रति कल्पवासिदेवसंख्यानिरूपणाय सूत्रमवतरति —

सोहम्मीसाणकप्पवासियदेवेसु मिच्छाइट्ठी दव्वपमाणेण केवडिया?

असंखेज्जा।।६६।।

हिन्दी टीक — सूत्र का अर्थ सरल है। यहाँ भी पर्यायार्थिक नय से भेद है। दूसरी बात यह है कि संग्रहरुचि (संक्षेपरुचि) और विस्तार रुचि वाले शिष्यों पर अनुग्रह करने के लिए द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक इन दोनों नयों का व्यापार होता है — दोनों नयों के द्वारा संक्षेप और विस्तारपूर्वक कथन किया जाता है क्योंकि इसके बिना असमानता का प्रसंग प्राप्त हो जाता है।

इस प्रकार व्यंतर देवों की गुणस्थान व्यवस्था में प्रमाण का प्रतिपादन करने वाले चार सूत्र समाप्त हुए।

अब ज्योतिष्क देवों की संख्या बतलाने हेतु सूत्र का अवतरण होता है —

सूत्रार्थ —

सामान्यरूप से देवगति में जितने भंग हैं, उतनी ही संख्या ज्योतिषी देवों की है।।६५।।

हिन्दी टीका — देवगति प्रतिपन्न सामान्य देवों की जितनी संख्या कही है, ज्योतिष्क देव उतने ही प्रमाण हैं।

ज्योतिष्कदेवों में चारों गुणस्थानों की प्रमाण प्ररूपणा सामान्य देवों के गुणस्थानों के समान है। ऐसा निर्देश द्रव्यार्थिकनय के आधार से किया है किन्तु पर्यायार्थिकनय के अवलम्बन से कथन करने पर उसमें जो विशेषता है, वह इस प्रकार है —

वाणव्यंतर आदि शेष सम्पूर्ण देव ज्योतिषी देवों के संख्यातवें भाग हैं।

इस प्रकार चतुर्थस्थल में ज्योतिषी देवों की संख्या निरूपण करने वाला एक सूत्र पूर्ण हुआ।

अब कल्पवासी देवों की संख्या का कथन करने के लिए सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ —

सौधर्म और ऐशान कल्पवासी देवों में मिथ्यादृष्टि जीव द्रव्यप्रमाण की अपेक्षा कितने हैं ? असंख्यात हैं ।।६६।।

सूत्रस्यार्थः सुगमो वर्तते।

कालापेक्षया तेषामेव प्रमाणनिरूपणार्थं सूत्रमवतरति —

असंखेज्जासंखेज्जाहि ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीहि अवहिरंति कालेण।।६७।।

अस्यापि अर्थः सुगमः वर्तते।

कश्चिदाह — “सर्वत्र सूक्ष्म-सूक्ष्मतर-सूक्ष्मतमभेदेन त्रिविधा प्ररूपणा किमर्थं प्ररूप्यते?

तस्योत्तरं दीयते — नैष दोषः, तीव्र-मंद-मध्यमबुद्धिसत्त्वानुग्रहार्थत्वात्। अन्यथा जिनानां सर्वसत्त्वसमानत्व विरोधो भवेत्। न पुनरुक्तदोषोऽपि जिनवचने संभवति, मंदबुद्धिसत्त्वानुग्रहार्थता एतस्य साफल्यत्।”

क्षेत्रापेक्षया एषामेव देवानां प्रमाणनिरूपणाय सूत्रमवतरति —

खेत्तेण असंखेज्जाओ सेढीओ पदरस्स असंखेज्जदिभागो। तासिं सेढीणं विक्खंभसूई अंगुल-विदियवग्गमूलं तदियवग्गमूलगुणिदेण।।६८।।

क्षेत्रापेक्षया सौधर्मेशानकल्पवासिदेवाः मिथ्यादृष्टयः असंख्यातजगत्श्रेणिप्रमाणाः सन्ति। तदसंख्यात-

सूत्र का अर्थ सरल है, इसलिए यहाँ विस्तृत कथन नहीं किया जा रहा है।

अब काल की अपेक्षा उन्हीं देवों का प्रमाण निरूपित करने हेतु सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ —

काल की अपेक्षा सौधर्म और ऐशान कल्पवासी मिथ्यादृष्टि देव असंख्यातासंख्यात अवसर्पिणियों और उत्सर्पिणियों के द्वारा अपहृत होते हैं।।६७।।

हिन्दी टीका — इस सूत्र का अर्थ भी सुगम है। यहाँ कोई शंका करता है —

सर्वत्र सूक्ष्म, सूक्ष्मतर और सूक्ष्मतम के भेद से तीन प्रकार की प्ररूपणा क्यों बताई जा रही हैं ?

इसका उत्तर देते हैं —

यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि तीव्र बुद्धि वाले, मंदबुद्धि वाले और मध्यमबुद्धि वाले प्राणियों पर अनुग्रह करने की दृष्टि से तीन प्रकार की प्ररूपणा कही हैं। अन्यथा — ऐसा न मानने पर “जिनेन्द्रदेव सभी जीवों में समान परिणामी होते हैं” इस कथन में विरोध आ जाएगा। जिनेन्द्र भगवान के वचनों में पुनरुक्त दोष भी संभव नहीं है, क्योंकि मन्दबुद्धि वाले शिष्यों का अनुग्रह करने हेतु पुनः पुनः कथन करने की सफलता आवश्यक होती है।

अब क्षेत्र की अपेक्षा उन्हीं देवों की संख्या बतलाने हेतु सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ —

क्षेत्र की अपेक्षा सौधर्म और ऐशान कल्पवासी मिथ्यादृष्टि देव असंख्यात जगत्श्रेणी प्रमाण हैं जो असंख्यात जगत्श्रेणियों का प्रमाण जगत्प्रतर के असंख्यातवें भाग है। इन असंख्यात जगत्श्रेणियों की विष्कंभसूची, सूच्यंगुल के द्वितीय वर्गमूल को तृतीय वर्गमूल से गुणा करने पर जितना लब्ध आवे, उतनी है।।६८।।

हिन्दी टीका — क्षेत्र की अपेक्षा सौधर्म और ऐशान स्वर्ग के कल्पवासी मिथ्यादृष्टि देव असंख्यात जगत्श्रेणी प्रमाण हैं। उन असंख्यात जगत्श्रेणियों का प्रमाण जगत्प्रतर के असंख्यातवें भागमात्र है। उन

जगच्छ्रेणीनां प्रमाणं जगत्प्रतरस्यासंख्यातभागं। तासां असंख्यातजगच्छ्रेणीनां विष्कंभसूची, सूच्यंगुलस्य द्वितीयवर्गमूलं तृतीयवर्गमूलेन गुणिते सति यावल्लब्धा भवेत् तावत्प्रमाणा एव।

एषामेव देवानां सासादनादिगुणस्थानेषु प्रमाणनिरूपणाय सूत्रमवतरति—

सासणसम्माइट्टि-सम्मामिच्छाइट्टि-असंजदसम्माइट्टी ओघं॥६९॥

सौधर्मैशानस्वर्गदेवाः सासादनादयः गुणस्थानवत् प्रमाणैः सन्ति। एतत्कथनमपि द्रव्यार्थिकनयापेक्षया एव। पर्यायार्थिकनयापेक्षया अग्रे निरूपयिष्यन्ते।

अधुना तृतीयस्वर्गात् द्वादशस्वर्गपर्यंतदेवानां संख्याप्रतिपादनाय सूत्रावतारो भवति—

सणक्कुमारप्पहुडि जाव सदार-सहस्सारकप्पवासियदेवेसु जहा सत्तमाए पुढवीए णेरइयाणं भंगो॥७०॥

यथा सप्तम्यां पृथिव्यां नारकाणां प्ररूपणा कथिता तथैव सनत्कुमारादारभ्य शतारहस्वारपर्यंत-कल्पवासिदेवेषु मिथ्यादृष्टिदेवानां प्ररूपणास्ति। सामान्यकथनमेतत्, अग्रे आचार्यपरंपरागतोपदेशेन विशेषप्ररूपणा क्रियते।

सानत्कुमारमाहेन्द्रस्वर्गयोः जगच्छ्रेण्याः भागहारो जगच्छ्रेण्याः अधः एकादशवर्गमूलं। ब्रह्मब्रह्मोत्तर-

असंख्यात जगत्श्रेणियों की विष्कंभसूची, सूच्यंगुल के द्वितीय वर्गमूल को तृतीय वर्गमूल से गुणा करने पर जितनी संख्या की उपलब्धि होती है, उतनी संख्या ही सौधर्म-ईशान स्वर्ग के कल्पवासी मिथ्यादृष्टि जीवों की संख्या मानी गई है।

अब इन्हीं कल्पवासी देवों का सासादन आदि गुणस्थानों में प्रमाण निरूपित करने हेतु सूत्र अवतरित होता है—

सूत्रार्थ—

सासादन सम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि सौधर्म-ऐशान कल्पवासी देव सामान्य प्ररूपणा के समान पल्योपम के असंख्यातवें भाग हैं ॥६९॥

हिन्दी टीका— सौधर्म-ऐशान स्वर्ग के देव सासादन आदि गुणस्थानों के समान प्रमाण वाले होते हैं। यह कथन भी द्रव्यार्थिक नय की अपेक्षा ही है। पर्यायार्थिक नय की अपेक्षा उनका निरूपण आगे करेंगे।

अब तृतीय स्वर्ग से लेकर बारहवें स्वर्ग तक उत्पन्न होने वाले देवों की संख्या का प्रतिपादन करने हेतु सूत्र अवतरित होता है—

सूत्रार्थ—

जिस प्रकार सातवीं पृथिवी में नारकियों की प्ररूपणा कही गई है, उसी प्रकार सनत्कुमार से लेकर शतार और सहस्रार स्वर्ग तक कल्पवासी देवों में उसी मिथ्यादृष्टि देवों की प्ररूपणा है ॥७०॥

हिन्दी टीका— जिस प्रकार सातवीं नरकपृथिवी में नारकियों की प्ररूपणा कही गई है उसी प्रकार सानत्कुमार स्वर्ग से प्रारंभ करके सहस्रारस्वर्गपर्यन्त कल्पवासी देवों में मिथ्यादृष्टि देवों की प्ररूपणा है। सामान्य कथन यह है, पुनः आचार्य परम्परा से आगत उपदेश के द्वारा विशेष प्ररूपणा आगे कहेंगे।

सानत्कुमार-माहेन्द्र स्वर्ग में जगत्श्रेणी का भागहार जगत्श्रेणी के नीचे ग्यारहवाँ वर्गमूल है। ब्रह्म और

स्वर्गयोः जगच्छ्रेण्याः भागहारो जगच्छ्रेण्याः नवमवर्गमूलं। लांतवकापिष्ठयोः सप्तमवर्गमूलं। शुक्रमहाशुक्रयोः पंचमवर्गमूलं। शतारसहस्रारकल्पयोः चतुर्थवर्गमूलं भागहारो भवति। सासादनादीनां प्रमाणप्ररूपणापि सप्तमपृथिव्याः प्ररूपणया समाना। विशेषप्ररूपणा पुरतः कथयिष्यते।

संप्रति आनतादिस्वर्गनिवासिकल्पवासिदेवेषु नवग्रैवेयकविमानवासिकल्पातीतदेवेषु च मिथ्यादृष्ट्यादि सम्यग्दृष्टिपर्यंतानां प्रमाणप्ररूपणाय सूत्रमवतरति —

आणद-पाणद जाव णवगेवेज्जविमाणवासियदेवेसु मिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव असंजदसम्माइट्ठि दव्वपमाणेण केवडिया? पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो। एदेहि पलिदोवममवहिरदि अंतोमुहुत्तेण।।७१।।

आनतप्राणतारणाच्युतदेवेभ्य आरभ्य नवग्रैवेयकविमानवासिदेवेषु मिथ्यादृष्ट्यादिसंयतसम्यग्दृष्टिपर्यंताः देवाः द्रव्यप्रमाणेन कियन्तः? पल्योपमस्यासंख्यातभागाः एतैरुपर्युक्तजीवराशिभिः अंतर्मुहूर्तेन पल्योपमः

ब्रह्मोत्तर स्वर्ग में जगत्श्रेणी का भागहार जगत्श्रेणी का नवमाँ वर्गमूल है। लांतव और कापिष्ठ कल्प में जगत्श्रेणी का भागहार जगत्श्रेणी का सातवाँ वर्गमूल है। शुक्र और महाशुक्र कल्प में जगत्श्रेणी का भागहार जगत्श्रेणी का पाँचवाँ वर्गमूल है। शतार और सहस्रार कल्प में जगत्श्रेणी का भागहार जगत्श्रेणी का चौथा वर्गमूल है। सानत्कुमार से लेकर सहस्रार पर्यन्त दश स्वर्गों तक सासादन सम्यग्दृष्टि आदि गुणस्थानवर्ती देवों के प्रमाण की प्ररूपणा भी सातवीं नरकपृथिवी के सासादनसम्यग्दृष्टि आदि जीवों के प्रमाण की प्ररूपणा के समान है। विशेष प्ररूपणा का कथन आगे करेंगे।

अब आनत आदि स्वर्गों के निवासी कल्पवासी देवों में एवं नवग्रैवेयक विमानों में रहने वाले कल्पातीत देवों में मिथ्यादृष्टि से लेकर असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान तक देवों की प्रमाण प्ररूपणा के लिए सूत्र अवतरित होता है—

सूत्रार्थ—

आनत और प्राणत से लेकर नवग्रैवेयक तक विमानवासी देवों में मिथ्यादृष्टि गुणस्थान से लेकर असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थान में जीव द्रव्यप्रमाण की अपेक्षा कितने हैं? पल्योपम के असंख्यातवें भाग हैं। इन उपर्युक्त जीवराशियों के द्वारा अन्तर्मुहूर्त से पल्योपम अपहृत होता है ।।७१।।

हिन्दी टीका— आनत-प्राणत, आरण-अच्युत स्वर्ग के देवों से आरंभ करके नवग्रैवेयक विमानवासी देवों में मिथ्यादृष्टि से लेकर असंयतसम्यग्दृष्टिपर्यन्त चारों गुणस्थानवर्ती देव द्रव्यप्रमाण की अपेक्षा कितने होते हैं? ऐसा प्रश्न होने पर उत्तर प्राप्त होता है कि उनकी संख्या पल्योपम के असंख्यातवें भाग है। इन उपर्युक्त जीवराशियों से अन्तर्मुहूर्त के द्वारा पल्योपम अपहृत होता है।

विशेषार्थ— धवला टीका में श्रीवीरसेनाचार्य ने कहा है कि “अन्तर्मुहूर्त” शब्द कालवाचक है इसलिए सूत्र में ‘काल’ शब्द का अलग से ग्रहण नहीं किया है। प्रकृत में द्रव्यप्रमाण के प्ररूपण करने से ही अर्थ का निश्चय हो जाता है, इसलिए यहाँ पर क्षेत्रप्रमाण और कालप्रमाण के द्वारा प्ररूपणा नहीं की है। “पल्योपम के असंख्यातवें भाग हैं” इस प्रकार सामान्य से कहने पर द्रव्यप्रमाण के विषय में अच्छी तरह निश्चय नहीं हो पाता है, इसलिए इस विषय में निश्चय को उत्पन्न करने के लिए “इन जीवराशियों के द्वारा पल्योपम से अपहृत

अपहृतो भवति।

संप्रति अनुदिशविमानादारभ्य अपराजितपर्यन्तेषु सम्यग्दृष्टीनां प्रमाणप्ररूपणाय सूत्रमवतरति —

अणुद्विस जाव अवराइदविमाणवासियदेवेसु असंजदसम्माइट्टी दव्वपमाणेण केवडिया? पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो। एदेहि पलिदोवममवहिरदि अंतोमुहुत्तेण।।७२।।

अनुदिशविमानादारभ्य अपराजितविमानवासिदेवेषु असंयतसम्यग्दृष्टिदेवाः द्रव्यप्रमाणेन कियन्तः? इति प्रश्ने सति पल्योपमस्य असंख्यातभागः। एतैरुपर्युक्तजीवराशिभिः अंतर्मुहूर्तेन पल्योपमः अपहृतो भवति। नव अनुदिशविमानेषु विजयवैजयन्तजयन्तापराजितविमानेषु च सर्वे देवाः सम्यग्दृष्टय एव भवन्ति। सर्वार्थसिद्धिविमानवासिदेवानां संख्यानिरूपणाय सूत्रावतारः क्रियते —

सव्वट्टिसिद्धिविमाणवासियदेवा दव्वपमाणेण केवडिया? संखेज्जा।।७३।।

सर्वार्थसिद्धिविमानवासिदेवाः द्रव्यप्रमाणेन कियन्तः? इति प्रश्ने सति संख्याताः इति उच्यन्ते। इमे मनुष्यनीराशिभ्यः त्रिगुणाः सन्ति।

अधुना भागाभागं ब्रवीति —

होता है” इस प्रकार भागहार प्ररूपणा और विभज्यमान राशि की प्ररूपणा की है। इस विषय में आचार्यों के उपदेश का आश्रय लेकर विशेष व्याख्यान आगे कहेंगे।

अब अनुदिश विमान से प्रारंभ करके अपराजित विमानपर्यन्त देवों में सम्यग्दृष्टि देवों की प्रमाण प्ररूपणा बतलाने हेतु सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ —

अनुदिश विमान से लेकर अपराजित विमान तक उनमें रहने वाले असंयतसम्यग्दृष्टि देव द्रव्यप्रमाण की अपेक्षा कितने हैं? पल्योपम के असंख्यातवें भाग हैं। इन उपर्युक्त जीवराशियों के द्वारा अन्तर्मुहूर्त से पल्योपम अपहृत होता है ।। ७२ ।।

हिन्दी टीका — नव अनुदिश विमानों से प्रारंभ करके पंच अनुत्तर में से चतुर्थ अपराजित विमान तक विमानवासी देवों में असंयत सम्यग्दृष्टि देवों की संख्या द्रव्यप्रमाण की अपेक्षा कितनी है? ऐसा प्रश्न होने पर उत्तर प्राप्त होता है कि पल्योपम के असंख्यातवें भागप्रमाण उनकी संख्या है। इन उपर्युक्त जीवराशियों के द्वारा अन्तर्मुहूर्त से पल्योपम अपहृत होता है। नव अनुदिश विमानों में तथा विजय, वैजयन्त, जयन्त, अपराजित विमानों में रहने वाले सभी देव सम्यग्दृष्टि ही होते हैं।

अब सर्वार्थसिद्धि विमानवासी देवों की संख्या निरूपण करने हेतु सूत्र का अवतार किया जाता है —

सूत्रार्थ —

सर्वार्थसिद्धि विमानवासी देव द्रव्यप्रमाण की अपेक्षा कितने हैं? संख्यात हैं।।७३।।

हिन्दी टीका — सर्वार्थसिद्धि विमान में निवास करने वाले देव द्रव्यप्रमाण की अपेक्षा कितने हैं? ऐसा प्रश्न होने पर वे संख्यात हैं ऐसा उत्तर मिलता है। ये मनुष्यनियों की राशि से तीन गुनी अधिक हैं।

अब भागाभाग के बारे में बताते हैं —

सर्वदेवराशेः संख्यातखण्डे कृते तत्र बहुखण्डाः ज्योतिष्कदेवमिथ्यादृष्टयो भवन्ति। शेषस्यासंख्यातखण्डे कृते तत्र बहुखण्डाः वानव्यन्तरमिथ्यादृष्टयो भवन्ति। शेषस्यासंख्यातखण्डे कृते बहुखण्डाः भवनवासिमिथ्यादृष्टयो भवन्ति। शेषस्यासंख्यातखण्डे कृते बहुभागाः सौधर्मैशानमिथ्यादृष्टयो भवन्ति। एवमेव सानत्कुमारादारभ्य शतारसहस्रारकल्पवासिदेवपर्यंतमिथ्यादृष्टयो ज्ञातव्याः भवन्ति। पुनश्च शतारसहस्रारमिथ्यादृष्टिप्रमाणस्यानंतरं यः एकभागः शेषः अस्ति, तस्यैकभागस्य असंख्यातखण्डे कृते बहुभागाः सौधर्मैशान असंयतसम्यग्दृष्टयो भवन्ति। शेषस्य संख्यातखण्डे कृते बहुभागाः सम्यग्मिथ्यादृष्टयो भवन्ति। शेषस्यासंख्यातखण्डे कृते बहुभागाः सासादनसम्यग्दृष्टयो भवन्ति। एवं सनत्कुमारमाहेन्द्रस्वर्गात् आरभ्य सहस्रारस्वर्गपर्यंतं ज्ञातव्यं भवति।

ततः सहस्रारस्वर्गात् अग्रे ज्योतिष्क-वाणव्यन्तर-भवनवासिदेवपर्यंतं एवमेव क्रमः ज्ञातव्यः।

पुनः भवनवासिसासादनसम्यग्दृष्टिप्रमाणस्यानंतरं य एक भागः शेषोऽस्ति, तस्य शेषस्य संख्यातखण्डे कृते बहुखण्डाः आनत-प्राणत असंयतसम्यग्दृष्टयो भवन्ति। शेषस्य संख्यातखण्डे कृते बहुखण्डाः आरणाच्युतासंयतसम्यग्दृष्टयो भवन्ति। एवं नेतव्यं यावदुपरिमोपरिमग्रैवेयक इति।

उपरिमोपरिमग्रैवेयकासंयतसम्यग्दृष्टिप्रमाणस्यानंतरं य एकभागः शेषोऽस्ति, तस्य संख्यातखण्डे कृते तत्र बहुभागाः आनत-प्राणत मिथ्यादृष्टयो भवन्ति। शेषस्य संख्यातखण्डे कृते बहुभागाः आरणाच्युतमिथ्यादृष्टयो भवन्ति। एवं नेतव्यं यावदुपरिमोपरिमग्रैवेयक इति। अस्योपरिमोपरिमग्रैवेयकमिथ्यादृष्टिप्रमाणस्यानंतरं य

सर्व देवराशि के संख्यात खंड करने पर उनमें से बहुभागप्रमाण ज्योतिषी मिथ्यादृष्टि देव हैं। शेष एक भाग के असंख्यात खंड करने पर उनमें से बहुभाग वाणव्यन्तर मिथ्यादृष्टि देव हैं। शेष एक भाग के असंख्यात खंड करने पर उनमें से बहुभागप्रमाण भवनवासी मिथ्यादृष्टि देव हैं। शेष एक भाग के असंख्यात खंड करने पर उनमें से बहुभागप्रमाण सौधर्म और ऐशान कल्प के मिथ्यादृष्टि देव हैं। इसी प्रकार शतार और सहस्रार कल्प के मिथ्यादृष्टि देवों तक ले जाना चाहिए। शतार और सहस्रार के मिथ्यादृष्टि प्रमाण के अनन्तर जो एक भाग शेष रहे, उसके असंख्यात खंड करने पर उनमें से बहुभागप्रमाण सौधर्म और ऐशान कल्प के असंयतसम्यग्दृष्टि देव हैं। शेष एक भाग के संख्यात खंड करने पर उनमें से बहुभागप्रमाण वहीं के सम्यग्मिथ्यादृष्टि देव हैं।

शेष एक भाग के असंख्यात खंड करने पर उनमें से बहुभागप्रमाण वहीं के सासादनसम्यग्दृष्टि देव हैं। इसी प्रकार सानत्कुमार और माहेन्द्र कल्प से लेकर सहस्रार कल्प तक ले जाना चाहिए। सहस्रार कल्प से आगे ज्योतिषी, वाणव्यन्तर और भवनवासी देवों तक यही क्रम ले जाना चाहिए पुनः भवनवासी सासादनसम्यग्दृष्टियों के प्रमाण के अनन्तर जो एक भाग शेष रहे, उसके संख्यात खंड करने पर बहुभागप्रमाण आनत और प्राणत के असंयतसम्यग्दृष्टि देव हैं। शेष एक भाग के संख्यात खंड करने पर उनमें से बहुभागप्रमाण आरण और अच्युत के असंयतसम्यग्दृष्टि देव हैं। इसी प्रकार उपरिम-उपरिम (अंतिम) ग्रैवेयक तक ले जाना चाहिए।

उपरिम-उपरिम ग्रैवेयक असंयतसम्यग्दृष्टियों के प्रमाण आने के अनन्तर जो एक भाग शेष रहे, उसके संख्यात खंड करने पर बहुभागप्रमाण आनत और प्राणत के मिथ्यादृष्टि देव हैं। शेष एक भाग के संख्यात खंड करने पर उनमें से बहुभाग आरण और अच्युत के मिथ्यादृष्टि देव हैं। इसी प्रकार उपरिम-उपरिम ग्रैवेयक तक ले जाना चाहिए। इन उपरिम-उपरिम ग्रैवेयक के मिथ्यादृष्टि प्रमाण के अनन्तर जो एक भाग शेष रहे, उसके संख्यात खंड करने पर बहुभाग अनुदिश के असंख्यात सम्यग्दृष्टि होते हैं। शेष के असंख्यात खंड करने पर बहुभाग विजय, वैजयन्त, जयन्त और अपराजित इन चार अनुत्तर विमानों के असंयतसम्यग्दृष्टि

एकभागः शेषः तस्यैकभागस्य संख्यातखण्डे कृते बहुभागाः अनुदिशासंयतसम्यग्दृष्टयो भवन्ति। शेषस्यासंख्यातखण्डे कृते बहुभागाः विजय-वैजयंतजयंतापराजितसम्यग्दृष्टयो भवन्ति। शेषस्य संख्यातखण्डे कृते बहुभागाः आनतप्राणतसम्यग्मिथ्या-दृष्टयो भवन्ति। शेषस्य संख्यातखण्डे कृते बहुभागाः आरणाच्युत-सम्यग्मिथ्यादृष्टयो भवन्ति। एवं नेतव्यं यावदुपरिमोपरिमग्रैवेयक इति।

उपरिमोपरिमग्रैवेयकसम्यग्मिथ्यादृष्टिप्रमाणस्यानंतरं य एकभागः शेषः तस्यैकभागस्य संख्यातखण्डे कृते बहुभागाः आनतप्राणत सासादनसम्यग्दृष्टयो भवन्ति। शेषस्य संख्यातखण्डे कृते बहुभागाः आरणाच्युतसासादनसम्यग्दृष्टयो भवन्ति। एवं नेतव्यं यावदुपरिममध्यमग्रैवेयकसासादनसम्यग्दृष्टिः इति। एवं उपरिममध्यमग्रैवेयकसासादनसम्यग्दृष्टिप्रमाणस्यानंतरं य एकभागः शेषस्तस्यैकभागस्य असंख्यातखण्डे कृते तत्र बहुभागाः उपरिमोपरिमग्रैवेयकसासादनसम्यग्दृष्टयो भवन्ति।

शेष एकखण्डप्रमाणाः सर्वार्थसिद्धिअसंयतसम्यग्दृष्टयो भवन्ति। एवं भागाभागं समाप्तम्।

एवं सौधर्मादिसर्वार्थसिद्धिपर्यंतदेवानां प्रमाणनिरूपणपरत्वेन अष्टौ सूत्राणि गतानि।

एवं पंचभिः स्थलैः एकविंशतिसूत्रैः देवगतिप्रमाणप्ररूपको
नाम चतुर्थोऽन्तराधिकारः समाप्तः।

देव हैं। शेष के संख्यात खंड करने पर बहुभागप्रमाण आनत और प्राणत के सम्यग्मिथ्यादृष्टि देव हैं। शेष एक भाग के संख्यात खंड करने पर उनमें से बहुभागप्रमाण आरण और अच्युत के सम्यग्मिथ्यादृष्टि देव हैं। इसी प्रकार उपरिम-उपरिम ग्रैवेयक तक ले जाना चाहिए। उपरिम-उपरिम ग्रैवेयक के सम्यग्मिथ्यादृष्टियों के प्रमाण के अनन्तर जो एक भाग शेष रहे, उसके संख्यात खंड करने पर उनमें से बहुभागप्रमाण आनत और प्राणत के सासादनसम्यग्दृष्टि देव हैं। शेष एक भाग के संख्यात खंड करने पर उनमें से बहुभागप्रमाण आरण और अच्युत सासादन सम्यग्दृष्टि देव हैं। इसी प्रकार उपरिम-मध्यम ग्रैवेयक के सासादनसम्यग्दृष्टियों के प्रमाण आने तक ले जाना चाहिए। उपरिम-मध्यम ग्रैवेयक के सासादनसम्यग्दृष्टि प्रमाण के अनन्तर जो एक भाग शेष रहे, उसके असंख्यात खंड करने पर उनमें से बहुभागप्रमाण उपरिम-उपरिम ग्रैवेयक के सासादनसम्यग्दृष्टि देव हैं। शेष एक खंडप्रमाण सर्वार्थसिद्धि के असंयतसम्यग्दृष्टि देव हैं। इस प्रकार भागाभाग समाप्त हुआ।

इस प्रकार सौधर्म स्वर्ग से लेकर सर्वार्थसिद्धिपर्यन्त विमानों में रहने वाले देवों के प्रमाण के निरूपण की मुख्यता वाले आठ सूत्र पूर्ण हुए।

इस प्रकार पाँच स्थलों में इक्कीस सूत्रों के द्वारा
देवगति का प्रमाण प्ररूपण करने वाला
देवगतिप्रमाणप्ररूपक नाम का
चतुर्थ अन्तराधिकार
समाप्त हुआ।



अथ चूलिका

संप्रति चतुर्गतिजीवानां भागाभागकथनप्रकारेण उपसंहारः क्रियते। तत्र तावत् क्व क्व कियन्तो मिथ्यादृष्टयः कियन्तश्च सम्यग्दृष्टयः सन्तीति वक्ष्यन्ते।

अधुना चतुर्गतिभागाभागं ब्रवीति श्रीवीरसेनाचार्यदेवः —

तद्यथा — सर्व जीवराशेः अनन्तखण्डे कृते तत्र बहुखण्डाः एकेन्द्रिय-विकलेन्द्रियाः भवन्ति। शेषस्यानन्तखण्डे कृते बहुखण्डाः सिद्धाः भवन्ति। शेषस्यासंख्यातखण्डे कृते बहुखण्डाः पंचेन्द्रियतिर्यग-पर्याप्ताः भवन्ति। शेषस्य संख्यातखण्डे कृते बहुखण्डाः पंचेन्द्रियतिर्यक्पर्याप्तमिथ्यादृष्टयो भवन्ति। शेषस्य संख्यातखण्डे कृते ज्योतिष्कमिथ्यादृष्टयो भवन्ति। शेषस्य संख्यातखण्डे कृते बहुखण्डा वाणव्यन्तरमिथ्यादृष्टयो भवन्ति। शेषस्यासंख्यातखण्डे कृते बहुखंडाः पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिनीमिथ्यादृष्टयो भवन्ति। शेषस्यासंख्यातखण्डे कृते बहुखण्डाः भवनवासिमिथ्यादृष्टयो भवन्ति।

शेषस्यासंख्यातखण्डे कृते बहुखण्डाः प्रथमपृथिवीमिथ्यादृष्टयो भवन्ति। शेषस्यासंख्यातखण्डे कृते बहुखण्डाः सौधर्मैशानमिथ्यादृष्टयो भवन्ति। शेषस्यासंख्यातखण्डे कृते बहुखण्डाः मनुष्यापर्याप्ताः भवन्ति।

शेषस्यासंख्यातखंडे कृते द्वितीयपृथिवीमिथ्यादृष्टयो भवन्ति। शेषस्यासंख्यातखण्डे कृते बहुखण्डाः सनत्कुमारमाहेन्द्रमिथ्यादृष्टयो भवन्ति। एवं तृतीयपृथिवी-ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर-चतुर्थपृथिवी-लांतवकापिष्ठ-पंचमपृथिवी-शुक्रमहाशुक्र-शतारसहस्रार-षष्ठपृथिवी-सप्तमपृथिवीमिथ्यादृष्टिपर्यताः नेतव्याः।

अथ चूलिका

अब चारों गतियों के जीवों के भागाभाग कथन की प्रक्रियापूर्वक उपसंहार किया जा रहा है। उनमें से कहाँ-कहाँ कितने मिथ्यादृष्टि जीव हैं और कितने सम्यग्दृष्टि हैं? यह व्याख्यान करेंगे।

अब यहाँ श्रीवीरसेनाचार्य देव चतुर्गतिभागाभाग को बताते हैं, वह इस प्रकार है —

सर्व जीवराशि के अनन्त खंड करने पर उनमें से बहुभागप्रमाण एकेन्द्रिय और विकलेन्द्रिय जीव हैं। शेष एक भाग के अनन्त खंड करने पर बहुभागप्रमाण सिद्ध हैं। शेष एक भाग के असंख्यात खंड करने पर उनमें से बहुभागप्रमाण पंचेन्द्रिय तिर्यच अपर्याप्त हैं। शेष एक भाग के संख्यात खंड करने पर उनमें से बहुभागप्रमाण पंचेन्द्रिय तिर्यच पर्याप्त मिथ्यादृष्टि हैं। शेष एक भाग के संख्यात खंड करने पर बहुभागप्रमाण ज्योतिषी मिथ्यादृष्टि देव हैं। शेष एक भाग के संख्यात खंड करने पर बहुभाग व्यन्तर मिथ्यादृष्टि हैं। शेष एक भाग के असंख्यात खंड करने पर बहुभागप्रमाण पंचेन्द्रिय तिर्यच योनिनी मिथ्यादृष्टि हैं। शेष एक भाग के असंख्यात खंड करने पर उनमें से बहुभागप्रमाण भवनवासी मिथ्यादृष्टि देव हैं। शेष एक भाग के असंख्यात खंड करने पर उनमें से बहुभागप्रमाण पहली पृथिवी के मिथ्यादृष्टि नारकी हैं। शेष एक भाग के असंख्यात खंड करने पर उनमें से बहुभागप्रमाण सौधर्म और ऐशान कल्प के मिथ्यादृष्टि देव हैं। शेष एक भाग के असंख्यात खंड करने पर उनमें से बहुभागप्रमाण मनुष्य अपर्याप्त हैं। शेष एक भाग के असंख्यात खंड करने पर उनमें से बहुभागप्रमाण दूसरी पृथिवी के मिथ्यादृष्टि नारकी हैं। शेष एक भाग के असंख्यात खंड करने पर उनमें से बहुभागप्रमाण सानत्कुमार और माहेन्द्रकल्प के मिथ्यादृष्टि देव हैं। इसी प्रकार तीसरी पृथिवी-ब्रह्म और ब्रह्मोत्तर, चौथी पृथिवी-लांतव और कापिष्ठ, पाँचवी पृथिवी-शुक्र और महाशुक्र, शतार और सहस्रार,

पुनः शेषस्यासंख्यातखण्डे कृते बहुखंडाः सौधर्मैशानसम्यग्दृष्टयो भवन्ति। शेषस्य संख्यातखंडे कृते बहुखंडाः तस्यैव सम्यग्मिथ्यादृष्टयो भवन्ति। शेषस्यासंख्यातखण्डे कृते बहुखण्डा सासादनसम्यग्दृष्टयो भवन्ति। एवं शतारसहस्रारपर्यंतं नेतव्यं।

ततः ज्योतिष्क-वाणव्यन्तर-भवनवासि-तिर्यक्-प्रथमपृथिव्यादिसप्तमपृथिवीपर्यंतं नेतव्यं।

सप्तमपृथिवीसासादनसम्यग्दृष्टिशेषभागस्य संख्यातखण्डे कृते बहुखण्डाः आनत-प्राणतासंयत-सम्यग्दृष्टयो भवन्ति। शेषस्य संख्यातखण्डे कृते बहुखण्डाः आरणाच्युतासंयतसम्यग्दृष्टयो भवन्ति। एवं नेतव्यं यावदुपरिमोपरिमग्रैवेयक असंयतसम्यग्दृष्टयः इति।

शेषस्य संख्यातखण्डे कृते बहुखण्डाः आनतप्राणतमिथ्यादृष्टयो भवन्ति। शेषस्य संख्यातखण्डे कृते बहुखण्डाः आरणाच्युतमिथ्यादृष्टयो भवन्ति। एवं नेतव्यं यावदुपरिमोपरिमग्रैवेयकमिथ्यादृष्टयः इति।

शेषस्य संख्यातखण्डे कृते बहुखण्डाः अनुदिशासंयतसम्यग्दृष्टयो भवन्ति। शेषस्यासंख्यातखंडे कृते बहुखण्डाः अनुत्तरविजयवैजयंतजयंतापराजितासंयतसम्यग्दृष्टयो भवन्ति। शेषस्य संख्यातखंडे कृते बहुखंडाः आनतप्राणतसम्यग्मिथ्यादृष्टयो भवन्ति। शेषस्य संख्यातखंडे कृते बहुखंडाः आरणाच्युतसम्यग्मिथ्यादृष्टयो भवन्ति। एवं नेतव्यं यावदुपरिमोपरिमग्रैवेयकसम्यग्मिथ्यादृष्टयो इति।

शेषस्य संख्यातखंडे कृते बहुखंडाः आनतप्राणतसासादनसम्यग्दृष्टयो भवन्ति। शेषस्य संख्यातखंडे कृते बहुखंडाः आरणाच्युतसासादनसम्यग्दृष्टयो भवन्ति। एवं नेतव्यं यावदुपरिममध्यमसासादनसम्यग्दृष्टयः इति।

शेषस्य असंख्यातखंडे कृते बहुखंडाः उपरिमोपरिमसासादनसम्यग्दृष्टयो भवन्ति। शेषस्य संख्यातखंडे

छठवीं पृथिवी और सातवीं पृथिवी के मिथ्यादृष्टियों का प्रमाण आने तक ले जाना चाहिए। सातवीं पृथिवी के मिथ्यादृष्टियों का प्रमाण आने के अनन्तर शेष एक भाग के असंख्यात खंड करने पर उनमें से बहुखंडप्रमाण सौधर्म और ऐशान कल्प के असंयतसम्यग्दृष्टियों का प्रमाण है। शेष एक भाग से संख्यात खंड पर उनमें से बहुभागप्रमाण उन्हीं सौधर्म और ऐशान कल्प के सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवों का प्रमाण है। शेष एक भाग के असंख्यात खंड करने पर उनमें से बहुभागप्रमाण सौधर्म और ऐशान कल्प के सासादनसम्यग्दृष्टि जीव हैं। इस प्रकार शतार और सहस्रार कल्प तक ले जाना चाहिए। इसके आगे ज्योतिषी, वाणव्यन्तर, भवनवासी, तिर्यच और प्रथमादि सातों पृथिवियों तक ले जाना चाहिए। सातवीं पृथिवी के सासादन सम्यग्दृष्टियों का जो एक भाग शेष रहे, उसके संख्यात खंड करने पर बहुभागप्रमाण आनत और प्राणत के असंयतसम्यग्दृष्टि जीव हैं। शेष एक भाग के संख्यात खण्ड करने पर बहुभागप्रमाण आरण और अच्युत के असंयतसम्यग्दृष्टि जीव हैं। इसी प्रकार उपरिम-उपरिम ग्रैवेयक के असंयतसम्यग्दृष्टियों के प्रमाण आने तक ले जाना चाहिए। शेष एक भाग के संख्यात खंड करने पर बहुभागप्रमाण आनत और प्राणत के मिथ्यादृष्टि देव हैं। शेष एक भाग के संख्यात खंड करने पर बहुभागप्रमाण आरण और अच्युत कल्प के मिथ्यादृष्टि देव हैं। इसी प्रकार उपरिम-उपरिम ग्रैवेयक के मिथ्यादृष्टि देवों के प्रमाण आने तक ले जाना चाहिए। शेष एक भाग के संख्यात खंड करने पर बहुभागप्रमाण अनुदिश के असंयतसम्यग्दृष्टि देव हैं। शेष एक भाग के असंख्यात खण्ड करने पर बहुभागप्रमाण विजय, वैजयंत, जयंत और अपराजित इन चार अनुत्तरों के असंयतसम्यग्दृष्टि देव हैं। शेष एक भाग के संख्यात खण्ड करने पर उनमें से बहुभागप्रमाण आनत और प्राणत के सम्यग्मिथ्यादृष्टि देव हैं। शेष एक भाग के संख्यात खंड करने पर उनमें से बहुभागप्रमाण आरण और अच्युत के सम्यग्मिथ्यादृष्टि देव हैं। इसी प्रकार उपरिम-उपरिम ग्रैवेयक के सम्यग्मिथ्यादृष्टि देवों के प्रमाण आने तक ले जाना चाहिए।

कृते बहुखंडाः सर्वार्थसिद्धिविमानवासिदेवाः भवन्ति। इमे सर्वार्थसिद्धिदेवाः सम्यग्दृष्टय एव।

शेषस्य संख्यातखण्डे कृते बहुखण्डाः मनुष्यनीमिथ्यादृष्टयो भवन्ति। शेषस्य संख्यातखण्डे कृते बहुखण्डाः मनुष्यपर्याप्तमिथ्यादृष्टयो भवन्ति। शेषस्य संख्यातखण्डे कृते बहुखण्डाः मनुष्यासंयतसम्यग्दृष्टयो भवन्ति। शेषस्य संख्यातखण्डे कृते बहुखण्डाः सम्यग्मिथ्यादृष्टयो भवन्ति। शेषस्य संख्यातखण्डे कृते बहुखण्डाः सासादनसम्यग्दृष्टयो भवन्ति।

शेषस्य संख्यातखण्डे कृते बहुखण्डाः संयतासंयताः भवन्ति। शेषस्य संख्यातखण्डे कृते बहुखण्डाः प्रमत्तसंयताः भवन्ति। शेषस्य संख्यातखण्डे कृते बहुखण्डाः अप्रमत्तसंयताः भवन्ति। शेषस्य संख्यातखण्डे कृते बहुखण्डाः सयोगिकेवलिनः इति। शेषस्य संख्यातखण्डे कृते बहुखण्डाः चत्वारः क्षपकाः भवन्ति। शेषस्य संख्यातखण्डे कृते बहुखण्डाः चत्वारः उपशामकाः भवन्ति। शेषैकखण्डाः अयोगिकेवलिनः भवन्ति^१। एवं चतुर्गतिभागाभागः समाप्तः।

अधुना चतुर्गत्यपेक्षया सम्यग्दृष्टिषु क्व क्व बहुभागाधिकाः क्व क्व हीनाः इति दर्शयते —

सर्वाधिकसम्यग्दृष्टयः सौधर्मैशानयोः^२ सन्ति। ततो बहुखंडहीनाः सानत्कुमारमाहेन्द्रयोः^३, ततो हीनाः

उपरिम-उपरिम ग्रैवेयक के सम्यग्मिथ्यादृष्टि देवों के प्रमाण के अनन्तर शेष एक भाग के संख्यात खंड करने पर उनमें से बहुभागप्रमाण आनत और प्राणत के सासादनसम्यग्दृष्टि देव हैं। शेष एक भाग के संख्यात खंड करने पर उनमें से बहुभागप्रमाण आरण और अच्युत के सासादनसम्यग्दृष्टि देव हैं। इसी प्रकार उपरिम-मध्यम ग्रैवेयक के सासादनसम्यग्दृष्टि देवों का प्रमाण आने तक ले जाना चाहिए। शेष एक भाग के असंख्यात खंड करने पर उनमें से बहुभागप्रमाण उपरिम-उपरिम ग्रैवेयक के सासादनसम्यग्दृष्टि देव हैं। शेष एक भाग के संख्यात खंड करने पर उनमें से बहुभागप्रमाण सर्वार्थसिद्धि विमानवासी देव हैं।

शेष एक भाग के संख्यात खण्ड करने पर उनमें से बहुभागप्रमाण मनुष्यनी मिथ्यादृष्टि जीव हैं। शेष एक भाग के संख्यात खण्ड करने पर उनमें से बहुभागप्रमाण मनुष्य पर्याप्त मिथ्यादृष्टि जीव हैं। शेष एक भाग के संख्यात खंड करने पर उनमें से बहुभागप्रमाण मनुष्य असंयतसम्यग्दृष्टि जीव हैं। शेष एक भाग के संख्यात खंड करने पर उनमें से बहुभागप्रमाण सम्यग्मिथ्यादृष्टि मनुष्य हैं। शेष एक भाग के संख्यात खंड करने पर उनमें से बहुभागप्रमाण सासादनसम्यग्दृष्टि मनुष्य हैं।

शेष एक भाग के संख्यात खण्ड करने पर उनमें से बहुभागप्रमाण संयतासंयत मनुष्य हैं। शेष एक भाग के संख्यात खंड करने पर उनमें से बहुभागप्रमाण प्रमत्तसंयत मनुष्य हैं। शेष एक भाग के संख्यात खंड करने पर उनमें से बहुभागप्रमाण अप्रमत्तसंयत मनुष्य हैं। शेष एक भाग के संख्यात खंड करने पर उनमें से बहुभागप्रमाण सयोगिकेवलीजिन हैं। शेष एक भाग के संख्यात खंड करने पर उनमें से बहुभागप्रमाण चारों गुणस्थान के क्षपक हैं। शेष एक भाग के संख्यात खंड करने पर उनमें से बहुभागप्रमाण चारों गुणस्थान के उपशामक हैं। शेष एक खंडप्रमाण अयोगिकेवलीजिन हैं। इस प्रकार चारों गतिसम्बन्धी भागाभाग समाप्त हुआ।

अब चतुर्गति की अपेक्षा सम्यग्दृष्टियों में कहाँ-कहाँ बहुभाग अधिक संख्या है और कहाँ-कहाँ हीन हैं? यह प्रदर्शित करते हैं —

सौधर्म और ईशान स्वर्ग में सर्वाधिक सम्यग्दृष्टि जीव हैं। उससे बहुखंडहीन सानत्कुमार और माहेन्द्र

ब्रह्म-ब्रह्मोत्तरयोः^३, ततो हीना लांतवकापिष्ठयोः^४, ततो हीनाः शुक्रमहाशुक्रयोः^५, ततो हीना शतार-सहस्रारयोः^६, ततो बहुभागहीनाः ज्योतिष्कदेवेषु^७, ततो हीना वाणव्यन्तरेषु^८, ततो हीना भवनवासिदेवेषु^९, ततो हीनाः तिर्यक्षु^{१०}, ततो हीनाः प्रथमनारकपृथिव्यां^{११}, ततो हीनाः द्वितीयपृथिव्यां^{१२}, ततो हीनाः तृतीयपृथिव्यां^{१३}, ततो हीनाः चतुर्थपृथिव्यां^{१४}, ततो हीनाः पंचमपृथिव्यां^{१५}, ततो हीनाः षष्ठपृथिव्यां^{१६}, ततो हीनाः सप्तमपृथिव्यां^{१७}।

पुनश्च ततो हीनाः आनतप्राणतयोः^{१८}, ततो हीनाः आरणाच्युतयोः^{१९}, ततो हीनाः अधस्तनाधस्तन-ग्रैवेयकेषु^{२०}, ततो हीनाः अधस्तनमध्यमग्रैवेयकेषु^{२१}, ततो हीनाः अधस्तनोपरिमग्रैवेयकेषु^{२२}, ततो हीनाः मध्यमाधस्तनग्रैवेयकेषु^{२३}, ततो हीनाः मध्यममध्यमग्रैवेयकेषु^{२४}, ततो हीनाः मध्यमोपरिमग्रैवेयकेषु^{२५}, ततो हीनाः उपरिमाधस्तनग्रैवेयकेषु^{२६}, ततो हीनाः उपरिममध्यमग्रैवेयकेषु^{२७}, ततो हीनाः उपरिमोपरिमग्रैवेयकेषु^{२८}। ततो हीनाः नवानुदिशेषु^{२९}, ततो हीनाः विजयवैजयंतजयंतापराजितानुत्तरेषु^{३०}, ततो हीनाः सर्वार्थसिद्धिषु^{३१}, ततोऽपि बहुभागहीनाः एकभागमात्राः वा मनुष्येषु^{३२} इति ज्ञातव्याः।

इमानि द्वात्रिंशत् स्थानानि सम्यग्दृष्टीनां भवन्तीति।

अथवा संक्षेपेण — सर्वाधिकाः सम्यग्दृष्टयो देवगतिषु, ततो हीनाः तिर्यग्गतिषु, ततो हीना नरकगतिषु, ततोऽपि हीनाः मनुष्यगतिषु सन्तीति।

तात्पर्यमेतत्—

एतस्या गतिमार्गणायाः ज्ञानेन मध्यमरुचिशिष्याणां अग्रतनत्रयोदशमार्गणानां ज्ञानं भविष्यतीति

स्वर्ग में हैं। उससे कम ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर स्वर्ग में हैं, उससे कम लांतव-कापिष्ठ स्वर्ग में हैं, उससे कम शुक्र-महाशुक्र स्वर्ग में हैं, उससे कम शतार-सहस्रार स्वर्ग में हैं, उससे बहुभागहीन ज्योतिषी देवों में सम्यग्दृष्टि होते हैं, उससे कम वाण-व्यन्तर देवों में हैं, उससे कम भवनवासी देवों में हैं, उससे कम सम्यग्दृष्टि तिर्यचों में होते हैं, उससे कम प्रथम नरक में होते हैं, उससे कम द्वितीय नरक पृथिवी में हैं, उससे कम तृतीय नरक पृथिवी में हैं, उससे कम चतुर्थ नरक में हैं, उससे कम पंचम नरकपृथिवी में हैं, उससे कम छठी नरक पृथिवी में और उससे कम सम्यग्दृष्टि सातवीं नरकपृथिवी में पाये जाते हैं।

पुनः उससे कम सम्यग्दृष्टि जीव आनत-प्राणत स्वर्ग में होते हैं, उससे कम आरण-अच्युत स्वर्ग में हैं, उससे कम नीचे-नीचे के ग्रैवेयक विमानों में, उससे कम अधस्तन मध्यम ग्रैवेयक में, उससे कम अधस्तन उपरिम ग्रैवेयक विमानों में, उससे कम मध्यम अधस्तन ग्रैवेयकों में, उससे कम मध्यम-मध्यम ग्रैवेयकों में, उससे कम मध्यम उपरिम ग्रैवेयकों में, उससे कम उपरिम अधस्तन ग्रैवेयकों में, उससे कम उपरिम मध्यम ग्रैवेयकों में और उससे कम सम्यग्दृष्टि देवों की संख्या उपरिम-उपरिम ग्रैवेयकों में पाई जाती है।

इसी प्रकार आगे उससे कम सम्यग्दृष्टि जीव नव अनुदिश विमानों में होते हैं, उससे कम विजय-वैजयंत-जयन्त और अपराजित नामक चार अनुत्तर विमानों में तथा उससे भी कम सर्वार्थसिद्धि नामक अंतिम अनुत्तर विमान में हैं, उससे भी बहुभागहीन अथवा एक भागमात्र सम्यग्दृष्टि जीव मनुष्यों में होते हैं, ऐसा जानना चाहिए।

सम्यग्दृष्टियों के ये उपर्युक्त ३२ स्थान होते हैं।

अथवा संक्षेप से वर्णन इस प्रकार है कि देवगति में सबसे अधिक सम्यग्दृष्टि होते हैं, उससे कम तिर्यच गति में, उससे कम नरकगति में और उससे भी कम मनुष्यगति में होते हैं।

तात्पर्य यह है कि इस गतिमार्गणा के ज्ञान से मध्यमरुचि वाले शिष्यों को आगे की तेरह मार्गणाओं का

एषोऽधिकारः पठितव्यः। पुनश्च विस्तररुचिशिष्याणां प्रतिबोधनार्थं शेषत्रयोदशमार्गणानां समुदायैः
त्रयोदशाधिकाराः कथयिष्यन्ते इति।

इत्थं चतुर्भिरन्तराधिकारैः एकोनषष्टिभिः सूत्रैः चतुर्गतिप्रतिपादनं कृतं।

इति श्रीमद्भगवत्पुष्पदन्तभूतबलिविरचित-षट्खण्डागमनामसिद्धान्तग्रन्थस्य प्रथमखण्डे
तृतीयग्रन्थे द्रव्यप्रमाणानुगमप्ररूपणायां धवलाटीकाप्रमुखनानाग्रन्थाधारेण जंबूद्वीप-
रचनाप्रेरिकागणिनीज्ञानमतीविरचितायां सिद्धान्तचिन्तामणिटीकायां चतुर्गति-
प्ररूपको नाम प्रथमोऽधिकारः समाप्तः।

ज्ञान हो जाएगा, इसलिए उन्हें इस अधिकार को अवश्य पढ़ना चाहिए पुनः विस्तार रुचि वाले शिष्यों के
प्रतिबोधन हेतु शेष तेरहों मार्गणाओं के समुदायरूप से तेरह अधिकार कहेंगे।

इस प्रकार चार अन्तराधिकारों में उनसठ सूत्रों के द्वारा चारों गतियों का प्रतिपादन किया है।

इस प्रकार श्रीमान् भगवत्पुष्पदन्त और भूतबली आचार्य द्वारा विरचित षट्खण्डागम
नामक सिद्धान्त ग्रंथ के प्रथम खंड में तृतीय ग्रंथ में द्रव्यप्रमाणानुगम प्ररूपणा में
धवला टीका को प्रमुख करके तथा अन्य अनेक ग्रंथों के आधार से
जम्बूद्वीप रचना निर्माण की प्रेरिका गणिनी आर्थिका ज्ञानमती
विरचितसिद्धान्तचिन्तामणि टीका में चतुर्गतिप्ररूपक
नामक प्रथम अधिकार समाप्त हुआ।



अथ इन्द्रियमार्गणाधिकारः

तत्र तावत् इन्द्रियमार्गणानाम् द्वितीयाधिकारे स्थलत्रयेण त्रयोदशसूत्रैः व्याख्यानं क्रियते। तस्मिन्नपि प्रथमस्थले एकेन्द्रियाणां भेदप्रभेदेषु प्रमाणप्रतिपादनत्वेन “इंदियाणुवादेण” इत्यादि त्रीणि सूत्राणि। तदनु द्वितीयस्थले विकलत्रयजीवानां संख्याप्ररूपणत्वेन “वेइंदिय” इत्यादि त्रीणि सूत्राणि। ततः परं पञ्चेन्द्रियजीवभेदप्रभेदानां प्रमाणनिरूपणपरत्वेन “पंचिंदिय” इत्यादि सप्तसूत्राणि सन्ति।

संप्रति नवभेदसहितानां एकेन्द्रियाणां प्रमाणप्रतिपादनाय सूत्रावतारः क्रियते श्रीभूतबलिभट्टारकेण-
इंदियाणुवादेण एइंदिया बादरा सुहुमा पज्जत्ता अपज्जत्ता दव्वपमाणेण
केवडिया? अणंता।।७४।।

सिद्धान्तचिंतामणि टीका —

इंदियाणुवादेण — इन्द्रियानुवादेन एइंदिया-सामान्यैकेन्द्रियाः जीवाः, बादरा-बादरैकेन्द्रियाः जीवाः, सुहुमा-सूक्ष्मैकेन्द्रियाः जीवाः इमे त्रयोऽपि पज्जत्ता अपज्जत्ता — पर्याप्ताः अपर्याप्ताः भवन्ति। एवं एकेन्द्रियाणां नवभेदाः जायन्ते। तद्यथा-सामान्यैकेन्द्रियाः सामान्यैकेन्द्रियपर्याप्ताः सामान्यैकेन्द्रियापर्याप्ताः। बादरैकेन्द्रियाः बादरैकेन्द्रियपर्याप्ताः बादरैकेन्द्रियापर्याप्ताः। सूक्ष्मैकेन्द्रियाः सूक्ष्मैकेन्द्रियपर्याप्ताः सूक्ष्मैकेन्द्रियापर्याप्ताः इति। इमे नवविधा जीवाः, दव्वपमाणेण केवडिया? द्रव्यप्रमाणेन कियन्तः? इति प्रश्ने अणंता — अनन्ताः भवन्तीति।

अब इन्द्रियमार्गणा अधिकार प्रारंभ होता है।

अब इन्द्रिय मार्गणा नामक द्वितीय अधिकार में तीन स्थलों में तेरह सूत्रों के द्वारा व्याख्यान किया जा रहा है। उसमें भी प्रथम स्थल में एकेन्द्रिय जीवों के भेद-प्रभेदों में प्रमाण कथन की मुख्यता वाले “इंदियाणुवादेण” इत्यादि तीन सूत्र हैं पुनः द्वितीय स्थल में विकलत्रय जीवों की संख्या प्ररूपण करने वाले “वेइंदिय” इत्यादि तीन सूत्र हैं, उसके आगे पंचेन्द्रिय जीवों के भेद-प्रभेदों का प्रमाण निरूपण करने वाले “पंचिंदिय” इत्यादि सात सूत्र हैं।

अब नौ भेद सहित एकेन्द्रिय जीवों का प्रमाण बतलाने हेतु श्रीभूतबली भट्टारक के द्वारा सूत्र का अवतार किया जाता है —

सूत्रार्थ —

इन्द्रिय मार्गणा के अनुवाद से एकेन्द्रिय, एकेन्द्रिय पर्याप्त, एकेन्द्रिय अपर्याप्त, बादर एकेन्द्रिय, बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त, बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्त, सूक्ष्म एकेन्द्रिय, सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त और सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्त जीव द्रव्यप्रमाण की अपेक्षा कितने हैं? अनन्त हैं ।।७४।।

हिन्दी टीका — इन्द्रिय मार्गणा के अनुवाद से सामान्य एकेन्द्रिय जीव, बादर एकेन्द्रिय जीव और सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीव ये तीनों भी पर्याप्त और अपर्याप्त दोनों प्रकार के होते हैं। इस प्रकार एकेन्द्रिय जीवों के नौ भेद होते हैं। जो इस प्रकार हैं—

१. सामान्य एकेन्द्रिय जीव २. सामान्य एकेन्द्रिय पर्याप्त जीव ३. सामान्य एकेन्द्रिय अपर्याप्त ४. बादर एकेन्द्रिय ५. बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त ६. बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्त ७. सूक्ष्म एकेन्द्रिय ८. सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त ९. सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्त ।

सर्वत्र पृच्छापूर्व परिमाणं किमर्थं उच्यते?

नैष दोषः, मन्दबुद्धिशिष्यानुग्रहार्थत्वात्।

अधुना कालापेक्षया एषामेव जीवानां प्रमाणनिरूपणाय सूत्रमवतरति—

अणंताणंताहि ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीहि ण अवहिरंति कालेण।।७५।।

कालापेक्षया पूर्वोक्तैकेन्द्रियाः जीवाः अनन्तानंताभ्यां अवसर्पिण्युत्सर्पिणीभ्यां न अपहृताः भवन्ति।

अवसर्पिण्युत्सर्पिणीप्रमाणेन क्रियमाणः अतीतकालः अनन्तावसर्पिण्युत्सर्पिणीप्रमाणं भवति। तेन तादृशेनापि अतीतकालेन एते नव अपि राशयो न अपह्रियन्ते। एतेषां नवानां राशीनां आयापेक्षया व्ययोऽधिकोऽस्ति। तदेव स्पष्टयति—ततः पूर्वोक्तनवराशिभ्यः निर्गत्य त्रसेषूत्पद्य सम्यक्त्वं गृहीत्वा एकेन्द्रिय-द्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रिय-असंज्ञिपंचेन्द्रिय-नारक-तिर्यग्-भवनवासि-वाणव्यन्तर-ज्योतिष्क-स्त्री-नपुंसक-अश्व-गज-गन्धर्व-अनीकादि संसारिजीवानां इमान् पर्यायान् विनाशयति पुनः एतेषु प्रवेशाभावात्। ततः एते नवापि राशयः व्ययरूपेण साधिका निश्चयेन भवन्ति^१।

एवं हि व्यये सत्यपि इमे राशयः व्युच्छेदं न प्राप्नुवन्ति सरागस्वरूपेण स्थितातीतकालत्वात्।

ये सभी नौ प्रकार के एकेन्द्रिय जीव द्रव्यप्रमाण से कितने हैं? ऐसा प्रश्न होने पर उत्तर मिलता है कि वे अनन्त संख्यात प्रमाण हैं।

प्रश्न—सभी जगह पृच्छापूर्वक (प्रश्नपूर्वक) परिमाण क्यों कहा है?

उत्तर—इसमें कोई दोष वाली बात नहीं है, क्योंकि मन्दबुद्धि शिष्यों के अनुग्रह के लिए ऐसा कहा गया है।

अब काल की अपेक्षा उन्हीं एकेन्द्रिय जीवों का प्रमाण बतलाने हेतु सूत्र का अवतार होता है—

सूत्रार्थ—

कालप्रमाण की अपेक्षा पूर्वोक्त एकेन्द्रिय जीव आदि नौ राशियाँ अनन्तानंत अवसर्पिणियों और उत्सर्पिणियों के द्वारा अपहृत नहीं होती हैं।।७५।।

हिन्दी टीका—इस सूत्र में यह स्पष्ट किया गया है कि पूर्वोक्त एकेन्द्रिय जीव कालप्रमाण की अपेक्षा अनन्तानंत अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी कालों से अपहृत नहीं होते हैं।

अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी कालों के प्रमाण से किया गया अतीतकाल अनंत अवसर्पिणी-उत्सर्पिणी प्रमाण होता है। इस प्रकार के भी उस अतीतकाल के द्वारा ये नौ राशियाँ अपहृत नहीं होती हैं। इन नवों राशियों का आय की अपेक्षा व्यय अधिक है। इसी बात को स्पष्ट करते हैं—

उन पूर्वोक्त नौ राशियों में से निकलकर त्रस जीवों में उत्पन्न होकर सम्यक्त्व को ग्रहण करके जिन संसारी जीवों ने एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, असंज्ञी पंचेन्द्रिय, नारकी, तिर्यच, भवनवासी, वाणव्यन्तर, ज्योतिषी, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, घोड़ा, हाथी, गन्धर्व और अनीक आदि संसारी जीवों की इन पर्यायों का नाश कर दिया है वे पुनः इन पर्यायों में प्रवेश नहीं करते हैं। इसलिए ये सभी नौ राशियाँ निश्चित ही व्ययरूप से अधिक हैं।

इस प्रकार इन नौ राशियों के व्ययरूप से अधिक होने पर भी राशियाँ कभी भी व्युच्छेद को प्राप्त नहीं होती हैं, क्योंकि पूर्वकाल से ही वे सरागस्वरूप से स्थित हैं।

तेनातीतकालेन सर्वजीवानां व्युच्छेदः किन्न भवतीति चेत्?
नैतत्, अभव्यराशेः प्रतिपक्षभूतभव्यराशेः विच्छेदे मन्यमाने सति अभव्यत्वस्य सत्त्वनाशप्रसंगात्।
संप्रति क्षेत्रापेक्षया तेषामेव प्रमाणप्ररूपणार्थं सूत्रमवतरति —

खेत्तेण अणंताणंता लोगा॥७६॥

क्षेत्रप्रमाणेन पूर्वोक्ताः नव एकेन्द्रियजीवराशयः अनंतानंतलोकप्रमाणाः सन्ति।

तत्रापि किञ्चित् प्रतिबोधनार्थं कथयन्ति — एकेन्द्रियपर्याप्ताः जीवाः संपूर्णजीवराशेः संख्याताः भागाः।
एकेन्द्रियापर्याप्तानां प्रमाणं सर्वजीवराशेः संख्यातभागाः। बादरैकेन्द्रियाणां बादरैकेन्द्रियपर्याप्तानां
बादरएकेन्द्रियापर्याप्तानां च जीवानां प्रमाणं संपूर्णजीवराशेः असंख्यातभागाः।

सूक्ष्मैकेन्द्रियाः सर्वजीवराशेः असंख्यातभागाः। सूक्ष्मैकेन्द्रियपर्याप्ताः सर्वजीवराशेः संख्यातभागाः।
सूक्ष्मैकेन्द्रियापर्याप्ताः सर्वजीवराशेः संख्यातभागाः इति ज्ञातव्या भवन्ति।

एवं एकेन्द्रियजीवप्रमाणप्रतिपादनपरत्वेन त्रीणि सूत्राणि गतानि।

अधुना विकलत्रयाणां संख्याप्ररूपणार्थं सूत्रमवतरति —

**वेइंदिय-तीइंदिय-चउरिंदिया तस्सेव पज्जत्ता अपज्जत्ता दव्वपमाणेण
केवडिया? असंखेज्जा॥७७॥**

प्रश्न — उस अतीत काल के द्वारा सम्पूर्ण जीवराशि का व्युच्छेद क्यों नहीं होता है?

उत्तर — नहीं, क्योंकि अभव्यराशि की प्रतिपक्षभूत भव्यराशि का विच्छेद मान लेने पर अभव्यत्व की
सत्ता के नाश का प्रसंग आ जाएगा।

अब क्षेत्र की अपेक्षा उन्हीं एकेन्द्रिय जीवों का प्रमाण बतलाने हेतु सूत्र प्रगट होता है—

सूत्रार्थ —

क्षेत्रप्रमाण की अपेक्षा पूर्वोक्त एकेन्द्रिय आदि नौ जीवराशियाँ अनन्तानन्त लोकप्रमाण
हैं॥७६॥

हिन्दी टीका — क्षेत्रप्रमाण के द्वारा पूर्वोक्त नौ एकेन्द्रिय जीवराशियाँ अनन्तानन्त लोकप्रमाण हैं।

वहाँ भी किञ्चित् प्रतिबोधन के लिए कहते हैं — एकेन्द्रिय पर्याप्तक जीव सम्पूर्ण जीवराशि के
संख्यातवें भाग हैं। एकेन्द्रिय अपर्याप्तक जीवों का प्रमाण सम्पूर्ण जीवराशि के संख्यातवें भागप्रमाण है।
बादर एकेन्द्रिय जीव, बादरएकेन्द्रिय पर्याप्तक जीव और बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्तक जीवों का प्रमाण संपूर्ण
जीवराशि के असंख्यातवें भागप्रमाण है।

सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीव सम्पूर्ण जीवराशि के असंख्यातवें भागप्रमाण हैं। सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्तक जीव
सम्पूर्ण जीवराशि के संख्यातवें भागप्रमाण हैं। सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्तक जीवों की संख्या सम्पूर्ण जीवराशि
के संख्यातवें भागप्रमाण है, ऐसा जानना चाहिए।

इस प्रकार एकेन्द्रिय जीवों की संख्या बतलाने वाले तीन सूत्र पूर्ण हुए।

अब विकलत्रय जीवों की संख्या को प्ररूपित करने हेतु सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ —

द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय जीव तथा उन्हीं के पर्याप्त और अपर्याप्त जीव
द्रव्यप्रमाण की अपेक्षा कितने हैं ? असंख्यात हैं ॥७७॥

द्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रियजीवाः तेषामेव पर्याप्ताः अपर्याप्ताः द्रव्यप्रमाणेन कियन्तः? इति प्रश्ने असंख्याताः इति ज्ञातव्याः।

अस्मिन् सूत्रे अपर्याप्तपदेन अपर्याप्तनामकर्मोदयेन सहिताः लब्ध्यपर्याप्ता जीवाः गृहीतव्याः तथैव पर्याप्तपदेन पर्याप्तनामकर्मोदयसहितेन सहिताः निर्वृत्यपर्याप्ता जीवा अपि गृहीतव्याः। अत्रासंख्यातपदेन असंख्यातासंख्याताः ज्ञातव्याः।

संप्रति एषामेव विकलत्रयाणां संख्यां कालापेक्षया निरूपयत्सूत्रं अवतरति—

असंखेज्जाहि ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीहि अवहिरंति कालेण॥७८॥

एतस्य सूत्रस्यार्थः सुगमोऽस्ति।

क्षेत्रापेक्षयापि एषां प्रमाणनिरूपणाय सूत्रावतारो भवति—

खेत्तेण वेइंदिय-तीइंदिय-चउरिंदिय तस्सेव पज्जत्त-अपज्जत्तेहि पदरमवहिरदि अंगुलस्स असंखेज्जदि-भागवग्गपडिभाएण अंगुलस्स संखेज्जदिभागवग्गपडिभाएण अंगुलस्स संखेज्जदिभागवग्गपडिभाएण॥७९॥

हिन्दी टीका— इस सूत्र में विकलत्रय जीवों के लिए बताया है कि दो इन्द्रिय वाले, तीन इन्द्रिय वाले एवं चार इन्द्रिय वाले सामान्य जीव तथा उन्हीं में पर्याप्तक, अपर्याप्तक भेद वाले जीवों की संख्या द्रव्यप्रमाण की अपेक्षा कितनी है ? ऐसा प्रश्न होने पर उत्तर प्राप्त होता है कि ये असंख्यातप्रमाण हैं। इस सूत्र में 'अपर्याप्त' पद से अपर्याप्त नामकर्म के उदय वाले लब्ध्यपर्याप्तक जीवों को ग्रहण करना चाहिए। इसी प्रकार 'पर्याप्त' पद से पर्याप्तक नामकर्म के उदय से सहित निर्वृत्यपर्याप्तक जीवों का ग्रहण करना चाहिए तथा यहाँ प्रयुक्त "असंख्यात" पद से "असंख्यातासंख्यात" जानना चाहिए।

अब उन्हीं विकलत्रय जीवों की कालापेक्षा से संख्या बताने हेतु सूत्र का अवतार होता है—

सूत्रार्थ—

काल की अपेक्षा दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय और चार इन्द्रिय वाले जीव तथा उन्हीं के पर्याप्त और अपर्याप्त जीव असंख्यात अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी काल के द्वारा अपहृत होते हैं ॥७८॥

इस सूत्र का अर्थ सुगम है।

धवला की हिन्दी टीका में इस सूत्र को स्पष्ट किया है कि "यहाँ इस सूत्र में " असंखेज्जाहि" पाठ है किन्तु अर्थसंदर्भ की दृष्टि से वहाँ "असंखेज्जासंखेज्जाहि" ऐसा पाठ प्रतीत होता है। खुदबबंध खंड के इसी प्रकरण में इन्हीं जीवों की सामान्य संख्या बतलाते हुए यह सूत्र पाया जाता है— "असंखेज्जासंखेज्जहि ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीहि अवहिरंति कालेण" किन्तु धवला टीका में 'असंखेज्जाहि' पद होने से उसी के अनुसार कथन किया गया है।"

क्षेत्र की अपेक्षा इन्हीं विकलत्रय जीवों का प्रमाण बताने हेतु सूत्र अवतरित होता है—

सूत्रार्थ—

क्षेत्र की अपेक्षा दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय एवं चार इन्द्रिय जीवों के द्वारा सूच्यंगुल के असंख्यातवें भाग के वर्गरूप प्रतिभाग से जगत्प्रतर अपहृत होता है तथा उन्हीं के पर्याप्त और अपर्याप्त जीवों के द्वारा क्रमशः सूच्यंगुल के संख्यातवें भाग के वर्गरूप प्रतिभाग से और सूच्यंगुल के असंख्यातवें भाग के वर्गरूप प्रतिभाग से जगत्प्रतर अपहृत होता है ॥७९॥

क्षेत्रापेक्षया एभिर्विकलत्रयजीवैः सूच्यंगुलस्य असंख्यातभागवर्गरूपप्रतिभागेन जगत्प्रतरं अपह्रियते।
तैरेव पर्याप्तजीवैः सूच्यंगुलस्य संख्यातभागस्य वर्गरूपप्रतिभागेन तथैव तैरेवापर्याप्तजीवैः सूच्यंगुलस्य
असंख्यातभागस्य वर्गरूपप्रतिभागेन च जगत्प्रतरं अपह्रियते।

एवं विकलत्रयजीवानां प्रमाणनिरूपकत्वेन त्रीणि सूत्राणि गतानि।

संप्रति पञ्चेन्द्रियाणां संख्यानिरूपणाय सूत्रस्यावतारो भवति—

पंचिंदिय-पंचिंदियपज्जत्तएसु मिच्छाइट्ठी दव्वपमाणेण केवडिया?

असंखेज्जा।।८०।।

अत्र असंख्यातपदेन असंख्यातासंख्याताः ज्ञातव्याः। शेषं सुगमं।

कालेन एषां संख्याप्रतिपादनाय सूत्रमवतरति—

असंखेज्जासंखेज्जाहि ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीहि अवहिरंति कालेण।।८१।।

सूत्रस्यार्थः सुगमः।

क्षेत्रेण एषामेव प्रमाणनिरूपणाय सूत्रस्यावतारो भवति—

**खेत्तेण पंचिंदिय-पंचिंदियपज्जत्तएसु मिच्छाइट्ठीहि पदरमवहरिदि
अंगुलस्स असंखेज्जदि भागवग्गपडिभाएण अंगुलस्स संखेज्जदिभाग-
वग्गपडिभाएण।।८२।।**

हिन्दी टीका—क्षेत्र की अपेक्षा से इन विकलत्रय जीवों के द्वारा सूच्यंगुल के असंख्यातवें भाग के वर्गरूप प्रतिभाग से जगत्प्रतर अपहृत होता है। उन्हीं विकलेन्द्रिय पर्याप्तक जीवों के द्वारा सूच्यंगुल के संख्यातवें भाग के वर्गरूप प्रतिभाग से तथा अपर्याप्तक जीवों के द्वारा सूच्यंगुल के असंख्यातवें भाग के वर्गरूप प्रतिभाग से जगत्प्रतर अपहृत होता है।

इस प्रकार विकलत्रय जीवों का प्रमाण कथन करने वाले तीन सूत्र पूर्ण हुए।

अब पंचेन्द्रिय जीवों की संख्या निरूपण के लिए सूत्र का अवतार होता है—

सूत्रार्थ—

पंचेन्द्रिय और पंचेन्द्रिय पर्याप्त जीवों में मिथ्यादृष्टि द्रव्यप्रमाण की अपेक्षा कितने हैं? असंख्यात हैं।।८०।।

यहाँ सूत्र में 'असंख्यात' शब्द से "असंख्यातासंख्यात" जानना चाहिए। शेष अर्थ सरल है अतः विस्तृत विवेचन नहीं किया जा रहा है।

अब काल की अपेक्षा उन्हीं पंचेन्द्रिय जीवों की संख्या प्रतिपादन हेतु सूत्र अवतरित होता है—

सूत्रार्थ—

काल की अपेक्षा पंचेन्द्रिय और पंचेन्द्रिय पर्याप्त जीव असंख्यातासंख्यात अवसर्पिणियों एवं उत्सर्पिणियों के द्वारा अपहृत होते हैं।।८१।।

सूत्र का अर्थ सुगम है।

अब क्षेत्र की अपेक्षा इन्हीं पंचेन्द्रियों का प्रमाण बताने हेतु सूत्र प्रगट होता है—

सूत्रार्थ—

क्षेत्र की अपेक्षा पंचेन्द्रिय और पंचेन्द्रिय पर्याप्त जीवों में मिथ्यादृष्टियों के द्वारा सूच्यंगुल के असंख्यातवें भाग के वर्गरूप प्रतिभाग से और सूच्यंगुल के संख्यातवें भाग के वर्गरूप प्रतिभाग से जगत्प्रतर अपहृत होता है।।८२।।

एतस्य सूत्रस्यापि अर्थः सुगमो वर्तते।

संप्रति एषामेव जीवानां सासादनादिगुणस्थानेषु संख्याप्रतिपादनाय सूत्रमवतरति —

सासणसम्माइट्टिप्पहुडि जाव अजोगिकेवली ओघं॥८३॥

इमे सामान्य पंचेन्द्रियाः पर्याप्तपंचेन्द्रियाश्च जीवाः सासादनगुणस्थानादारभ्य अयोगिकेवलिपर्यन्तः गुणस्थानवत् प्रमाणाः ज्ञातव्याः।

अधुना पंचेन्द्रियापर्याप्तानां संख्यानिरूपणाय सूत्रमवतरति —

पंचिंदियअपज्जत्ता दव्वपमाणेण केवडिया? असंखेज्जा॥८४॥

एतस्य सूत्रस्यार्थः सुगमः।

कालापेक्षया क्षेत्रापेक्षया च सूत्रद्वयमवतरति —

असंखेज्जासंखेज्जाहि ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीहि अवहिरंति कालेण॥८५॥

इस सूत्र का अर्थ भी सरल है अतः विशेष कथन नहीं किया जा रहा है। अब उन्हीं पंचेन्द्रिय जीवों का सासादन आदि गुणस्थानों में प्रमाण प्रतिपादन करने हेतु सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ —

सासादन सम्यग्दृष्टि गुणस्थान से लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थान में पंचेन्द्रिय और पंचेन्द्रिय पर्याप्त जीव सामान्य प्ररूपणा के समान पत्योपम के असंख्यातवें भाग प्रमाण हैं॥८३॥

सूत्र का अभिप्राय यह है कि ये सामान्य पंचेन्द्रिय जीव तथा पर्याप्त पंचेन्द्रिय जीवों का प्रमाण सासादन गुणस्थान से प्रारंभ करके आयोगकेवली गुणस्थानपर्यन्त सभी गुणस्थानों के प्रमाण के समान ही जानना चाहिए।

विशेषार्थ — यहाँ पर सूत्र में पहुडि — प्रभृति शब्द क्रियाविशेषण है जिससे सासादनसम्यग्दृष्टि प्रभृति का अर्थ सासादनसम्यग्दृष्टि को आदि लेकर होता है। यहाँ पर पूर्व सूत्र से पंचेन्द्रिय पद की अनुवृत्ति होती है, इसलिए सम्पूर्ण गुणस्थानप्रतिपन्न जीव पंचेन्द्रिय ही होते हैं, यह अभिप्राय निकलता है।

यहाँ यह शंका होती है कि सयोगकेवली और अयोगकेवली भगवन्तों के सभी इन्द्रियाँ नष्ट हो गई हैं, इसलिए उनके पंचेन्द्रिय जाति नामकर्म की अपेक्षा सयोगकेवली और अयोगकेवलियों के पंचेन्द्रिय संज्ञा बन जाती है।

इन गुणस्थानप्रतिपन्न पंचेन्द्रिय जीवों के प्रमाण की प्ररूपणा मूलोघ प्ररूपणा के समान है क्योंकि पंचेन्द्रिय जाति को छोड़कर दूसरी जातियों में गुणस्थानप्रतिपन्न जीव नहीं पाये जाते हैं।

अब पंचेन्द्रिय अपर्याप्त जीवों की संख्यानिरूपण के लिए सूत्र का अवतार होता है —

सूत्रार्थ-

पंचेन्द्रिय अपर्याप्त जीव द्रव्यप्रमाण की अपेक्षा कितने हैं ? असंख्यात हैं ॥८४॥

इस सूत्र का अर्थ सुगम है।

अब काल की अपेक्षा और क्षेत्र की अपेक्षा उन्हीं जीवों की संख्या बताने हेतु दोसूत्रों का अवतार हो रहा है —

सूत्रार्थ —

काल की अपेक्षा पंचेन्द्रिय अपर्याप्त जीव असंख्यातासंख्यात अवसर्पिणियों और उत्सर्पिणियों के द्वारा अपहृत होते हैं॥८५॥

एतस्याप्यर्थः सुगमः।

**खेत्तेण पंचिंदियअपज्जत्तएहि पदरमवहिरदि अंगुलस्स असंखेज्जदि-
भागवग्ग-पडिभाएण।।८६।।**

इदमपि सूत्रं सुगमं। अत्र पंचेन्द्रियापर्याप्ताः लब्ध्यपर्याप्ताः एव गृहीतव्याः। एषां जीवानां मिथ्यात्वगुणस्थानमेकमेव।

अत्र किञ्चित् भागाभागं कथयिष्यते —

सर्वजीवराशेः संख्यातखण्डे कृते तत्र बहुखण्डाः सूक्ष्मैकेन्द्रियपर्याप्ताः भवन्ति। शेषस्य एकभागस्य असंख्यातलोकप्रमाणखण्डे कृते तत्र बहुखण्डाः सूक्ष्मैकेन्द्रियापर्याप्ताः भवन्ति। शेषस्य असंख्यातखण्डे कृते बहुखंडाः बादरैकेन्द्रियापर्याप्ताः भवन्ति। शेषस्यैकभागस्य अनंतखण्डे कृते बहुखण्डा बादरैकेन्द्रियपर्याप्ताः भवन्ति। शेषस्यानंतखण्डे कृते बहुखण्डाः अनिन्द्रियाः भवन्ति^१।

एषां जीवानां अंकसंदृष्ट्या उदाहरणं दीयते —

एकेन्द्रियजीवराशिः द्विपंचाशदधिकद्विशतमात्रः २५६। सूक्ष्मैकेन्द्रियराशिः चत्वारिंशदधिकद्विशतमात्रः २४०। बादरैकेन्द्रियराशिः षोडशमात्रः १६। सूक्ष्मैकेन्द्रियपर्याप्तराशिः अशीति अधिक शतमात्रः १८०। सूक्ष्मैकेन्द्रियापर्याप्तराशिः षष्टिः ६०। बादरैकेन्द्रियापर्याप्तराशिः द्वादशमात्रः १२। बादरैकेन्द्रियपर्याप्तराशिः चत्वारः ४।^२

इस सूत्र का अर्थ भी सुगम है।

सूत्रार्थ —

क्षेत्र की अपेक्षा पंचेन्द्रिय अपर्याप्त जीवों के द्वारा सूच्यंगुल के असंख्यातवें भाग के वर्गरूप प्रतिभाग से जगत्प्रतर अपहृत होता है ।।८६।।

हिन्दी टीका — इस सूत्र का अर्थ भी सरल है। यहाँ पंचेन्द्रिय अपर्याप्त जीवों में लब्ध्यपर्याप्त जीवों को ही ग्रहण करना चाहिए। इन जीवों के एक मिथ्यात्व गुणस्थान ही पाया जाता है।

यहाँ अब किञ्चित् भागाभाग को कहते हैं —

सम्पूर्ण जीवराशि के संख्यात खंड करने पर उनमें से बहुभागप्रमाण सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त जीव हैं। शेष एक भाग के असंख्यात लोकप्रमाण खंड करने पर उनमें से बहुभागप्रमाण सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्त जीव हैं। शेष एक भाग के असंख्यात खंड करने पर उनमें से बहुभागप्रमाण बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्त जीव हैं। शेष एक भाग के अनन्त खंड करने पर उनमें से बहुभागप्रमाण बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त जीव हैं। शेष एक भाग के अनन्त खंड करने पर उनमें से बहुभागप्रमाण अनिन्द्रिय जीव होते हैं।

अब अंक संदृष्टि के द्वारा इन जीवों का उदाहरण दिया जा रहा है —

एकेन्द्रिय जीवराशि दो सौ छप्पन (२५६) है। सूक्ष्म एकेन्द्रिय राशि दो सौ चालीस (२४०) है। बादर एकेन्द्रिय राशि सोलह (१६) है। सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त राशि एक सौ अस्सी (१८०) है। सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्त राशि साठ (६०) है। बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्त राशि बारह (१२) है और बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त राशि चार (४) है।

एवमेव धवलाटीकायां द्रष्टव्यो द्वीन्द्रियादिजीवानां संख्याक्रमः।

अथवा इन्द्रियानुवादेन एकेन्द्रिया मिथ्यादृष्टयोऽनन्तानन्ताः। द्वित्रिचतुरिन्द्रिया असंख्येयाः श्रेणयः, प्रतरासंख्येयभागप्रमिताः। पंचेन्द्रियेषु प्रथमगुणस्थानाः असंख्येयाः श्रेणयः, प्रतरासंख्येयभागप्रमिताः। पञ्चेन्द्रियेषु सासादनसम्यग्दृष्ट्यादयस्त्रयोदशगुणस्थानवर्तिनः सामान्योक्तसंख्याः।^१

अथवा पञ्चेन्द्रियेभ्यः चतुरिन्द्रियाः बहवः। चतुरिन्द्रियेभ्यस्त्रीन्द्रिया बहवः। त्रीन्द्रियेभ्यो द्वीन्द्रियाः बहवः। तेभ्यः एकेन्द्रियाः बहवः^२ इति।

एवं पंचेन्द्रियसामान्य-पंचेन्द्रियपर्याप्त-पंचेन्द्रियापर्याप्तानां गुणस्थानेषु संख्याप्ररूपणपरत्वेन सप्त सूत्राणि गतानि।

इति षट्खण्डागमस्य प्रथमखण्डे तृतीयग्रन्थे द्रव्यप्रमाणानुगमनाम्नि
द्वितीय प्रकरणे गणिनीज्ञानमतीकृतसिद्धान्तचिन्तामणिटीकायां
इन्द्रियमार्गणानाम् द्वितीयोऽधिकारः समाप्तः।

इसी प्रकार धवला टीका में द्वीन्द्रिय आदि जीवों का संख्याक्रम द्रष्टव्य है।

अथवा इन्द्रिय मार्गणा के अनुवाद से एकेन्द्रिय मिथ्यादृष्टि जीव अनन्तानन्त हैं। दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय जीवों की संख्या असंख्यातश्रेणी प्रमाण है। अर्थात् प्रतर के असंख्यातवें भागप्रमाण है। पंचेन्द्रिय जीवों में प्रथम गुणस्थान की असंख्यात श्रेणियाँ हैं, वे प्रतर के असंख्यातवें भागप्रमाण हैं। पंचेन्द्रियों में सासादनसम्यग्दृष्टि आदि तेरह गुणस्थानवर्ती जीवों की संख्या सामान्यरूप से कही गई है।

अथवा पंचेन्द्रिय जीवों से चार इन्द्रिय जीव अधिक हैं। चतुरिन्द्रिय जीवों से तीन इन्द्रिय जीव अधिक हैं। त्रीन्द्रिय जीवों की अपेक्षा दो इन्द्रिय जीव अधिक हैं और दो इन्द्रियों की अपेक्षा एकेन्द्रिय जीवों की संख्या बहुत अधिक है।

इस प्रकार पंचेन्द्रिय सामान्य-पंचेन्द्रिय पर्याप्त और पंचेन्द्रिय अपर्याप्त जीवों की गुणस्थानों में संख्या प्ररूपित करने वाले सात सूत्र पूर्ण हुए।

इस प्रकार षट्खण्डागम के प्रथम खंड में तृतीय पुस्तक में द्रव्यप्रमाणानुगम
नामक द्वितीय प्रकरण में गणिनी ज्ञानमती माताजी द्वारा
रचित सिद्धान्तचिन्तामणि टीका में इन्द्रियमार्गणा
नाम का द्वितीय अधिकार समाप्त हुआ।



अथ कायमार्गणाधिकारः

अथ कायमार्गणानामतृतीयाधिकारे स्थलपंचकेन षोडशभिः सूत्रैः व्याख्यानं विधीयते। तत्र तावत् प्रथमस्थले निगोदजीववर्जितस्थावरकायानां सामान्यकथनत्वेन “कायाणुवादेण” इत्यादिना एकं सूत्रं। तदनु द्वितीयस्थले बादरपृथिवीकायिकादिस्थावरसंख्यानिरूपणत्वेन “बादरपुढवि” इत्यादिसप्तसूत्राणि। ततः परं तृतीयस्थले वनस्पतिकायस्यांतर्गतनिगोदजीवसंख्याप्रतिपादनपरत्वेन “वणप्फइकाइया” इत्यादिना त्रीणि सूत्राणि। तदनंतरं चतुर्थस्थले त्रसकायमिथ्यादृष्टिसंख्याप्ररूपणपरत्वेन “तसकाइय” इत्यादिना सूत्रत्रयं। तत्पश्चात् पंचमस्थले त्रसकायिकानां सासादनादिगुणस्थानव्यवस्थासु संख्यानिरूपणत्वेन “सासण” इत्यादिना सूत्रद्वयं, इति षोडशसूत्रैः समुदायपातनिका।

संप्रति पृथिवीकायिकादिजीवानां प्रमाणनिरूपणाय सूत्रस्यावतारः क्रियते—

कायाणुवादेण पुढविकाइया आउकाइया तेउकाइया वाउकाइया
बादरपुढविकाइया बादरआउकाइया बादरतेउकाइया बादरवाउकाइया
बादरवणप्फइकाइया पत्तेयसरीरा तस्सेव अपज्जत्ता सुहुमपुढविकाइया
सुहुमआउकाइया सुहुमतेउकाइया सुहुमवाउकाइया तस्सेव पज्जत्ता अपज्जत्ता
दव्वपमाणेण केवडिया? असंखेज्जा लोगा॥८७॥

अब कायमार्गणा अधिकार प्रारम्भ होता है।

अब कायमार्गणा नाम के तृतीय अधिकार में पाँच स्थलों के द्वारा सोलह सूत्रों में व्याख्यान किया जाता है। उनमें से प्रथम स्थल में निगोदिया जीवों को छोड़कर सभी स्थावरकायिक जीवों के सामान्य कथन करने वाला “कायाणुवादेण” इत्यादि एक सूत्र है। उसके बाद द्वितीय स्थल में बादर पृथिवीकायिकादि स्थावर जीवों की संख्या निरूपण करने वाले “बादरपुढवि” इत्यादि सात सूत्र कहेंगे। उसके आगे तृतीय स्थल में वनस्पतिकाय के अन्तर्गत निगोद जीवों की संख्या को बतलाने वाले “वणप्फइकाइया” इत्यादि तीन सूत्र हैं। तदनन्तर चतुर्थ स्थल में त्रसकायिक मिथ्यादृष्टि जीवों की संख्या का प्ररूपण करने वाले “तसकाइय” इत्यादि तीन सूत्र हैं। तत्पश्चात् पंचमस्थल में त्रसकायिक जीवों के सासादन आदि गुणस्थानों की व्यवस्था में संख्या निरूपण की मुख्यता वाले “सासण” इत्यादि दो सूत्र हैं। इस प्रकार सोलह सूत्रों के द्वारा यह समुदायपातनिका हुई है।

अब पृथिवीकायिक आदि जीवों का प्रमाण निरूपण करने के लिए सूत्र का अवतार होता है—

सूत्रार्थ—

कायानुवाद से पृथिवीकायिक, अप्कायिक, तेजस्कायिक, वायुकायिक जीव तथा बादर पृथिवीकायिक, बादर अप्कायिक, बादर तेजस्कायिक, बादर वायुकायिक, बादर वनस्पतिकायिक, प्रत्येक शरीर जीव तथा इन्हीं पाँच बादरसम्बन्धी अपर्याप्त जीव, सूक्ष्म पृथिवीकायिक, सूक्ष्म अप्कायिक, सूक्ष्म तेजस्कायिक, सूक्ष्म वायुकायिक जीव तथा इन्हीं चार सूक्ष्मसम्बन्धी पर्याप्त जीव और अपर्याप्त जीव, ये सब प्रत्येक द्रव्यप्रमाण की अपेक्षा कितने हैं? असंख्यात लोकप्रमाण हैं॥८७॥

सिद्धान्तचिन्तामणि टीका — कायाणुवादेण — कायानुवादेन — कायमार्गणायां पुढविकाइया — सामान्यपृथिवीकायिका: सामान्यअप्कायिका: सामान्यतेजस्कायिका: सामान्यवायुकायिका: इमे चत्वार: भेदा: सन्ति। बादरपृथिवीकायिका: बादराप्कायिका: बादरतेजस्कायिका: बादरवायुकायिका: बादरवनस्पतिकायिका: प्रत्येकशरीरजीवा: इमे पंचभेदा: बादरजीवा:। तस्सेव अपज्जत्ता — तेषामेव पंचानां अपर्याप्ता: इमे अपि पंच भेदा: संजाता:। पुन: सुहुमपुढविकाइया — सूक्ष्मपृथिवीकायिका: सूक्ष्माप्कायिका: सूक्ष्मतेजस्कायिका: सूक्ष्मवायुकायिका: इमे चत्वार: सामान्यसूक्ष्मजीव भेदा:। तस्सेव पज्जत्ता अपज्जत्ता — तेषामेव चतुर्विधसूक्ष्मकायिकानां पर्याप्तापर्याप्तभेदै: अष्टौ भेदा:, इमे सर्वे मिलित्वा षड्विंशतिभेदा: जीवा: द्रव्यप्रमाणेन कियन्त: भवन्ति? इति प्रश्ने सति उत्तरं दीयते — असंखेज्जा लोगा — असंख्यातलोकप्रमाणा: सन्तीति ज्ञातव्यं। इतो विस्तर: — अत्र पृथिवीकाय: शरीरं येषां ते पृथिवीकाया: इति न वक्तव्यं, विग्रहगतौ विद्यमानानां जीवानां अकायित्वप्रसंगात्। अत: पृथिवीकायिकनामकर्मोदयवन्तो जीवा: पृथिवीकायिका: इति उच्यन्ते।

कस्मिन्नपि सूत्रे पृथिवीकायिकनामकर्म न कथितमस्ति इति चेत्?

नैतत्, तस्य एकेन्द्रियजातिनामकर्मणि अंतर्भूतत्वात्।

एवं सति कर्मणां संख्यानियम: सूत्रसिद्धौ न घटते?

नैतत्, सूत्रे कर्माणि अष्टौ एव अष्टचत्वारिंशदधिकशतमेवेति संख्यान्तरप्रतिषेधविधायकएवकाराभावात्।

अतो लोके अश्वगजवृकभ्रमरादीनि यावन्ति कर्मफलानि उपलभ्यन्ते कर्माण्यपि तावन्ति एव।

हिन्दी टीका — कायमार्गणा के अन्तर्गत कथन करने पर सामान्य पृथिवीकायिक, सामान्यअप्कायिक, सामान्यतेजस्कायिक और सामान्यवायुकायिक ये चार भेद हैं। बादर पृथिवीकायिक, बादरअप्कायिक, बादर तेजस्कायिक, बादर वायुकायिक, बादर वनस्पतिकायिक, प्रत्येक शरीर जीव ये बादरजीव के पाँच भेद हैं। इन्हीं पाँचों बादर अपर्याप्त जीवों के भी यही पाँच भेद होते हैं।

पुनः सूक्ष्म पृथिवीकायिक, सूक्ष्म अप्कायिक, सूक्ष्म तेजस्कायिक, सूक्ष्म वायुकायिक ये चार भेद सामान्य सूक्ष्म जीवों के होते हैं। उसमें भी चारों प्रकार के सूक्ष्मकायिक जीवों के पर्याप्त और अपर्याप्त भेदों से आठ भेद होते हैं, ये सभी मिलकर छब्बीस भेद वाले जीव द्रव्यप्रमाण से कितने होते हैं? ऐसा प्रश्न होने पर उत्तर देते हैं कि या पूर्वोक्त छब्बीस जीवराशियाँ द्रव्यप्रमाण की अपेक्षा असंख्यात लोकप्रमाण होती हैं, ऐसा जानना चाहिए।

इसी का विस्तार करते हैं —

यहाँ पर पृथिवी है काय अर्थात् शरीर जिनके, उन्हें पृथिवीकाय जीव कहते हैं, ऐसा नहीं कहना चाहिए, क्योंकि ऐसा अर्थ करने पर विग्रहगति में विद्यमान जीवों के अकायित्व का प्रसंग प्राप्त हो जाएगा अतः पृथिवीकायिक नामकर्मोदय वाले जीव पृथिवीकायिक कहलाते हैं, ऐसा अर्थ करना चाहिए।

प्रश्न — किसी भी सूत्र में पृथिवीकायिक नामकर्म का कथन नहीं आता है ?

उत्तर — नहीं, क्योंकि पृथिवीकायिक नामकर्म एकेन्द्रिय जाति नामक नामकर्म के अन्दर अन्तर्भूत रहता है।

प्रश्न — ऐसा कहने पर तो सूत्रसिद्ध कर्मों की संख्या का नियम नहीं घटेगा ?

उत्तर — ऐसा नहीं है, सूत्र में कर्म आठ ही अथवा एक सौ अड़तालीस ही नहीं हैं क्योंकि आठ या एक सौ अड़तालीस संख्या को छोड़कर दूसरी संख्याओं का प्रतिषेध करने वाला “एव” ऐसा पद सूत्र में नहीं पाया जाता है अतः लोक में घोड़ा, हाथी, वृक (भेड़िया), भौंरा आदिरूप से जितने कर्मों के फल पाये जाते हैं,

उक्तं च गोम्मटसारकर्मकाण्डे —

तं पुण अट्टविहं वा अडदालसयं असंखलोगं वा।

अनेन प्रकारेण शेषकायिकानां अपि ज्ञातव्यं। इमे पृथिवीजलाग्निवायुकायिकाः जीवाः सामान्याः कथिताः। अत्र बादरसूक्ष्मादयो भेदाः न विवक्षिताः इति।

बादरपृथिवीजलाग्निवायुकायिकाः जीवाः बादरवनस्पति कायिकप्रत्येकशरीरजीवाः इमे पंच भेदाः सन्ति। बादरशब्दस्य कोऽर्थः?

बादरनामकर्मोदयसहितपृथिवीकायिकादयो बादराः, अत्र एष एवार्थो गृहीतव्यः।

स्थूलशरीराणां जीवानां बादरत्वं किन्नोच्यते?

नैतत्, बादरैकेन्द्रियावगाहनातः सूक्ष्मैकेन्द्रियावगाहनायाः बहुत्वोपलम्भात् वेदनाक्षेत्रविधानप्रकरणे। ततः प्रतिहन्यमानशरीरो बादरः। अन्यैः पुद्गलैः अप्रतिहन्यमानशरीरो जीवः सूक्ष्मः इति गृहीतव्यम्। एकमेकं प्रति प्रत्येकं शरीरं येषां ते प्रत्येकशरीराः वनस्पतिकायिकाः जीवाः गृहीतव्याः। एतेन ज्ञायते पृथिवीकायिकादयः जीवा प्रत्येकशरीराः एव।

इमे पंचापि बादराः अपर्याप्ताः अपि गृहीतव्याः।

पुनश्च—पृथिवीजलाग्निवायुकायिकाः चत्वारः सामान्यभेदाः। एषामेव पर्याप्तापर्याप्तभेदत् अष्टविधाः भवन्ति।

कर्म भी उतने ही होते हैं।

गोम्मटसार कर्मकांड में भी कहा है —

“वह कर्म आठ प्रकार का, एक सौ अड़तालीस प्रकार का अथवा असंख्यात लोकप्रमाण भेद वाला होता है।”

इसी प्रकार शेष कायिक जीवों के विषय में भी जानना चाहिए। ये पृथिवी, जल, अग्नि, वायुकायिक जीव सामान्यरूप से कहे गये हैं। यहाँ बादर या सूक्ष्म आदि भेदों की विवक्षा नहीं है।

बादर जीवों के पृथ्वी, जल, अग्नि, वायुकायिक जीव और बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर जीव ये पाँच भेद हैं।

प्रश्न—बादर शब्द का क्या अर्थ है?

उत्तर—बादर नामकर्मोदय से सहित पृथिवीकायिक आदि जीव बादर कहलाते हैं, यहाँ यही अर्थ ग्रहण करना चाहिए।

प्रश्न—स्थूल शरीर वाले जीव बादर क्यों नहीं कहे जाते हैं?

उत्तर—नहीं, क्योंकि “वेदनाक्षेत्रविधान” से बादर एकेन्द्रियों की अवगाहना से सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीवों की अवगाहना बड़ी पाई जाती है इसलिए स्थूल शरीर वाले जीवों को बादर नहीं कह सकते हैं।

अतः जिनका शरीर प्रतिघात युक्त है, वे बादर हैं और अन्य पुद्गलों से प्रतिघातरहित जिनका शरीर है, वे सूक्ष्म जीव हैं, यह अर्थ यहाँ ग्रहण करना चाहिए।

एक-एक जीव के प्रति जिन जीवों का शरीर होता है, वे प्रत्येक शरीर वनस्पतिकायिक जीव हैं ऐसा अर्थ ग्रहण करना चाहिए। इस कथन से ज्ञात होता है कि पृथिवीकायिक आदि जीव प्रत्येक शरीर ही होते हैं।

इन पाँचों बादर जीवों को अपर्याप्तरूप में भी ग्रहण करना चाहिए।

पुनः और भी कथन इस प्रकार है — पृथिवी, जल, अग्नि और वायुकायिक ये सामान्यरूप से चार भेद हैं। इन्हीं के पर्याप्त और अपर्याप्त भेद से आठ प्रकार हो जाते हैं।

स्तोकशरीरावगाहनाभिः वर्तमाना जीवाः सूक्ष्मा इति चेत्? नैतत्, सूक्ष्मनामकर्मोदयसहितपृथिवी-कायिकादयो जीवाः सूक्ष्माः भवन्ति। पर्याप्तनामकर्मोदयेन सहिताः पर्याप्ताः, अपर्याप्तनामकर्मोदयेन सहिता अपर्याप्ताः इति।

अत्र सूत्रे प्रोक्ताः षड्विंशतिजीवराशयः द्रव्यप्रमाणेन असंख्यातलोकमात्राः भवन्ति। अत्र विशेषप्रतिपादनोपायाभावात् कालक्षेत्राभ्यां प्ररूपणा न कृता। बादरवनस्पतिकायिकप्रत्येकशरीरस्य द्वौ भेदौ स्तः — बादरनिगोदजीवानां योनिभूतशरीराः तद्विपरीतशरीराश्चेति। तत्र ये बादरनिगोदानां योनिभूतिशरीरप्रत्येकशरीरजीवाः ते बादरनिगोदप्रतिष्ठिता भण्यन्ते।

के ते?

मूलय-घूभल्लय-सूरण-गलोइ-लोगेसरपभुदओ।

उक्तं च —

बीजे जोणीभूदे, जीवो वक्कमइ सो व अण्णो वा।

जे वि य मूलादीया, ते पत्तेया पढमदाए^१॥

अस्मिन् सूत्रे बादरवनस्पतिप्रत्येकशरीराणामेव ग्रहणं कृतं, न बादरनिगोदप्रतिष्ठितानां तद् किमर्थमिति चेत्?

प्रश्न — स्तोक शरीर की अवगाहना वाले जीव सूक्ष्म संज्ञा से क्यों कहे जाते हैं?

उत्तर — ऐसा नहीं है, सूक्ष्मनामकर्म के उदय से सहित पृथिवीकायिक आदि जीव “सूक्ष्म” होते हैं। पर्याप्त नामकर्म के उदय से सहित जीव पर्याप्त कहलाते हैं तथा अपर्याप्त नामकर्म के उदय से सहित जीव अपर्याप्त कहे जाते हैं।

यहाँ सूत्र में कही गई छब्बीस जीवराशियाँ द्रव्यप्रमाण से असंख्यात लोकप्रमाण होती हैं। यहाँ पर विशेषरूप से प्रतिपादन करने का कोई उपाय नहीं पाया जाता है, इसलिए काल और क्षेत्रप्रमाण की अपेक्षा इन छब्बीस जीवराशियों की प्ररूपणा नहीं की है।

बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर के दो भेद हैं — बादर निगोद जीवों के योनिभूत शरीर और उससे विपरीत शरीर वाले जीव। उनमें जो बादर निगोद जीवों का योनिभूत शरीर है, वह प्रत्येक शरीर जीव है वे सभी बादर निगोद प्रतिष्ठित कहलाते हैं।

प्रश्न — वे कौन से जीव हैं ? अर्थात् प्रत्येक शरीर और साधारण शरीर इन दोनों जीवराशियों को छोड़कर बादरनिगोद प्रतिष्ठित जीवराशि क्या है ?

उत्तर — मूली, दूम, अदरक, सूरण, गिलोय (गुडुची या गुरवेल), लोकेश्वरप्रभा (?) आदि बादर निगोद प्रतिष्ठित हैं। यहाँ लोकेश्वरप्रभा (लोगेसर पभुदओ) का अर्थ समझ में नहीं आया है कि यह कौन सी वनस्पति का नाम है।

कहा भी है —

गाथार्थ — योनिभूत बीज में प्रधानता से वही जीव उत्पन्न होता है अथवा दूसरा कोई जीव उत्पन्न होता है। वह और जितने भी मूली आदिक सप्रतिष्ठित प्रत्येक हैं वे प्रथम अवस्था में प्रत्येक शरीर वाले ही हैं।

प्रश्न — इस सूत्र में बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर जीवों का ही ग्रहण किया है, बादर निगोद प्रतिष्ठित जीवों का नहीं, ऐसा क्यों ?

न, बादरवनस्पतिकायिकप्रत्येकशरीरजीवेषु चैव तेषामन्तर्भावात् इति।
 एवं षड्विंशतिभेदसहितानां स्थावरकायानां प्रतिपादनत्वेन एकं सूत्रं गतम्।
 संप्रति बादरपर्याप्तानामेव एषां प्रमाणप्ररूपणार्थं सूत्रमवतरति—

**बादरपुढविकाइय-बादरआउकाइय-बादरवणप्फइकाइय-पत्तेयसरीर-
 पज्जत्ता दव्वपमाणेण केवडिया? असंखेज्जा॥८८॥**

एतस्य सूत्रस्यार्थः सुगमः। अत्र 'असंख्याताः' इति सामान्यवचनेन नवानां असंख्यानां मध्ये केषां ग्रहणं? इति प्रश्ने सति अग्रे सूत्रमुच्यते।

अधुना कालक्षेत्राभ्यां एषामेव जीवानां संख्यानिर्धारणार्थं सूत्रमवतरति—

असंखेज्जासंखेज्जाहि ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीहि अवहिरंति कालेण॥८९॥

एतस्यापि सूत्रस्यार्थः सुगमः।

**खेत्तेण बादरपुढविकाइय-बादरआउकाइय-बादरवणप्फइकाइय-पत्तेयसरीर-
 पज्जत्तएहि पदरमवहिरदि अंगुलस्स असंखेज्जदिभागवग्ग-पडिभागेण॥९०॥**

उत्तर— नहीं, क्योंकि बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर जीवों में ही उनका अन्तर्भाव हो जाता है।

इस प्रकार छब्बीस भेद सहित स्थावरकायिक जीवों का प्रतिपादन करने वाला एकसूत्र पूर्ण हुआ।

अब बादर पर्याप्त जीवों के प्रमाण की प्ररूपणा करने के लिए सूत्र कहते हैं—

सूत्रार्थ—

बादर पृथिवीकायिक, बादर अप्कायिक और बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर पर्याप्त जीव द्रव्यप्रमाण की अपेक्षा कितने हैं ? असंख्यात हैं ॥८८॥

हिन्दी टीका— इस सूत्र का अर्थ सरल है। यहाँ 'असंख्यात' इस सामान्य वचन से नौ प्रकार के असंख्यातों के मध्य में कौन से असंख्यात का ग्रहण होगा ? ऐसा प्रश्न होने पर आगे का सूत्र कहा जाता है। अब काल और क्षेत्र की अपेक्षा इन जीवों की संख्या निर्धारण के लिए सूत्र अवतरित होता है—

सूत्रार्थ—

काल की अपेक्षा बादर पृथिवीकायिक पर्याप्त, बादर अप्कायिक पर्याप्त और बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर पर्याप्त जीव असंख्यातासंख्यात अवसर्पिणियों और उत्सर्पिणियों के द्वारा अपहृत होते हैं ॥८९॥

इस सूत्र का अर्थ भी सुगम है।

सूत्रार्थ—

क्षेत्र की अपेक्षा बादर पृथिवीकायिक पर्याप्त, बादर अप्कायिक पर्याप्त और बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर पर्याप्त जीवों के द्वारा सूच्यंगुल के असंख्यातवें भाग के वर्गरूप प्रतिभाग से जगत्प्रतर अपहृत होता है ॥९०॥

एत्थ अंगुलमिदि उत्ते पमाणंगुलं घेत्तव्वं। तस्य असंख्यातभागस्य यः वर्गः तेन प्रतिभागेन-भागहारेण। अत्र निमित्ते तृतीयाविभक्तिः द्रष्टव्या। एतेन अवहारकालेन बादरपृथिवीकायिकपर्याप्तादिभिः जगत्प्रतरमपहियते इति एतत् उक्तं भवति।

तात्पर्यमेतत्—अंगुलं त्रिविधं—उत्सेधांगुल-प्रमाणांगुल-आत्मांगुलभेदात्। अष्टयवानां एकं उत्सेधांगुलं भवति। पंचशतानां उत्सेधांगुलानां एकं प्रमाणांगुलं भवति। स्व-स्वसमयांगुलानां प्रमाणं आत्मांगुलं वर्तते। अत्र प्रमाणांगुलरूपं सूच्यांगुलं गृहीतव्यमस्ति, किंच द्वीपसमुद्रादीनां गणनायां एतत्प्रमाणांगुलमेव गृह्यते। एवं अस्मिन् द्रव्यप्रमाणानुगमे ग्रन्थे यत्रापि अंगुलं कथ्यते तत्रापि प्रमाणांगुलमेव ज्ञातव्यमिति।

संप्रति बादरतेजस्कायिकानां पर्याप्ताः प्रमाणनिरूपणार्थं सूत्रमवतरति—

बादरतेउपज्जत्ता दव्वपमाणेण केवडिया? असंखेज्जा। असंखेज्जा-वलियवग्गो आवलिघणस्स अंतो॥९१॥

बादरतेजस्कायिकाः पर्याप्ताः जीवा द्रव्यप्रमाणेन असंख्याताः सन्ति। एतदसंख्यातावलीवर्गरूपं, तदपि आवलीघनस्यान्तर्भूतम्। अस्यायमर्थः—प्रतरावल्याः उपरिमवर्गस्य असंख्यातभागं बादरतेजस्कायिक-पर्याप्तराशेः प्रमाणमस्ति।

हिन्दी टीका—यहाँ सूत्र में 'अंगुल' ऐसा कहने पर प्रमाणांगुल का ग्रहण करना चाहिए। उस प्रमाणांगुल के असंख्यातवर्ग भाग का जो वर्ग तद्रूप प्रतिभाग से अर्थात् भागहार इस पद में यहाँ निमित्त अर्थ में तृतीया विभक्ति जानना चाहिए। इस अवहार काल से बादर पृथिवीकायिक पर्याप्त आदि जीवों के द्वारा जगत्प्रतर अपहृत होता है, यह इस सूत्र का अभिप्राय है।

तात्पर्य यह है कि अंगुल तीन प्रकार का माना गया है—उत्सेधांगुल, प्रमाणांगुल और आत्मांगुल। आठ यव का एक उत्सेधांगुल होता है। पाँच सौ उत्सेधांगुलों का एक प्रमाणांगुल होता है और अपने-अपने अंगुल को आत्मांगुल कहते हैं।

उनमें से यहाँ प्रमाणांगुलरूप सूच्यांगुल को ग्रहण किया गया है, क्योंकि द्वीपसमुद्रादिकों की गणना में यही प्रमाणांगुल ग्रहण किया जाता है। इस प्रकार इस द्रव्यप्रमाणानुगम में जहाँ भी अंगुल का कथन किया है, वहाँ इसी अंगुल—प्रमाणांगुल को ही जानना चाहिए।

अब बादर तेजस्कायिक पर्याप्त जीवों का प्रमाण निरूपण करने हेतु सूत्र अवतरित होता है—

सूत्रार्थ—

बादर तेजस्कायिक पर्याप्त जीव द्रव्यप्रमाण की अपेक्षा कितने हैं ? असंख्यात हैं। यह असंख्यातरूप प्रमाण असंख्यात आवलियों के वर्गरूप है जो आवली के घन के भीतर आता है॥९१॥

हिन्दी टीका—बादर तेजस्कायिक पर्याप्त जीव द्रव्यप्रमाण की अपेक्षा असंख्यात हैं। यह असंख्यात आवली वर्गरूप है, वह भी आवलीघन—घनावली में अन्तर्भूत हो जाता है। इसका अर्थ यह है—प्रतरावली के उपरिम वर्ग का असंख्यातवां भाग बादर तेजस्कायिक पर्याप्त जीवों की राशि का प्रमाण है।

उक्तं च— आवलियाए वगो, आवलिया-संखभागगुणिदो दु।
तम्हा घणस्स अंतो, बादरपज्जत्ततेऊणं^१॥

पुनश्च बादरवायुकायिकपर्याप्तानां प्रमाणनिरूपणाय सूत्रत्रयस्यावताराः भवन्ति—

बादरवाउकाइयपज्जत्ता दव्वपमाणेण केवडिया? असंखेज्जा॥९२॥

एतस्यार्थः सुगमः।

असंखेज्जासंखेज्जाहि ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीहि अवहिरंति कालेण॥९३॥

एतस्याप्यर्थो पूर्व बहुधा कथितमस्ति।

खेत्तेण असंखेज्जाणि जगपदराणि लोगस्स संखेज्जदि भागो॥९४॥

एतस्यार्थः सुगमः।

उक्तं चान्यत्रापि— जगसेढीए वगो, जगसेढीसंखभागसंगुणिदो।

तम्हा घणलोगंतो, बादरपज्जत्तवाऊणं^२॥

एवं द्वितीयस्थले पृथिवीकायिकादिजीवसंख्यानिरूपणत्वेन सप्त सूत्राणि गतानि।

कहा भी है—

गाथार्थ—चूँकि आवली के असंख्यातवें भाग से आवली के वर्ग को गुणित कर देने पर बादर तेजस्कायिक पर्याप्त राशि का प्रमाण होता है, इसलिए वह प्रमाण घनावली के भीतर है।

पुनश्च बादर वायुकायिक पर्याप्त जीवों का प्रमाण बतलाने के लिए तीन सूत्रों का अवतरण होता है—

सूत्रार्थ—

बादर वायुकायिक पर्याप्त जीव द्रव्यप्रमाण की अपेक्षा कितने हैं? असंख्यात हैं॥९२॥

इस सूत्र का अर्थ सरल है, इसलिए विस्तार नहीं किया जा रहा है।

सूत्रार्थ—

काल की अपेक्षा बादर वायुकायिक पर्याप्त जीव असंख्यातासंख्यात अवसर्पिणियों और उत्सर्पिणियों के द्वारा अपहृत होते हैं॥९३॥

इस सूत्र का अर्थ भी पूर्व में कई बार कहा जा चुका है।

सूत्रार्थ—

काल की अपेक्षा बादर वायुकायिक पर्याप्त जीव असंख्यात जगत्प्रतर प्रमाण हैं, जो असंख्यात जगत्प्रतरप्रमाण लोक के संख्यातवें भाग हैं॥९४॥

इसका अर्थ सरल है। अन्यत्र भी कहा है—

गाथार्थ—चूँकि जगत्श्रेणी के वर्ग को जगत्श्रेणी के संख्यातवें भाग से गुणित करने पर बादर वायुकायिक पर्याप्त राशि आती है इसलिए उक्त प्रमाण घनलोक के भीतर आता है।

इस प्रकार द्वितीय स्थल में पृथिवीकायिक आदि जीवों की संख्या बतलाने वाले सात सूत्र पूर्ण हुए।

संप्रति वनस्पतिनिगोदानां भेदसंख्याप्ररूपणाय सूत्रमवतरति—

**वणप्फइकाइया णिगोदजीवा बादरा सुहुमा पज्जत्ता अपज्जत्ता
दव्वपमाणेण केवडिया? अणंता।।९५।।**

सूत्रस्यार्थः सुगमः। येषामनन्तानन्तजीवानामेकं चैव शरीरं भवति साधारणरूपेण ते निगोदजीवाः भण्यन्ते। इमे वनस्पतिकायिकाः चतुर्दशभेदाः सन्ति। तद्यथा— वनस्पतिकायिकजीवाः, निगोदजीवाः, वनस्पतिकायिकबादरजीवाः, वनस्पतिकायिकसूक्ष्मजीवाः, वनस्पतिकायिकबादरपर्याप्तजीवाः, वनस्पति-कायिकबादरापर्याप्तजीवाः, वनस्पतिकायिकसूक्ष्मपर्याप्तजीवाः, वनस्पतिकायिकसूक्ष्मापर्याप्तजीवाः, निगोदबादरजीवाः, निगोदसूक्ष्मजीवाः, निगोदबादरपर्याप्तजीवाः, निगोदबादरापर्याप्तजीवाः, निगोदसूक्ष्म-पर्याप्तजीवाः, निगोदसूक्ष्मापर्याप्तजीवाश्चेति इमे प्रत्येकं द्रव्यप्रमाणापेक्षया कियन्तः? इति प्रश्ने सति प्रत्युत्तरं दीयते— अनन्ताः इति।

अत्र नवविधानन्तानां मध्ये कस्य ग्रहणं? इति अग्रे उत्तरयति—

अधुना कालापेक्षया एषामेव प्रमाणनिरूपणार्थं सूत्रमवतरति—

अणंताणंताहि ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीहि ण अवहिरंति कालेण।।९६।।

अब वनस्पति निगोद जीवों की भेदसंख्या बतलाने के लिए सूत्र अवतरित होता है—

सूत्रार्थ—

वनस्पतिकायिक जीव, निगोद जीव, वनस्पतिकायिक बादरजीव, वनस्पतिकायिक सूक्ष्म जीव, वनस्पतिकायिक बादर पर्याप्त जीव, वनस्पतिकायिक बादर अपर्याप्त जीव, वनस्पतिकायिक सूक्ष्म पर्याप्त जीव, वनस्पतिकायिक सूक्ष्म अपर्याप्त जीव, निगोद बादर जीव, निगोद सूक्ष्म जीव, निगोद बादर पर्याप्त जीव, निगोद बादर अपर्याप्त जीव, निगोद सूक्ष्म पर्याप्त जीव और निगोद सूक्ष्म अपर्याप्त जीव प्रत्येक द्रव्यप्रमाण की अपेक्षा कितने हैं? अनन्त हैं।।९५।।

हिन्दी टीका— सूत्र का अर्थ सुगम है। जिन अनन्तानन्त जीवों के साधारणरूप से एक ही शरीर होता है, वे निगोदजीव कलाते हैं। इन वनस्पतिकायिक जीवों के चौदह भेद होते हैं। वे इस प्रकार हैं— १. वनस्पतिकायिक जीव २. निगोद जीव ३. वनस्पतिकायिक बादरजीव ४. वनस्पतिकायिक सूक्ष्म जीव ५. वनस्पतिकायिक बादर पर्याप्त जीव ६. वनस्पतिकायिक बादर अपर्याप्त जीव ७. वनस्पतिकायिक सूक्ष्म पर्याप्त जीव ८. वनस्पतिकायिक सूक्ष्म अपर्याप्त जीव ९. निगोद बादर जीव १०. निगोद सूक्ष्म जीव ११. निगोद बादर पर्याप्त जीव १२. निगोद बादर अपर्याप्त जीव १३. निगोद सूक्ष्म पर्याप्त जीव और १४. निगोद सूक्ष्म अपर्याप्त जीव, ये सभी प्रत्येक द्रव्यप्रमाण की अपेक्षा कितने हैं? ऐसा प्रश्न होने पर उत्तर दिया जाता है कि वे सभी अनन्त हैं।

यहाँ अनन्त शब्द से नौ प्रकार के अनन्तों में से किस अनन्त का ग्रहण किया गया है? इसका उत्तर आगे दे रहे हैं—

अब काल की अपेक्षा इन्हीं जीवों का प्रमाण बतलाने हेतु सूत्र प्रगट होता है—

सूत्रार्थ—

काल की अपेक्षा पूर्वोक्त चौदह जीवराशियाँ अनन्तानन्त अवसर्पिणियों और उत्सर्पिणियों के द्वारा अपहृत नहीं होती हैं।।९६।।

सूत्रस्यार्थः सुगमः। पूर्वोक्तचतुर्दशराशीनां अनन्तानन्तत्वमिति। किं च, प्रत्येकराशेः व्यये सत्यपि अनन्तेनापि अतीतकालेन न समाप्तिं प्राप्नुवन्ति।

संप्रति क्षेत्रेण तेषामेव प्रमाणनिरूपणपरं सूत्रमवतरति—

खेत्तेण अणंताणंता लोगा॥९७॥

सूत्रं सुगमं। अतीतकाले अवसर्पिण्युत्सर्पिणीप्रमाणेन क्रियमाणे अनंतानंताः अवसर्पिण्युत्सर्पिण्यः भवन्ति। एताभिः अनंतानंतावसर्पिण्युत्सर्पिणीभिः पूर्वोक्तचतुर्दशजीवराशयः नापह्नियन्ते इति।

एवं तृतीयस्थले वनस्पतिकायिकभेदप्रभेदसंख्यानिरूपणपरत्वेन त्रीणि सूत्राणि गतानि।

संप्रति त्रसकायिकमिथ्यादृष्टिजीवप्रमाणनिरूपणाय सूत्रमवतरति—

**तसकाइय-तसकाइयपज्जत्तएसु मिच्छाइट्ठी दव्वपमाणेण केवडिया?
असंखेज्जा॥९८॥**

सूत्रस्यार्थः सुगमः।

कालापेक्षया तेषामेव प्रमाणनिरूपणपरं सूत्रमवतरति—

असंखेज्जासंखेज्जाहि ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीहि अवहिरंतिकालेण॥९९॥

एतस्यापि अर्थः सुगमः।

सूत्र का अर्थ सुगम है। पूर्वोक्त चौदह राशियों के अनन्तानन्तत्व प्राप्त है, दूसरी बात यह है कि उनमें से प्रत्येक राशि के व्यय होने पर भी अनन्त अतीत कालों के द्वारा भी वे समाप्त नहीं होती हैं।

अब क्षेत्र की अपेक्षा उन्हीं जीवों का प्रमाण बतलाने हेतु सूत्र अवतरित होती है—

सूत्रार्थ—

ये चौदह जीवराशियाँ क्षेत्र की अपेक्षा अनन्तानन्त लोकप्रमाण हैं ॥९७॥

सूत्र का अर्थ सरल है। अतीतकाल में अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी कालों का प्रमाण करने पर वे अवसर्पिणियाँ और उत्सर्पिणियाँ अनन्तानन्त होती हैं। इन अनन्तानन्त अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी कालों से पूर्वोक्त चौदह जीवराशियाँ अपहृत नहीं होती हैं, ऐसा यहाँ अभिप्राय है।

इस प्रकार तृतीयस्थल में वनस्पतिकायिक जीवों के भेद-प्रभेदों की संख्या बताने हेतु तीन सूत्र पूर्ण हुए।

अब त्रसकायिक मिथ्यादृष्टि जीवों का प्रमाण निरूपण करने के लिए सूत्र का अवतार होता है—

सूत्रार्थ—

**त्रसकायिक और त्रसकायिक पर्याप्तों में मिथ्यादृष्टि जीव द्रव्यप्रमाण की अपेक्षा
कितने हैं ? असंख्यात हैं ॥९८॥**

सूत्र का अर्थ सुगम है अतः यहाँ विस्तृत कथन नहीं किया जा रहा है।

अब काल की अपेक्षा उन जीवों का प्रमाण निरूपण करने हेतु सूत्र प्रगट होता है—

सूत्रार्थ—

**काल की अपेक्षा त्रसकायिक और त्रसकायिक पर्याप्त मिथ्यादृष्टि जीव
असंख्यातासंख्यात अवसर्पिणियों और उत्सर्पिणियों के द्वारा अपहृत होते हैं ॥९९॥**

इस सूत्र का अर्थ भी सरल है, इसलिए यहाँ पुनः कथन नहीं किया जा रहा है।

क्षेत्रापेक्षया तेषामेव संख्यानिर्णयार्थं सूत्रावतारः क्रियते —

खेत्तेण तसकाइय-तसकाइयपज्जत्तएसु मिच्छाइट्ठीहि पदरमवहिरदि अंगुलस्स असंखेज्जदिभाग-वग्गपडिभागेण अंगुलस्स संखेज्जदिभागवग्गपडिभाएण॥१००॥

सूत्रस्यार्थः सुगमः। तात्पर्यमेतत् — प्रतरांगुलस्य असंख्यातभागेन जगत्प्रतरे भक्ते सति त्रयकायिकाः भवन्ति तथा च प्रतरांगुलस्य संख्यातभागेन जगत्प्रतरे भागे कृते सति त्रसकायिकपर्याप्ताः भवन्ति।^१

एवं चतुर्थस्थले त्रसकायिकमिथ्यादृष्टिसंख्यानिरूपणत्वेन त्रीणि सूत्राणि गतानि।

त्रसकायिकानां सासादनादिगुणस्थानेषु संख्यानिरूपणाय सूत्रावतारो भवति —

सासणसम्माइट्ठिप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि त्ति ओघं॥१०१॥

अत्र त्रसकायिक-त्रसकायिकपर्याप्ताः एव गृहीतव्याः न अपर्याप्ताः इति। शेषं सुगमं।

अधुना अपर्याप्तत्रसानां संख्यानिरूपणार्थं सूत्रमवतरति —

तसकाइयअपज्जत्ता पंचिंदियअपज्जत्ताणं भंगो॥१०२॥

क्षेत्र की अपेक्षा उन्हीं जीवों की संख्या का निर्णय करने हेतु सूत्र का अवतार हो रहा है —

सूत्रार्थ —

क्षेत्र की अपेक्षा त्रसकायिकों में मिथ्यादृष्टि जीवों के द्वारा सूच्यंगुल के असंख्यातवें भाग के वर्गरूप प्रतिभाग से और त्रसकायिक पर्याप्तों में मिथ्यादृष्टि जीवों के द्वारा सूच्यंगुल के संख्यातवें भाग के वर्गरूप प्रतिभाग से जगत्प्रतर अपहृत होता है ॥१००॥

सूत्र का अर्थ सुगम है। अर्थात् यहाँ सूत्र का तात्पर्य यह है कि प्रतरांगुल के असंख्यातवें भाग से जगत्प्रतर को विभक्त करने पर त्रसकायिक जीवों की संख्या प्राप्त होती है और प्रतरांगुल के संख्यातवें भाग से जगत्प्रतर को भाजित करने पर त्रसकायिक पर्याप्त जीवों की संख्या निकलती है।

इस प्रकार चतुर्थ स्थल में त्रसकायिक मिथ्यादृष्टि जीवों की संख्या बतलाने वाले तीन सूत्र पूर्ण हुए।

त्रसकायिक जीवों की सासादन आदि गुणस्थानों में संख्या का निरूपण करने हेतु सूत्र का अवतार होता है —

सूत्रार्थ —

सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थान से लेकर अयोगकेवली गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थान में त्रसकायिक और त्रसकायिक पर्याप्त जीव सामान्य प्ररूपणा के समान हैं ॥१०१॥

यहाँ त्रसकायिक और त्रसकायिक पर्याप्त जीवों को ही ग्रहण करना चाहिए, अपर्याप्तकों का ग्रहण नहीं करना चाहिए। शेष अर्थ सुगम है।

अब अपर्याप्त त्रस जीवों की संख्या बतलाने हेतु सूत्र का अवतार होता है —

सूत्रार्थ —

त्रसकायिक लब्ध्यपर्याप्त जीवों का प्रमाण पंचेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तकों के प्रमाण के समान है ॥१०२॥

सूत्रं सुगममेतत्।

द्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रिय-पंचेन्द्रियापर्याप्तजीवे एकत्रीकृते त्रसकायिकापर्याप्ताः भवन्ति।

एतेषां त्रसानां प्ररूपणा पंचेन्द्रियापर्याप्तप्ररूपणया समाना कथं भवति?

नैष दोषः, उभयत्र प्रतरांगुलस्य असंख्यातभागरूपं भागहारं दृष्ट्वा तथोपदेशात्। अर्थतः पुनः तयोर्विशेषः गणधरदेवैरपि न वार्यते^१।

संप्रति इन्द्रियमार्गणानां उपसंहाररूपेण भागाभागः कथयिष्यते — सर्वजीवराशेः संख्यातखण्डे कृते बहुखण्डाः सूक्ष्मनिगोदजीवपर्याप्ताः भवन्ति। शेषस्य असंख्यातखण्डे कृते बहुखण्डाः सूक्ष्मनिगोदापर्याप्ताः भवन्ति। शेषस्यासंख्यातखण्डे कृते बहुखण्डाः बादरनिगोदापर्याप्ताः भवन्ति। शेषस्यैकभागस्य अनन्ते खण्डे कृते बहुखण्डाः बादरनिगोदपर्याप्ताः भवन्ति। शेषस्यानन्तखण्डे कृते बहुखण्डाः अकायिकाः सिद्धाः भवन्ति।

अवशेषराशितः असंख्यातलोकप्रमाणं अपनीय पृथक् स्थापयित्वा पुनः शेषराशेः असंख्यातलोकेन खण्डिते कृते यः एकखण्डः आगतः तं निष्कास्य तमपि खण्डं पृथक् स्थापयित्वा पुनः यः शेषबहुभागः राशिरस्ति तेषां चतुरः समपुञ्जान् कृत्वा अपनीतपृथक् स्थापितएकखंडस्य असंख्यातलोकेन खण्डिते तत्रत्यात् बहुखण्डान् प्रथमपुंजे प्रक्षिप्ते सति सूक्ष्मवायुकायिका भवन्ति।

इस सूत्र का अर्थ भी सरल है।

द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय एवं पंचेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक जीवों को एकत्र करने पर त्रसकायिक अपर्याप्तक (लब्ध्यपर्याप्त) जीव होते हैं।

प्रश्न — इन त्रसकायिक अपर्याप्तक जीवों की प्ररूपणा पंचेन्द्रिय अपर्याप्तकों की प्ररूपणा के समान कैसे हो सकती है ?

उत्तर — यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि दोनों प्रकार के लब्ध्यपर्याप्तक जीवों का प्रमाण निकालने के लिए प्रतरांगुल के असंख्यातवें भागरूप भागहार को देखकर इस प्रकार का उपदेश दिया है। अर्थ की अपेक्षा से उन दोनों की प्ररूपणा में विशेषता है उसका निवारण गणधर देव भी नहीं कर सकते हैं।

अब उपसंहाररूप से इन्द्रियमार्गणा का भागाभाग कहते हैं —

सर्व जीवराशि के संख्यात खंड करने पर उनमें से बहुभागप्रमाण सूक्ष्म निगोद पर्याप्त जीव हैं। शेष एक भाग के असंख्यात खंड करने पर उनमें से बहुभागप्रमाण सूक्ष्म निगोद अपर्याप्त जीव हैं। शेष एक भाग के असंख्यात खंड करने पर उनमें से बहुभागप्रमाण बादर निगोद अपर्याप्त जीव हैं। शेष एक भाग के अनन्त खंड करने पर उनमें से बहुभागप्रमाण बादर निगोद पर्याप्त जीव हैं। शेष एक भाग के अनन्त खंड करने पर उनमें से बहुभागप्रमाण अकायिक जीव — सिद्ध हैं। शेष एक भागप्रमाण राशि में से असंख्यात लोकप्रमाण राशि को निकालकर पृथक् स्थापित करके पुनः शेष राशि को असंख्यात लोकप्रमाण से खंडित करके जो एक खंड आवे, उसे निकालकर और उसे भी पृथक् स्थापित करके पुनः जो शेष बहुभागराशि है, उससे चार समान पुंज करके निकाले हुए पृथक् स्थापित एक खंड को असंख्यात लोकप्रमाण से खंडित करके उनमें से बहुभागों को प्रथम पुंज में मिला देने पर सूक्ष्म वायुकायिक जीवों का प्रमाण होता है। शेष एक खंड को असंख्यात लोकप्रमाण से खंडित करके उनमें से बहुभाग को दूसरे पुंज में मिला देने पर सूक्ष्म अप्कायिक जीवों का

शैषेकखण्डस्य असंख्यातलोकेन खण्डिते सति तत्र बहुखण्डान् द्वितीयपुंजे प्रक्षिप्ते सूक्ष्माप्कायिकाः भवन्ति। शैषेकखण्डं असंख्यातलोकेन खंडयित्वा बहुखण्डस्य तृतीयपुंजे प्रक्षिप्ते सूक्ष्मपृथिवीकायिकाः भवन्ति। शैषेकखंडं चतुर्थपुंजे प्रक्षिप्ते सूक्ष्मतेजस्कायिकाः भवन्ति।

एतेभ्यः चतुर्भ्यः राशिभ्यः स्वस्वराशेः संख्यातखण्डे कृते तत्र बहुखण्डाः स्व-स्वपर्याप्तजीवानां प्रमाणं भवति। एकखण्डप्रमाणं तेषां तेषां अपर्याप्ताः भवन्ति।

पुनः पूर्वं निष्कासित-पृथक्स्थापित-असंख्यातलोकप्रमाणराशेः असंख्यातखण्डे कृते बहुखण्डाः बादरवायुकायिक-अपर्याप्ताः भवन्ति। शेषस्यासंख्यातखण्डे कृते बहुखण्डाः बादर-अप्कायिक-अपर्याप्ताः भवन्ति। शेषस्यासंख्यातखण्डे कृते बहुखण्डाः बादरपृथिवीकायिकापर्याप्ताः भवन्ति। शेषस्यासंख्यातखण्डे कृते बहुखण्डाः बादरनिगोदप्रतिष्ठिताः अपर्याप्ताः भवन्ति। शेषस्यासंख्यातखण्डे कृते बहुखण्डाः बादरवनस्पतिकायिक-अपर्याप्ताः भवन्ति। शेषस्यासंख्यातखण्डे कृते बहुखण्डाः बादर-तेजस्कायिका-पर्याप्ता भवन्ति। शेषस्यासंख्यातखण्डे कृते बहुखण्डाः बादरवायुकायिकपर्याप्ता भवन्ति।

एवमेव बादर-अप्कायिक-बादरपृथिवीकायिक-बादरनिगोदप्रतिष्ठित-बादरवनस्पतिप्रत्येकशरीरपर्याप्तानां चैव नेतव्यं।

ततः बादर वनस्पतिप्रत्येकशरीरपर्याप्तजीवानां प्रमाणस्यानंतरं यः एक भागः शेषः, तस्यासंख्यातखण्डे वृत्ते बहुखण्डाः त्रसकायिकापर्याप्ताः भवन्ति। शेषस्यासंख्यातखण्डे वृत्ते बहुखण्डाः त्रसकायिकपर्याप्तमिथ्यादृष्टयो भवन्ति। शेषस्यासंख्यातखण्डे कृते बहुखण्डाः असंयतसम्यग्दृष्टयो भवन्ति। एवं नेतव्यं यावत् संयतासंयताः इति।

प्रमाण होता है पुनः शेष एक भाग को असंख्यात लोकप्रमाण से खंडित करके उनमें से बहुभाग को तीसरे पुंज में मिला देने पर सूक्ष्म पृथिवीकायिक जीवों का प्रमाण होता है। पुनः शेष एक खंड को चौथे पुंज में मिला देने पर सूक्ष्म तेजस्कायिक जीवों का प्रमाण होता है। इन चारों राशियों में से अपनी-अपनी राशि के संख्यात खंड करने पर उनमें से बहुभागप्रमाण अपने-अपने पर्याप्त जीवों का प्रमाण होता है और एक भागप्रमाण उन-उनके अपर्याप्त जीव होते हैं। पुनः पहले निकालकर पृथक् स्थापित की हुई असंख्यात लोकप्रमाण राशि के असंख्यात खंड करने पर उनमें से बहुभागप्रमाण बादर वायुकायिक अपर्याप्त जीव होते हैं। शेष एक भाग के असंख्यात खंड करने पर उनमें से बहुभागप्रमाण बादर अप्कायिक अपर्याप्त जीव होते हैं। शेष एक भाग के असंख्यात खंड करने पर उनमें से बहुभागप्रमाण बादर पृथिवीकायिक अपर्याप्त जीव होते हैं। शेष एक भाग के असंख्यात खंड करने पर उनमें से बहुभागप्रमाण बादर पृथिवीकायिक अपर्याप्त जीव होते हैं। शेष एक भाग के असंख्यात खंड करने पर उनमें से बहुभागप्रमाण बादर निगोद-प्रतिष्ठित वनस्पति अपर्याप्त जीव होते हैं। शेष एक भाग के असंख्यात खंड करने पर उनमें से बहुभागप्रमाण बादर वनस्पतिकायिक अपर्याप्त जीव होते हैं। शेष एक भाग के असंख्यात खंड करने पर उनमें से बहुभागप्रमाण बादर तेजस्कायिक अपर्याप्त जीव होते हैं। शेष एक भाग के असंख्यात खंड करने पर उनमें से बहुभागप्रमाण बादर-वायुकायिक पर्याप्त जीव होते हैं। आगे बादर अप्कायिक, बादर पृथिवीकायिक, बादरनिगोदप्रतिष्ठित और बादर वनस्पति प्रत्येक शरीर पर्याप्त जीवों का भागाभाग इसी प्रकार ले जाना चाहिए। बादर वनस्पति प्रत्येक शरीर पर्याप्त जीवों के प्रमाण के अनन्तर जो एक भाग शेष रहे, उसके असंख्यात खंड करने पर उनमें से बहुभागप्रमाण त्रसकायिक

शेषस्यासंख्यातखण्डे कृते बहुखण्डाः बादरतेजस्कायिकपर्याप्ताः भवन्ति। शेषस्य संख्यातखण्डे कृते बहुखण्डाः प्रमत्तसंयताः भवन्ति। एवं नेतव्यं यावत् अयोगिकेवलिनः इति*।

एवं त्रसकायिकानां सासादनादिगुणस्थानव्यवस्थासंख्यानिरूपणत्वेन सूत्रद्वयं गतम्।

तात्पर्यमेतत् — अनेन भागाभागप्रकरणेन एतज्ज्ञायते यत् के के कायवन्तो जीवाः केभ्योऽधिकाः हीना वा। एवं ज्ञात्वा मनुष्यपर्यायं दुर्लभं मत्वा तस्यापेक्षयापि संयमोऽत्यधिकदुर्लभः इति निर्णय संयमे रुचिः विधातव्यो भवद्भिः।

इति षट्खण्डागमस्य प्रथमखण्डे तृतीयग्रन्थे द्रव्यप्रमाणानुगमनाम्नि द्वितीयप्रकरणे गणिनीज्ञानमतीविरचितसिद्धान्तचिन्तामणिटीकायां कायमार्गणानाम तृतीयोऽधिकारः समाप्तः।

अपर्याप्त जीव होते हैं। शेष एक भाग के असंख्यात खंड करने पर उनमें से बहुभागप्रमाण त्रसकायिक पर्याप्त मिथ्यादृष्टि जीव होते हैं। शेष एक भाग के असंख्यात खंड करने पर उनमें से बहुभागप्रमाण असंयतसम्यग्दृष्टि जीव होते हैं। इसी प्रकार संयतासंयतों का प्रमाण आने तक भागाभाग का कथन ले जाना चाहिए। शेष एक भाग के असंख्यात खंड करने पर उनमें से बहुभागप्रमाण बादर तेजस्कायिक पर्याप्त जीव हैं। शेष एक भाग के संख्यात खंड करने पर उनमें से बहुभागप्रमाण प्रमत्तसंयत जीव हैं। इसी प्रकार अयोगिकेवलियों के प्रमाण आने तक भागाभाग का कथन करना चाहिए।

इस प्रकार त्रसकायिक जीवों के सासादन आदि गुणस्थान व्यवस्था की संख्या का निरूपण करने वाले दो सूत्र पूर्ण हुए।

तात्पर्य यह है कि इस भागाभाग प्रकरण के द्वारा यह जाना जाता है कि कौन-कौन से काय वाले जीव किससे अधिक हैं अथवा किससे हीन हैं? इस प्रकार जानकर अपनी मनुष्यपर्याय को अत्यन्त दुर्लभ मानकर उसकी अपेक्षा भी संयम की प्राप्ति अत्यन्त दुर्लभ है, ऐसा निर्णय करके आप सभी को संयम में रूचि उत्पन्न करनी चाहिए।

इस प्रकार षट्खण्डागम के प्रथम खंड में तृतीय ग्रंथ में द्रव्यप्रमाणानुगम नाम के द्वितीय प्रकरण में गणिनीज्ञानमती विरचित सिद्धान्तचिन्तामणि टीका में कायमार्गणा नामक तृतीय अधिकार समाप्त हुआ।



अथ योगमार्गणाधिकारः

अथ योगमार्गणानाम-चतुर्थेऽधिकारे स्थलषट्केन एकविंशतिसूत्रैः व्याख्यानं विधीयते। तत्र तावत् प्रथमस्थले पंचमनोयोगि-त्रयवचनयोगिनां प्रमाणप्ररूपणपरत्वेन “जोगाणुवादेण” इत्यादिसूत्रत्रयं। तदनु द्वितीयस्थले शेषद्वयवचनयोगिनां संख्यानिरूपणत्वेन “वचिजोगि” इत्यादिसूत्रचतुष्टयं। ततः परं तृतीयस्थले औदारिक-औदारिकमिश्रयोगिनां संख्यानिरूपणपरत्वेन “कायजोगि” इत्यादि-सूत्रपंचकं। तत्पश्चात् चतुर्थस्थले वैक्रियिक-वैक्रियिकमिश्रयोगिनां संख्याप्रतिपादनत्वेन “वेउव्विय” इत्यादिसूत्रचतुष्टयं। तदनंतरं पंचमस्थले आहारक-आहारकमिश्रयोगिमहामुनीनां प्रमाणनिरूपणत्वेन “आहारकायजोगिसु” इत्यादिसूत्रद्वयं। पुनश्च षष्ठस्थले कर्मणकाययोगिनां प्रमाणप्रतिपादनत्वेन “कम्मइ” इत्यादिसूत्रत्रयं। इति एकविंशतिसूत्रैः योगानुवादस्य समुदायपातनिका।

अधुना पंचमनोयोगि-त्रयवचनयोगिजीवानां मिथ्यात्वगुणस्थाने प्रमाणनिरूपणाय सूत्रमवतरति —

जोगाणुवादेण पंचमणजोगि-तिणिवचिजोगीसु मिच्छाइट्ठी दव्वपमाणेण केवडिया? देवाणं संखेज्जदिभागो।।१०३।।

सिद्धान्तचिन्तामणि टीका—

योगानुवादेन पंचमणजोगि — सामान्यमनोयोगिनः सत्यमनोयोगिनः असत्यमनोयोगिनः उभयमनोयोगिनः

अब योगमार्गणाधिकार प्रारम्भ होता है।

अब योगमार्गणा नामक चतुर्थ अधिकार में छह स्थलों में इक्कीस सूत्रों के द्वारा व्याख्यान किया जा रहा है। उनमें से प्रथम स्थल में पाँच मनोयोगी तथा तीन वचनयोगी जीवों का प्रमाण बतलाने की मुख्यता वाले “जोगाणुवादेण” इत्यादि तीन सूत्र कहेंगे। उसके बाद द्वितीय स्थल में शेष दो वचनयोगी जीवों की संख्या का निरूपण करने वाले “वचिजोगि” इत्यादि चार सूत्र हैं। उसके पश्चात् तृतीयस्थल में औदारिक एवं औदारिक मिश्रकाययोगी जीवों की संख्या का कथन करने वाले “कायजोगि” इत्यादि पाँच सूत्र हैं। तत्पश्चात् चतुर्थस्थल में वैक्रियिक एवं वैक्रियिक मिश्रकाययोगी जीवों की संख्या का प्रतिपादन करने वाले “वेउव्विय” इत्यादि चार सूत्र हैं। तदनन्तर पंचमस्थल में आहारक एवं आहारक मिश्रकाययोगी महामुनियों के प्रमाण निरूपण की मुख्यता वाले “कम्मइ” इत्यादि तीन सूत्र कहेंगे। इस प्रकार योगमार्गणा के प्रारम्भ में इक्कीस सूत्रों के द्वारा समुदायपातनिका कही गई है।

अब पाँच मनोयोगी तथा तीन वचनयोगी जीवों का मिथ्यात्व गुणस्थान में प्रमाण बतलाने हेतु सूत्र अवतरित होता है—

सूत्रार्थ—

योगमार्गणा के अनुवाद से पाँच मनोयोगियों और तीन वचनयोगियों में मिथ्यादृष्टि जीव द्रव्यप्रमाण की अपेक्षा कितने हैं? देवों के संख्यातवें भाग हैं।।१०३।।

हिन्दी टीका — योगमार्गणा के अनुवाद से पाँच प्रकार के मनोयोगी जीव होते हैं — सामान्यमनोयोगी, सत्यमनोयोगी, असत्यमनोयोगी, उभयमनोयोगी और अनुभयमनोयोगी। तीन वचनयोगी हैं — सत्यवचनयोगी, असत्यवचनयोगी और उभयवचनयोगी। इन आठों प्रकार के जीवों में मिथ्यादृष्टि जीव द्रव्यप्रमाण से कितने

अनुभयमनोयोगिनश्चेति पंचमनोयोगिनः। तिण्णवचिजोगीसु-सत्यवचोयोगिनः असत्यवचोयोगिनः उभयवचनयोगिनश्चेति त्रयो वचनयोगिनः एतेषु अष्टसु मिथ्यादृष्टयः द्रव्यप्रमाणेन कियन्तः? देवानां संख्यातभागाः सन्तीति।

इमे अष्टौ योगाः संज्ञिनामेव नासंज्ञिनां। संज्ञिनामपि प्रधाना देवा एव, किंच शेषत्रयगतीनां संज्ञिनः देवानां संख्यातभागाः। तत्रापि देवेषु प्रधानः काययोगराशिः मनोवचोयोगराशिभ्यः संख्यातगुणत्वात्। ततः स्थितमेतत् एते अष्टावपि मिथ्यादृष्टिराशयः देवानां संख्यातभागा इति।

सासादनादिसंयतासंयतपर्यंतानां संख्यानिरूपणाय सूत्रमवतरति—

सासणसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव संजदासंजदा त्ति ओघं॥१०४॥

पूर्वोक्ताष्टविधयोगवतां जीवानां सासादनादिदेशसंयतपर्यंतेषु पृथक् पृथक् प्रमाणं पल्योपमस्यासंख्यातत्वं प्रति गुणस्थानवत् समानमस्ति तथापि पर्यायार्थिकनयापेक्षया एतेषु चतुर्षु गुणस्थानेषु स्थितानां उपर्युक्ताष्टयोगवतां अस्ति महान् भेदः, किंच एषां राशीनां ओघराशेः संख्यातभागत्वात्।

संप्रति एषामेव योगवतां प्रमत्तादिगुणस्थानेषु संख्यानिरूपणाय सूत्रमवतरति—

पमत्तसंजदप्पहुडि जाव सजोगिकेवलि त्ति दव्वपमाणेण केवडिया?

संखेज्जा॥१०५॥

हैं? इसका उत्तर मिलता है कि इनकी संख्या देवों की संख्या के संख्यातवें भागप्रमाण है।

ये आठों योग संज्ञी जीवों के ही होते हैं, असंज्ञीजीवों के नहीं होते हैं। संज्ञियों में भी प्रधान देव ही हैं, क्योंकि शेष तीन गति के संज्ञी जीव देवों के संख्यातवें भाग ही हैं। वहाँ देवों में भी प्रधान काययोगियों की राशि है क्योंकि काययोगियों का प्रमाण मनोयोगियों और वचनयोगियों से संख्यातगुणा है इसलिए यह निश्चित हो गया कि ये आठों ही मिथ्यादृष्टि जीवराशियाँ देवों के संख्यातवें भाग हैं।

अब सासादन गुणस्थान से लेकर संयतासंयतपर्यन्त जीवों की संख्यानिरूपण के लिए सूत्र का अवतार होता है—

सूत्रार्थ—

सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थान से लेकर संयतासंयत गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थान में पूर्वोक्त आठ योग वाले जीवों का प्रमाण सामान्यप्ररूपणा के समान पल्योपम के असंख्यातवें भाग है॥१०४॥

हिन्दी टीका— पूर्व सूत्र में कहे गये आठ प्रकार के योग वाले जीवों का सासादन गुणस्थान से लेकर देशसंयतगुणस्थानपर्यन्त पृथक्-पृथक् प्रमाण पल्योपम के असंख्यातवें भागप्रमाण प्रत्येक गुणस्थान की व्यवस्था के समान है, फिर भी पर्यायार्थिकनय की अपेक्षा इन चारों गुणस्थानों में स्थित उपर्युक्त आठों योग वाले जीवों में महान् भेद है क्योंकि ये राशियाँ ओघराशि के संख्यातवें भाग हैं।

अब इन्हीं अष्टयोगधारी जीवों की प्रमत्तादि गुणस्थानों में संख्या बताने हेतु सूत्र का अवतार होता है—

सूत्रार्थ—

प्रमत्तसंयत गुणस्थान से लेकर सयोगकेवली गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थान में पूर्वोक्त आठ जीवराशियाँ द्रव्यप्रमाण की अपेक्षा कितनी हैं? संख्यात हैं ॥१०५॥

सूत्रस्यार्थः सुगमः।

अत्र सूत्रे प्रमत्तादीनां ओघवत् संख्या कथं नोक्ता?

नैतत्, योगकालमाश्रित्य पर्यायार्थिकनयापेक्षया राशिविशेषप्रतिपादनार्थं ओघवत् नोक्तं प्रमाणं।

तदेवोच्यते — “सव्वत्थोवा सच्चमणजोगद्धा । मोचमणजोगद्धा संखेज्जगुणा । सच्चमोसमणजोगद्धा संखेज्जगुणा । असच्चमोसमणजोगद्धा संखेज्जगुणा । मणजोगद्धा विसेसाहिया । सच्चवचिजोगद्धा संखेज्जगुणा । मोसवचिजोगद्धा संखेज्जगुणा । सच्चमोसवचिजोगद्धा संखेज्जगुणा । असच्चमोसवचिजोगद्धा संखेज्जगुणा । वचिजोगद्धा विसेसाहिया । कायजोगद्धा संखेज्जगुणा त्ति^१ ।।

एवं प्रथमस्थले अष्टविधयोगवतां गुणस्थानेषु संख्यानिरूपणपरत्वेन त्रीणि सूत्राणि गतानि।

संप्रति सामान्यवचोयोगि-अनुभयवचोयोगिनां संख्यानिरूपणाय सूत्रमवतरति —

वचिजोगि-असच्चमोसवचिजोगीसु मिच्छाइट्ठी दव्वपमाणेण केवडिया?

असंखेज्जा ।। १०६ ।।

एतत्सूत्रं सुगमं।

हिन्दी टीका — सूत्र का अर्थ सरल है।

प्रश्न — यहाँ सूत्र में प्रमत्तादि गुणस्थानवर्ती जीवों की संख्या ओघवत् क्यों नहीं कही गई है?

उत्तर — नहीं, क्योंकि यहाँ योग काल का आश्रय लेकर पर्यायार्थिकनय की अपेक्षा राशिविशेष का प्रतिपादन करने के लिए ‘ओघवत्’ प्रमाण है, ऐसा नहीं कहा है।

उसी को कहते हैं — सत्यमनोयोग का काल सबसे स्तोक है। मृषामनोयोग का काल उससे संख्यातगुणा है। उभय मनोयोग का काल मृषामनोयोग के काल से संख्यातगुणा है। अनुभयमनोयोग का काल उभयमनोयोग के काल से संख्यात गुणा है। इससे मनोयोग का काल विशेष अधिक है। सत्य वचन योग का काल मनोयोग के काल से संख्यातगुणा है। मृषावचनयोग का काल सत्यवचनयोग के काल से संख्यातगुणा है। उभय वचनयोग का काल मृषा वचनयोग के काल से संख्यातगुणा है। अनुभय वचनयोग का काल उभय वचनयोग के काल से संख्यातगुणा है। वचनयोग का काल अनुभय वचनयोग के काल से विशेष अधिक है। काययोग का काल वचनयोग के काल से संख्यातगुणा है।

इस प्रकार प्रथम स्थल में आठ प्रकार के योग वाले जीवों की गुणस्थानों में संख्या का निरूपण करने वाले तीन सूत्र पूर्ण हुए ।

अब सामान्य वचनयोगी, अनुभयवचनयोगी जीवों की संख्या निरूपण करने के लिए सूत्र का कथन किया जा रहा है—

सूत्रार्थ —

वचनयोगियों और असत्यमृषा अर्थात् अनुभयवचनयोगियों में मिथ्यादृष्टि जीव द्रव्यप्रमाण की अपेक्षा कितने हैं? असंख्यात हैं ।। १०६ ।।

यह सूत्र सुगम है।

कालापेक्षया अनयोः योगवतोः संख्यानिरूपणाय सूत्रावतारो भवति—

असंखेज्जासंखेज्जाहि ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीहि अवहिरंति कालेण।।१०७।।

एतत्सूत्रमति सुगमं।

क्षेत्रापेक्षया एतयोः प्रमाणप्ररूपणाय सूत्रावतारः क्रियते—

**खेत्तेण वचिजोगि-असच्चमोसवचिजोगीसु मिच्छाइट्ठीहि पदरमवहिरदि
अंगुलस्स संखेज्जदिभागवग्ग-पडिभागेण।।१०८।।**

एतस्यापि सूत्रस्यार्थः सुगमः।

वचोयोगः असत्यमृषावचोयोगश्च द्वीन्द्रियादिउपरिमजीवसमासानां भाषापर्याप्त्या पर्याप्तानां भवति।
इमे सामान्यवचनयोगिनः असंख्याताः भवन्ति। उक्तं चान्यत्र—“वाग्योगिनश्च मिथ्यादृष्टयोऽसंख्येयाः
श्रेणयः प्रतरासंख्येयभागप्रमिताः^१।”

अधुना सासादनादिगुणस्थानेषु अनयोः योगवतोः संख्याप्रतिपादनाय सूत्रमवतरति—

सेसाणं मणजोगिभंगो।।१०९।।

अब काल की अपेक्षा इन्हीं दोनों योग वाले जीवों की संख्या निरूपण करने के लिए सूत्र का अवतार होता है—

सूत्रार्थ—

काल की अपेक्षा वचनयोगी और अनुभयवचनयोगी जीव असंख्यातासंख्यात
अवसर्पिणियों औ उत्सर्पिणियों के द्वारा अपहृत होते हैं।।१०७।।

इस सूत्र का अर्थ सरल है।

अब क्षेत्र की अपेक्षा इन्हीं दोनों योगधारियों का प्रमाण प्ररूपण करने हेतु सूत्र प्रगट होता है—

सूत्रार्थ—

क्षेत्र की अपेक्षा वचनयोगियों और अनुभय वचनयोगियों में मिथ्यादृष्टि जीवों के
द्वारा अंगुल के संख्यातवें भाग के वर्गरूप प्रतिभाग से जगत्प्रतर अपहृत होता है।।१०८।।

हिन्दी टीका—इस सूत्र का अर्थ भी सरल है।

दो इन्द्रिय से लेकर ऊपर के सम्पूर्ण जीवसमासों में भाषा पर्याप्ति से पर्याप्त हुए जीवों के वचनयोग
और अनुभयवचनयोग पाया जाता है। ये सामान्यवचनयोगी जीव असंख्यात होते हैं।

अन्यत्र भी कहा है—वचनयोगी मिथ्यादृष्टि जीवों की असंख्यात श्रेणियाँ प्रतरांगुल के असंख्यातवें
भागप्रमाण हैं।

अब सासादन आदि गुणस्थानों में इन दोनों योगवाले जीवों की संख्या प्रतिपादन हेतु सूत्र अवतरित हो रहा है—

सूत्रार्थ—

सासादनसम्यग्दृष्टि आदि शेष गुणस्थानवर्ती वचनयोगी और अनुभव वचनयोगी
जीव सासादन सम्यग्दृष्टि आदि मनोयोगिराशि के समान हैं।।१०९।।

सासादनसम्यग्दृष्टि-आदिशेषगुणस्थानवर्तिनः सामान्यवचनयोगिनः असत्यमृषावचनयोगिनश्च सासादनादिमनोयोगिसमानाः सन्ति।

एवं द्वितीयस्थले वचनयोगिनां प्रमाणप्ररूपणपरत्वेन सूत्रचतुष्टयं गतम्।

अधुना सामान्यकाययोगि-औदारिककाययोगिनोः मिथ्यादृष्टिप्रमाणनिरूपणार्थं सूत्रमवतरति —

कायजोगि-ओरालियकायजोगीसु मिच्छाइट्टी ओघं॥११०॥

सूत्रं सुगमं।

एतयोः द्वयोः प्रमाणं मिथ्यादृष्टीनां ओघवत् अनन्ताः। कालेनापि पूर्ववत् अनन्तानन्तावसर्पिण्युत्सर्पिणीभिः नापह्रियन्ते। क्षेत्रेणापि अनन्तानन्ताः लोकाः इति ज्ञातव्यं भवति।

एतयोः सासादनादिगुणस्थानेषु संख्यानिरूपणाय सूत्रावतारो भवति —

सासणसम्माइट्टिप्पहुडि जाव सजोगिकेवलि त्ति जहा मणजोगिभंगो॥१११॥

सूत्रस्यार्थः सुगमः।

अधुना औदारिकमिश्रकाययोगिषु मिथ्यादृष्टिप्रमाणप्ररूपणाय सूत्रमवतरति —

ओरालियमिस्सकायजोगीसु मिच्छाइट्टी मूलोघं॥११२॥

हिन्दी टीका — सासादन सम्यग्दृष्टि आदि शेष गुणस्थानवर्ती सामान्यवचनयोगी और असत्यमृषावचनयोगी जीव सासादन आदि गुणस्थानों में स्थित मनोयोगी जीवों के समान होते हैं।

इस प्रकार द्वितीय स्थल में वचनयोगियों के प्रमाणप्ररूपण करने वाले चार सूत्र पूर्ण हुए।

अब सामान्य काययोगी और औदारिक काययोगी जीवों में से मिथ्यादृष्टियों का प्रमाण बतलाने हेतु सूत्र का अवतार होता है —

सूत्रार्थ —

काययोगियों और औदारिक काययोगियों में मिथ्यादृष्टि जीव सामान्य प्ररूपणा के समान हैं ॥११०॥

हिन्दी टीका — सूत्र का अर्थ सुगम है। इन दोनों योगधारी जीवों में मिथ्यादृष्टियों का प्रमाण ओघवत् अनन्त है। काल के द्वारा भी पूर्ववत् अनन्तानन्त अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी कालों से अपहृत नहीं होते हैं अर्थात् घटाये नहीं जा सकते हैं। क्षेत्र की अपेक्षा भी वे अनन्तानन्त लोकप्रमाण होते हैं, ऐसा जानना चाहिए।

इन दोनों योग वाले जीवों की सासादनादि गुणस्थानों में संख्या निरूपित करने हेतु सूत्र का अवतार होता है —

सूत्रार्थ —

सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थान से लेकर सयोगकेवली गुणस्थान तक काययोगी और औदारिक काययोगी जीव मनोयोगियों के समान हैं ॥१११॥

सूत्र का अर्थ सुगम है, अतः विस्तृत कथन नहीं किया जा रहा है।

अब औदारिक मिश्रकाययोगी जीवों में मिथ्यादृष्टियों का प्रमाण निरूपण करने हेतु सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ —

औदारिक मिश्रकाययोगियों में मिथ्यादृष्टि जीव ओघप्ररूपणा के समान हैं ॥११२॥

एतत्सूत्रमपि सुगमं।

सासादनगुणस्थाने औदारिकमिश्रयोगिसंख्यानिरूपणाय सूत्रावतारो भवति—

सासणसम्माइट्टी ओघं।।११३।।

सूत्रं सुगमं। सासादनसम्यग्दृष्टयः देवाः नारकाः च जीवाः तिर्यग्मनुष्येषु उपपद्यमानाः पल्योपमस्य असंख्यात-
भागमात्रा लभ्यन्ते, तेन हेतुना औदारिकमिश्रयोगिसासादनसम्यग्दृष्टीनां प्रमाणं सामान्यप्ररूपणावत् भवति।

औदारिकमिश्रकाययोगे असंयतसम्यग्दृष्टि-सयोगकेवलीनोः प्रमाणप्ररूपणाय सूत्रावतारः क्रियते—

असंजदसम्माइट्टी सजोगिकेवली दव्वपमाणेण केवडिया? संखेज्जा।।११४।।

यह सूत्र भी सरल है, अतः विशेष व्याख्यान नहीं किया जा रहा है।

विशेषार्थ— धवला टीकाकार ने यहाँ ध्रुवराशि का कथन विशेषरूप से किया है जो यहाँ भी प्रसंगोपात् प्रस्तुत है— पहले जो औदारिक काय योगियों की ध्रुवराशि कह आये हैं, उसे संख्यात से गुणित करने पर औदारिक मिश्र काययोगियों की ध्रुवराशि होती है, क्योंकि सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्तराशि पर्याप्तराशि के संख्यातवें भागमात्र है। उसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है—तिर्यच और मनुष्यों के अपर्याप्त काल से पर्याप्तकाल संख्यातगुणा है पुनः उन कालों के जोड़ से तिर्यच राशि को खंडित करके जो लब्ध आवे, उसे अपर्याप्त काल से गुणित कर देने पर औदारिकमिश्रकाययोगी जीवों की राशि होती है। इस औदारिक मिश्रकाययोगी जीवराशि को औदारिकाययोग के काल के गुणकार से गुणित कर देने पर औदारिक काययोगी राशि होती है। इसलिए औदारिककाययोगी जीवराशि से औदारिकमिश्रकाययोगी जीवराशि संख्यातगुणी हीन है, यह सिद्ध हुआ।

अब सासादन गुणस्थान में औदारिकमिश्रकाययोगी जीवों की संख्या का निरूपण करने हेतु सूत्र का अवतार हो रहा है—

सूत्रार्थ—

औदारिकमिश्रकाययोगी सासादन सम्यग्दृष्टि जीव सामान्य प्ररूपणा के समान हैं।।११३।।

हिन्दी टीका— सूत्र का अर्थ सरल है। उसमें विशेष अर्थ यह है कि सासादन सम्यग्दृष्टि देव और नारकी, जो मरकर तिर्यच और मनुष्य गति में उत्पन्न होने वाले हैं, वे पल्योपम के असंख्यातवें भागमात्र प्राप्त होते हैं, इस हेतु से औदारिकमिश्रकाययोगी सासादनसम्यग्दृष्टि जीवों का प्रमाण सामान्यप्ररूपणा के समान होता है।

अब औदारिकमिश्रकाययोग में असंयतसम्यग्दृष्टि और सयोगकेवली गुणस्थानवर्ती जीवों का प्रमाण बतलाने हेतु सूत्र का अवतार होता है—

सूत्रार्थ—

असंयतसम्यग्दृष्टि और सयोगकेवली औदारिकमिश्रकाययोगी जीव कितने हैं? संख्यात हैं।।११४।।

सूत्रं सुगमं वर्तते।

सम्यग्दृष्टिदेवाः सम्यग्दृष्टिनारकाश्च मनुष्येषु उत्पद्यमानाः संख्याताश्चैव लभ्यन्ते, मनुष्यराशेः असंख्यातत्वात्। तथा च औदारिकमिश्रकाययोगे “सुत्ताविरुद्धेण आइरिओवएसेण सजोगिकेवलिनो चत्तालीसं हवंति। तं जहा — कवाडे आरुहंता वीस २०, ओदरंता वीसेत्ति २०।१”

तात्पर्यमेतत् — कदाचित् केचित् बद्धायुष्काः मनुष्याः तिर्यक्षु उत्पद्यन्ते तर्हि भोगभूमिष्वेव, मनुष्येषु उत्पद्यन्ते तर्हि भोगभूमिष्वेव इमे स्वल्पप्रमाणाः एव। अतः अत्र टीकायां देवाः नारकाः एव गृहीताः तेऽपि मनुष्येषु एव उत्पद्यन्ते अतः संख्याताः एव। किंच मनुष्यराशेः संख्यातत्वात्। तथैव केवलिनं समुद्घाते कपाटे आरोहन्तः विंशतिप्रमाणाः अवरोहन्तः विंशतिप्रमाणा भवन्ति इति कथितं अस्ति। किंच औदारिकमिश्रयोगस्य कपाटसमुद्घाते एव संभवत्वात्।

एवं तृतीयस्थले औदारिक-औदारिकमिश्रयोगिनां संख्यानिरूपणत्वेन पंच सूत्राणि गतानि।

संप्रति वैक्रियिककाययोगे मिथ्यादृष्टिसंख्यानिरूपणाय सूत्रमवतरति —

वेउव्वियकायजोगीसु मिच्छाइट्टी दव्वपमाणेण केवडिया? देवाणं संखेज्जदिभागूणो।।११५।।

हिन्दी टीका — सूत्र का अर्थ सुगम है। उसमें विशेषता यह है कि सम्यग्दृष्टि देव और नारकी जीव मनुष्यों में उत्पन्न होते हुए संख्यात ही पाये जाते हैं। यदि ऐसा न माना जाय तो मनुष्यपर्याप्त राशि को असंख्यातपने का प्रसंग आ जाता है और औदारिकमिश्रकाययोग में कहा है —

सूत्र के अतिरुद्ध आचार्यों के उपदेशानुसार औदारिकमिश्रकाययोग में सयोगिकेवली जीव चालीस होते हैं। इसका स्पष्टीकरण — कपाट समुद्घात में आरोहण करने वाले औदारिकमिश्रकाययोगी बीस और उतरते हुए बीस होते हैं, इस प्रकार ४० की संख्या हो जाती है।

तात्पर्य यह है कि कदाचित् कोई बद्धायुष्क मनुष्य तिर्यचगति में उत्पन्न हो जाते हैं तो भोगभूमियाँ तिर्यचों में ही उत्पन्न होते हैं, यदि मनुष्यों में उत्पन्न होते हैं तो भोगभूमियों में ही उत्पन्न होते हैं, इनकी संख्या थोड़ी ही है अतः यहाँ टीका में देव और नारकी को ही ग्रहण किया है वे भी मनुष्यों में ही उत्पन्न होते हैं अतः संख्यात ही हैं क्योंकि मनुष्यराशि संख्यात ही है। इसी प्रकार केवलियों के समुद्घात काल में कपाट समुद्घात में चढ़ते हुए बीस की संख्या रहती है और उतरते हुए भी बीस की संख्या रहती है, ऐसा कहा गया है क्योंकि औदारिकमिश्रकाययोग वाले जीव कपाट समुद्घात में ही पाए जाते हैं।

इस प्रकार तृतीयस्थल में औदारिक और औदारिकमिश्रकाययोगी जीवों की संख्या का निरूपण करने वाले पाँच सूत्र पूर्ण हुए।

अब वैक्रियिककाययोग में मिथ्यादृष्टि जीवों की संख्या का निरूपण करने हेतु सूत्र का अवतार होता है —

सूत्रार्थ —

वैक्रियिककाययोगियों में मिथ्यादृष्टि जीव द्रव्यप्रमाण की अपेक्षा कितने हैं ? देवों के संख्यातभाग से हीन हैं ।।११५।।

सूत्रस्यार्थः सुगमः।

येन मनोवचनयोगराशयः देवानां संख्यातभागाः भवन्ति, तेन वैक्रियिककाययोगिमिथ्यादृष्टिराशिप्रमाणं संख्यातभागपरिहीनदेवराशिना समानं भवति इति ज्ञातव्यं।

सासादनादिगुणस्थानवर्तिनां वैक्रियिककाययोगिनां प्रमाणनिरूपणाय सूत्रमवतरति —

सासणसम्माइट्टी सम्माभिच्छाइट्टी असंजदसम्माइट्टी दव्वपमाणेण केवडिया? ओघं।।११६।।

सूत्रस्यार्थः सुगमः।

गुणस्थानप्रतिपन्नदेवानां राशेः यत्प्रमाणं स्वस्वात्मनः संख्यातभागेन न्यूनं वैक्रियिककाययोगिगुणस्थान-प्रतिपन्नस्वस्वराशेः प्रमाणं भवति।

अधुना वैक्रियिकमिश्रयोगिमिथ्यादृष्टिप्रमाणप्रतिपादनार्थं सूत्रमवतरति —

वेउव्वियमिस्सकायजोगीसु मिच्छाइट्टी दव्वपमाणेण केवडिया? देवाणं संखेज्जदि भागो।।११७।।

सूत्र का अर्थ सुगम है।

मनोयोगी जीवराशि और वचनयोगी जीवराशि देवों के संख्यातवें भाग हैं, इसलिए वैक्रियिककाययोगी मिथ्यादृष्टिराशि का प्रमाण संख्यातवें भाग कम देवराशि के समान होता है, ऐसा जानना चाहिए।

अब सासादनादि गुणस्थानवर्ती जीवों में वैक्रियिककाययोगियों का प्रमाण बतलाने हेतु सूत्र प्रगट होता है —

सूत्रार्थ —

सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि वैक्रियिक काययोगी जीव द्रव्यप्रमाण की अपेक्षा कितने हैं ? ओघप्ररूपणा के समान हैं।।११६।।

सूत्र का अर्थ सुगम है।

गुणस्थानप्रतिपन्न देवों की राशि का जो प्रमाण है, अपनी-अपनी उस राशि में से संख्यातभाग न्यून करने पर वैक्रियिककाययोगी गुणस्थानप्रतिपन्न अपनी-अपनी राशि का प्रमाण होता है।

अर्थात् गुणस्थानप्रतिपन्न देव और नारक राशि में अपनी-अपनी मनोयोगी, वचनयोगी, वैक्रियिक मिश्रकाययोगी और कर्मणकाययोगी जीवों की राशियों का भाग देने पर वहाँ जो संख्यात लब्ध आवे, उसमें एक कम करके शेष से देव और नारकियों के योगरूप अवहारकाल को खण्डित करके जो लब्ध आवे, उसे उसी देव और नारकियों के मिले हुए अवहारकाल में मिला देने पर वैक्रियिककाययोगी गुणस्थानप्रतिपन्न जीवों के अवहारकाल होते हैं।

अब वैक्रियिकमिश्रकाययोगी मिथ्यादृष्टि जीवों का प्रमाण प्रतिपादन करने हेतु सूत्र का अवतार होता है —

सूत्रार्थ —

वैक्रियिकमिश्रकाययोगियों में मिथ्यादृष्टि जीव द्रव्यप्रमाण की अपेक्षा कितने हैं? देवों के संख्यातवें भाग हैं ।।११७।।

सूत्रं सुगमं।

अस्मिन् योगे सासादन-असंयतसम्यग्दृष्टिप्रमाणनिरूपणाय सूत्रमवतरति —

सासणसम्माइट्ठी असंजदसम्माइट्ठी दव्वपमाणेण केवडिया? ओघं।।११८।।

सूत्रं सुगमं।

तिर्यग्मनुष्य-सासादन-असंयतसम्यग्दृष्टयः येन देवेषु उत्पद्यमानाः पल्योपमस्य असंख्यातभागमात्रा लभ्यन्ते तेनैतेषां प्रमाणप्ररूपणा ओघेन समाना इत्युक्तं भवति।

सूत्र का अर्थ सुगम है।

विशेषार्थ — इस सूत्र का स्पष्टीकरण करते हुए श्रीवीरसेनाचार्य ने कहा है —

संख्यात वर्ष की आयु के भीतर आवली के असंख्यातवें भागमात्र उपक्रमण काल से यदि देवराशि का संचय प्राप्त होता है, तो इससे संख्यातगुणे हीन वैक्रियिकमिश्र उपक्रमण काल के भीतर कितना मात्र राशि का संचय प्राप्त होगा, इस प्रकार त्रैराशिक करके इच्छाराशि से प्रमाणराशि के भाजित करने पर वहाँ जो संख्यात लब्ध आवेंगे, उससे देवराशिक के भाजित करने पर वहाँ एक भागप्रमाण वैक्रियिकमिश्रकाययोगी मिथ्यादृष्टियों का प्रमाण होता है।

उत्पत्ति को उपक्रमण कहते हैं और इस सहित काल को सोपक्रमकाल कहते हैं। यह सोपक्रमकाल आवली के असंख्यातवें भागमात्र है। अर्थात् देवों में यदि निरंतर जीव उत्पन्न हो तो इतने काल तक उत्पन्न होंगे इसके पश्चात् अन्तर पड़ जाएगा। वह अन्तरकाल जघन्य एक समय है और उत्कृष्ट सोपक्रमकाल से संख्यातगुणा है। देवों में संख्यात वर्ष की आयु लेकर अधिक जीव उत्पन्न होते हैं, इसलिए यहाँ उन्हीं की विवक्षा है। इस प्रकार संख्यात वर्ष के भीतर जितने उपक्रम काल होते हैं, उनमें यदि देवराशि का संचय प्राप्त होता है तो इससे संख्यातगुणे हीन मिश्रकाल में (अपर्याप्त अवस्था के सोपक्रमकाल में) कितने जीव होंगे? इस प्रकार त्रैराशिक करने पर सर्व देवराशि के संख्यातवें भागमात्र वैक्रियिकमिश्रकाययोगियों का प्रमाण होता है। यहाँ असंख्यात वर्ष की आयु वाले देवों और नारकियों की अपेक्षा वैक्रियिकमिश्रकाययोगियों के प्रमाण के नहीं लाने का कारण यह है कि उनका अनुपक्रमकाल अधिक होने से उनमें वैक्रियिकमिश्रकाययोगियों का प्रमाण अल्प होगा, इसलिये उनकी यहाँ विवक्षा नहीं की है।

इस योगमार्गणा में सासादनसम्यग्दृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीवों का प्रमाण बतलाने हेतु सूत्र प्रगट होता है —

सूत्रार्थ —

सासादनसम्यग्दृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीव द्रव्यप्रमाण की अपेक्षा कितने हैं ? ओघप्ररूपणा के समान हैं ।।११८।।

हिन्दी टीका — सूत्र का अर्थ सरल है।

चूँकि सासादनसम्यग्दृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि तिर्यच और मनुष्य देवों में उत्पन्न होते हुए पल्योपम के असंख्यातवें भागप्रमाण पाये जाते हैं, इसलिए इनके प्रमाण की प्ररूपणा ओघ अर्थात् ओघप्ररूपणा के तुल्य होती है, यह इसका अभिप्राय है।

वैक्रियिकमिश्रकाययोगि-सासादनसम्यग्दृष्टिजीवेभ्यः औदारिकमिश्रकाययोगिसम्यग्दृष्टयः असंख्यातगुणा संति।

केन कारणेन इति चेत्?

नैष दोषः, देवेषु उत्पद्यमानतिर्यक्सासादनेभ्यः तिर्यक्षु उत्पद्यमानदेवसासादनानां असंख्यातगुणत्वात्। एवं वैक्रियिक-वैक्रियिकमिश्रयोगवतां संख्याप्रतिपादनपराणि चत्वारि सूत्राणि गतानि। अधुना आहारककाययोगिमहामुनीनां संख्याप्रतिपादनाय सूत्रावतारो भवति—

आहारकायजोगीसु पमत्तसंजदा दव्वपमाणेण केवडिया? चदुवण्णं।।११९।।

सूत्रं सुगमं।

आहारकशरीरं अन्यगुणस्थानेषु नास्तीति ज्ञापनार्थं सूत्रे प्रमत्तसंयतग्रहणं कृतं।

आहारकमिश्रकाययोगवतां संख्यानिरूपणाय सूत्रावतारः क्रियते—

आहारमिस्सकायजोगीसु पमत्तसंजदा दव्वपमाणेण केवडिया? संखेज्जा।।१२०।।

सुगममेतत्।

वैक्रियिकमिश्रकाययोगी सासादनसम्यग्दृष्टि जीवों से औदारिकमिश्रकाययोगी सासादनसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणे हैं।

प्रश्न— किस कारण से ये असंख्यातगुणे हैं ?

उत्तर— यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि देवों में उत्पन्न होने वाले तिर्यच सासादनसम्यग्दृष्टि जीवों की अपेक्षा तिर्यचों में उत्पन्न होने वाले देव सासादनसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणे पाये जाते हैं।

इस प्रकार वैक्रियिककाययोग एवं वैक्रियिकमिश्रकाययोग वाले जीवों के प्रमाण का प्रतिपादन करने वाल चार सूत्र पूर्ण हुए।

अब आहारककाययोगी महामुनियों की संख्या प्रतिपादन करने हेतु सूत्र अवतरित हो रहा है—

सूत्रार्थ—

आहारककाययोगियों में प्रमत्तसंयत जीव द्रव्यप्रमाण की अपेक्षा कितने हैं ? चौवन हैं ।।११९।।

सूत्र का अर्थ सुगम है।

आहारकशरीर छोटे गुणस्थान के अतिरिक्त अन्य गुणस्थानों में नहीं होता है, इस बात का ज्ञान कराने के लिए सूत्र में प्रमत्तसंयत पद का ग्रहण किया गया है।

अब आहारकमिश्रकाययोगी जीवों की संख्यानिरूपण हेतु सूत्र प्रगट होता है—

सूत्रार्थ—

आहारकमिश्रकाययोगियों में प्रमत्तसंयत जीव द्रव्यप्रमाण की अपेक्षा कितने हैं? संख्यात हैं।।१२०।।

हिन्दी टीका— सूत्र का अर्थ सरल है।

अत्र आचार्यपरंपरागतोपदेशेन आहारकमिश्रकाययोगे सप्तविंशतिः २७ जीवा भवन्ति। अथवा आहारकमिश्रकाययोगे जिनदृष्टभावा संख्यातजीवा भवन्ति, न सप्तविंशतिः^१।

एवं पंचमस्थले आहारकशरीरधारिप्रमत्तमुनीनां प्रमाणप्ररूपके द्वे सूत्रे गते।

अधुना कर्मणकाययोगिमिथ्यादृष्टिप्रमाणप्ररूपणार्थं सूत्रमवतरति—

कम्मइकायजोगीसु मिच्छाइट्ठी दव्वपमाणेण केवडिया? मूलोघं।।१२१।।

सूत्रस्यार्थः सुगमः।

“जदो सब्बजीवरासी गंगा-पवाहो व्व णिरंतरं विग्रहं काऊणुप्पज्जदि, तेण कम्मइयरासिस्स मूलोघ-परूवणा ण विरुद्धा।”

सासादन-असंयतसम्यग्दृष्टिजीवयोः कर्मणकाययोगे संख्यानिरूपणाय सूत्रमवतरति—

सासणसम्माइट्ठी असंजदसम्माइट्ठी दव्वपमाणेण केवडिया? ओघं।।१२२।।

सूत्रं सुगमं।

येन पल्योपमस्य असंख्यातभागमात्राः तिर्यगसंयतसम्यग्दृष्टयः विग्रहं कृत्वा देवेषु उत्पद्यमानाः लभ्यन्ते,

यहाँ आचार्यपरम्परागत उपदेश के अनुसार आहारकमिश्रकाययोग में सत्ताईस(२७)जीव होते हैं। अथवा आहारकमिश्रकाययोग में जिनेन्द्रदेव ने जितनी संख्या देखी हो, उतने संख्यात जीव होते हैं न कि सत्ताईस।

इस प्रकार पंचम स्थल में आहारकशरीर को धारण करने वाले प्रमत्तसंयत गुणस्थानवर्ती मुनियों का प्रमाण प्ररूपित करने वाले दो सूत्र पूर्ण हुए।

अब कर्मणकाययोग वाले मिथ्यादृष्टि जीवों की संख्या बतलाने के लिए सूत्र का आगमन हो रहा है—
सूत्रार्थ—

कर्मणकाययोगियों में मिथ्यादृष्टि जीव द्रव्यप्रमाण की अपेक्षा कितने हैं ? ओघप्ररूपणा के समान हैं ।।१२१।।

सूत्र का अर्थ सरल है। इसकी विशेषता बताते हुए श्रीवीरसेनाचार्य ने कहा है — “चूँकि सर्वजीवराशि गंगानदी के प्रवाह के समान निरंतर विग्रह करके उत्पन्न होती है। इसलिए कर्मणकाय राशि की प्ररूपणा मूलोघ प्ररूपणा के समान होती है, इसमें कोई विरोध नहीं है।

अब सासादन सम्यग्दृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीवों के कर्मणकाययोग में कितनी संख्या पाई जाती है? इसका प्रमाण करने हेतु सूत्र प्रगट होता है —

सूत्रार्थ—

सासादनसम्यग्दृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि कर्मणकाययोगी जीव द्रव्यप्रमाण की अपेक्षा कितने हैं? सामान्यप्ररूपणा के समान पल्योपम के असंख्यातवें भाग हैं ।।१२२।।

हिन्दी टीका—सूत्र का अर्थ सुगम है।

चूँकि पल्योपम के असंख्यातवें भागप्रमाण तिर्यच असंयतसम्यग्दृष्टि जीव विग्रहगति में जाकर देवों में उत्पन्न होते हुए पाये जाते हैं तथा पल्योपम के असंख्यातवें भागप्रमाण देव सासादनसम्यग्दृष्टि जीव और

देव-तिर्यक्सासादनसम्यग्दृष्टयोऽपि पल्योपमस्य असंख्यातभागमात्राः तिर्यग्देवयोः विग्रहं कृत्वा — विग्रहगतिं गत्वा उत्पद्यमानाः लभ्यन्ते, तेन एतेषां प्रमाणप्ररूपणा ओघप्ररूपणया तुल्या इति ज्ञातव्या।

संप्रति कार्मणकाययोगे सयोगकेवलानां संख्यानिरूपणाय सूत्रावतारो भवति —

सजोगिकेवली दव्वपमाणेण केवडिया? संखेज्जा।।१२३।।

सूत्रस्यार्थः सुगमः। कथयन्ति श्री वीरसेनाचार्याः —

“एत्थ पुव्वाइरिओवएसेण सट्ठी जीवा हवन्ति। कुदो? पदरे वीस, लोगपूरणे वीस, पुणरवि ओदरमाणा पदरे वीस चेव भवन्ति त्ति”।

एवं षष्ठस्थले कार्मणकाययोगिनां प्रमाणनिरूपकानि त्रीणि सूत्राणि गतानि।

अधुना योगमार्गणायाः भागाभागं वक्ष्यते —

सर्वजीवराशेः संख्यातखण्डे कृते तत्र बहुखण्डाः औदारिककाययोगराशयः। शेषस्यासंख्यातखण्डे कृते बहुखण्डाः औदारिकमिश्रकाययोगराशयः भवन्ति। शेषस्यानंतखण्डे कृते बहुखण्डाः कार्मणकाय-मिथ्यादृष्टिजीवा भवन्ति। शेषस्यानन्तखण्डे कृते बहुखण्डाः सिद्धाः भवन्ति।

शेषस्य संख्यातखण्डे कृते बहुखण्डाः असत्यमृषावचनयोगिमिथ्यादृष्टयः भवन्ति। शेषस्य संख्यातखण्डे कृते बहुखण्डाः वैक्रियिककाययोगिमिथ्यादृष्टयः भवन्ति। शेषस्य असंख्यातखण्डे कृते बहुखण्डाः सत्यमृषावचनयोगिमिथ्यादृष्टयः भवन्ति। शेषस्य संख्यातखण्डे कृते बहुखण्डाः मृषावचनयोगिमिथ्यादृष्टयः भवन्ति। शेषस्य संख्यातखण्डे कृते बहुखण्डाः सत्यवचनयोगिमिथ्यादृष्टयः भवन्ति। शेषस्य संख्यातखण्डे कृते बहुखण्डाः असत्यमृषामनोयोगिमिथ्यादृष्टयः भवन्ति। शेषस्य संख्यातखण्डे कृते बहुखण्डाः

उतने ही तिर्यच सासादनसम्यग्दृष्टि जीव भी क्रम से तिर्यच और देवों में विग्रहगति में जाकर उत्पन्न होते हुए पाये जाते हैं, इसलिए सासादनसम्यग्दृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि कार्मणकाययोगियों की प्ररूपणा सामान्य प्ररूपणा के समान होती है, ऐसा जानना चाहिए।

अब कार्मणकाययोग में सयोगिकेवलियों की संख्या बतलाने हेतु सूत्र प्रगट होता है —

सूत्रार्थ —

कार्मणकाययोगी सयोगिकेवली जीव कितने हैं ? संख्यात हैं।।१२३।।

हिन्दी टीका — सूत्र का अर्थ सहज सुगम्य है। श्रीवीरसेनाचार्य यहां कहते हैं कि —

पूर्व आचार्यों के उपदेशानुसार सयोगिकेवलियों में कार्मणकाययोगी जीव साठ होते हैं, कैसे ? क्योंकि प्रतर समुद्घात में बीस, लोकपूरण समुद्घात में बीस और उतरते हुए प्रतर समुद्घात में पुनः बीस केवली भगवान होते हैं।

इस प्रकार छठे स्थल में कार्मणकाययोगी जीवों का प्रमाण निरूपण करने वाले तीन सूत्र पूर्ण हुए।

अब योगमार्गणा के भागाभाग को कहते हैं — सर्व जीवराशि के संख्यात खंड करने पर उनमें से बहुभागप्रमाण औदारिककाययोग जीवराशि है। शेष एक भाग के असंख्यात खण्ड करने पर बहुभागप्रमाण औदारिकमिश्रकाययोगी जीवराशि है। शेष एक भाग के अनन्त खंड करने पर बहुभागप्रमाण कार्मणकाययोगी मिथ्यादृष्टि राशि है। शेष एक भाग के अनन्त खंड करने पर बहुभागप्रमाण सिद्ध जीव हैं। शेष एक भाग के संख्यात खण्ड करने पर बहुभाग अनुभयवचनयोगी मिथ्यादृष्टि जीव हैं। शेष एक भाग के संख्यात खंड करने

शेषस्य संख्यातखण्डे कृते बहुखण्डाः मृषावचनयोगिसंयतासंयताः भवन्ति। शेषस्य संख्यातखण्डे कृते बहुखण्डाः सत्यवचनयोगिसंयतासंयताः भवन्ति।

शेषस्य संख्यातखण्डे कृते बहुखण्डाः असत्यमृषामनोयोगिसंयतासंयताः भवन्ति। शेषस्य संख्यातखण्डे कृते बहुखण्डाः सत्यमृषामनोयोगिसंयतासंयताः भवन्ति। शेषस्य संख्यातखण्डे कृते बहुखण्डा मृषामनोयोगि-संयतासंयताः भवन्ति। शेषस्य संख्यातखण्डे कृते बहुखण्डाः सत्यमनोयोगिसंयतासंयताः भवन्ति।

शेषस्य असंख्यातखण्डे कृते बहुखण्डाः वैक्रियिकमिश्रकाययोगि-असंयतसम्यग्दृष्टयो भवन्ति। शेषस्य असंख्यातखण्डे कृते बहुखण्डाः कर्मणकाययोगि असंयतसम्यग्दृष्टयो भवन्ति। शेषस्य असंख्यातखण्डे कृते बहुखण्डाः औदारिकमिश्रकाययोगि-सासादनसम्यग्दृष्टयो भवन्ति। शेषस्य असंख्यातखण्डे कृते तत्र बहुखण्डाः वैक्रियिकमिश्रकाययोगि-सासादनसम्यग्दृष्टयो भवन्ति। शेषस्य असंख्यातखण्डे कृते तत्र बहुखण्डाः कर्मणकाययोगिसासादनसम्यग्दृष्टयो भवन्ति। शेषं ज्ञात्वा नेतव्यमिति।

इति भागाभागः समाप्तः।

इति षट्खण्डागमस्य प्रथमखण्डे तृतीयग्रन्थे द्रव्यप्रमाणानुगमनाम्नि द्वितीयप्रकरणे
गणिनी ज्ञानमतीविरचितसिद्धान्तचिन्तामणिटीकायां योगप्ररूपणा-
प्ररूपकनामा चतुर्थोऽधिकारः समाप्तः।

सासादनसम्यग्दृष्टि जीवराशि है। शेष एक भाग के संख्यात खंड करने पर बहुभाग औदारिककाययोगी सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवराशि है। शेष एक भाग के असंख्यात खंड करने पर बहुभाग औदारिककाययोगी सासादनसम्यग्दृष्टि जीवराशि है। शेष एक भाग के संख्यात खंड करने पर बहुभाग औदारिककाययोगी संयतासंयत जीवराशि है। शेष एक भाग के संख्यात खंड करने पर बहुभाग अनुभय वचनयोगी संयतासंयत जीवराशि है। शेष एक भाग के संख्यात खंड करने पर बहुभाग उभयवचनयोगी संयतासंयत जीवराशि है। शेष एक भाग के संख्यात खंड करने पर बहुभाग मृषावचनयोगी संयतासंयत जीवराशि है। शेष एक भाग के संख्यात खण्ड करने पर बहुभाग अनुभमनोयोगी संयतासंयत, जीवराशि है। शेष एक भाग के संख्यात खण्ड करने पर बहुभाग उभयमनोयोगी संयतासंयत जीवराशि है। शेष एक भाग के संख्यात खण्ड करने पर बहुभाग मृषामनोयोगी संयतासंयत जीवराशि है। शेष एक भाग के संख्यात खंड करने पर बहुभाग सत्यमनोयोगी संयतासंयत जीवराशि है। सत्यमनोयोगी संयतासंयत राशि के अनन्तर जो एक भाग शेष रहे, उसके असंख्यात खंड करने पर बहुभाग वैक्रियिकमिश्रकाययोगी असंयतसम्यग्दृष्टि जीवराशि है। शेष एक भाग के असंख्यात खंड करने पर बहुभाग कर्मणकाययोगी असंयतसम्यग्दृष्टि जीवराशि है। शेष एक भाग के असंख्यात खंड करने पर बहुभाग औदारिकमिश्रकाययोगी सासादनसम्यग्दृष्टि जीवराशि है। शेष एक भाग के असंख्यात खंड करने पर बहुभाग वैक्रियिकमिश्रकाययोगी सासादनसम्यग्दृष्टि जीव है। शेष एक भाग के असंख्यात खंड करने पर बहुभाग कर्मणकाययोगी सासादनसम्यग्दृष्टि जीवराशि है। शेष कथन समझकर ले लेना चाहिए।

इस प्रकार षट्खण्डागम के प्रथम खंड में तृतीय ग्रंथ में द्रव्यप्रमाणानुगम नाम के द्वितीय प्रकरण में गणिनी ज्ञानमती विरचित सिद्धान्तचिन्तामणि टीका में योगप्ररूपणा नामक चतुर्थ अधिकार समाप्त हुआ।

अथ वेदमार्गणाधिकारः

अथ स्थलचतुष्टयेन एकादशसूत्रैः वेदमार्गणानाम् पंचमोऽधिकारः कथ्यते। तत्र तावत् प्रथमस्थले भावस्त्रीवेदसंख्यानिरूपणत्वेन “वेदाणुवादेण” इत्यादिसूत्रत्रयं। तदनु द्वितीयस्थले भावपुरुषवेदेषु-द्रव्यवेदेषु च गुणस्थानव्यवस्थायां प्रमाणनिरूपणपरत्वेन पुरिसवेदएसु” इत्यादिसूत्रद्वयं। ततः परं तृतीयस्थले भावनपुंसकवेदेषु गुणस्थाने प्रमाणनिरूपणत्वेन “णवुंसयवेदेसु” इत्यादिसूत्रद्वयं। तदनंतरं चतुर्थस्थले अपगतवेदानां गुणस्थानेषु संख्यानिश्चयार्थं “अपगतवेदएसु” इत्यादिसूत्रचतुष्टयं। एवं समुदायपातनिका।

संप्रति वेदमार्गणायां स्त्रीवेदेषु मिथ्यादृष्टिप्रमाणनिरूपणार्थं सूत्रमवतरति —

वेदाणुवादेण इत्थिवेदएसु मिच्छाइट्ठी दव्वपमाणेण केवडिया? देवीहि सादिरेयं।।१२४।।

सिद्धान्तचिन्तामणि टीका — वेदानुवादेन स्त्रीवेदराशिषु मिथ्यादृष्टयः द्रव्यप्रमाणेन कियन्तः इति प्रश्ने सति उत्तरं दीयते — देवीभ्यः सातिरेकाः इति।

देवेभ्यः देव्यः द्वात्रिंशद्गुणा भवन्ति। अस्मिन् प्रमाणे भावस्त्रीवेदमानुषीणां भावस्त्रीवेदतिरश्चीनां संख्यामेलने सति देवीभ्यः सातिरेकाः, स्त्रीवेदाः भवन्ति।

अथ वेदमार्गणा अधिकार प्रारम्भ

अब चार स्थलों में ग्यारह सूत्रों के द्वारा वेदमार्गणा नामक पाँचवां अधिकार कहा जा रहा है। उनमें से प्रथम स्थल में भावस्त्रीवेदी जीवों की संख्या का निरूपण करने वाले “वेदाणुवादेण” इत्यादि तीन सूत्र कहेंगे। उसके बाद द्वितीय स्थल में भावपुरुषवेद एवं द्रव्यपुरुषवेदी जीवों की गुणस्थान व्यवस्था में संख्या का निरूपण करने हेतु “पुरिसवेदएसु” इत्यादि दो सूत्र हैं। पुनः तृतीयस्थल में भावनपुंसकवेदी जीवों का गुणस्थान में प्रमाणनिरूपण करने वाले “णवुंसयवेदेसु” इत्यादि दो सूत्र हैं। तदनन्तर चतुर्थस्थल में अपगतवेदी जीवों की संख्या गुणस्थानों में निश्चित करने के लिए “अपगतवेदएसु” इत्यादि चार सूत्र हैं। इस प्रकार सूत्रों की समुदायपातनिका हुई।

अब वेदमार्गणा अन्तर्गत स्त्रीवेदी जीवों में मिथ्यादृष्टि जीवों का प्रमाण बतलाने हेतु सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ —

वेदमार्गणा के अनुवाद से स्त्रीवेदियों में मिथ्यादृष्टि जीव द्रव्यप्रमाण की अपेक्षा कितने हैं? देवियों से कुछ अधिक हैं।१२४।।

हिन्दी टीका — वेदमार्गणा की अपेक्षा स्त्रीवेदी जीवराशियों में मिथ्यादृष्टि जीव द्रव्यप्रमाण की अपेक्षा कितने हैं? ऐसा प्रश्न होने पर उत्तर दिया गया है कि स्त्रीवेदी राशि देवियों से साधिक होती है।

देवों से देवियाँ बतीसगुणी अधिक होती हैं। इस प्रमाण में भावस्त्रीवेदी मनुष्यिनियों में भावस्त्रीवेदी तिर्यचों की संख्या मिलाने पर देवियों से स्त्रीवेदी जीवों की संख्या साधिक होती है। अर्थात् देवियाँ सबसे अधिक हैं उनमें मनुष्यिनी और तिर्यचिनियों की संख्या मिलाने पर समस्त स्त्रीवेदियों की संख्या हो जाती है। उनमें से यहां मिथ्यादृष्टि स्त्रीवेदियों की संख्या ली है।

अधुना स्त्रीवेदानां सासादनादिगुणस्थानप्रमाणनिरूपणाय सूत्रावतारः क्रियते—

सासणसम्माइट्टिप्पहुडि जाव संजदासंजदा त्ति ओघं।।१२५।।

सासादनसम्यग्दृष्ट्यादिसंयतासंयतपर्यताः स्त्रीवेदिनः जीवाः ओघवत् ज्ञातव्याः। पल्योपमस्य असंख्यातभागमात्रापेक्षया ओघवत् उच्यते किंतु अंतरमस्त्येव। तद्यथा—कारीषाग्निसमानस्त्रीवेदेन दह्यमानहृदयस्त्रीणां प्रचुरं सम्यक्त्वपरिणामासंभवात् इति।

भावस्त्रीवेदवतां प्रमत्तादिमुनीनां प्रमाणप्ररूपणाय सूत्रावतारः क्रियते—

पमत्तसंजदप्पहुडि जाव अणियट्टिबादरसांपराइयपविट्ट उवसमा खवा दव्वपमाणेण केवडिया? संखेज्जा।।१२६।।

सूत्रं सुगमं।

“प्रमत्तादीनां ओघराशेः संख्यातखण्डे कृते एकखण्डमात्राः स्त्रीवेदिप्रमत्तादयः भवन्ति। स्त्रीवेद-उपशामका दश १०, क्षपका विंशतिः २०।”

एवं प्रथमस्थलेभावस्त्रीवेदेषु द्रव्यपुरुषवेदेषु प्रथमगुणस्थानादारभ्य नवमगुणस्थानस्य सवेदभागपर्यंतानां जीवानां प्रमाणप्ररूपणपराणि त्रीणि सूत्राणि गतानि।

अब स्त्रीवेदी जीवों का सासादन आदि गुणस्थानों में प्रमाण बताने हेतु सूत्र प्रगट होता है—

सूत्रार्थ—

सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थान से लेकर संयतासंयत गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थान में स्त्रीवेदी जीव ओघप्ररूपणा के समान पल्योपम के असंख्यातवें भाग हैं।।१२५।।

हिन्दी टीका—सासादन सम्यग्दृष्टि से लेकर संयतासंयत गुणस्थानपर्यन्त स्त्रीवेदी जीव ओघप्ररूपणा के समान जानना चाहिए। पल्योपम के असंख्यातवें भागमात्र की अपेक्षा ओघवत् कहते हैं, किन्तु उनमें अन्तर ही है। उसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है—क्योंकि उपले की अग्नि के समान स्त्रीवेद से जिनका हृदय जल रहा है और जो काम की अभिलाषा से समन्वित हैं, ऐसी स्त्रियों के प्रचुरता से सम्यक्त्व परिणाम संभव नहीं हैं अर्थात् स्त्रीवेद के साथ प्रचुर—अधिक सम्यग्दृष्टि जीव नहीं होते हैं—अल्प होते हैं।

अब भावस्त्रीवेदी जीवों का प्रमाण प्रमत्तादिगुणस्थानों में बतलाने हेतु सूत्र का अवतार किया जा रहा है—

सूत्रार्थ—

भावस्त्रीवेदी प्रमत्तसंयत गुणस्थान से लेकर अनिवृत्तिबादरसांपरायप्रविष्ट उपशामक और क्षपक गुणस्थान तक जीव द्रव्यप्रमाण की अपेक्षा कितने हैं? संख्यात हैं।।१२६।।

हिन्दी टीका—सूत्र का अर्थ सरल है। प्रमत्तसंयत आदि गुणस्थानसम्बन्धी ओघराशि को संख्यात से खंडित करने पर एक खंडप्रमाण स्त्रीवेदी प्रमत्तसंयत आदि गुणस्थानवर्ती जीव होते हैं। स्त्रीवेदी उपशामक दश और क्षपक बीस होते हैं।

इस प्रकार प्रथम स्थल में भावस्त्रीवेदी एवं द्रव्यपुरुषवेदी जीवों में प्रथम गुणस्थान से प्रारंभ करके नवमें गुणस्थान के सवेद भाग तक के जीवों का प्रमाण प्ररूपण करने वाले तीन सूत्र पूर्ण हुए।

अधुना पुरुषवेदमिथ्यादृष्टीनां संख्यानिरूपणाय सूत्रमवतरति —

पुरिसवेदएसु मिच्छाइट्टी दव्वपमाणेण केवडिया? देवेहि सादरेयं।।१२७।।

सूत्रस्यार्थः सुगमोऽस्ति।

देवलोके — स्वर्गे देवीनां संख्यातभागाः देवाः। पंचेन्द्रियतिर्यग्योनिनीनां संख्यातभागाः पुरुषवेदिनः तिर्यञ्चः। देवेषु पुरुषवेदिमनुष्यतिर्यगराशिप्रक्षिप्तेषु देवेभ्यः साधिकाः पुरुषवेदिनो भवन्ति मिथ्यात्वगुणस्थाने इति ज्ञातव्यं।

संप्रति सासादनादिसवेदभागपर्यंतानां पुरुषवेदिनां प्रमाणनिरूपणाय सूत्रमवतरति —

सासणसम्माइट्टिप्पहुडि जाव अणियट्टिबादरसांपराइयपविट्ट उवसमा खवा दव्वपमाणेण केवडिया? ओघं।।१२८।।

सूत्रं सुगमं।

अत्र सूत्रे ओघमिव ओघं उच्यते। किन्तु “इत्थिणवुंसयवेदरासीहि परिहीणो ओघरासी पुरिसवेदस्स भवदि।^१”

इति श्रीवीरसेनाचार्येण टीकायां कथितं अतो नाशंकनीयं भवद्भिः।

एवं द्वितीयस्थले पुरुषवेदिप्रमाणनिरूपणपरत्वेन द्वे सूत्रे गते।

अब पुरुषवेदी मिथ्यादृष्टियों की संख्या निरूपण करने के लिए सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ —

पुरुषवेदियों में मिथ्यादृष्टि जीव द्रव्यप्रमाण की अपेक्षा कितने हैं? देवों से कुछ अधिक हैं।।१२७।।

हिन्दी टीका — देवलोक — स्वर्ग में देवियों के संख्यातवें भागमात्र देव हैं। पंचेन्द्रिय तिर्यच योनिनियों के संख्यातवें भागमात्र तिर्यचों में पुरुषवेदी जीव हैं। पुरुषवेदी मनुष्यराशि से युक्त इन पुरुषवेदी तिर्यचों के प्रमाण को देवों में प्रक्षिप्त कर देने पर देवों से कुछ अधिक पुरुषवेद जीवराशि का प्रमाण मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में होता है, ऐसा जानना चाहिए।

अब सासादन को आदि में करके नवमें गुणस्थान के सवेदभागपर्यन्त पुरुषवेदी जीवों का प्रमाण प्ररूपण करने के लिए सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ —

सासादन सम्यग्दृष्टि गुणस्थान से लेकर अनिवृत्तिबादरसांपरायप्रविष्ट उपशमक और क्षपक जीव द्रव्यप्रमाण की अपेक्षा कितने हैं ? ओघप्ररूपणा के समान हैं।।१२८।।

हिन्दी टीका — सूत्र का अर्थ सुगम है। यहाँ सूत्र में ओघ के समान को भी ओघ कहा है, किन्तु “ओघराशि में से स्त्रीवेदी और नपुंसकवेदी राशि को कम कर देने पर जो लब्ध रहे, उतना पुरुषवेदियों का प्रमाण है।” ऐसा श्रीवीरसेनाचार्य ने धवला टीका में कहा है अतः आप लोगों को कोई शंका नहीं करनी चाहिए।

इस प्रकार द्वितीय स्थल में पुरुषवेदी जीवों का प्रमाण निरूपण करने वाले दो सूत्र पूर्ण हुए।

नपुंसकवेदिनां प्रमाणनिर्धारणार्थं सूत्रावतारोः भवति—

णवुंसयवेदेसु मिच्छाद्दृष्टिपुहडि जाव संजदासंजदा त्ति ओघं।।१२९।।

सूत्रं सुगमं।

नपुंसकवेदे मिथ्यादृष्टयः अनन्तत्वेन ओघमिथ्यादृष्टिभिः समानाः। सासादनादयः पल्योपमस्य असंख्यातभागत्वेन ओघगुणस्थानप्रतिपन्नैः समानाः इति ओघत्वं एतेषां युज्यते। तथाप्यन्तरं वर्तते एव।

भावनपुंसकवेदिनां प्रमत्तादिसवेदभागपर्यंतानां प्रमाणनिरूपणाय सूत्रमवतरति—

पमत्तसंजदप्पुहडि जाव अणियद्विबादरसांपराइयपविट्ट उवसमा खवा दव्वपमाणेण केवडिया? संखेज्जा।।१३०।।

सूत्रं सुगमं।

स्त्रीवेदप्रमत्तादिराशेः संख्यातभागमात्रः नपुंसकवेदे प्रमत्तादिराशिर्भवति।

कुतः?

श्रीवीरसेनाचार्येणोच्यते—“इद्ववागगिसमाणेण णवुंसयवेदोदयेण सणिदाणेण^१पउरं सम्मत्त-संजमादीणमुवलंभाभावादो। ओघपमाणं ण पावेंति त्ति जाणावणट्ठं सुत्ते संखेज्जणिद्देसो कओ।

अब नपुंसकवेदी जीवों का प्रमाण निर्धारण करने हेतु सूत्र प्रगट होता है—

सूत्रार्थ—

नपुंसकवेदियों में मिथ्यादृष्टि गुणस्थान से लेकर संयतासंयत गुणस्थान तक जीव ओघप्ररूपणा के समान हैं।।१२९।।

हिन्दी टीका—सूत्र का अर्थ सरल है। नपुंसकवेदी मिथ्यादृष्टि जीव अनन्तत्व की अपेक्षा ओघ मिथ्यादृष्टियों के समान हैं और नपुंसकवेदी सासादन सम्यग्दृष्टि आदि जीव पल्योपम के असंख्यातवें भागत्व की अपेक्षा ओघ गुणस्थानप्रतिपन्नों के समान हैं इसलिए नपुंसकवेदी इन राशियों के ओघपना बन जाता है, फिर भी अन्तर तो पाया ही जाता है।

अब भावनपुंसकवेदी जीवों के प्रमत्तसंयत से लेकर नवमें गुणस्थान के सवेदभागपर्यन्त प्रमाण निरूपण करने के लिए सूत्र का अवतार होता है—

सूत्रार्थ—

प्रमत्तसंयत गुणस्थान से लेकर अनिवृत्तिबादरसांपराधिकप्रविष्ट उपशामक और क्षपक गुणस्थान तक जीव द्रव्यप्रमाण की अपेक्षा कितने हैं ? संख्यात हैं ।।१३०।।

हिन्दी टीका—सूत्र का अर्थ सुगम है। स्त्रीवेदी प्रमत्तसंयत आदि राशि के संख्यातवें भागमात्र नपुंसकवेदी प्रमत्तसंयत आदि जीवराशि होती है।

प्रश्न—कैसे होती है?

इसका उत्तर देते हुए श्रीवीरसेनाचार्य कहते हैं—क्योंकि इष्टपाक की अग्नि के समान नपुंसकवेद के उदय से अतिकामाभिलाष से युक्त होने के कारण प्रचुरता से सम्यक्त्व और संयमादि परिणामों का उपलब्ध नहीं पाया जाता है।

णवुंसयवेदउवसामगा पंच ५, खवगा दस १०। इत्थिवेदे णवुंसयवेदे पमत्ता अपमत्ता च एत्तिया चेव होंति त्ति संपहि उवएसो णत्थि^१।”

एवं तृतीयस्थले नपुंसकवेदे भाववेदापेक्षया निरूपणत्वेन द्वे सूत्रे गते।

अधुना अपगतवेदानां प्रमाणप्ररूपणार्थं सूत्रमवतरति —

अपगदवेदएसु तिण्हं उवसामगो दव्वपमाणेण केवडिया? पवेसेण एक्को वा दो वा तिणिण वा, उक्कस्सेण चउवण्णं।।१३१।।

अपगतवेदेषु तिण्हं उवसागमो — अनिवृत्तिकरण-सूक्ष्मसांपराय-उपशान्तकषायाः उपशामकाः प्रवेशेन एकः वा द्वौ वा त्रयो वा, उत्कृष्टरूपेण चतुःपञ्चाशत्।

अत्र उपशमश्रेण्यां प्रवेशतुल्य एव अपगतवेदपर्याये प्रवेशो भवति इति ज्ञापनार्थं एव सूत्रस्य फलं। अनेन कथनेन क्षपकापगतवेदिनां प्रवेशोऽपि क्षपकश्रेणिसंबन्धिप्रवेशेन तुल्योऽस्ति इति ज्ञातव्यं भवति।

कालापेक्षया एषामेव प्रमाणप्ररूपणार्थं सूत्रावतारो भवति —

अद्धं पडुच्च संखेज्जा।।१३२।।

कालापेक्षया अपगतवेदिनः उपशामकाः संख्याताः सन्ति।

प्रमत्तसंयत आदि नपुंसकवेदी जीवराशि ओघप्रमाण को नहीं प्राप्त होती है, इसका ज्ञान कराने के लिए सूत्र में संख्यात पद का निर्देश किया है। नपुंसक वेदी उपशामक पाँच और क्षपक दस होते हैं। स्त्रीवेदी और नपुंसकवेदी प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत जीव इतने ही होते हैं, इस प्रकार का इस समय उपदेश नहीं पाया जाता है।

इस प्रकार तृतीय स्थल में नपुंसकवेद में भाववेद की अपेक्षा निरूपण करने वाले दो सूत्र पूर्ण हुए।

अब अपगतवेदी जीवों का प्रमाण बतलाने हेतु सूत्र का अवतार होता है —

सूत्रार्थ —

अपगतवेदियों में तीन गुणस्थानवर्ती उपशामक जीव द्रव्यप्रमाण की अपेक्षा कितने हैं ? प्रवेश से एक, दो या तीन और उत्कृष्टरूप से चौवन हैं।।१३१।।

हिन्दी टीका — अपगतवेदियों में तीन उपशामक हैं — अनिवृत्तिकरण, सूक्ष्मसांपराय और उपशान्तकषाय गुणस्थान वाले उपशामक जीव प्रवेश के द्वारा एक, दो अथवा तीन होते हैं और उत्कृष्टरूप से इनकी संख्या चौवन (५४) होती है।

यहाँ उपशमश्रेणी में प्रवेश के समान ही अपगतवेदपर्याय में प्रवेश होता है, ऐसा बताना ही सूत्र का फल है। इस कथन के द्वारा क्षपक अपगतवेदी जीवों का प्रवेश भी क्षपकश्रेणीसम्बन्धी प्रवेश के समान ही है, ऐसा जानना चाहिए।

अब काल की अपेक्षा इन्हीं जीवों की संख्या बतलाने हेतु सूत्र का अवतार होता है —

सूत्रार्थ —

काल की अपेक्षा अपगतवेदी उपशामक संख्यात हैं ।।१३२।।

काल की अपेक्षा अपगतवेदी उपशामक जीवों की संख्या संख्यातप्रमाण है।

क्षपकानां अयोगिनां च प्रमाणनिरूपणाय सूत्रावतारः क्रियते—

तिणिण खवा अजोगिकेवली ओघं।।१३३।।

अपगतवेदिनः— अनिवृत्तिकरण-सूक्ष्मसांपराय-क्षीणकषायाः इमे त्रयगुणस्थानवर्तिनः क्षपकाः अयोगिकेवलिनश्च ओघप्ररूपणावत् प्रमाणाः सन्ति।

सयोगिनां प्रमाणप्ररूपणाय सूत्रावतारः क्रियते श्रीभूतबलिभट्टारकेण—

सजोगिकेवली ओघं।।१३४।।

सयोगिकेवलिनः प्रमाणेन ओघवत् सन्ति।

अधुना भागाभागं वक्ष्यते—

सर्वजीवराशेः अनन्तखण्डे कृते बहुखण्डाः नपुंसकवेदिमिथ्यादृष्टयो भवन्ति। शेषस्य अनन्तखण्डे कृते बहुखण्डाः अपगतवेदाः— सिद्धाः भवन्ति। शेषस्य संख्यातखण्डे कृते बहुखण्डाः स्त्रीवेदिमिथ्यादृष्टयो भवन्ति। शेषस्य असंख्यातखण्डे कृते बहुखण्डाः पुरुषवेदिमिथ्यादृष्टयो भवन्ति। शेषस्य असंख्यातखण्डे कृते बहुखण्डाः सर्वेषां असंयतसम्यग्दृष्टयो भवन्ति। शेषमोघवत्^१ ज्ञातव्यं।

अत्र वेदमार्गणायां एष विशेषो ज्ञातव्यः— द्रव्यस्त्रीवेदिन्यः, द्रव्यनपुंसकवेदिनश्च मिथ्यादृष्टि-

अब क्षपक और अयोगी जीवों का प्रमाण बतलाने हेतु सूत्र का अवतार किया जा रहा है—

सूत्रार्थ—

अपगतवेदियों में तीन गुणस्थानवर्ती क्षपक और अयोगिकेवली जीव ओघप्ररूपणा के समान हैं।।१३३।।

हिन्दी टीका— अपगतवेदी जीव अर्थात् अनिवृत्तिकरण, सूक्ष्मसांपराय और क्षीणकषाय इन नवमें, दशवें और बारहवें तीन गुणस्थानवर्ती क्षपक श्रेणी पर आरोहण करने वाले जीव और अयोगिकेवली भगवन्तों का प्रमाण ओघप्ररूपणा के समान है।

अब सयोगिकेवली भगवन्तों का प्रमाण बताने हेतु श्रीभूतबली भट्टारक के द्वारा सूत्र का अवतार किया जाता है—

सूत्रार्थ—

अपगतवेरियों में सयोगिकेवली जीव ओघप्ररूपणा के समान हैं।।१३४।।

हिन्दी टीका— सयोगिकेवली जीवों का प्रमाण ओघ के समान होता है।

अब भागाभाग को कहते हैं— सर्वजीवराशि के अनन्त खंड करने पर बहुभाग नपुंसकवेदी मिथ्यादृष्टि जीव हैं। शेष एक भाग के अनन्त खंड करने पर बहुभाग अपगतवेदी जीव सिद्धभगवान हैं, शेष एक भाग के संख्यात खंड करने पर बहुभाग स्त्रीवेदी मिथ्यादृष्टि जीव हैं। शेष एक भाग के असंख्यात खंड करने पर बहुभाग पुरुषवेदी मिथ्यादृष्टि जीव हैं। शेष एक भाग के असंख्यात खंड करने पर बहुभाग सर्व असंयत सम्यग्दृष्टि जीव हैं। शेष कथन ओघप्ररूपणा के समान है।

यहाँ वेदमार्गणा में यह बात विशेष ज्ञातव्य है— द्रव्यस्त्रीवेदी और द्रव्यनपुंसकवेदी जीव मिथ्यादृष्टि

गुणस्थानादारभ्य संयतासंयतगुणस्थानपर्यन्ताः एव भवन्ति। भावस्त्रीवेदिनः भावनपुंसकवेदिनो वा किंतु द्रव्येण पुरुषवेदिन एव षष्ठगुणस्थानादारभ्य आ अयोगिकेवलिनो भवन्ति इति।

एवं अपगतवेदिनां प्रमाणप्ररूपणत्वेन सूत्रचतुष्टयं गतम्।

इति षट्खण्डागमस्य प्रथमखण्डे तृतीयग्रन्थे द्रव्यप्रमाणानुगमनाम्नि द्वितीय-
प्रकरणे गणिनीज्ञानमतीविरचित सिद्धान्तचिन्तामणिटीकायां
वेदप्ररूपणानाम पंचमोऽधिकारः समाप्तः।

गुणस्थान से प्रारंभ करके संयतासंयत गुणस्थान तक ही पाये जाते हैं तथा भावस्त्रीवेदी अथवा भावनपुंसकवेदी जीव जो द्रव्य से पुरुषवेदी हैं, वे छठे प्रमत्तसंयत गुणस्थान से लेकर अयोगिकेवली चौदहवें गुणस्थान तक होते हैं।

इस प्रकार अपगतवेदी जीवों और सिद्ध भगवन्तों का प्रमाण प्ररूपित करने वाले चार सूत्र पूर्ण हुए।

इस प्रकार षट्खण्डागम ग्रंथ के प्रथम खंड में तृतीय ग्रंथ में द्रव्यप्रमाणानुगम नाम के द्वितीय प्रकरण में गणिनी ज्ञानमती विरचित सिद्धान्तचिन्तामणि टीका में वेदप्ररूपणा नामक पंचम अधिकार समाप्त हुआ।



अथ कषायमार्गणाधिकारः

अथ स्थलद्वयेन षड्भिः सूत्रैः कषायमार्गणानाम षष्ठोऽधिकारः प्रारभ्यते —

तत्र प्रथमस्थले कषायसहितजीवानां गुणस्थानेषु संख्यानिरूपणत्वेन “कसायाणुवादेण” इत्यादिसूत्रत्रयं । तदनु द्वितीयस्थले अकषायानां संख्याप्ररूपकत्वेन “अकसाईसु” इत्यादिसूत्रत्रयं इति समुदायपातनिका । अधुना चतुर्विधकषायिनां मिथ्यादृष्ट्यादिदेशसंयतपर्यंतानां प्रमाणप्रतिपादनार्थं सूत्रावतारः क्रियते —

**कसायाणुवादेण क्रोधकसाइ-माणकसाइ-मायकसाइ-लोभकसाईसु
मिच्छाइट्टिप्पहुडि जाव संजदासंजदा त्ति ओघं ।।१३५।।**

सिद्धान्तचिन्तामणि टीका — द्रव्यार्थिकनयापेक्षया इमे पंचगुणस्थानवर्तिनः ओघवत् सन्ति, किन्तु पर्यायार्थिकनयापेक्षया अस्ति विशेषः-तद्यथा — चतुःकषायमिथ्यादृष्टिषु तिर्यगराशिः प्रधानः, शेषगतिराशेः तदनन्तभागत्वात् । तत्रापि चतुःकषायमिथ्यादृष्टिराशिर्न अन्योन्येन समानः, चतुःकषायानां कालस्य सादृश्याभावात् । तदेवोच्यते — तिर्यक्षु मनुष्येषु च मानकषायस्य कालः सर्वस्तोकः । क्रोधस्य कालः मानकालेन विशेषाधिकः । मायाकषायकालः क्रोधकालेन विशेषाधिकः । लोभकषायस्य कालः मायाकालेन विशेषोऽधिकः ।

अनेन प्रकारेण कालेषु विसदृशेषु सत्सु तत्र स्थितानां एषां निर्गमः प्रवेशश्च समानः, संतानापेक्षया

अथ कषायमार्गणा अधिकार प्रारंभ

अब दो स्थलों में छह सूत्रों के द्वारा कषायमार्गणा नामक छठा अधिकार प्रारम्भ होता है — उनमें प्रथम स्थल में कषायसहित जीवों की गुणस्थानों में संख्या का निरूपण करने वाले “कसायाणुवादेण” इत्यादि तीन सूत्र कहेंगे । उसके बाद द्वितीयस्थल में अकषायी — कषाय रहित जीवों की संख्या का प्ररूपण करने की मुख्यता से “अकसाईसु” इत्यादि तीन सूत्र हैं । यह प्रारंभ में सूत्रों की समुदायपातनिका हुई ।

अब चार प्रकार की कषायों से सहित मिथ्यादृष्टि से संयतासंयत गुणस्थानपर्यन्त जीवों का प्रमाण प्रतिपादन करने के लिए सूत्र का अवतार किया जा रहा है —

सूत्रार्थ —

कषायमार्गणा के अनुवाद से क्रोधकषायी, मानकषायी, मायाकषायी और लोभकषायी जीवों में मिथ्यादृष्टि गुणस्थान से लेकर संयतासंयत गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थान में जीव सामान्य प्ररूपणा के समान हैं ।।१३५।।

हिन्दी टीका — द्रव्यार्थिकनय की अपेक्षा ये पाँचों गुणस्थानवर्ती जीव ओघ के समान हैं किन्तु पर्यायार्थिकनय की अपेक्षा विशेषता है उसे बताते हैं — चारों कषाय वाले मिथ्यादृष्टि जीवों में तिर्यचराशि प्रधान है क्योंकि, शेष तीन गतिसम्बन्धी जीवराशि तिर्यचराशि के अनन्तवें भाग है । उसमें भी चारों कषायवाली मिथ्यादृष्टिराशि परस्पर समान नहीं है क्योंकि, चारों कषायों का काल समान नहीं है । उसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है — तिर्यच और मनुष्यों में मान का काल सबसे स्तोक है । क्रोध का काल मानकाल से विशेष अधिक है । माया का काल क्रोध के काल से विशेष अधिक है । लोभ का काल माया के काल से विशेष अधिक है । इस प्रकार कालों के विसदृश रहने पर जिनका निर्गम और प्रवेश समान है और संतान — अविच्छिन्न परम्परा की अपेक्षा गंगा नदी

गंगाप्रवाह इव अवस्थितानां न सदृशत्वं युज्यते।

अधुना चतुःकषायसहितानां षष्ठ्यादिअनिवृत्तिकरणगुणस्थानपर्यंतानां संख्यानिरूपणाय सूत्रमवतरति —

पमत्तसंजदण्डि जाव अणियट्टि ति दव्वपमाणेण केवडिया? संखेज्जा।।१३६।।

सूत्रस्यार्थः सुगमः।

प्रमत्तसंयत-अप्रमत्तसंयत-अपूर्वकरणसंयत-अनिवृत्तिकरणसंयतानां प्रमाणं उच्यते। इमे चतुर्विधसंयताः मानकषायसहिताः सर्वतः स्तोकाः। क्रोधकषायसहिताः इमे संयताः मानकषायसहितापेक्षया विशेषाधिकाः। मायाकषायसहिताः संयताः क्रोधकषायसहितापेक्षया विशेषाधिकाः। लोभकषायसहिताः संयताः मायाकषायसहितापेक्षया विशेषाधिकाः।

संप्रति लोभकषायसहितसंयतानां सूक्ष्मसांपरायणगुणस्थाने विशेषकथनसंख्यानिरूपणार्थं सूत्रमवतरति —

णवरि लोभकसाईसु सुहुमसांपराइयसुद्धिसंजदा उवसमा खवा मूलोघं।।१३७।।

के प्रवाह के समान जो अवस्थित हैं, ऐसी वहाँ स्थित उन राशियों की सदृशता नहीं बन सकती है।

अब चारों कषायों से सहित जीवों में छठे गुणस्थान से अनिवृत्तिकरणगुणस्थानपर्यन्त जीवों की संख्या निरूपण करने के लिए सूत्र का अवतार होता है —

सूत्रार्थ —

प्रमत्तसंयत गुणस्थान से लेकर अनिवृत्तिकरण गुणस्थान तक चारों कषाय वाले जीव द्रव्यप्रमाण की अपेक्षा कितने हैं ? संख्यात हैं ।।१३६।।

हिन्दी टीका — सूत्र का अर्थ सुगम है।

प्रमत्तसंयत, अप्रमत्तसंयत, अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण गुणस्थानवर्ती संयत जीवों का प्रमाण कहा जाता है। ये चारों प्रकार के संयतजीव मान कषाय सहित सबसे कम संख्या में हैं। क्रोधकषाय सहित ये संयमी जीव मानकषाय सहित की अपेक्षा विशेष अधिक होते हैं। मायाकषाय सहित ये ही संयत क्रोधकषाय सहित की अपेक्षा विशेष अधिक हैं तथा लोभकषाय सहित ये संयत जीव माया कषाय की अपेक्षा विशेष अधिक होते हैं।

विशेषार्थ — प्रमत्तादि राशियों के संख्यातवें खंड को अलग करके शेष राशि के चार पुंज करके पहले निकाले गये पुंज में से बहुभाग को प्रथमपुंज में मिलाने पर लोभकषाय वालों की राशि होती है। शेष एक भाग में से बहुभाग दूसरे पुंज में मिलाने पर मायाकषाय वालों की राशि होती है। शेष एक भाग में से बहुभाग तीसरे पुंज में मिलाने पर क्रोधकषाय वालों की राशि होती है। शेष एक भाग को चौथे पुंज में मिलाने पर मानकषाय वालों की राशि होती है। इसलिये प्रमत्तसंयत आदि गुणस्थानों में मानकषाय जीवराशि सबसे स्तोक है। क्रोधकषाय जीवराशि मानकषाय राशि से विशेष अधिक है। मायाकषाय जीवराशि क्रोधकषाय राशि से विशेष अधिक है। लोभकषाय जीवराशि मायाकषाय जीवराशि से विशेष अधिक है।

अब लोभकषाययुक्त संयमियों का सूक्ष्मसांपरायणगुणस्थान में विशेषकथनपूर्वक संख्या का निरूपण करने हेतु सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ —

इतना विशेष है कि लोभकषायी जीवों में सूक्ष्मसांपरायिक शुद्धिसंयत उपशमक और क्षपक जीव मूलोघ प्ररूपणा के समान हैं।।१३७।।

अत्र एतद्विशेषोऽस्ति, लोभकषायिषु जीवेषु सूक्ष्मसांपरायिकशुद्धिसंयताः उपशमकाः क्षपकाश्च मूलोघप्ररूपणा समाना सन्ति। क्षपकोपशामकसूक्ष्मसांपरायिकेषु सूक्ष्मलोभकषायव्यतिरिक्तसांपरायाभावात् ओघत्वं न विरुध्यते। सांपरायः कषायः इति यावत्।

एवं प्रथमस्थले सकषायजीवानां प्रमाणप्ररूपणपराणि त्रीणि सूत्राणि गतानि।

अधुना अकषायानां उपशान्तकषायानां प्रमाणनिरूपणाय सूत्रावतारो भवति—

अकसाईसु उवसंतकसायवीदरागछदुमत्था ओघं॥१३८॥

अकषायिषु उपशान्तकषायवीतरागछद्वस्थाः ओघवत् प्रमाणाः सन्ति।

अत्र भावकषायाभावं दृष्ट्वा उपशान्तकषाया अकषायिनो न द्रव्यकषायाभावं प्रति, उदयोदीरणा-अपकर्षण-उत्कर्षण-परप्रकृतिसंक्रमणादिविरहितद्रव्यकर्मणः तत्रोपलम्भात्।

संप्रति क्षीणकषाय-अयोगिकेवलिनं संख्याप्रतिपादनाय सूत्रावतारो भवति—

खीणकसायवीदरागछदुमत्था अजोगिकेवली ओघं॥१३९॥

सूत्रस्यार्थः सुगमः।

सयोगिनां संख्यानिरूपणाय सूत्रमवतरति—

हिन्दी टीका—यहाँ विशेषता यह है कि लोभकषाय वाले जीवों में सूक्ष्मसांपरायिक शुद्धिसंयत, उपशमक और क्षपक मूलोघप्ररूपणा के समान हैं। क्षपक और उपशामक सूक्ष्मसाम्परायिक जीवों में सूक्ष्म लोभ कषाय से व्यतिरिक्त कषाय नहीं पाई जाने के कारण सूक्ष्म लोभी जीवों के प्रमाण को ओघत्व का प्रतिपादन करना विरोध को प्राप्त नहीं होता है। साम्पराय का अर्थ यहाँ कषाय से है।

इस प्रकार प्रथमस्थल में सकषायी जीवों का प्रमाण प्ररूपण करने वाले तीन सूत्र पूर्ण हुए।

अब अकषायी—उपशान्तकषायी जीवों का प्रमाण बतलाने हेतु सूत्र का अवतार होता है—

सूत्रार्थ—

कषायरहित जीवों में उपशान्तकषाय वीतराग छद्वस्थ जीव ओघप्ररूपणा के समान हैं॥१३८॥

हिन्दी टीका—अकषायी जीवों में उपशान्तकषाय वाले वीतरागछद्वस्थ जीवों का ओघवत् प्रमाण है। यहाँ भावकषाय का अभाव देखकर उपशान्तकषाय जीवों को अकषायी कहा गया है, द्रव्यकषाय के अभाव की अपेक्षा यह कथन नहीं है क्योंकि उदय, उदीरणा, अपकर्षण, उत्कर्षण और परप्रकृतिरूपसंक्रमण आदि से रहित द्रव्यकर्म वहाँ उपशान्तकषाय गुणस्थान में पाया जाता है।

अब क्षीणकषाय और अयोगिकेवली जीवों की संख्या प्रतिपादन हेतु सूत्र अवतरित होता है—

सूत्रार्थ—

क्षीणकषाय वीतरागछद्वस्थ जीव और अयोगिकेवली जीव ओघप्ररूपणा के समान हैं॥१३९॥

सूत्र का अर्थ सुगम है।

अब सयोगिकेवली भगवन्तों की संख्या निरूपण के लिए सूत्र प्रगट होता है—

सयोगिकेवली ओघं॥१४०॥

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — केवली भगवान् अर्हत्परमेष्ठी प्रवेशापेक्षया न्यूनतमेन एकः उत्कृष्टेन — अधिकतमेन अष्टोत्तरशतानि च भवन्तीति ओघवद् ज्ञातव्यं।

एवं द्वितीयस्थले अकषायिनां प्रमाणकथनेन त्रीणि सूत्राणि गतानि।

संप्रति भागाभागं कथयिष्यंति —

सर्वजीवराशेः अनन्तखण्डे कृते तत्र बहुखण्डाः चतुःकषायमिथ्यादृष्टयो भवन्ति। एक खंडप्रमाणाः अकषायिनो गुणस्थानप्रतिपन्नाश्च। पुनः चतुःकषायमिथ्यादृष्टिराशिं आवल्याः असंख्यातभागेन खण्डयित्वा तत्रैकखण्डं पृथक् स्थापयित्वा शेषबहुखण्डान् चतुरः समपुञ्जान् कृत्वा स्थापयितव्यं। पुनः अपनीतैकखण्डं आवल्याः असंख्यातभागेन खण्डयित्वा तत्र बहुखण्डे प्रथमपुञ्जे प्रक्षिप्ते लोभकषायमिथ्यादृष्टिराशिर्भवति। शेषैकखंडं आवल्याः असंख्यातभागेन खण्डयित्वा बहुखण्डे द्वितीयपुंजे प्रक्षिप्ते मायाकषाय-मिथ्या-दृष्टिराशिर्भवति। शेषैकखण्डं आवल्याः असंख्यातभागेन खण्डयित्वा बहुखण्डे तृतीयपुंजे प्रक्षिप्ते क्रोधकषायमिथ्यादृष्टिराशिर्भवति। शेषं चतुर्थं पुंजे प्रक्षिप्ते मानकषायमिथ्यादृष्टिराशिर्भवति। शेषस्य अनन्तखण्डे कृते बहुखण्डाः अकषायाः भवन्ति।

एतस्मादुपरि कषायगुणकारेभ्यः सम्यग्मिथ्यादृष्टिराशिं प्रति सासादनसम्यग्दृष्टिगुणकारः संख्यातगुणः इति उपदेशमवलम्ब्य भागाभागः उच्यते।

सूत्रार्थ —

सयोगिकेवली जीव ओघप्ररूपणा के समान हैं॥१४०॥

हिन्दी टीका — अर्हत्परमेष्ठी केवली भगवान् प्रवेश की अपेक्षा न्यूनतमरूप से एक हैं और उत्कृष्ट — अधिकतम एक सौ आठ (१०८) होते हैं, इनकी व्यवस्था ओघवत् जाननी चाहिए।

इस प्रकार द्वितीय स्थल में अकषायी जीवों का प्रमाण कथन करने वाले तीन सूत्र पूर्ण हुए।

अब भागाभाग को कहेंगे — सर्वजीवराशि के अनन्त खंड करने पर उनमें से बहुभाग चार कषाय मिथ्यादृष्टि जीव हैं और एक भागप्रमाण अकषायी और गुणस्थानप्रतिपन्न जीव हैं। पुनः चार कषाय मिथ्यादृष्टि राशि को आवली के असंख्यातवें भाग से खंडित करके उनमें से एक खंड को पृथक् करके शेष बहुभाग के चार समान पुंज करके स्थापित करना चाहिए। पुनः निकालकर पृथक् ऐसे हुए एक भाग को आवली के असंख्यातवें भाग से खंडित करके उनमें से बहुभाग पहले पुंज में मिला देने पर लोभकषाय मिथ्यादृष्टि जीवराशि होती है। शेष एक खंड को आवली के असंख्यातवें भाग से खंडित करके बहुभाग दूसरे पुंज में मिला देने पर मायाकषाय मिथ्यादृष्टि जीवराशि होती है। शेष एक खंड को आवली के असंख्यातवें भाग से खंडित करके बहुभाग तीसरे पुंज में मिला देने पर क्रोधकषायी मिथ्यादृष्टि जीवराशि होती है। शेष एक भाग को चौथे पुंज में मिला देने पर मानकषायी मिथ्यादृष्टि जीवराशि होती है। सर्वजीवराशि के अनन्त खंडों में से जो एक खंडप्रमाण अकषायी और गुणस्थानप्रतिपन्न बतलाये थे, उस एक खंड के अनन्त खण्ड करने पर बहुभाग अकषाय जीव होते हैं।

अब आगे कषाय के गुणकार से सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवराशि के प्रति सासादन सम्यग्दृष्टि का गुणकार संख्यातगुणा है। इस प्रकार के उपदेश का अवलम्बन लेकर भागाभाग का कथन करते हैं — शेष के संख्यात खंड करने पर बहुभागप्रमाण लोभकषायी असंयतसम्यग्दृष्टि होते हैं। शेष के संख्यात खंड करने पर बहुभाग

शेषस्य संख्यातखण्डे कृते बहुखण्डाः लोभकषायासंयतसम्यग्दृष्टयो भवन्ति। शेषस्य संख्यातखण्डे कृते बहुखण्डाः मायाकषायासंयतसम्यग्दृष्टयो भवन्ति। शेषस्य संख्यातखण्डे कृते बहुखण्डाः मानकषायासंयतसम्यग्दृष्टयो भवन्ति। शेषस्य असंख्यातखण्डे कृते बहुखण्डाः क्रोधकषायासंयतसम्यग्दृष्टयो भवन्ति। शेषस्य संख्यातखण्डे कृते बहुखण्डाः लोभकषायसम्यग्मिथ्यादृष्टयो भवन्ति। शेषस्य संख्यातखण्डे कृते बहुखण्डाः मायाकषायसम्यग्मिथ्यादृष्टयो भवन्ति। शेषस्य संख्यातखण्डे कृते बहुखण्डाः मानकषायसम्यग्मिथ्यादृष्टयो भवन्ति। शेषस्य संख्यातखण्डे कृते बहुखण्डाः क्रोधकषायसम्यग्मिथ्यादृष्टयो भवन्ति। शेषस्य संख्यातखण्डे कृते बहुखण्डाः लोभकषायासासादनसम्यग्दृष्टयो भवन्ति। शेषस्य संख्यातखण्डे कृते बहुखण्डाः मायाकषायासासादनसम्यग्दृष्टयो भवन्ति। शेषस्य संख्यातखण्डे कृते बहुखण्डाः मानकषायासासादनसम्यग्दृष्टयो भवन्ति। शेषस्य संख्यातखण्डे कृते बहुखण्डाः क्रोधकषायासासादनसम्यग्दृष्टयो भवन्ति। शेषस्य असंख्यातखण्डे कृते बहुखण्डाः चतुःकषायसंयतासंयताः भवन्ति।

तदनंतरं संयतासंयतराशेः असंख्यातभागमपनीय शेषस्य चतुरः समपुञ्जान् कृत्वा स्थापयितव्यं। पुनः पूर्वमपनीतैकखण्डस्य असंख्यातखण्डं कृत्वा तत्र बहुखण्डे प्रथमपुंजे प्रक्षिप्ते लोभकषायिसंयतासंयतराशिर्भवति। शेषस्य असंख्यातखण्डं कृत्वा बहुखण्डे द्वितीयपुंजे प्रक्षिप्ते मायाकषायिसंयतासंयतराशिर्भवति। शेषस्य असंख्यातखण्डं कृत्वा बहुखण्डे तृतीयपुंजे प्रक्षिप्ते क्रोधकषायिसंयतासंयतराशिर्भवति। शेषं द्रव्यं चतुर्थपुंजे प्रक्षिप्ते मानकषायिसंयतासंयतराशिर्भवति। शेषं ज्ञात्वा नेतव्यं।^१

मायाकषाय असंयतसम्यग्दृष्टि जीवराशि है। शेष एक भाग के संख्यात खंड करने पर बहुभाग मानकषाय असंयतसम्यग्दृष्टि जीवराशि है। शेष एक भाग के असंख्यात खंड करने पर बहुभाग क्रोधकषाय असंयतसम्यग्दृष्टि जीवराशि है। शेष एक भाग के संख्यात खंड करने पर बहुभाग लोभकषाय सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवराशि है। शेष एक भाग के संख्यात खंड करने पर बहुभाग मायाकषाय सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवराशि है। शेष एक भाग के संख्यात खंड करने पर बहुभाग मानकषाय सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवराशि है। शेष एक भाग के संख्यात खंड करने पर बहुभाग क्रोधकषाय सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवराशि है। शेष एक भाग के संख्यात खंड करने पर बहुभाग लोभकषाय सासादन सम्यग्दृष्टि जीवराशि है। शेष एक भाग के संख्यात खंड करने पर बहुभाग मायाकषाय सासादन सम्यग्दृष्टि जीवराशि है। शेष एक भाग के असंख्यात खंड करने पर बहुभाग मानकषाय सासादन सम्यग्दृष्टि जीवराशि है। शेष एक भाग के संख्यात खंड करने पर बहुभाग क्रोधकषाय सासादन सम्यग्दृष्टि जीवराशि है।

शेष एक भाग के असंख्यात खंड करने पर बहुभाग चार कषाय सहित संयतासंयत जीवराशि है।

तदनन्तर संयतासंयत जीवराशि के असंख्यातवें भाग को घटाकर शेष के चार समान पुंज करके स्थापित कर देना चाहिए पुनः पहले घटा कर रखे हुए एक खंड के असंख्यात खंड करके उनमें से बहुभाग प्रथमपुंज में प्रक्षिप्त करने पर लोभकषाय संयतासंयत जीवराशि होती है। शेष एक भाग के असंख्यात खंड करके उनमें से बहुभाग दूसरे पुंज में मिला देने पर मायाकषायी संयतासंयत जीवराशि होती है। शेष एक भाग के असंख्यात खंड करके बहुभाग तीसरे पुंज में मिला देने पर क्रोधकषायी संयतासंयत जीवराशि होती है। शेष एक भाग को चौथे पुंज में मिला देने पर मानकषायी संयतासंयत जीवराशि होती है। शेष कथन जानकर कहना चाहिये।

तात्पर्य यह है कि हम सभी संसारी जीव कषाय के निमित्त से चारों गतियों में परिभ्रमण कर रहे हैं, ऐसा

तात्पर्यमेतत्—कषायनिमित्तेन वयं संसारिणः चतुर्गतिषु परिभ्रमणं कुर्मः एतज्ज्ञात्वा कषायविनाशाय प्रयत्नामहे।
तथा च ये कषायरहिताः यथाख्यातसंयताः चतुर्गुणस्थानवर्तिनः अष्टलक्षणवनवतिसहस्रनवशत-
सप्तनवतिप्रमाणाः सन्ति।

उक्तं च — अट्टेव सयसहस्सा, णवणउदिसहस्स चेव णवयसया।
सत्ताणउदी य तहा, जहक्खादा होंति ओघेण।^१
तान् सर्वान् त्रिकरणशुद्ध्या नमामो वयं पंचमचारित्रलब्ध्ये नित्यम्।

इति षट्खण्डागमस्य प्रथमखण्डे तृतीय ग्रन्थे द्रव्यप्रमाणानुगमनाम्नि तृतीय-
प्रकरणे गणिनीज्ञानमतीविरचितसिद्धान्तचिन्तामणिटीकायां
कषायमार्गणा नाम षष्ठोऽधिकारः समाप्तः।

जानकर कषाय का नाश करने के लिए हमें प्रयत्न करना चाहिए तथा जो कषाय से रहित यथाख्यात चारित्रधारी चार गुणस्थानवर्ती (८, ९, १०, १२) आठ लाख निन्यानवे हजार नव सौ सत्तानवे प्रमाण संयमी मुनिराज हैं, उन सभी को हम पंचम यथाख्यात चारित्र की प्राप्ति हेतु त्रिकरण शुद्धिपूर्वक नमन करते हैं।

कहा भी है —

गाथार्थ — सामान्य से यथाख्यातसंयमी जीव आठ लाख निन्यानवे हजार नौ सौ सत्तानवे होते हैं।
अर्थात् तीन कम नौ करोड़ मुनिराजों की संख्या में से यहाँ उपशमक और क्षपक जीवों की संख्या निकालकर केवल यथाख्यातचारित्रधारी चार गुणस्थानवर्ती मुनियों की संख्या बताई है। इन सभी को मेरा कोटि-कोटि वन्दन है।

इस प्रकार षट्खण्डागम ग्रंथ के प्रथम खंड में तृतीय ग्रंथ में
द्रव्यप्रमाणानुगम नाम के द्वितीय प्रकरण में गणिनी
ज्ञानमती विरचित सिद्धान्तचिन्तामणि टीका में
कषायमार्गणा नामक छठा अधिकार
समाप्त हुआ।



अथ ज्ञानमार्गणाधिकारः

अथ तावत् स्थलचतुष्टयेन सप्तभिः सूत्रैः अयं सप्तमोऽधिकारः कथ्यते। तस्मिन् प्रथमस्थले मत्यज्ञानादित्रिविधाज्ञानप्रमाणप्ररूपणत्वेन “णाणाणुवादेण” इत्यादिसूत्रत्रयं। तदनु द्वितीयस्थले मतिज्ञानादित्रिविधज्ञानिनोः गुणस्थानेषु प्रमाणनिरूपणपरत्वेन “आभिणिबोहिय” इत्यादिसूत्रद्वयं। ततः परं तृतीयस्थले मनःपर्ययज्ञानिनः संख्याप्रतिपादनत्वेन “मणपज्जवणाणीसु” इत्यादिसूत्रमेकं। तत्पश्चात् चतुर्थस्थले केवलज्ञानिनः प्रमाणप्ररूपणत्वेन “केवलणाणीसु” इत्यादिसूत्रमेकं इति समुदायपातनिका।

अधुना ज्ञानमार्गणायां द्विविधाज्ञानिनां प्रमाणप्ररूपणार्थं सूत्रमवतरति —

णाणाणुवादेण मदिअण्णाणि-सुदअण्णाणीसु मिच्छाइट्ठी सासणसम्माइट्ठी दव्वपमाणेण केवडिया? ओघं।।१४१।।

सिद्धान्तचिन्तामणि टीका — सूत्रस्यार्थः सुगमः।

ओघमिथ्यादृष्टि-सासादनसम्यग्दृष्टिभ्यां मतिश्रुताज्ञानिमिथ्यादृष्टिसासादनसम्यग्दृष्टिराशेः न एकेनापि जीवेन ऊना भवन्ति। द्विविधाज्ञानविरहित मिथ्यादृष्टिसासादनसम्यग्दृष्टयोरभावात्।

अथ ज्ञानमार्गणा अधिकार प्रारम्भ

अब चार स्थलों में सात सूत्रों के द्वारा यह सातवाँ अधिकार कहा जा रहा है। उनमें प्रथम स्थल में मति अज्ञानादि तीन प्रकार के मिथ्याज्ञानों से युक्त अज्ञानी जीवों का प्ररूपण करने वाले “णाणाणुवादेण” इत्यादि तीन सूत्र कहेंगे। उसके बाद द्वितीय स्थल में मति आदि तीन सम्यग्ज्ञानी जीवों का गुणस्थानों में प्रमाणनिरूपण करने हेतु “आभिणिबोहिय” इत्यादि दो सूत्र हैं पुनः तृतीय स्थल में मनःपर्ययज्ञानियों की संख्या प्रतिपादन हेतु “मणपज्जवणाणीसु” इत्यादि एक सूत्र है। तत्पश्चात् चतुर्थस्थल में केवलज्ञानी जीवों के प्रमाण का प्ररूपण करने वाला “केवलणाणीसु” इत्यादि एक सूत्र है। यह सूत्रों की समुदायपातनिका हुई।

अब ज्ञानमार्गणा में दो प्रकार के अज्ञानी जीवों का प्रमाण प्ररूपण करने हेतु सूत्र अवतरित होता है — सूत्रार्थ —

ज्ञानमार्गणा के अनुवाद से मत्यज्ञानी और श्रुताज्ञानी जीवों में मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि जीव द्रव्यप्रमाण की अपेक्षा कितने हैं ? ओघप्ररूपणा के समान हैं।।१४१।।

हिन्दी टीका — सूत्र का अर्थ सुगम है। ओघ मिथ्यादृष्टि राशि और ओघ सासादनसम्यग्दृष्टि राशि से कुमति और कुश्रुतज्ञानी मिथ्यादृष्टिराशी और सासादनसम्यग्दृष्टि जीवराशि में एक भी जीव प्रमाण से कम नहीं है, क्योंकि उक्त दोनों प्रकार के अज्ञानों से रहित मिथ्यादृष्टि और सासादन सम्यग्दृष्टि जीव नहीं पाये जाते हैं।

विशेषार्थ — यहाँ कुमति और कुश्रुतज्ञानी जीवराशि की ध्रुवराशि का भी कथन करते हैं, वह इस प्रकार है — सिद्धराशि और तेरह गुणस्थानप्रतिपन्न राशि को तथा सिद्ध और तेरह गुणस्थानप्रतिपन्न राशि के वर्ग में मत्यज्ञानी और श्रुताज्ञानी मिथ्यादृष्टि राशि का भाग देने पर जितना लब्ध आवे, उसको सर्व जीवराशि में मिला देने पर मत्यज्ञानी और श्रुताज्ञानी मिथ्यादृष्टि जीवों की ध्रुवराशि होती है। ओघसासादनसम्यग्दृष्टियों का अवहारकाल ही मत्यज्ञानी और श्रुताज्ञानी सासादनसम्यग्दृष्टियों का अवहारकाल होता है।

संप्रति विभंगज्ञानिनः मिथ्यादृष्टिप्रमाणनिरूपणार्थं सूत्रमवतरति —

विभंगणाणीसु मिच्छादृष्टी दव्वपमाणेण केवडिया? देवेहि सादिरियं।।१४२।।

सूत्रस्यार्थः सुगमः।

देवमिथ्यादृष्टयो नारकमिथ्यादृष्ट्यश्च सर्वे विभंगज्ञानिनः, विभंगज्ञानभवप्रत्ययसमन्वितत्वात्। तिर्यञ्चः विभंगज्ञानिनः प्रतरस्य असंख्यातभागमात्राः भवन्तोऽपि असंख्यातश्रेणिमात्रा भवन्ति। विभंगज्ञानं अपर्याप्तावस्थायां न संभवति अतो देवेभ्यः सातिरेकाः विभंगज्ञानिनः सन्ति।

विभंगज्ञाने सासादनगुणस्थानवर्तिनां संख्यानिरूपणार्थं सूत्रावतारो भवति —

सासणसम्माइट्टी ओघं।।१४३।।

विभंगज्ञानिनः सासादनसम्यग्दृष्टयः ओघवत् पल्योपमस्य असंख्यातभागमात्राः भवन्ति। यद्यपि इमे जीवाः स्व-स्व-असंख्यात भागरूपमत्यज्ञानश्रुताज्ञानयुक्ततिर्यङ्मनुष्याणां प्रमाणेन हीनाः सन्ति तथापि पल्योपमस्यासंख्यातभागत्वापेक्षया ओघवत् प्रोक्तमस्ति।

एवं प्रथमस्थले त्रिविधाज्ञानिनां संख्याप्रतिपादकानि त्रीणि सूत्राणि गतानि।

अब विभंगज्ञानी मिथ्यादृष्टियों का प्रमाण बताने हेतु सूत्र कहा जाता है —

सूत्रार्थ —

विभंगज्ञानियों में मिथ्यादृष्टि जीव द्रव्यप्रमाण की अपेक्षा कितने हैं ? देवों से कुछ अधिक हैं।।१४२।।

हिन्दी टीका — सूत्र का अर्थ सरल है। देवमिथ्यादृष्टि जीव और नारकमिथ्यादृष्टि जीव ये सभी विभंगज्ञानी होते हैं क्योंकि ये जीव भवप्रत्यय विभंगज्ञान से युक्त होते हैं।

तिर्यच विभंगज्ञानी जीव जगत्प्रतर के असंख्यातवें भागप्रमाण होते हुए भी असंख्यात श्रेणीप्रमाण होते हैं। विभंगज्ञान अपर्याप्त अवस्था में नहीं संभव होता है अतः देवों से विभंगज्ञानी जीव साधिक होते हैं।

विशेषार्थ — विभंगज्ञानी मिथ्यादृष्टि जीवों का अवहारकाल इस प्रकार है — देवमिथ्यादृष्टि राशि में से एक प्रतरांगुल को ग्रहण करके और उसके असंख्यात खंड करके उनमें से एक खंड को निकालकर बहुभाग उसी देव मिथ्यादृष्टि अवहारकाल में मिला देने पर विभंगज्ञानी मिथ्यादृष्टियों का अवहारकाल होता है। इस अवहारकाल से जगत्प्रतर के भाजित करने पर विभंगज्ञानी मिथ्यादृष्टि जीवराशि आती है।

अब विभंगज्ञान में सासादनगुणस्थानवर्ती जीवों की संख्या बतलाने हेतु सूत्र का अवतार होता है —

सूत्रार्थ —

विभंगज्ञानी सासादनसम्यग्दृष्टि जीव ओघप्ररूपणा के समान पल्योपम के असंख्यातवें भागप्रमाण हैं।।१४३।।

हिन्दी टीका — ओघ सासादनसम्यग्दृष्टि राशि से यद्यपि यह विभंगज्ञानी सासादनसम्यग्दृष्टि राशि अपने असंख्यातवें भागरूप मत्यज्ञान और श्रुताज्ञान इन दो अज्ञानों से युक्त तिर्यच और मनुष्यों के प्रमाण से हीन है, तो भी पल्योपम के असंख्यातवें भागत्व की अपेक्षा ओघ सासादनसम्यग्दृष्टि राशि और विभंगज्ञानी सासादनसम्यग्दृष्टि राशि इन दोनों की प्रत्यासत्ति पाई जाती है इसलिए सूत्र में “ओघ” ऐसा कहा है।

इस प्रकार प्रथमस्थल में तीनों प्रकार के मिथ्याज्ञानी जीवों की संख्या का प्रतिपादन करने वाले तीन सूत्र पूर्ण हुए।

अधुना त्रिविधज्ञानिनां गुणस्थानव्यवस्थासंख्याप्रतिपादनार्थं सूत्रमवतरति—

आभिणिबोहियणाणि-सुदणाणि-ओहिणाणीसु असंजदसम्माइट्टिप्पहुडि जाव खीणकसाय-वीदरागछदुमत्था त्ति ओघं।।१४४।।

एषु मतिश्रुतावधिज्ञानिषु असंयतसम्यग्दृष्ट्यादेरारभ्य यावत् क्षीणकषायवीतरागछद्मस्थाः इति प्रमाणेन ओघवत् सन्ति।

अधुना अवधिज्ञानिप्रमत्तादीनां प्रमाणनिरूपणाय सूत्रमवतरति—

णवरि विसेसो, ओहिणाणिसु पमत्तसंजदप्पहुडि जाव खीणकसायवीयराय-छदुमत्था त्ति दव्वपमाणेण केवडिया? संखेज्जा।।१४५।।

अत्र एतद्विशेषः, यत् अवधिज्ञानिषु प्रमत्तसंयतगुणस्थानादारभ्य क्षीणकषायवीतरागछद्मस्थाः प्रत्येकगुणस्थानवर्तिनो मुनयः द्रव्यप्रमाणेन कियन्तः? इति प्रश्ने सति संख्याता-स्वक-स्वकराशेः संख्यातभागमात्राः भवन्ति। किन्तु इमे एतावन्त इति न स्पष्टं ज्ञायते, संप्रतिकाले गुरोरुपदेशाभावात्। अस्ति एतद् विशेषः- अवधिज्ञानिनः उपशामकाः चतुर्दश १४, क्षपकाः अष्टाविंशतिः २८ इति। एवं द्वितीयस्थले त्रिविधज्ञानिगुणस्थानेषु संख्याप्रतिपादके द्वे सूत्रे गते।

अब तीनों सम्यग्ज्ञानी जीवों की गुणस्थानव्यवस्था में संख्या का प्रतिपादन करने हेतु सूत्र अवतरित होता है—

सूत्रार्थ—

आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवों में असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान से लेकर क्षीणकषाय वीतरागछद्मस्थ गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थान में जीव ओघप्ररूपणा के समान हैं।।१४४।।

हिन्दी टीका—इन मति, श्रुत, अवधिज्ञानी जीवों में असंयतसम्यग्दृष्टियों से आरंभ करके क्षीणकषायवीतरागछद्मस्थ तक जीवों का प्रमाण ओघवत् होता है।

अब अवधिज्ञानी प्रमत्तगुणस्थानवर्ती जीवों का प्रमाण निरूपण करने हेतु सूत्र का अवतार होता है—

सूत्रार्थ—

इतना विशेष है कि अवधिज्ञानियों में प्रमत्तसंयत गुणस्थान से लेकर क्षीणकषाय वीतराग छद्मस्थ गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थान में जीव द्रव्यप्रमाण की अपेक्षा कितने हैं? संख्यात हैं।।१४५।।

हिन्दी टीका—यहाँ यह विशेषता है कि अवधिज्ञानी जीवों में प्रमत्तसंयत गुणस्थान से आरंभ करके क्षीणकषाय वीतरागछद्मस्थ जीव प्रत्येक गुणस्थानवर्तीमुनि द्रव्यप्रमाण से कितने हैं? ऐसा प्रश्न होने पर वे संख्यात हैं—वे सभी अपनी-अपनी राशि के संख्यातवें भाग मात्र होते हैं, यह उत्तर प्राप्त होता है किन्तु वे इतने ही होते हैं यह स्पष्ट नहीं जाना जाता है, क्योंकि वर्तमानकाल में इस प्रकार का गुरु उपदेश नहीं पाया जाता है। इतना विशेष है कि अवधिज्ञानी उपशामक चौदह और क्षपक अट्ठाईस होते हैं।

इस प्रकार द्वितीय स्थल में तीन प्रकार के ज्ञानी जीवों की गुणस्थानों में संख्या बताने वाले दो सूत्र पूर्ण हुए।

संप्रति मनःपर्ययज्ञानिप्रमाणनिरूपणार्थं सूत्रावतारो भवति —

**मणपज्जवणाणीसु पमत्तसंजदप्पहुडि जाव खीणकसायवीदरागछदुमत्था
त्ति दव्वपमाणेण केवडिया? संखेज्जा।।१४६।।**

मनःपर्ययज्ञानिनः प्रमत्ताप्रमत्तगुणस्थानयोः तत्रस्थितद्वयज्ञानवतां मुनीनां संख्यातभागमात्राः भवन्ति, लब्धिसंपन्नर्षीणां बहूनामसंभवात्। ते च एतावन्त इति सम्यक् न ज्ञायन्ते, संप्रतिकाले उपदेशाभावात्। एतदस्ति विशेषः मनःपर्ययज्ञानिनः उपशामकाः दश १०, क्षपकाः विंशतिः २० इति।

एवं तृतीयस्थले मनःपर्ययज्ञानिसंख्यानिरूपकमेकं सूत्रं गतम्।

केवलज्ञानिनां भगवतां संख्यानिरूपणाय सूत्रावतारः क्रियते —

केवलणाणीसु सजोगिकेवली अजोगिकेवली ओघं।।१४७।।

सूत्रस्यार्थः सुगमः।

अत्र भागाभागं कथयिष्यामि —

सर्वजीवराशेः अनन्तखण्डे कृते बहुखण्डाः मति-श्रुताज्ञानिमिथ्यादृष्टयो भवन्ति। शेषस्यानन्तखण्डे कृते बहुखण्डाः केवलज्ञानिनो भवन्ति। शेषस्य असंख्यातखण्डे कृते बहुखण्डाः विभंगज्ञानिमिथ्यादृष्टयो भवन्ति। शेषस्य असंख्यातखण्डे कृते बहुखण्डाः आभिनिबोधिक-श्रुतज्ञानि-असंयतसम्यग्दृष्टयो भवन्ति। तयोश्चैव प्रतिराशिं कृत्वा आवल्याः असंख्यातभागेन भागे कृते यत्लब्धं तस्मात् चैव अपनीते

अब मनःपर्ययज्ञानी जीवों का प्रमाणनिरूपण करने के लिए सूत्र का अवतार होता है —

सूत्रार्थ —

**मनःपर्ययज्ञानियों में प्रमत्तसंयत गुणस्थान से लेकर क्षीणकषाय वीतरागछद्मस्थ
गुणस्थान तक जीव द्रव्यप्रमाण की अपेक्षा कितने हैं? संख्यात हैं।।१४६।।**

हिन्दी टीका — प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत गुणस्थानों में मनःपर्ययज्ञानी जीव वहाँ स्थित दो ज्ञान वाले जीवों के संख्यातवें भागप्रमाण होते हैं क्योंकि लब्धिसम्पन्न ऋषि बहुत नहीं हो सकते हैं। फिर भी वे इतने ही होते हैं, यह ठीक नहीं जाना जाता है क्योंकि वर्तमानकाल में इस प्रकार का उपदेश नहीं पाया जाता है। इतना विशेष है कि मनःपर्ययज्ञानी उपशामक दश और क्षपक बीस होते हैं।

इस प्रकार तृतीय स्थल में मनःपर्ययज्ञानी जीवों की संख्या का निरूपण करने वाला एक सूत्र पूर्ण हुआ।

अब केवलज्ञानी भगवन्तों की संख्यानिरूपण करने के लिए सूत्र का अवतार किया जाता है —

सूत्रार्थ —

**केवलज्ञानियों में सयोगिकेवली और अयोगिकेवली जीव ओघप्ररूपणा के समान
हैं।।१४७।।**

हिन्दी टीका — सूत्र का अर्थ सुगम है।

अब भागाभाग को कहते हैं — सर्व जीवराशि के अनंत खंड करने पर उनमें से बहुभाग मत्त्यज्ञानी और श्रुताज्ञानी मिथ्यादृष्टि जीव हैं। शेष एकभाग के अनंत खंड करने पर उनमें से बहुभाग केवलज्ञानी जीव हैं। शेष एक भाग के असंख्यात खंड करने पर बहुभाग विभंगज्ञानी मिथ्यादृष्टि जीव हैं। शेष एक भाग के असंख्यात

अवधिज्ञानिअसंयतसम्यग्दृष्टयो भवन्ति। शेषस्य संख्यातखण्डे कृते बहुखण्डाः मिश्रद्विकज्ञानिसम्यग्मिथ्यादृष्टयो भवन्ति। तयोश्चैव द्विकमिश्रज्ञानिनोः प्रतिराशिं कृत्वा आवल्याः असंख्यातभागेन भागेकृते यल्लब्धं तस्मिन् चैवापनीते मिश्रत्रयज्ञानिसम्यग्मिथ्यादृष्टयो भवन्ति। शेषस्यासंख्यातखण्डे कृते बहुखण्डाः मतिश्रुताज्ञानि-सासादनसम्यग्दृष्टयो भवन्ति। तयोश्चैव प्रतिराशिं कृत्वा आवल्याः असंख्यातभागेन भागे कृते यल्लब्धं तस्मिन्चैवापनीते विभंगज्ञानिसासादनसम्यग्दृष्टयो भवन्ति। शेषस्य असंख्यातखण्डे कृते बहुखण्डाः आभिनिबोधिकश्रुतज्ञानिसंयतासंयताः भवन्ति। शेषस्य असंख्यातखण्डे कृते बहुखण्डाः अवधिज्ञानिसंयतासंयताः भवन्ति। भरतचक्रवर्त्यादयः ज्ञातव्याः। शेषं ज्ञात्वा वक्तव्यम्।

अथवा सर्वजीवराशेः अनन्तखण्डे कृते बहुखण्डाः मतिश्रुताज्ञानि-मिथ्यादृष्टयो भवन्ति। शेषस्य अनन्तखण्डे कृते बहुखण्डाः केवलज्ञानिनो भवन्ति। शेषस्य असंख्यातखण्डे कृते बहुखण्डाः विभंगज्ञानि-मिथ्यादृष्टयो भवन्ति। शेषस्य असंख्यातखण्डे कृते बहुखण्डाः त्रयज्ञानिअसंयतसम्यग्दृष्टयो भवन्ति। शेषस्य संख्यातखण्डे कृते बहुखण्डाः त्रिज्ञानि-सम्यग्मिथ्यादृष्टयो भवन्ति। शेषस्य असंख्यातखण्डे कृते बहुखण्डाः-त्रिज्ञानि-सासादनसम्यग्दृष्टयो भवन्ति। शेषस्य असंख्यातखण्डे कृते बहुखण्डाः द्वयज्ञानि असंयतसम्यग्दृष्टयो भवन्ति। शेषस्य संख्यातखण्डे कृते बहुखण्डाः द्विज्ञानिसम्यग्मिथ्यादृष्टयो भवन्ति। शेषस्य असंख्यातखण्डे कृते बहुखण्डाः

खंड करने पर बहुभाग विभंगज्ञानी मिथ्यादृष्टि जीव हैं। शेष एक भाग के असंख्यात खण्ड करने पर उनमें से बहुभाग आभिनिबोधिकज्ञानी और श्रुतज्ञानी असंयतसम्यग्दृष्टि जीव हैं। इन्हीं आभिनिबोधिकज्ञानी और श्रुतज्ञानी असंयतसम्यग्दृष्टियों की प्रतिराशि करके और उसे आवली के असंख्यातवें भाग से भाजित करने पर जो लब्ध आवे, उसे उसे प्रतिराशि में से घटा देने पर अवधिज्ञानी असंयतसम्यग्दृष्टि जीवराशि होती है। शेष एक भाग के संख्यात खंड करने पर बहुभाग मिश्र दो ज्ञान वाले सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव होते हैं। उन्हीं मिश्र दो ज्ञान वाले जीवों के प्रमाण की प्रतिराशि करके और उसे आवली के असंख्यातवें भाग से भाजित करने पर जो लब्ध आवे, उसे उसी प्रतिराशि में से घटा देने पर मिश्र तीन ज्ञान वाले सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव होते हैं। शेष एक भाग के असंख्यात खण्ड करने पर बहुभाग मत्यज्ञानी और श्रुताज्ञानी सासादनसम्यग्दृष्टि जीव होते हैं। उन्हीं मत्यज्ञानी और श्रुताज्ञानी सासादनसम्यग्दृष्टि जीवराशि की प्रतिराशि करके और उसे आवली के असंख्यातवें भाग से भाजित करने पर जो लब्ध आवे, उसे उसी प्रतिराशि में से घटा देने पर विभंगज्ञानी सासादन सम्यग्दृष्टि जीव होते हैं। शेष एक भाग के असंख्यात खंड करने पर बहुभाग आभिनिबोधिकज्ञानी और श्रुतज्ञानी संयतासंयत होते हैं। शेष एक भाग के असंख्यात खंड करने पर बहुभाग अवधिज्ञानी संयतासंयत जीव होते हैं। शेष अल्पबहुत्व को जानकर कथन करना चाहिए।

अथवा सर्व जीवराशि के अनन्त खंड करने पर बहुभाग मत्यज्ञानी और श्रुताज्ञानी मिथ्यादृष्टि जीव हैं। शेष एक भाग के अनन्त खण्ड करने पर बहुभाग केवलज्ञानी जीव हैं। शेष एक भाग के असंख्यात खंड करने पर बहुभाग विभंगज्ञानी मिथ्यादृष्टि जीव हैं। शेष एक भाग के असंख्यात खंड करने पर बहुभाग तीन ज्ञान वाले असंयतसम्यग्दृष्टि जीव हैं। शेष एक भाग के संख्यात खंड करने पर बहुभाग तीन ज्ञान वाले सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव हैं। शेष एक भाग के असंख्यात खंड करने पर बहुभाग तीन ज्ञान वाले सासादनसम्यग्दृष्टि जीव हैं। शेष एक भाग के असंख्यात खण्ड करने पर बहुभाग दो ज्ञान वाले असंयतसम्यग्दृष्टि जीव हैं। शेष एक भाग के संख्यात खंड करने पर बहुभाग दो ज्ञान वाले सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव हैं। शेष एक भाग के असंख्यात खंड करने पर बहुभाग दो ज्ञान वाले

द्विज्ञानि-सासादनसम्यग्दृष्टयो भवन्ति। शेषस्य असंख्यातखण्डे कृते बहुखण्डाः द्विज्ञानि-संयतासंयताः भवन्ति। शेषस्य असंख्यातखण्डे कृते बहुखण्डाः त्रिज्ञानिसंयतासंयताः भवन्ति। शेषं ज्ञात्वा वक्तव्यमिति।

तात्पर्यमेतत्-एतज्ज्ञानमार्गणां पठित्वा मिथ्यात्वसंसर्गजनिताज्ञानेभ्यः दूरमपसृत्य सम्यग्ज्ञानीभूय केवलं एकं केवलज्ञानलब्धर्थं प्रयत्नो विधेयोऽस्माभिरिति।

एवं चतुर्थस्थले केवलज्ञानिनां प्रमाणप्ररूपकमेकं सूत्रं गतम्।

सासादनसम्यग्दृष्टि जीव हैं। शेष एक भाग के असंख्यात खंड करने पर बहुभाग दो ज्ञान वाले संयतासंयत जीव हैं। शेष एक भाग के असंख्यात खंड करने पर बहुभाग तीन ज्ञान वाले संयतासंयत जीव हैं। शेष का जानकर कथन करना चाहिए।

तात्पर्य यह है कि इस ज्ञानमार्गणा अधिकार को पढ़कर मिथ्यात्व के संसर्ग से उत्पन्न अज्ञान से दूर रहकर सम्यग्ज्ञानी बनकर एक मात्र केवलज्ञान को प्राप्त करने के लिए हम सभी को प्रयत्न — पुरुषार्थ करना चाहिए।

इस प्रकार चतुर्थ स्थल में केवलज्ञानियों का प्रमाण प्ररूपण करने वाला एक सूत्र पूर्ण हुआ।

विशेषार्थ — इस ज्ञानमार्गणा नामक सप्तम अधिकार में आठ प्रकार के ज्ञान का वर्णन करके सम्यग्ज्ञानों को प्राप्त करने हेतु पुरुषार्थ की प्रेरणा प्रदान की गई है। वास्तव में ज्ञान के समान संसार में दूसरी कोई परमौषधि नहीं है इसकी प्राप्ति हेतु हमें उपलब्ध जैन वाङ्मय का अध्ययन करना चाहिए। वर्तमान में उपलब्ध सम्पूर्ण जिनागम द्वादशांग का अंश माना जाता है, इसे शब्दब्रह्म भी कहते हैं।

भगवान महावीरस्वामी की प्रथम देशना विपुलाचल पर्वत पर श्रावणवदी प्रतिपदा के दिन हुई थी उस समय सप्तऋद्धि से समन्वित गौतम गणधर को पूर्वाण्ह में समस्त अंगों के अर्थ और पद स्पष्ट ज्ञान पड़े। उसी दिन अपराण्ह में अनुक्रम से उन्हें पूर्वों के अर्थ तथा पदों का भी स्पष्ट बोध हो गया पुनः मनःपर्ययज्ञानधारी श्रीगणधर देव ने उसी दिन रात्रि के पूर्वभाग में अंगों की और पिछले भाग में पूर्वों की ग्रन्थ रचना की।

इस ग्यारह अंग-चौदह पूर्वरूप श्रुतसमुद्र में कोई विषय अपूर्ण नहीं है। अष्टांगनिमित्त, अष्टांग आयुर्वेद, मंत्र, तंत्र आदि सभी विषय इसमें आ जाते हैं। आज द्वादशांगरूप से श्रुतज्ञान उपलब्ध नहीं है। हाँ! अग्रायणीय नामक द्वितीय पूर्व के चयनलब्धि नामक चतुर्थ अधिकार का ज्ञान श्रीधरसेनाचार्य को था, जिनके प्रसाद से वह षट्खंडागमरूप ग्रंथ में निबद्ध हुआ है।

इस द्वादशांग शास्त्र को आचार्यों ने चार अनुयोगों में विभक्त किया है। प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग और द्रव्यानुयोग। ये चारों ही अनुयोग भव्य जीवों को रत्नत्रय की उत्पत्ति, वृद्धि और रक्षा के कारण हैं। इन अनुयोगरूप द्रव्यश्रुत से उत्पन्न हुआ भावश्रुत परम्परा से केवलज्ञान का कारण है। कहा भी है —

‘विणयेण सुदमधीदं, जदि वि पमादेण होदि विस्सरिदं ।

तमुअवट्ठादि परभवे, केवलणाणं च आवहदि ।।’ (मूलाचार गा. २८६)

विनयपूर्वक पढ़ा हुआ शास्त्र यदि प्रमाद से विस्मृत भी हो जाता है तो भी जन्मांतर में पूरा का पूरा उपस्थित हो जाता है और अंत में केवलज्ञान को प्राप्त करा देता है।

यह समस्त श्रुतज्ञान की महिमा है न कि एक किसी अनुयोग की। श्री कुंदकुंददेव कहते हैं —

इति षट्खण्डागमस्य प्रथमखण्डे तृतीयग्रन्थे द्रव्यप्रमाणानुगमनाम्नि
द्वितीयप्रकरणे गणिनीज्ञानमतीकृतसिद्धान्तचिन्तामणिटीकायां
ज्ञानमार्गणानाम सप्तमोऽधिकारः समाप्तः।

“जिणवयणमोसहमिणं, विसयसुहविरियणं अमियभूदं।

जरमरणबाहिहरणं, खयकरणं सव्वदुक्खाणं ॥१७॥” (दर्शन पाहुड़)

जिनेन्द्रदेव के वचन औषधिरूप हैं, ये विषयसुखों का विरेचन कराने वाले हैं, अमृतस्वरूप हैं, इसलिये ये जन्म-मरणरूप व्याधि का नाश करने वाले हैं और सर्वदुःखों का क्षय करने वाले हैं।

श्रुतज्ञान महान् वृक्ष सदृश है— अनादिकाल की अविद्या के संस्कार से प्रत्येक मनुष्य का मन मर्कट के समान अतीव चंचल है, उसको रमाने के लिए श्रीगुणभद्रसूरि इस श्रुतज्ञान को महान् वृक्ष की उपमा देते हुए कहते हैं—

शिखरिणी छंद- अनेकांतात्मार्थं प्रसवफल भारातिविनते।

वचःपर्णाकीर्णे विपुलनयशाखाशतयुते॥

समुत्तुंगे सम्यक् प्रततमतिमूले प्रतिदिनं।

श्रुतस्कन्धे धीमान् रमयतु मनोमर्कटममुम् ॥१७०॥ (आत्मानुशासन)

जो श्रुतस्कन्धरूप वृक्ष अनेक धर्मात्मक पदार्थरूप फूल एवं फलों के भार से अतिशय झुका हुआ है, वचनोंरूप पत्तों से व्याप्त है, विस्तृत नयोंरूप सैकड़ों शाखाओं से युक्त है, उन्नत है तथा समीचीन एवं विस्तृत मतिज्ञानरूप जड़ से स्थिर है, उस श्रुतस्कन्ध वृक्ष के ऊपर बुद्धिमान साधु अपने मनरूपी बन्दर को प्रतिदिन रमण करावे।

इस प्रकार षट्खण्डागम ग्रंथ के प्रथम खंड में तृतीय ग्रंथ में द्रव्यप्रमाणानुगमनाम्नि नाम के द्वितीय प्रकरण में गणिनी ज्ञानमती विरचित सिद्धान्तचिन्तामणि टीका में ज्ञानमार्गणा नामक सप्तम अधिकार समाप्त हुआ।



अथ संयममार्गणाधिकारः

अथ तावत् स्थलपञ्चकेन सप्तभिः सूत्रैः संयममार्गणानाम अष्टमोऽधिकारः कथ्यते। तत्र प्रथमस्थले सामान्यसंयमिनां सामायिकछेदोपस्थापनयोश्च गुणस्थानेषु संख्यानिरूपणत्वेन “संजमाणुवादेण” इत्यादिसूत्रद्वयं। तदनु द्वितीयस्थले परिहारशुद्धिसंयतानां गुणस्थानयोः संख्यानिरूपणत्वेन “परिहारसुद्धि” इत्यादिसूत्रमेकं। ततः परं तृतीयस्थले सूक्ष्मसांपरायसंयमिनां गुणस्थानप्रमाणकथनप्रकारेण “सुहुमसांपराय” इत्यादिसूत्रमेकं। तदनंतरं चतुर्थस्थले यथाख्यातसंयमिनां गुणस्थानव्यवस्थाप्रमाणप्ररूपणत्वेन “जहाक्खाद” इत्यादिसूत्रमेकं। तदनु पंचमस्थले संयतासंयत-असंयतादि गुणस्थानेषु प्रमाणप्ररूपकत्वेन “संजदासंजदा” इत्यादिसूत्रद्वयं इति समुदायपातनिका।

अधुना सामान्यसंयतानां गुणस्थानेषु प्रमाणप्ररूपणाय सूत्रावतारो भवति—

संजमाणुवादेण संजदेसु पमत्तसंजदप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि त्ति ओघं।।१४८।।

सिद्धान्तचिन्तामणि टीका — सूत्रार्थः सुगमोऽस्ति।

अत्र ओघद्रव्यात् संयतानां प्रमाणं न किञ्चिदूनं नाधिकं वा अस्ति, भेदनिमित्तकविशेषाभावात् ततोऽत्र ओघत्वं युज्यते।

सामायिक-छेदोपस्थापनाशुद्धिसंयतयोः गुणस्थानेषु प्रमाणनिरूपणाय सूत्रमवतरति—

अथ संयममार्गणा अधिकार प्रारम्भ

अब पाँच स्थलों में सात सूत्रों के द्वारा संयममार्गणा नाम का आठवां अधिकार प्रारंभ होता है। उनमें से प्रथम स्थल में सामान्य संयमियों की सामायिक और छेदोपस्थापना संयम वाले गुणस्थानों में संख्या का निरूपण करने की मुख्यता से “संजमाणुवादेण” इत्यादि दो सूत्र कहेंगे। उसके बाद द्वितीय स्थल में परिहारविशुद्धि संयमधारी मुनियों की गुणस्थानों में संख्या बतलाने हेतु “परिहारसुद्धि” इत्यादि एक सूत्र है। उसके आगे तृतीय स्थल में सूक्ष्मसांपरायसंयमियों का गुणस्थान में प्रमाण कथन की मुख्यता से “सुहुमसांपराय” इत्यादि एक सूत्र है। तदनंतर चतुर्थस्थल में यथाख्यातसंयमी जीवों की गुणस्थानव्यवस्था में प्रमाण प्ररूपण करने हेतु “जहाक्खाद” इत्यादि एक सूत्र है। पुनः पंचमस्थल में संयतासंयत और असंयतादि गुणस्थानों में जीवों की प्रमाणप्ररूपणा बतलाने वाले “संजदासंजदा” इत्यादि दो सूत्र हैं। यह इस अधिकार के सूत्रों की समुदायपातनिका हुई।

अब सामान्य संयत जीवों का गुणस्थानों में प्रमाणप्ररूपण करने के लिए सूत्र का अवतार होता है—

सूत्रार्थ—

संयममार्गणा के अनुवाद से संयमियों में प्रमत्तसंयत गुणस्थान से लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थान में जीव ओघप्ररूपणा के समान संख्यात हैं।।१४८।।

हिन्दी टीका — सूत्र का अर्थ सरल है। यहाँ ओघ द्रव्य से संयतों का प्रमाण कुछ न्यून या अधिक नहीं होता है क्योंकि सामान्य कथन में भेद का निमित्तभूत विशेष का अभाव पाया जाता है, इसलिए यहाँ संयममार्गणा में सामान्य से ओघपना बन जाता है।

अब सामायिक-छेदोपस्थापना संयमधारी जीवों का गुणस्थानों में प्रमाणनिरूपण करने के लिए सूत्र अवतरित होता है—

सामाङ्ग्य-छेदोपस्थापनशुद्धिसंयतसु पमत्तसंयतदण्डि जाव अणियट्टिबादर- सांपराङ्ग्यपविट्ट उवसमा खवा त्ति ओघं।।१४९।।

एतत्सूत्रं सुगमं।

द्रव्यार्थिकनयावलम्बनेन “सर्वसावद्ययोगाद्विरतोऽस्मि” इति गृहीतैक्यमाः सामाधिकशुद्धिसंयताः उच्यन्ते। ते चैव पर्यायार्थिकनयावलम्बनेन त्रि-चतुःपञ्चादिभेदेन पूर्वगृहीतयमं भेदरूपेण प्रतिपन्नाः छेदोपस्थापनशुद्धिसंयता भवन्ति। ततो द्वौ अपि राशी ओघराशिप्रमाणात् न भिद्येते इति ओघत्वं युज्यते। अत्र छेदशब्देन भेदो गृह्यते न च प्रायश्चित्तं इति।

अत्र एतज्ज्ञातव्यं — ये सामाधिकशुद्धिसंयताः ते चैव छेदोपस्थापनशुद्धिसंयताभवन्ति। ये छेदोपस्थापनशुद्धिसंयताः ते चैव सामाधिकशुद्धिसंयताः भवन्तीति^१ ततो द्वयोः राश्योः ओघत्वं युज्यते। किंच अत्र उभयनयसापेक्षत्वं वर्तते। द्रव्यार्थिकनयेन अभेदेन वा एकसामाधिकसंयमधारिणः त एव पर्यायार्थिकनयेन भेदेन वा छेदोपस्थापनसंयमधारिणो भवन्ति।

सूत्रार्थ —

सामाधिक और छेदोपस्थापन शुद्धिसंयत जीवों में प्रमत्तसंयत गुणस्थान से लेकर अनिवृत्तिबादर-सांपराधिकप्रविष्ट उपशामक और क्षपक गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थान में जीव ओघप्रमाण के समान संख्यात हैं।।१४९।।

हिन्दी टीका — इस सूत्र का अर्थ भी सरल है। द्रव्यार्थिक नय के अवलम्बन से “मैं सर्व सावद्ययोग से विरत हूँ” इस प्रकार एक यम-नियम को जिन्होंने स्वीकार कर लिया है, वे सामाधिकशुद्धिसंयत कहे जाते हैं तथा वे ही जीव पर्यायार्थिक नय के अवलम्बन करने की अपेक्षा तीन, चार और पाँच आदि भेदरूप से पहले के ग्रहण किये गये यम — संयम को भेदरूप से स्वीकार करते हुए छेदोपस्थापनाशुद्धिसंयत कहे जाते हैं इसलिए ये दोनों राशियाँ ओघराशि के प्रमाण से भेद को प्राप्त नहीं होती हैं, इसलिए ओघपना बन जाता है। यहाँ छेद शब्द से भेद ग्रहण करना चाहिए न कि प्रायश्चित्त को लेना है।

यहाँ यह जानना चाहिए कि जो सामाधिकशुद्धिसंयत जीव हैं, वे ही छेदोपस्थापना शुद्धिसंयत होते हैं तथा जो छेदोपस्थापनाशुद्धिसंयत हैं, वे ही सामाधिकशुद्धिसंयत होते हैं अतएव उक्त दोनों राशियों के ओघपना बन जाता है। यहाँ दोनों नयों में सापेक्षता है। द्रव्यार्थिक नय से अथवा अभेदरूप से एकमात्र सामाधिकसंयमधारी जो जीव हैं, वे ही पर्यायार्थिक नय से अथवा भेदरूप से छेदोपस्थापना संयम के धारी होते हैं।

विशेषार्थ — धवलाटीकाकार श्रीवीरसेनाचार्य ने इस सम्बन्ध में और भी स्पष्टीकरण करते हुए कहा है कि द्रव्यार्थिकनय का अवलम्बन करने पर सर्व संयमियों के एक-एक ही यम होता है इसलिये सामाधिक शुद्धिसंयतों के ओघसंयतों का प्रमाण बन जाता है। पर्यायार्थिक नय का अवलम्बन करने पर तो सर्व संयमियों के प्रत्येक के पाँच-पाँच संयम होते हैं इसलिये छेदोपस्थापनाशुद्धिसंयत भी ओघसंयतराशि के प्रमाण को प्राप्त हो जाते हैं, अतएव इन दोनों संयतों के ओघपना बन जाता है। कुछ एक जाति के परिणाम एकान्त से अपने प्रतिपक्षी परिणामों से निरपेक्ष होते हैं, ऐसा नहीं है, क्योंकि ऐसा मानने पर उनको दुर्नयपने की आपत्ति आ जाती है। इसलिए जो सामाधिकशुद्धिसंयत जीव हैं, वे ही छेदोपस्थापनाशुद्धिसंयत होते हैं तथा जो छेदोपस्थापनाशुद्धिसंयत जीव हैं, वे

एवं प्रथमस्थले सामान्यसंयत-द्विविधसंयतगुणस्थानप्रमाणनिरूपणपरत्वेन द्वे सूत्रे गते।

संप्रति परिहारशुद्धिसंयतगुणस्थानसंख्यानिरूपणाय सूत्रावतारो भवति —

परिहारशुद्धिसंयतसंजदेसु पमत्तापमत्तसंजदा दव्वपमाणेण केवडिया? संखेज्जा।।१५०।।

एतत्सूत्रं सुगमं।

इमे संयताः ओघसंयतप्रमाणं न प्राप्नुवन्ति इति कथितं भवति। तर्हि अपि ते कियन्तः? इति प्रश्ने सति संख्याताः कथिताः-त्र्यून-सप्तसहस्रप्रमाणाः भवन्ति^१।

एवं द्वितीयस्थले परिहारशुद्धिसंयतप्रमाणनिरूपणपरं एकं सूत्रं गतम्।

संप्रति चतुर्थसंयमधारिणां प्रमाणनिरूपणाय सूत्रावतारो भवति —

सुहुमसांपराइयसुद्धिसंयतसंजदेसु सुहुमसांपराइयसुद्धिसंयत उवसमा खवा दव्वपमाणेण केवडिया? ओघं।।१५१।।

सूक्ष्मसांपरायिकशुद्धिसंयतेषु दशमगुणस्थानवर्तिनः सूक्ष्मसांपरायिकशुद्धिसंयताः उपशमाः क्षपकाः द्रव्यप्रमाणेन कियन्तः? इति प्रश्ने सति ओघं इति। एतेषां प्रमाणं त्र्यूननवशतमात्रं भवति^२।

ही सामायिकशुद्धिसंयत होते हैं। अतएव उक्त दोनों राशियों के ओघपना बन जाता है।

इस प्रकार प्रथमस्थल में सामान्य संयत और दोनों प्रकार के संयतों का गुणस्थानों में प्रमाणनिरूपण करने वाले दो सूत्र पूर्ण हुए।

अब परिहारशुद्धिसंयत जीवों की गुणस्थान में संख्या निरूपण करने के लिए सूत्र का अवतार होता है —
सूत्रार्थ —

परिहारशुद्धिसंयतों में प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत जीव द्रव्यप्रमाण की अपेक्षा कितने हैं ? संख्यात हैं ।।१५०।।

हिन्दी टीका — यह सूत्र सरल है। इन संयतों का प्रमाण ओघसंयतों के प्रमाण को प्राप्त नहीं होता है। तो भी वे कितने हैं? ऐसा प्रश्न होन पर वे संख्यात हैं, ऐसा कहा गया है क्योंकि वे परिहारशुद्धिसंयत तीन कम सात हजार होते हैं।

इस प्रकार द्वितीय स्थल में परिहारशुद्धिसंयतों का प्रमाण बतलाने वाला एक सूत्र पूर्ण हुआ।

अब चतुर्थ संयम के धारी जीवों का प्रमाण निरूपण करने हेतु सूत्र का अवतार होता है —

सूत्रार्थ —

सूक्ष्मसांपरायिकशुद्धिसंयतों में सूक्ष्मसांपरायिक शुद्धिसंयत उपशमक और क्षपकजीव द्रव्यप्रमाण की अपेक्षा कितने हैं ? ओघप्ररूपणा के समान हैं।।१५१।।

हिन्दी टीका — सूक्ष्मसांपरायिकशुद्धि वाले संयत जीवों में दशवें गुणस्थानवर्ती सूक्ष्मसांपरायिकशुद्धि-संयत उपशमक और क्षपक द्रव्यप्रमाण से कितने होते हैं ? ऐसा प्रश्न होने पर 'ओघ' ऐसा कहने से उनका प्रमाण तीन कम नौ सौ होता है।

विशेषार्थ — धवला टीका में श्री वीरसेन स्वामी ने इन सूक्ष्मसांपरायगुणस्थानवर्ती जीवों की सूक्ष्मराग अवस्था बताते हुए उनकी संख्या बताई है —

एवं तृतीयस्थले सूक्ष्मसांपरायणगुणस्थानवर्तिनां संख्यानिरूपणपरमेकं सूत्रं गतम्।

अधुना यथाख्यातचारित्रवतां संख्यानिरूपणाय सूत्रमवतरति —

जहाक्खादविहारशुद्धिसंयतसु चउट्टाणं ओघं॥१५२॥

यथाख्यातविहारशुद्धिसंयताः उपशान्तकषाय-क्षीणकषाय-सयोगकेवलि-अयोगिकेवलिनः ओघवत् प्रमाणाः सन्तीति।

एवं चतुर्थस्थले यथाख्यातसंयमधारिणां प्रमाणनिरूपणत्वेन एकं सूत्रं गतम्।

पंचमगुणस्थानवर्तिनां प्रमाणनिरूपणाय सूत्रावतारः क्रियते —

संजदासंजदा दव्वपमाणेण केवडिया? ओघं॥१५३॥

एतत्सूत्रं सुगमं। एषा संख्या स्वयंभूरमण द्वीपस्य अर्धभागे परे स्वयंभूरमणसमुद्रस्थजीवांश्च न तिरश्चोऽपेक्ष्य भवतीति ज्ञातव्यम्।

असंयतानां संख्याप्ररूपणाय सूत्रावतारः क्रियते —

सत्तादी छक्कंता, दोणवमज्झा य होंति परिहारा।

सत्तादी अट्ठंता, णवमज्झा सुहुमरागा दु ॥

अर्थात् जिस संख्या की आदि में सात, अन्त में छह और मध्य में दो बार नौ है, उतने अर्थात् छह हजार नौ सौ सत्तानवे परिहारविशुद्धि संयत हैं तथा जिस संख्या की आदि में सात, अन्त में आठ और मध्य में नौ है उतने अर्थात् आठ सौ सत्तानवे सूक्ष्मराग वाले हैं।

इस प्रकार तृतीय स्थल में सूक्ष्मसांपराय गुणस्थानवर्ती संयमियों की संख्या निरूपण करने वाला एक सूत्र पूर्ण हुआ।

अब यथाख्यातचारित्रधारी जीवों की संख्या निरूपण के लिए सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ —

यथाख्यातविहारशुद्धिसंयतों में ग्यारहवें, बारहवें, तेरहवें और चौदहवें गुणस्थानवर्ती जीवों का प्रमाण ओघप्ररूपणा के समान है॥१५२॥

हिन्दी टीका — यथाख्यातविहारशुद्धिसंयत जीवों में उपशान्तकषाय, क्षीणकषाय, सयोगिकेवली और अयोगिकेवली जीव ओघवत् प्रमाण वाले हैं।

इस प्रकार चतुर्थस्थल में यथाख्यातसंयम धारण करने वालों का प्रमाण बतलाने वाला एक सूत्र हुआ।

अब पंचम गुणस्थानवर्ती जीवों का प्रमाण बताने के लिए सूत्र का अवतार किया जा रहा है —

सूत्रार्थ —

संयतासंयत जीव द्रव्यप्रमाण की अपेक्षा कितने हैं ? ओघप्ररूपणा के समान पल्योपम के असंख्यातवें भाग हैं॥१५३॥

सूत्र का अर्थ सुगम है। यह संख्या स्वयंभूरमण द्वीप का आधा भाग और स्वयंभूरमण समुद्र में रहने वाले तिर्यचों की अपेक्षा है।

अब असंयत जीवों की संख्या निरूपण हेतु सूत्र का अवतार किया जाता है —

असंजदेसु मिच्छाद्विप्पहुडि जाव असंजदसम्माद्विप्पि ति दव्वपमाणेण केवडिया? ओघं॥१५४॥

सूत्रस्यार्थः सुगमः।

असंयतेषु मिथ्यादृष्ट्यादि असंयतसम्यग्दृष्टिपर्यताः द्रव्यप्रमाणेन कियन्तः? ओघवत् ज्ञातव्याः।

अथ भागाभागं वक्ष्यति —

सर्वजीवराशेः अनन्तखण्डे कृते बहुखण्डाः मिथ्यादृष्टयो भवन्ति। शेषस्य अनन्तखण्डे कृते बहुखण्डाः सिद्धा भवन्ति। शेषस्य असंख्यातखण्डे कृते बहुखण्डाः असंयताः भवन्ति। शेषस्य संख्यातखण्डे कृते बहुखण्डाः सम्यग्मिथ्यादृष्टयो भवन्ति। शेषस्य असंख्यातखण्डे कृते बहुखण्डाः सासादनसम्यग्दृष्टयो भवन्ति। शेषस्य असंख्यातखण्डे कृते बहुखण्डाः संयतासंयताः भवन्ति। शेषस्य संख्यातखण्डे कृते बहुखण्डाः सामायिक-छेदोपस्थापनशुद्धिसंयताः भवन्ति। शेषस्य संख्यातखण्डे कृते बहुखण्डाः यथाख्यातशुद्धिसंयताः भवन्ति। शेषस्य संख्यातखण्डे कृते बहुखण्डाः परिहारशुद्धिसंयताः भवन्ति। शेषैकखण्डाः सूक्ष्मसांपरायिकसंयताः भवन्ति। तात्पर्यमेतत् — मनुष्यपर्यायं दुर्लभं लब्ध्वा असंयतावस्थां त्यक्त्वा देशसंयमे संयमे च प्रीतिं कृत्वा स्वात्मोत्थपरमानन्दामृतपानार्थं पुरुषार्थो विधेयः।

एवं पंचमस्थले संयतासंयत-असंयतानां संख्यानिरूपणपरे द्वे सूत्रे गते।

इति षट्खण्डागमस्य प्रथमखण्डे तृतीयग्रन्थे द्रव्यप्रमाणानुगमनाम्नि द्वितीय प्रकरणे गणिनी-ज्ञानमतीकृत सिद्धान्तचिन्तामणिनामटीकायां संयममार्गणानाम अष्टमोऽधिकारः समाप्तः।

सूत्रार्थ —

असंयतों में मिथ्यादृष्टि गुणस्थान से लेकर असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान तक जीव द्रव्यप्रमाण की अपेक्षा कितने हैं? सामान्य प्ररूपणा के समान हैं॥१५४॥

हिन्दी टीका — सूत्र का सुगम है। असंयतों में मिथ्यादृष्टि गुणस्थान से लेकर असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानपर्यन्त जीव द्रव्यप्रमाण से कितने हैं ? ऐसा प्रश्न होने पर उत्तर मिलता है कि सामान्य प्ररूपणा के समान ओघवत् उनका प्रमाण होता है।

अब भागाभाग को कहते हैं — सर्वजीवराशि के अनन्त खंड करने पर बहुभाग मिथ्यादृष्टि जीव होते हैं। शेष एक भाग के अनंत खंड करने पर बहुभाग सिद्ध जीव होते हैं। शेष एक भाग के असंख्यात खंड करने पर बहुभाग असंयतसम्यग्दृष्टि जीव होते हैं। शेष एक भाग के संख्यात खंड करने पर बहुभाग सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव होते हैं। शेष एक भाग के असंख्यात खंड करने पर बहुभाग सासादनसम्यग्दृष्टि जीव होते हैं। शेष एक भाग के असंख्यात खंड करने पर बहुभाग संयतासंयत जीव होते हैं। शेष एक भाग के संख्यात खंड करने पर बहुभाग सामायिक और छेदोपस्थापना शुद्धिसंयत होते हैं। शेष एक भाग के संख्यात खंड करने पर बहुभाग यथाख्यातशुद्धिसंयत होते हैं। शेष एक भाग के संख्यात खंड करने पर बहुभाग परिहारशुद्धिसंयत होते हैं। शेष एक भाग सूक्ष्मसांपरायिक शुद्धिसंयत हैं।

तात्पर्य यह है कि संसार में अतिदुर्लभ मनुष्यपर्याय को प्राप्त करके असंयत अवस्था को त्याग करके देशसंयम और सकलसंयम में प्रीति करके अपनी आत्मा से उत्पन्न होने वाले परमानन्दामृत का पान करने हेतु पुरुषार्थ करना चाहिए।

इस प्रकार पंचमस्थल में संयतासंयत और असंयतों की संख्या कहने वाले दो सूत्र पूर्ण हुए।

इस प्रकार षट्खंडागम ग्रंथ के प्रथम खंड में तृतीय ग्रंथ में द्रव्यप्रमाणानुगम नाम के द्वितीय प्रकरण में गणिनी ज्ञानमती कृत सिद्धान्तचिन्तामणि नामक टीका में संयममार्गणा नामक अष्टम अधिकार समाप्त हुआ।

अथ दर्शनमार्गणाधिकारः

अथ स्थलत्रयेण सप्तभिः सूत्रैः दर्शनमार्गणानाम नवमोऽधिकारः प्रारभ्यते। तेषु प्रथमस्थले चक्षुर्दर्शनवतां गुणस्थानव्यवस्थानसंख्यानिरूपणपरत्वेन “दंसणाणुवादेण” इत्यादिसूत्रचतुष्टयं। तदनु द्वितीयस्थले अचक्षुर्दर्शनिनां प्रमाणनिरूपणत्वेन “अचक्खु” इत्यादिना सूत्रमेकं। ततः परं तृतीयस्थले अवधिकेवलदर्शनधारिणां गुणस्थानसंख्याप्ररूपणत्वेन “ओहिदंसणी” इत्यादिसूत्रद्वयं इति समुदायपातनिका।

अधुना दर्शनमार्गणायां चक्षुर्दर्शनिनां मिथ्यादृष्टिजीवसंख्यानिरूपणाय सूत्रमवतरति —

**दंसणाणुवादेण चक्खुदंसणीसु मिच्छाइट्ठी दव्वपमाणेण केवडिया?
असंखेज्जा।।१५५।।**

सुगममेतत्सूत्रं।

अधुना कालापेक्षया एषामेव संख्याप्ररूपणार्थं सूत्रावतारो भवति—

असंखेज्जासंखेज्जाहि ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीहि अवहिरंति कालेण।।१५६।।

सूत्रं सुगमं वर्तते।

अतिस्थूल-स्थूल-सूक्ष्मप्ररूपणपरिपाटीक्रमाः अत्र ग्रन्थे पुनः पुनः कथं कथ्यन्ते? सूक्ष्मप्ररूपणमेव

अथ दर्शनमार्गणा अधिकार प्रारंभ

अब तीन स्थलों में सात सूत्रों के द्वारा दर्शनमार्गणा नामक नवमां अधिकार प्रारंभ होता है। उनमें प्रथम स्थल में चक्षुदर्शन वाले जीवों की गुणस्थानव्यवस्था में संख्यानिरूपण की मुख्यता वाले “दंसणाणुवादेण” इत्यादि चार सूत्र कहेंगे। उसके पश्चात् द्वितीय स्थल में अचक्षुदर्शन वाले जीवों का प्रमाणनिरूपण करने वाले “अचक्खु” इत्यादि एक सूत्र को कहेंगे। उसके आगे तृतीयस्थल में अवधिदर्शन, केवलदर्शन वाले जीवों की संख्या का प्ररूपण करने वाले “ओहिदंसणी” इत्यादि दो सूत्र हैं। यह इस अधिकार में सूत्रों की समुदायपातनिका हुई।

अब दर्शनमार्गणा में चक्षुदर्शन वाले मिथ्यादृष्टि जीवों की संख्या का निरूपण करने हेतु सूत्र का अवतार होता है—

सूत्रार्थ—

**दर्शनमार्गणा के अनुवाद से चक्षुदर्शनी जीवों में मिथ्यादृष्टि जीव द्रव्यप्रमाण की
अपेक्षा कितने हैं ? असंख्यात हैं।।१५५।।**

सूत्र का अर्थ सरल है।

अब काल की अपेक्षा इन्हीं जीवों की संख्या का प्ररूपण करने के लिए सूत्र का अवतार होता है—

सूत्रार्थ—

**काल की अपेक्षा चक्षुदर्शनी मिथ्यादृष्टि जीव असंख्यातासंख्यात अवसर्पिणियों
और उत्सर्पिणियों के द्वारा अपहृत होते हैं।।१५६।।**

हिन्दी टीका—सूत्र का अर्थ सुगम है।

शंका—अतिसूक्ष्म, स्थूल और सूक्ष्म ये तीनों प्ररूपणाएं परिपाटीक्रम से किसलिये कही जाती हैं,

कथं न क्रियते?

नैतत्, मेधावि-मंदबुद्धि-अतिमंदबुद्धिशिष्यानुग्रहार्थं तथोपदेशः अस्ति। अत्र द्रव्यप्रमाणं अतिस्थूलं, कालप्रमाणं स्थूलं, क्षेत्रप्रमाणं सूक्ष्मं इति ज्ञातव्यम्।

अधुना क्षेत्रेण एषामेव प्रमाणनिरूपणार्थं सूत्रमवतरति—

खेत्तेण चक्खुदंसणीसु मिच्छाइट्ठीहि पदरमवहिरदि अंगुलस्स संखेज्जदि भागवग्ग-पडिभाएण।।१५७।।

सूत्रं सुगमं वर्तते।

अत्र चक्षुर्दर्शनवन्तो जीवाः संख्यातसागरोपममात्राः। चतुरिन्द्रियाः पंचेन्द्रियजीवाः पर्याप्ता एवात्र प्रधानत्वेन गृहीतव्याः।

अधुना सासादनादिचक्षुर्दर्शनवतां संख्यानिरूपणाय सूत्रमवतरति—

सासणसम्माइट्ठिप्पहुडि जाव खीणकसायवीदरागछदुमत्था त्ति ओघं।।१५८।।

सूत्रस्यार्थः सुगमः।

चक्षुर्दर्शनक्षयोपशमरहितगुणस्थानप्रतिपन्नाभावात् इमे चक्षुर्दर्शनिनः ओघवत् उच्यन्ते।

एवं प्रथमस्थले चक्षुर्दर्शनिनां गुणस्थानेषु प्रमाणनिरूपणत्वेन चत्वारि सूत्राणि गतानि।

अधुना अचक्षुर्दर्शनिनां गुणस्थानेषु प्रमाणनिरूपणाय सूत्रमवतरति—

केवल एक सूक्ष्म प्ररूपणा क्यों नहीं कही जाती है?

समाधान — नहीं, क्योंकि मेधावी, मन्दबुद्धि और अति मन्दबुद्धि जनों का अनुग्रह करने के कारण इस प्रकार का उपदेश दिया गया है। यहाँ द्रव्यप्रमाण अतिस्थूल है, काल प्रमाण स्थूल है और क्षेत्रप्रमाण सूक्ष्म है, ऐसा जानना चाहिए।

अब क्षेत्र की अपेक्षा इन्हीं जीवों का प्रमाण निरूपण करने हेतु सूत्र अवतरित होता है—

सूत्रार्थ —

क्षेत्र की अपेक्षा चक्षुर्दर्शनियों में मिथ्यादृष्टि जीवों के द्वारा सूच्यंगुल के संख्यातवें भाग के वर्गरूप प्रतिभाग से जगत् प्रतर अपहत होता है।।१५७।।

हिन्दी टीका — सूत्र का अर्थ सुगम है। यहाँ चक्षुर्दर्शन वाले जीव संख्यात सागरोपम मात्र हैं।

चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय पर्याप्त जीवों को ही यहाँ प्रधानता से ग्रहण करना चाहिए।

अब सासादन आदि चक्षुर्दर्शन वाले जीवों की संख्या का निरूपण करने के लिए सूत्र अवतरित होता है—

सूत्रार्थ —

सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थान से लेकर क्षीणकषायवीतरागछद्मस्थ गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थान में चक्षुर्दर्शनी जीव ओघप्ररूपणा के समान हैं।।१५८।।

हिन्दी टीका — सूत्र का अर्थ सुगम है। गुणस्थानप्रतिपन्न जीव चक्षुर्दर्शन के क्षयोपशम से रहित नहीं होते हैं, इसलिए गुणस्थानप्रतिपन्न चक्षुर्दर्शनी जीवों के प्रमाण की प्ररूपणा ओघप्ररूपणा के समान है।

इस प्रकार प्रथम स्थल में चक्षुर्दर्शनी जीवों का गुणस्थानों में प्रमाण निरूपण करने वाले चार सूत्र पूर्ण हुए।

अब अचक्षुर्दर्शनी जीवों का प्रमाण गुणस्थानों में निरूपण करने हेतु सूत्र अवतरित होता है—

**अचक्षुदंसणीसु मिच्छाइटिप्पहुडि जाव खीणकसायवीदरागछदुमत्था
त्ति ओघं॥१५९॥**

सूत्रं सुगमं। अत्र एतज्ज्ञातव्यं। अचक्षुदर्शनक्षयोपशमविरहितछद्मस्थजीवाभावात्। एकेन्द्रियादारभ्य पंचेन्द्रियपर्यन्तः प्रथमगुणस्थानादारभ्य क्षीणकषायगुणस्थानपर्यन्तं वा इमे अचक्षुदर्शनिनो भवन्ति।

एवं द्वितीयस्थले अचक्षुदर्शनवतां संख्यानिरूपणत्वेन एकं सूत्रं गतम्।

संप्रति अवधिदर्शनवतां संख्यानिरूपणाय सूत्रावतारः क्रियते —

ओहिदंसणी ओहिणाणिभंगो॥१६०॥

अवधिदर्शनविरहितावधिज्ञानिनामभावात् ओघवत् कथ्यन्ते।

पुनश्च केवलदर्शनानां प्रमाणनिरूपणाय सूत्रावतारो भवति —

केवलदंसणी केवलणाणिभंगो॥१६१॥

सूत्रं सुगमं। केवलज्ञानविरहितकेवलदर्शनाभावात् केवलज्ञानिभंगवत् केवलदर्शनिनो भवन्ति।

सूत्रार्थ —

अचक्षुदर्शनियों में मिथ्यादृष्टि गुणस्थान से लेकर क्षीणकषायवीतरागछद्मस्थ गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थान में जीव ओघप्ररूपणा के समान हैं ॥१५९॥

हिन्दी टीका — सूत्र का अर्थ सरल है। यहाँ यह जानना चाहिए कि अचक्षुदर्शनरूप क्षयोपशम से रहित छद्मस्थ जीव नहीं पाये जाते हैं इसलिए उनका प्रमाण ओघप्रमाण के समान कहा है। एकेन्द्रिय जीव से आरंभ करके पंचेन्द्रियपर्यन्त जीव प्रथम गुणस्थान से लेकर क्षीणकषाय गुणस्थानपर्यन्त सभी जीवों में अचक्षुदर्शन पाया जाता है।

विशेषार्थ — सिद्धराशि और सासादन सम्यग्दृष्टि आदि तेरह गुणस्थानप्रतिपन्न जीवराशि को तथा मिथ्यादृष्टि राशि से भाजित सिद्धराशि और गुणस्थानप्रतिपन्न राशि के वर्ग को सर्व जीवराशि में मिला देने पर अचक्षुदर्शनी मिथ्यादृष्टि जीवों की ध्रुवराशि होती है। इस ध्रुवराशि से सर्वजीवराशि के उपरिम वर्ग के भाजित करने पर अचक्षुदर्शनी मिथ्यादृष्टियों का द्रव्यप्रमाण होता है। अचक्षुदर्शनी सासादनसम्यग्दृष्टि आदि जीवों का ओघप्ररूपणा में कहा गया अवहारकाल ही कहना चाहिए, क्योंकि गुणस्थान-प्रतिपन्न ओघ अवहारकाल से अचक्षुदर्शनी गुणस्थानप्रतिपन्न जीवों के अवहारकाल में कोई विशेषता नहीं है।

इस प्रकार द्वितीयस्थल में अचक्षु दर्शन वाले जीवों का वर्णन करने वाला एक सूत्र पूर्ण हुआ।

अब अवधिदर्शन वाले जीवों की संख्या का निरूपण करने के लिए सूत्र का अवतार किया जाता है —

सूत्रार्थ —

अवधिदर्शनी जीव अवधिज्ञानियों के समान हैं ॥१६०॥

चूँकि अवधिदर्शन को छोड़कर अवधिज्ञानी जीव नहीं पाये जाते हैं, इसलिए दोनों का प्रमाण समान है।

पुनश्च केवलदर्शन से सहित जीवों का प्रमाण निरूपण करने के लिए सूत्र का अवतार होता है —

सूत्रार्थ —

केवलदर्शनी जीव केवलज्ञानियों के समान हैं ॥१६१॥

हिन्दी टीका — सूत्र का अर्थ सुगम है। चूँकि केवलज्ञान से रहित केवलदर्शन नहीं पाया जाता है, इसलिए दोनों राशियों का प्रमाण समान है।

श्रुत-मनःपर्ययज्ञानयोः दर्शनं किञ्चोच्यते?

न तावत् श्रुतज्ञानस्य दर्शनमस्ति, तस्य मतिज्ञानपूर्वत्वात्। न मनःपर्ययज्ञानस्यापि दर्शनमस्ति, तस्य तथाविधत्वात्।

अधुना भागाभागं कथयिष्यति —

सर्वजीवराशेः अनन्तखण्डे कृते बहुखण्डाः अचक्षुर्दर्शनमिथ्यादृष्टयो भवन्ति। शेषस्य अनन्तखण्डे कृते बहुखण्डाः केवलदर्शनिनो भवन्ति। शेषस्य असंख्यातखण्डे कृते बहुखण्डाः चक्षुर्दर्शनमिथ्यादृष्टयो भवन्ति। शेषस्य असंख्यातखण्डे कृते बहुखण्डाः चक्षुर्दर्शनि-अचक्षुर्दर्शनि-असंयतसम्यग्दृष्टिद्रव्यं भवति। तत्र तस्यैव असंख्यातभागमपनीते अवधिदर्शनिद्रव्यं भवति। शेषस्य संख्यातखण्डे कृते बहुखण्डाः चक्षुर्दर्शनि-अचक्षुर्दर्शनि-सम्यग्मिथ्यादृष्टिद्रव्यं भवति। शेषस्यासंख्यातखण्डे कृते बहुखण्डाः सासादनसम्यग्दृष्टिद्रव्यं भवति। शेषस्य असंख्यातखण्डे कृते बहुखण्डाः चक्षुर्दर्शनि-अचक्षुर्दर्शनि-संयतासंयतद्रव्यं भवति। शेषस्यासंख्यातखण्डे कृते बहुखण्डाः अवधिदर्शिनसंयतासंयतद्रव्यं भवति। शेषं ज्ञात्वा वक्तव्यम्।

इति षट्खण्डागमस्य प्रथमखण्डे तृतीयग्रन्थे द्रव्यप्रमाणानुगमनाम्नि द्वितीयप्रकरणे गणिनी-
ज्ञानमतीविरचितसिद्धान्तचिन्तामणिटीकायां दर्शनमार्गणानाम नवमोऽधिकारः समाप्तः।

शंका — श्रुतज्ञान और मनःपर्ययज्ञान का दर्शन क्यों नहीं कहा जाता है ?

समाधान — श्रुतज्ञान का दर्शन तो हो नहीं सकता है, क्योंकि वह मतिज्ञानपूर्वक होता है। उसी प्रकार मनःपर्ययज्ञान का भी दर्शन नहीं है, क्योंकि, मनःपर्ययज्ञान भी उसी प्रकार है अर्थात् मनःपर्ययज्ञान भी मतिज्ञानपूर्वक होता है, इसलिये उसका दर्शन नहीं पाया जाता है।

अब भागाभाग को कहते हैं — सर्व जीवराशि के अनन्त खंड करने पर बहुभाग अचक्षुर्दर्शनी मिथ्यादृष्टि जीव हैं। शेष एक भाग के अनन्त खंड करने पर बहुभाग केवलदर्शनी जीव हैं। शेष एक भाग के असंख्यात खंड करने पर बहुभाग चक्षुर्दर्शनी मिथ्यादृष्टि जीव हैं। शेष एक भाग के असंख्यात खंड करने पर बहुभाग चक्षुर्दर्शनी और अचक्षुर्दर्शनी असंयतसम्यग्दृष्टियों का द्रव्य है। इसमें से इसी का असंख्यातवां भाग घटा देने पर शेष अवधिदर्शनी जीवों का द्रव्यप्रमाण होता है। शेष एक भाग के संख्यात खंड करने पर बहुभाग चक्षुर्दर्शनी और अचक्षुर्दर्शनी सम्यग्मिथ्यादृष्टियों का द्रव्यप्रमाण होता है। शेष एक भाग के असंख्यात खंड करने पर बहुभाग चक्षुर्दर्शनी और अचक्षुर्दर्शनी सासादनसम्यग्दृष्टियों का द्रव्यप्रमाण होता है। शेष एक भाग के असंख्यात खंड करने पर बहुभाग चक्षुर्दर्शनी और अचक्षुर्दर्शनी संयतासंयतों का द्रव्यप्रमाण होता है। शेष एक भाग के असंख्यात खंड करने पर बहुभाग अवधिदर्शनी संयतासंयतों का द्रव्य होता है। शेष भागाभाग का कथन जानकर करना चाहिए।

इस प्रकार तृतीय स्थल में अवधिदर्शन एवं केवलदर्शन वाले जीवों की संख्या का कथन करने वाले दो सूत्र का पूर्ण हुए।

विशेषार्थ — उत्तरज्ञान की उत्पत्ति के निमित्तभूत प्रयत्न विशिष्ट स्वसंवेदन को दर्शन माना है परन्तु केवली में यह क्रम नहीं पाया जाता है क्योंकि वहाँ पर अक्रम से ज्ञान और दर्शन की प्रवृत्ति होती है। छद्मस्थों में दर्शन और ज्ञान, इन दोनों की अक्रम से प्रवृत्ति होती है, यदि ऐसा कहा जावे सो भी ठीक नहीं है, क्योंकि छद्मस्थों के 'दोनों उपयोग एक साथ नहीं होते हैं' इस आगम वचन से छद्मस्थों के दोनों उपयोगों के अक्रम से होने का प्रतिषेध हो जाता है। ज्ञानपूर्वक दर्शन होता है, यदि ऐसा कहा जावे सो भी ठीक नहीं है, क्योंकि 'दर्शनपूर्वक ज्ञान होता है किन्तु ज्ञानपूर्वक दर्शन नहीं होता है' ऐसा आगमवचन है।

इस प्रकार षट्खण्डागम ग्रंथ के प्रथम खंड में तृतीय ग्रंथ में द्रव्यप्रमाणानुगम नाम के द्वितीय प्रकरण में गणिनी ज्ञानमती विरचित सिद्धान्त चिन्तामणि टीका में दर्शनमार्गणा नामक नवमां अधिकार समाप्त हुआ।

अथ लेश्यामार्गणाधिकारः

अथ तावत् स्थलचतुष्टयेन दशभिः सूत्रैः लेश्यामार्गणानाम् दशमोऽधिकारः प्रारभ्यते। तत्र प्रथमस्थले कृष्णनीलकापोतलेश्यानां संख्यानिरूपणपरत्वेन “लेस्साणुवादेण” इत्यादिसूत्रमेकं। तदनु द्वितीयस्थले तेजोलेश्यायाः गुणस्थाने प्रमाणप्रतिपादनत्वेन “तेउलेस्सिएसु” इत्यादिसूत्रत्रयं। ततः परं तृतीयस्थले पद्मलेश्यायाः गुणस्थाने प्रमाणप्ररूपणत्वेन “पम्मलेस्सिएसु” इत्यादिसूत्रत्रयं। तत्पश्चात् चतुर्थस्थले शुक्ललेश्यायाः गुणस्थानव्यवस्थासंख्याप्ररूपणत्वेन “सुक्कलेस्सिएसु” इत्यादिसूत्रत्रयम्। इति समुदायपातनिका।

संप्रति अशुभत्रयलेश्यासु गुणस्थानसंख्याप्रतिपादनाय सूत्रमवतरति —

**लेस्साणुवादेण किण्हलेस्सिय-णीललेस्सिय-काउलेस्सिएसु मिच्छा-
इट्ठिप्पहुडि जाव असंजदसम्माइट्ठि ति ओघं।।१६२।।**

सिद्धान्तचिन्तामणि टीका — आसां त्रिसृणां लेश्यानां मिथ्यात्वगुणस्थाने अनन्तत्वं। शेष त्रयगुणस्थानेषु पल्योपमस्य असंख्यात-भागत्वापेक्षया समानत्वं, तथापि पर्यायार्थिकनयेन अस्ति विशेषः।

अथ लेश्यामार्गणा अधिकार प्रारंभ

अब चार स्थलों में दश सूत्रों के द्वारा लेश्यामार्गणा नामक दशवां अधिकार प्रारंभ होता है। उनमें से प्रथम स्थल में कृष्ण, नील, कापोत लेश्याओं से समन्वित जीवों की संख्या निरूपण करने हेतु “लेस्साणुवादेण” इत्यादि एक सूत्र कहेंगे पुनः द्वितीयस्थल में तेजो लेश्या (पीतलेश्या) का गुणस्थान में प्रमाण प्रतिपादन करने वाले “तेउलेस्सिएसु” इत्यादि तीन सूत्र हैं। इसके पश्चात् तृतीय स्थल में पद्मलेश्या वाले जीवों का गुणस्थान में प्ररूपण करने हेतु “पम्मलेस्सिएसु” इत्यादि तीन सूत्र हैं। तत्पश्चात् चतुर्थस्थल में शुक्ललेश्यायुक्त जीवों की गुणस्थानव्यवस्था में संख्या को बतलाने वाले “सुक्कलेस्सिएसु” इत्यादि तीन सूत्र हैं। यह सूत्रों की समुदायपातनिका हुई है।

अब तीनों अशुभ लेश्याओं में गुणस्थान के अनुसार संख्या को प्रतिपादित करने के लिए सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ —

लेश्यामार्गणा के अनुवाद से कृष्णलेश्या वाले, नीललेश्या वाले और कापोतलेश्या वाले जीवों में मिथ्यादृष्टि गुणस्थान से लेकर असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थान में जीव ओघप्ररूपणा के समान हैं ।।१६२।।

हिन्दी टीका — उक्त तीनों लेश्या वाले मिथ्यादृष्टि जीवों की अनन्तत्व की अपेक्षा ओघप्रमाण की अपेक्षा समानता पाई जाती है। शेष तीन गुणस्थानों में पल्योपम के असंख्यातवें भाग की अपेक्षा समानता है, फिर भी पर्यायार्थिकनय से इसमें विशेषता है।

विशेषार्थ — पर्यायार्थिक नय का अवलम्बन करने पर तो उक्त तीन लेश्या वाले जीवों के प्रमाण की ओघप्रमाण प्ररूपणा के साथ समानता नहीं है, क्योंकि ऐसा मान लेने पर शेष लेश्याओं से उपलक्षित जीवों का प्रकृत गुणस्थानों में रहना असंभव मानना पड़ेगा। अब यहाँ पर ध्रुवराशि का कथन करते हैं।

एवं प्रथमस्थले अशुभत्रयलेश्यागुणस्थानप्रमाणनिरूपणत्वेन एकं सूत्रं गतम्।

संप्रति तेजोलेश्याप्रथमगुणस्थान संख्यानिरूपणाय सूत्रावतारो भवति—

तेउलेस्सिएसु मिच्छाइट्टी दव्वपमाणेण केवडिया? जोइसियदेवेहि सादिरेयं॥१६३॥

सूत्रस्यार्थः सुगमः।

ज्योतिष्कदेवाः पर्याप्तकाले सर्वे तेजोलेश्यावन्तो भवन्ति। अपर्याप्तकाले पुनः ते चैव कृष्णनील-कापोतलेश्यायुक्ताः भवन्ति। ते च पर्याप्तराशेः असंख्यातभागमात्राः। वाणव्यन्तरदेवा अपि पर्याप्तकाले तेजोलेश्यायुक्ताः चैव भवन्ति। ते च ज्योतिष्कदेवानां संख्यातभागमात्रा भवन्ति। एतेषां अपर्याप्ताः कृष्णनीलकापोतलेश्यावन्तो भवन्ति। ते च स्वकपर्याप्तानां संख्यातभागमात्राः। मनुष्यतिर्यक्षु अपि तेजोलेश्यामिथ्यादृष्टयः जगत्प्रतरस्य असंख्यातभागमात्राः तिर्यक्पद्मलेश्याराशिभ्यः संख्यातगुणाः सन्ति। एते

वह इस प्रकार है— सिद्धराशि, सासादन सम्यग्दृष्टि आदि तेरह गुणस्थानप्रतिपन्न राशि और पीत, पद्म तथा शुक्ललेश्या वाले मिथ्यादृष्टियों की राशि को, तथा इन सर्व राशियों के वर्ग में कृष्ण, नील और कापोत लेश्या वाली मिथ्यादृष्टि राशि का भाग देने से जो लब्ध आवे, उसे सर्व जीवराशि में मिला देने पर कृष्ण, नील और कापोतलेश्या से युक्त मिथ्यादृष्टि जीवों की ध्रुवराशि होती है। इसे तीन से गुणित करके जो प्रमाण हो, उसे आवली के असंख्यातवें भाग से भाजित करने पर जो लब्ध आवे, उसे उसी में मिला देने पर कापोतलेश्या से युक्त जीवों की ध्रुवराशि होती है। पूर्वोक्त भागहार को अभ्यधिक करके और उसका त्रिगुणित ध्रुवराशि में भाग देने पर जो लब्ध आवे, उसे उसी त्रिगुणित ध्रुवराशि में मिला देने पर नीललेश्या से युक्त जीवों की ध्रुवराशि होती है। इसे आवली के असंख्यातवें भाग से भाजित करने पर जो लब्ध आवे, उसे उसी में से घटा देने पर कृष्णलेश्या से युक्त जीवों की ध्रुवराशि होती है। कापोतलेश्या से युक्त और नीललेश्या से युक्त प्रत्येक जीवराशि सर्व जीवराशि के कुछ कम तीसरे भाग प्रमाण है तथा कृष्णलेश्या से युक्त जीवराशि कुछ अधिक तीसरे भाग प्रमाण है।

इस प्रकार प्रथम स्थल में अशुभ तीन लेश्यासहित जीवों का गुणस्थानों में प्रमाण निरूपण करने वाला एक सूत्र पूर्ण हुआ।

अब तेजो लेश्या वाले की प्रथम गुणस्थान में संख्या निरूपण के लिए सूत्र का अवतार होता है—

सूत्रार्थ—

तेजो लेश्या वाले जीवों में मिथ्यादृष्टि जीव द्रव्यप्रमाण की अपेक्षा कितने हैं ? ज्योतिषीदेवों से कुछ अधिक हैं ॥१६३॥

हिन्दी टीका—सूत्र का अर्थ सुगम है। पर्याप्तकाल में सभी ज्योतिषीदेव तेजोलेश्या से युक्त होते हैं तथा अपर्याप्तकाल में वे ही देव कृष्ण, नील और कापोलेश्या से युक्त होते हैं। वे अपर्याप्त ज्योतिषी जीव अपनी पर्याप्त राशि के असंख्यातवें भागमात्र होते हैं। वाणव्यन्तर देव भी पर्याप्तकाल में तेजोलेश्या से युक्त होते हैं और वे वाणव्यन्तर पर्याप्त जीव ज्योतिषियों के संख्यातवें भागमात्र होते हैं। इन्हीं वाणव्यन्तरों में अपर्याप्त जीव कृष्ण, नील और कापोतलेश्या से युक्त होते हैं और वे अपर्याप्त वाणव्यन्तर

त्रयोऽपि राशयः भवनवासि-सौधर्मैशानमिथ्यादृष्टिभिः सह मेलिता ज्योतिष्कदेवैः सातिरेकाः भवन्ति।

संप्रति तेजोलेश्यायां सासादनादिसंयतासंयतानां प्रमाणनिरूपणाय सूत्रमवतरति—

सासणसम्माइट्टिप्पहुडि जाव संजदासंजदा त्ति ओघं॥१६४॥

सूत्रस्यार्थः सुगमः। पर्यायार्थिकनयापेक्षया अस्ति विशेषः।

अधुना अस्याः एव लेश्यायाः प्रमत्ताप्रमत्तगुणस्थानप्रमाणनिरूपणाय सूत्रमवतरति—

पमत्त-अप्पमत्तसंजदा दव्वपमाणेण केवडिया? संखेज्जा॥१६५॥

सूत्रं सुगमं। प्रमत्ताप्रमत्तगुणस्थानयोः तेजोलेश्यायुक्तजीवराशिः ओघप्रमाणं न पूरयति, अतोऽस्मिन् सूत्रे संख्यातपदं गृहीतमस्ति।

एवं द्वितीयस्थले तेजोलेश्यायुक्तानां प्रमाणनिरूपणत्वेन त्रीणि सूत्राणि गतानि।

अधुना पद्मलेश्यायां मिथ्यादृष्टिगुणस्थाने जीवानां प्रमाणनिरूपणाय सूत्रमवतरति—

देव अपनी पर्याप्त राशि के संख्यातवें भागमात्र होते हैं। मनुष्य और तिर्यचों में भी तेजोलेश्या से युक्त मिथ्यादृष्टि राशि जगत्प्रतर के असंख्यातवें भागप्रमाण है, जो पद्मलेश्या से युक्त तिर्यचराशि से संख्यातगुणी है। इन तीनों राशियों को भवनवासी और सौधर्म-ऐशान राशि के साथ एकत्रित कर देने पर यह राशि ज्योतिषी देवों से कुछ अधिक हो जाती है।

अब तेजोलेश्या में सासादन आदि गुणस्थान से संयतासंयतपर्यन्त गुणस्थानवर्ती जीवों का प्रमाण निरूपण करने हेतु सूत्र का अवतार होता है—

सूत्रार्थ—

तेजोलेश्या से युक्त जीव सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थान से लेकर संयतासंयत गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थान में ओघ प्ररूपणा के समान पल्योपम के असंख्यातवें भाग हैं॥१६४॥

हिन्दी टीका—सूत्र का अर्थ सरल है। पर्यायार्थिक नय की अपेक्षा इसमें विशेषता है अर्थात् पल्योपम के असंख्यातवें भागत्व की अपेक्षा उक्त राशियों के साथ समानता देखकर तेजोलेश्या—पीतलेश्या से युक्त सासादनसम्यग्दृष्टि आदि राशियाँ ओघ के समान हैं, ऐसा उपदेश दिया है।

अब इसी तेजोलेश्या वाले प्रमत्त-अप्रमत्त गुणस्थानवर्ती जीवों का गुणस्थानों में प्रमाण निरूपण करने के लिए सूत्र प्रगट हो रहा है—

सूत्रार्थ—

तेजोलेश्या से युक्त प्रमत्तसंयत जीव और अप्रमत्तसंयत जीव द्रव्यप्रमाण की अपेक्षा कितने हैं? संख्यात हैं ॥१६५॥

हिन्दी टीका—सूत्र का अर्थ सुगम है। प्रमत्त और अप्रमत्त इन दो गुणस्थानों में तेजोलेश्या से युक्त जीवराशि ओघप्रमाण को पूर्ण नहीं करती है इसलिए इस सूत्र में 'संख्यातपद' का ग्रहण किया है।

इस प्रकार द्वितीय स्थल में तेजोलेश्या युक्त जीवों का प्रमाण निरूपण करने वाले तीन सूत्र पूर्ण हुए।

अब पद्मलेश्यायुक्त जीवों का मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में प्ररूपण करने हेतु सूत्र अवतरित हो रहा है—

**पम्मलेस्सिएसु मिच्छाइट्ठी दव्वपमाणेण केवडिया? सण्णिपंचिंदिय-
तिरिक्खजोणिणीणं संखेज्जदिभागो॥१६६॥**

पद्मलेश्यासु मिथ्यादृष्टयो द्रव्यप्रमाणेन कियन्तः? इति प्रश्ने सति उत्तरं दीयते-संज्ञिपंचेन्द्रिय-
तिर्यग्योनिमतीनां जीवानां संख्यातभागप्रमाणाः सन्ति।

अस्यामेव लेश्यायां सासादनादिसंयतासंयतानां प्रमाणनिरूपणाय सूत्रमवतरति—

सासणसम्माइट्ठिप्पहुडि जाव संजदासंजदा त्ति ओघं॥१६७॥

एतस्य सूत्रस्यार्थः सुगमः।

पुनश्च अस्यामेव लेश्यायां प्रमत्ताप्रमत्तमहामुनीनां प्रमाणनिरूपणाय सूत्रावतारः क्रियते—

पमत्त-अप्पमत्तसंजदा दव्वपमाणेण केवडिया? संखेज्जा॥१६८॥

सूत्रं सुगमं। इमे पद्मलेश्यायुक्ताः प्रमत्ताप्रमत्तमुनयः तेजोलेश्यायुक्तानां संख्यातभागमात्राः भवन्ति।
कुतः? पद्मलेश्यायुक्तजीवानां प्रचुरं संभवाभावात्।

सूत्रार्थ—

पद्मलेश्या वालों में मिथ्यादृष्टि जीव द्रव्यप्रमाण की अपेक्षा कितने हैं ? संज्ञी
पंचेन्द्रिय तिर्यच योनिमती जीवों के संख्यातवें भागप्रमाण हैं॥१६६॥

हिन्दी टीका—पद्मलेश्या वाले जीवों में मिथ्यादृष्टि जीव द्रव्यप्रमाण से कितने हैं ? ऐसा प्रश्न होने
पर उत्तर दिया गया है कि संज्ञी पंचेन्द्रिय योनिमती—स्त्रीवेदी तिर्यच जीवों के संख्यातवें भागप्रमाण उन
जीवों की संख्या है।

अब उन्हीं पद्मलेश्या वालों में सासादन से लेकर संयतासंयत गुणस्थान तक के जीवों का प्रमाण
निरूपण करने हेतु सूत्र अवतरित होता है—

सूत्रार्थ—

पद्मलेश्या वाले जीव सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थान से लेकर संयतासंयत गुणस्थान
तक प्रत्येक गुणस्थान में ओघप्ररूपणा के समान पल्योपम के असंख्यातवें भागप्रमाण
हैं॥१६७॥

इस सूत्र का अर्थ सुगम है।

आगे पुनः इन्हीं पद्मलेश्या वालों में प्रमत्त और अप्रमत्त महामुनियों का प्रमाण बतलाने हेतु सूत्र का
अवतार किया जाता है—

सूत्रार्थ—

पद्मलेश्या वाले प्रमत्तसंयत जीव और अप्रमत्तसंयत जीव द्रव्यप्रमाण की अपेक्षा
कितने हैं? संख्यात हैं ॥१६८॥

हिन्दी टीका—सूत्र सरल है। ये पद्मलेश्या वाले प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत मुनि तेजोलेश्या वाले
जीवों के संख्यातवें भागप्रमाण होते हैं। ऐसा क्यों? क्योंकि, पद्मलेश्या से युक्त प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत
गुणस्थान को प्राप्त हुए जीव प्रचुरमात्रा में नहीं होते हैं।

एवं तृतीयस्थले पद्मलेश्यायुक्तानां प्रमाणकथनत्वेन त्रीणि सूत्राणि गतानि।

संप्रति शुक्ललेश्यासु मिथ्यादृष्ट्यादिदेशसंयतानां प्रमाणनिरूपणाय सूत्रमवतरति —

सुक्कलेस्सिएसु मिच्छाइट्टिप्पहुडि जाव संजदासंजदा त्ति दव्वपमाणेण केवडिया? पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो। एदेहि पलिदोवममवहिरदि अंतोमुहुत्तेण।।१६९।।

शुक्ललेश्यासु मिथ्यादृष्टिप्रभृति यावत् संयतासंयताः इति द्रव्यप्रमाणेन कियन्तः? इति प्रश्ने सति पल्योपमस्यासंख्यातभागाः सन्ति। एतैः जीवैः अंतर्मुहूर्तेन पल्योपमः अपह्रियते।

इस प्रकार तृतीय स्थल में पद्मलेश्यायुक्त जीवों का कथन करने वाले तीन सूत्र पूर्ण हुए।

अब शुक्ललेश्या वाले जीवों में मिथ्यादृष्टि गुणस्थान से देशसंयत गुणस्थान तक के जीवों की संख्या बतलाने हेतु सूत्र का अवतार होता है —

सूत्रार्थ —

शुक्ललेश्या वाले मिथ्यादृष्टि गुणस्थान से लेकर संयतासंयत गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थान में जीव द्रव्यप्रमाण की अपेक्षा कितने हैं? पल्योपम के असंख्यातवें भाग प्रमाण हैं। इन जीवों के द्वारा अन्तर्मुहूर्त काल से पल्योपम अपहृत होता है।।१६९।।

हिन्दी टीका — शुक्ललेश्या से युक्त जीवों में मिथ्यादृष्टि से लेकर संयतासंयत गुणस्थान तक जितने भी जीव हैं, द्रव्यप्रमाण की अपेक्षा उनकी संख्या कितनी है? ऐसा प्रश्न होने पर उत्तर दिया है कि पल्योपम के असंख्यातवें भागप्रमाण उनकी संख्या है। इन जीवों के द्वारा अन्तर्मुहूर्त काल से पल्योपम अपहृत होता है।

विशेषार्थ — धवला टीका में इन जीवों के अवहारकाल का प्ररूपण करते हुए श्रीवीरसेनाचार्य ने कहा कि ओघ असंयतसम्यग्दृष्टि अवहारकाल को आवली के असंख्यातवें भाग से भाजित करने पर जो लब्ध आवे, उसे उसी में मिला देने पर तेजोलेश्या से युक्त असंयतसम्यग्दृष्टियों का अवहारकाल होता है। इसे आवली के असंख्यातवें भाग से गुणित करने पर पद्मलेश्या से युक्त असंयतसम्यग्दृष्टियों का अवहारकाल होता है। इसे आवली के असंख्यातवें भाग से गुणित करने पर कापोतलेश्या से युक्त असंयतसम्यग्दृष्टियों का अवहारकाल होता है। इसे आवली के असंख्यातवें भाग से गुणित करने पर कृष्णलेश्या से युक्त असंयतसम्यग्दृष्टियों का अवहारकाल होता है। इसे आवली के असंख्यातवें भाग से भाजित करने पर जो लब्ध आवे, उसे उसी में मिला देने पर नीललेश्या ये युक्त असंयतसम्यग्दृष्टियों का अवहारकाल होता है। इसे आवली के असंख्यातवें भाग से गुणित करने पर शुक्ललेश्या से युक्त असंयतसम्यग्दृष्टियों का अवहारकाल होता है। इन अपने-अपने असंयतसम्यग्दृष्टियों के अवहारकालों को आवली के असंख्यातवें भाग से गुणित करने पर अपने-अपने सम्यग्मिथ्यादृष्टियों का अवहारकाल होता है। इन अपने-अपने सम्यग्मिथ्यादृष्टियों के अवहारकाल को संख्यात से गुणित करने पर अपने-अपने सासादनसम्यग्दृष्टियों का अवहारकाल होता है। इन्हें अर्थात् तेजोलेश्या वाले और पद्मलेश्या वाले सासादनसम्यग्दृष्टियों के अवहारकालों को आवली के असंख्यातवें भाग से गुणित करने पर तेजोलेश्या वाले और पद्मलेश्या वाले संयतासंयतों के अवहारकाल होते हैं। इतना विशेष है कि शुक्ललेश्या वाले असंयतसम्यग्दृष्टियों के अवहारकाल को संख्यात से गुणित करने

अस्यामेव लेश्यायां प्रमत्ताप्रमत्तयोः संख्यानिरूपणाय सूत्रमवतरति—

पमत्त-अप्पमत्तसंजदा दव्वपमाणेण केवडिया? संखेज्जा।।१७०।।

सूत्रं सुगमं। शुक्ललेश्यायुक्तप्रमत्ताप्रमत्तराशिः ओघप्रमाणं न प्राप्नोति, किंच प्रमत्ताप्रमत्तगुणस्थानयोः तेजःपद्मशुक्ललेश्यासु अक्रमेण विभज्य स्थितत्वात्।

संप्रति अष्टमगुणस्थानात् सयोगिपर्यंतानां संख्यानिरूपणाय सूत्रावतारो भवति—

अपुव्वकरणप्पहुडि जाव सजोगिकेवलि ति ओघं।।१७१।।

सूत्रं सुगमं। कथं ओघवत् कथ्यते? एषु अन्यलेश्याभावात्। अयोगिनोऽलेश्याः। कुतः? कर्मलेपनिमित्त-योगकषायाभावात्।

योगस्य कथं लेश्याव्यपदेशः?

पर शुक्ललेश्या वाले मिथ्यादृष्टियों का अवहारकाल होता है। इसे आवली के असंख्यातवें भाग से गुणित करने पर शुक्ललेश्या वाले सम्यग्मिथ्यादृष्टियों का अवहारकाल होता है। इसे संख्यात से गुणित करने पर शुक्ललेश्या वाले सासादनसम्यग्दृष्टियों का अवहारकाल होता है। इसे आवली के असंख्यातवें भाग से गुणित करने पर शुक्ललेश्या वाले संयतासंयतों का अवहारकाल होता है। इसे अपने-अपने अवहारकाल से पल्योपम के भाजित करने पर अपनी-अपनी राशि का प्रमाण आता है।

इसी लेश्या वाले प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत महामुनियों की संख्या का निरूपण करने के लिए सूत्र प्रगट हो रहा है—

सूत्रार्थ—

शुक्ललेश्या वाले प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत जीव द्रव्यप्रमाण की अपेक्षा कितने हैं ? संख्यात हैं।।१७०।।

हिन्दी टीका—सूत्र का अर्थ सुगम है। शुक्ललेश्या से युक्त प्रमत्त और अप्रमत्त मुनियों की राशियाँ ओघप्रमाण को प्राप्त नहीं होती हैं, क्योंकि प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत गुणस्थान में जीव तेजोलेश्या, पद्मलेश्या और शुक्ललेश्या में युगपत् विभक्त होकर स्थित हैं।

अब आठवें गुणस्थान से तेरहवें सयोगिकेवली गुणस्थान तक के जीवों की संख्या के निरूपण हेतु सूत्र का अवतार होता है—

सूत्रार्थ—

शुक्ललेश्या वाले जीव अपूर्वकरण गुणस्थान से लेकर सयोगिकेवली गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थान में ओघप्ररूपणा के समान हैं ।।१७१।।

हिन्दी टीका—सूत्र का अर्थ सुगम है।

प्रश्न—इन जीवों का प्रमाण ओघ के समान कैसे है?

उत्तर—क्योंकि इनमें शुक्ललेश्या को छोड़कर अन्य लेश्याओं का अभाव पाया जाता है। अयोगिकेवली गुणस्थानवर्ती भगवान लेश्या रहित—अलेश्या वाले होते हैं। ऐसा क्यों है ? क्योंकि अयोगी गुणस्थान में कर्मलेप का कारणभूत योग और कषाएँ नहीं होती हैं।

प्रश्न—योग की लेश्या यह संज्ञा कैसे प्राप्त हो सकती है ?

नैतत्, लिम्पति इति योगस्यापि लेश्या व्यपदेशसिद्धेः।

अधुना भागाभागं वक्ष्यति —

सर्वजीवराशेः अनन्तखण्डे कृते बहुखण्डाः त्रिलेश्यायुक्ताः भवन्ति। शेषस्य अनन्तखण्डे कृते बहुखण्डाः अलेश्यावन्तः। शेषस्य संख्यातखण्डे कृते बहुखण्डाः तेजोलेश्यावन्तो भवन्ति। शेषस्य असंख्यातखण्डे कृते बहुखण्डाः पद्मलेश्यावन्तः। शेषैकभागाः शुक्ललेश्यावन्तः। त्रिलेश्याराशेः आवल्याः असंख्यातभागेन खण्डयित्वा तत्रैकखंडं ततः पृथक् स्थापयित्वा शेषे बहुभागे गृहीत्वा त्रीन् समपुञ्जान् कृत्वा अपनीतैकखण्डं आवल्याः असंख्यातभागेन खण्डयित्वा तत्र बहुखण्डे प्रथमपुंजे प्रक्षिप्ते कृष्णलेश्यायुक्ताः। शेषैकखण्डं आवल्याः असंख्यातभागेन खण्डयित्वा बहुखण्डे द्वितीयपुंजे प्रक्षिप्ते नीललेश्यावन्तः। शेषैकखंडं तृतीयपुंजे प्रक्षिप्ते कापोतलेश्यावन्तः। ततः कापोतलेश्याराशेः अनन्तखंडे कृते बहुखण्डाः मिथ्यादृष्टयः। शेषस्य असंख्यातखण्डे कृते बहुखण्डाः असंयतसम्यग्दृष्टयः। शेषस्य संख्यातखंडे कृते बहुखण्डाः सम्यग्मिथ्यादृष्टयः। शेषैकखण्डाः सासादनसम्यग्दृष्टयः एवं नील-कृष्णलेश्यानामपि भागाभागं कर्तव्यम्।

तेजोलेश्याराशेः असंख्यातखण्डे कृते बहुखण्डाः मिथ्यादृष्टयः। शेषस्य असंख्यातखण्डे कृते बहुखण्डाः असंयतसम्यग्दृष्टयः। शेषस्य संख्यातखण्डे कृते बहुखण्डाः सम्यग्मिथ्यादृष्टयः। शेषस्य असंख्यातखण्डे कृते बहुखण्डाः सासादनसम्यग्दृष्टयः। शेषस्य असंख्यातखण्डे कृते बहुखण्डाः संयतासंयताः। शेषैकभागाः

उत्तर — ऐसा नहीं कहना, क्योंकि जो लिम्पन करती है, वह लेश्या कहलाती है, इस व्युत्पत्ति के अनुसार योग के भी लेश्या संज्ञा सिद्ध हो जाती है।

अब भागाभाग का कथन किया जा रहा है — सर्वजीवराशि के अनन्तखंड करने पर बहुभागप्रमाण कृष्ण, नील और कापोत इन तीन लेश्या वाले जीव हैं। शेष एक भाग के अनन्त खंड करने पर बहुभाग लेश्यारहित जीव हैं। शेष एक भाग के संख्यात खंड करने पर बहुभाग तेजोलेश्या वाले जीव हैं। शेष एक भाग के असंख्यात खंड करने पर बहुभाग पद्मलेश्या वाले जीव हैं। शेष एक भागप्रमाण शुक्ललेश्या वाले जीव हैं। कृष्ण, नील और कापोत इन तीन लेश्या से युक्त जीवराशि को आवली के असंख्यातवें भाग से खंडित करके उनमें से एक खंड को पृथक् स्थापित करके और शेष बहुभाग के समान तीन पुंज करके घटाकर पृथक् रखे हुए एक खंड को आवली के असंख्यातवें भाग से खंडित करके वहां जो बहुभाग आवे, उसे प्रथम पुंज में मिला देने पर कृष्णलेश्या वाले जीवों का प्रमाण होता है। शेष एक भाग को आवली के असंख्यातवें भाग से खंडित करके बहुभाग दूसरे पुंज में मिला देने पर नीललेश्या वाले जीवों का प्रमाण होता है। शेष एक भाग तीसरे पुंज में मिला देने पर कापोतलेश्या वाले जीवों का प्रमाण होता है। अनन्तर कापोतलेश्या वाली राशि के अनन्त खंड करने पर बहुभाग मिथ्यादृष्टि जीव हैं। शेष एक भाग के असंख्यात खंड करने पर बहुभाग असंयतसम्यग्दृष्टि जीव हैं। शेष एक भाग के संख्यात खंड करने पर बहुभाग सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव हैं। शेष एक भागप्रमाण सासादनसम्यग्दृष्टि जीव हैं। इसी प्रकार नील और कापोतलेश्यावालों का भी भागाभाग कर लेना चाहिए।

तेजोलेश्या — पीतलेश्या वाली जीवराशि के असंख्यात खंड करने पर बहुभाग मिथ्यादृष्टि जीव हैं। शेष एक भाग के संख्यात खंड करने पर बहुभाग असंयतसम्यग्दृष्टि जीव हैं। शेष एक भाग के संख्यात खंड करने पर बहुभाग सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव हैं। शेष एक भाग के असंख्यात खंड करने पर बहुभागसासादन सम्यग्दृष्टि जीव हैं। शेष एक भाग के असंख्यात खंड करने पर बहुभाग संयतासंयत जीव हैं। शेष एक

प्रमत्ताप्रमत्तसंयताः। पद्मलेश्याराशेः असंख्यातखण्डे कृते बहुखण्डाः मिथ्यादृष्टयः। शेषस्य असंख्यातखण्डे कृते बहुखण्डाः असंयतसम्यग्दृष्टयः। शेषस्य संख्यातखण्डे कृते बहुखण्डाः सम्यग्मिथ्यादृष्टयः। शेषस्य असंख्यातखण्डे कृते बहुखण्डाः सासादनसम्यग्दृष्टयः। शेषस्य असंख्यात खण्डे कृते बहुखण्डाः संयतासंयताः। शेषैकभागाः प्रमत्ताप्रमत्तसंयताः।

शुक्ललेश्याराशेः संख्यातखण्डे कृते बहुखण्डाः असंयतसम्यग्दृष्टयः। शेषस्य असंख्यातखण्डे कृते बहुखण्डाः मिथ्यादृष्टयः। शेषस्य संख्यातखण्डे कृते बहुखण्डाः सम्यग्मिथ्यादृष्टयः। शेषस्य असंख्यातखण्डे कृते बहुखण्डाः सासादनसम्यग्दृष्टयः। शेषस्य असंख्यातखण्डे कृते बहुखण्डाः संयतासंयताः। शेषैकभागाः प्रमत्ताप्रमत्तादयो महामुनयः।

तात्पर्यमेतत् — एतल्लेश्यामार्गणामभ्यस्य अशुभलेश्याः अपहृत्यशुभलेश्यावलम्बनेन आत्मा शुद्धः कर्तव्यः।

एवं शुक्ललेश्यासु गुणस्थानव्यवस्थाप्रमाणप्रतिपादकत्वेन त्रीणि सूत्राणि गतानि।

इति षट्खण्डागमस्य प्रथमखण्डे तृतीयग्रन्थे द्रव्यप्रमाणानुगमनाम्नि
द्वितीयप्रकरणे गणिनीज्ञानमतीविरचितसिद्धान्तचिन्तामणिटीकायां
लेश्यामार्गणानाम दशमोऽधिकारः समाप्तः।

भागप्रमाण प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत जीव हैं। पद्मलेश्या वाली जीवराशि के असंख्यात खंड करने पर बहुभाग मिथ्यादृष्टि जीव हैं। शेष एक भाग के असंख्यात खंड करने पर बहुभाग असंयतसम्यग्दृष्टि जीव हैं। शेष एक भाग के संख्यात खंड करने पर बहुभाग सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव हैं। शेष एक भाग के असंख्यात खंड करने पर बहुभाग सासादनसम्यग्दृष्टि जीव हैं। शेष एक भाग के असंख्यात खंड करने पर बहुभाग संयतासंयत जीव हैं। शेष एक भागप्रमाण प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत जीव हैं।

शुक्ललेश्या वाली राशि के संख्यात खंड करने पर बहुभाग असंयतसम्यग्दृष्टि जीव हैं। शेष एक भाग के असंख्यात खंड करने पर बहुभाग मिथ्यादृष्टि जीव हैं। शेष एक भाग के संख्यात खंड करने पर बहुभाग सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव हैं। शेष एक भाग के असंख्यात खंड करने पर बहुभाग सासादन सम्यग्दृष्टि जीव हैं। शेष एक भाग के असंख्यात खंड करने पर बहुभाग संयतासंयत जीव हैं। शेष एक भागप्रमाण प्रमत्त-अप्रमत्तसंयत आदि महामुनि हैं।

तात्पर्य यह है कि इस लेश्यामार्गणा का अभ्यास करके अशुभ लेश्याओं को छोड़कर शुभलेश्या के अवलम्बन से अपनी आत्मा को शुद्ध करना चाहिए।

इस प्रकार शुक्ललेश्या वाले जीवों का गुणस्थानों में प्रमाण बतलाने वाले तीन सूत्र पूर्ण हुए।

इस प्रकार षट्खण्डागम ग्रंथ के प्रथम खंड में तृतीय ग्रंथ में द्रव्यप्रमाणानुगम नाम के द्वितीय प्रकरण में गणिनी ज्ञानमती विरचित सिद्धान्तचिन्तामणि टीका में लेश्यामार्गणा नामक दशवां अधिकार समाप्त हुआ।



अथ भव्यत्वमार्गणाधिकारः

अथ स्थलद्वयेन द्वाभ्यां सूत्राभ्यां भव्यत्वमार्गणानाम एकादशमोऽधिकारः प्रारभ्यते। तत्र प्रथमस्थले भव्यानां गुणस्थानव्यवस्थाप्रमाणप्रतिपादनत्वेन “भवियाणुवादेण” इत्यादि एकं सूत्रं। तदनु द्वितीयस्थले अभव्यजीवानां प्रमाणप्ररूपणत्वेन “अभवसिद्धिया” इत्यादिना एकं सूत्रं, इति समुदायपातनिका।

अधुना भव्यजीवानां गुणस्थानप्रमाणप्रतिपादनाय सूत्रमवतरति —

**भवियाणुवादेण भवसिद्धिः सु मिच्छाद्विष्टिप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि
त्ति ओघं।।१७२।।**

सूत्रं सुगमं वर्तते।

एवं प्रथमस्थले भव्यजीवप्रतिपादकमेकं सूत्रं गतम्।

अभव्यजीवानां प्रमाणप्रतिपादनाय सूत्रावतारो भवति —

अभवसिद्धिया दव्वपमाणेण केवडिया? अणंता।।१७३।।

सूत्रस्यार्थः सुगमः।

अत्र सूत्रे कालप्रमाणं किमिति नोक्तम्?

अथ भव्यत्वमार्गणा अधिकार प्रारंभ

अब दो स्थलों द्वारा दो सूत्रों से भव्यत्वमार्गणा नामक ग्यारहवां अधिकार प्रारंभ होता है। उनमें से प्रथम स्थल में भव्य जीवों की गुणस्थान व्यवस्था में संख्या का प्रतिपादन करने हेतु “भवियाणुवादेण” इत्यादि एक सूत्र कहेंगे।

उसके बाद द्वितीय स्थल में अभव्यजीवों का प्रमाण — संख्या बतलाने वाले “अभवसिद्धिया” इत्यादि एक सूत्र का वर्णन है। यह सूत्रों की समुदायपातनिका हुई।

अब भव्य जीवों की गुणस्थानों में संख्या के प्रतिपादन हेतु सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ —

**भव्यमार्गणा के अनुवाद से भव्यसिद्धिकों में मिथ्यादृष्टि गुणस्थान से लेकर अयोगिकेवली
गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थान में जीव ओघप्ररूपणा के समान हैं।। १७२।।**

हिन्दी टीका — सूत्र का अर्थ सरल है। यहाँ अभिप्राय यह है कि अभव्यसिद्धिक जीवरशि और सिद्धराशि एवं तेरह गुणस्थानप्रतिपन्न जीवरशि को तथा उक्त राशियों के वर्ग में भव्यसिद्धिक मिथ्यादृष्टि राशि का भाग देने से जो लब्ध आवे, उसे सर्व जीवरशि में मिला देने पर भव्यसिद्धिक मिथ्यादृष्टि ध्रुवरशि होती है।

इस प्रकार प्रथम स्थल में भव्यजीवों का प्रतिपादन करने वाला एक सूत्र पूर्ण हुआ।

अब अभव्य जीवों का प्रमाण बतलाने हेतु सूत्र का अवतार होता है —

सूत्रार्थ —

अभव्यसिद्धिक जीव द्रव्यप्रमाण की अपेक्षा कितने हैं? अनन्त हैं ।।१७३।।

हिन्दी टीका — सूत्र का अर्थ सरल है।

प्रश्न — यहाँ सूत्र में काल की अपेक्षा प्रमाण क्यों नहीं कहा है ?

नैष दोषः, अभव्यसिद्धजीवानां व्ययाभावात्। व्ययाभावोऽपि तेषां मोक्षाभावात् अवगम्यते।

क्षेत्रप्रमाणं किमिति नोक्तं?

नैतत्, अपरिस्फुटस्य अर्थस्य स्फुटीकरणार्थं क्षेत्रप्रमाणं उच्यते। एषः पुनः अभव्यसिद्धिकजीवराशिः प्रमाणेन सुष्ठु परिस्फुटः।

एतदपि कुतो ज्ञायते?

अभव्यसिद्धिकराशिप्रमाणं जघन्ययुक्तानंतमिति सकलाचार्यवचनेभ्यः जगति सिद्धत्वात्।

अधुना भागाभागं वक्ष्यति—सर्वजीवराशेः अनन्तखण्डे कृते बहुखण्डाः भव्यसिद्धमिथ्यादृष्टयः। शेषस्य अनन्तखण्डे कृते बहुखण्डाः नैव भव्यसिद्धिकाः नैव अभव्यसिद्धिकाः। अस्यायमर्थः—शेषस्य एकभागस्य अनन्तखण्डे कृते बहुखण्डाः भव्यसिद्ध-अभव्यसिद्धविकल्परहिताः जीवाः भवन्ति। शेषस्य अनंतखण्डे कृते बहुखण्डाः अभव्यसिद्धिकाः। शेषस्य असंख्यातखण्डे कृते बहुखण्डाः असंयतसम्यग्दृष्टयः। शेषमोघभंगः।

एतज्ज्ञात्वा वयं भव्याः एव इति निश्चित्य मोक्षमार्गे प्रयत्नः विधेयः अस्माभिरिति।

एवं द्वितीयस्थले अभव्यजीवप्रतिपादनत्वेन सूत्रं एकं गतम्।

इति षट्खण्डागमस्य प्रथमखण्डे तृतीयग्रन्थे द्रव्यप्रमाणानुगमनाम्नि द्वितीयप्रकरणे गणिनी-ज्ञानमतीविरचितसिद्धान्तचिन्तामणिटीकायां भव्यत्वमार्गणानाम एकादशाधिकारः समाप्तः।

उत्तर—यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि अभव्यसिद्धिक जीवों का व्यय नहीं होता है। उनके व्यय के अभाव में मोक्ष का अभाव भी हो जाता है अर्थात् उनका व्यय नहीं होता है यह कथन “उनको मोक्ष की प्राप्ति नहीं होती है” इससे जाना जाता है।

प्रश्न—अभव्यों का प्रमाण क्षेत्र की अपेक्षा क्यों नहीं कहा है?

उत्तर—नहीं, क्योंकि जो अर्थ अपरिस्फुट हो, उसके स्फुट—स्पष्ट करने के लिए क्षेत्र की अपेक्षा प्रमाण कहा जाता है किन्तु यह अभव्यसिद्धिक राशि का प्रमाण अत्यन्त स्पष्ट है, क्योंकि अभव्यसिद्धिक राशि का प्रमाण जघन्य युक्तानन्त है।

प्रश्न—इस बात को भी कैसे जाना गया है?

उत्तर—अभव्यसिद्धिक जीवराशि प्रमाण जघन्य युक्तानन्त है, यह बात समस्त आचार्यों के वचनों से जगत् में सिद्ध है।

अब भागाभाग को कहते हैं—सर्व जीवराशि के अनन्त खंड करने पर बहुभाग भव्यसिद्धिक मिथ्यादृष्टि जीव हैं। इसका अर्थ यह है कि शेष एक भाग के अनंत खंड करने पर बहुभाग भव्यसिद्धिक और अभव्यसिद्धिक विकल्परहित जीव होते हैं। शेष एक भाग के अनंत खंड करने पर बहुभाग अभव्यसिद्धिक जीव हैं। शेष एक भाग के असंख्यात खंड करने पर बहुभाग असंयतसम्यग्दृष्टि जीव हैं। शेष भागाभाग ओघ भागाभाग के समान हैं।

इन सबको जानकर “हम भव्यजीव ही हैं” ऐसा निश्चित करके हम सभी को सतत मोक्षमार्ग में आरूढ़ होने का प्रयत्न करना चाहिए।

इस प्रकार द्वितीयस्थल में अभव्य जीवों का कथन करने वाला एक सूत्र पूर्ण हुआ।

इस प्रकार षट्खण्डागम ग्रंथ के प्रथम खंड में तृतीय ग्रंथ में द्रव्यप्रमाणानुगम नाम के द्वितीय प्रकरण में गणिनी ज्ञानमती विरचित सिद्धान्त चिन्तामणि टीका में भव्यत्वमार्गणा नामक ग्यारहवां अधिकार समाप्त हुआ।

अथ सम्यक्त्वमार्गणाधिकारः

अथ स्थलपंचकेन एकादशसूत्रैः सम्यक्त्वमार्गणानाम् द्वादशमोऽधिकारो विधीयते। तत्र तावत् प्रथमस्थले सामान्यसम्यक्त्व-गुणस्थानव्यवस्थाप्रमाणनिरूपणत्वेन “सम्मत्ताणुवादेण” इत्यादिसूत्रं एकं। तदनु द्वितीयस्थले क्षायिकसम्यक्त्वप्रमाणप्ररूपणपरत्वेन “खड्डय” इत्यादिसूत्रचतुष्टयं। ततः परं तृतीयस्थले वेदकसम्यक्त्वकथनेन “वेदग” इत्यादिसूत्रमेकं। तदनंतरं चतुर्थस्थले उपशमसम्यक्त्वगुणस्थान-प्रमाणप्रतिपादनत्वेन “उवसमसम्माइट्टीसु” इत्यादिसूत्रद्वयं। तत्पश्चात् पंचमस्थले सासादनादित्रयगुणस्थान-वर्तिनां प्रमाणप्ररूपणत्वेन “सासण” इत्यादिसूत्रत्रयं, इति समुदायपातनिका।

संप्रति सामान्यसम्यक्त्वप्रमाणनिरूपणाय सूत्रमवतरति—

**सम्मत्ताणुवादेण सम्माइट्टीसु असंजदसम्माइट्टिप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि
त्ति ओघं।।१७४।।**

सूत्रं सुगमं। किंच, न हि सामान्यव्यतिरिक्तः तद्विशेषोऽस्ति, अतएव ओघप्ररूपणा निःशेषा अत्र वक्तव्या। एवं प्रथमस्थले सामान्यसम्यक्त्वप्रमाणनिरूपितत्वेन एकं सूत्रं गतं।

अथ सम्यक्त्वमार्गणा अधिकार प्रारंभ

अब पाँच स्थलों में ग्यारह सूत्रों के द्वारा सम्यक्त्वमार्गणा नामक बारहवां अधिकार प्रारंभ होता है। उनमें से प्रथम स्थल में सामान्य सम्यक्त्व को गुणस्थान व्यवस्था में बताकर सम्यक्त्वी जीवों का प्रमाण निरूपण करने हेतु “सम्मत्ताणुवादेण” इत्यादि एक सूत्र कहेंगे। पश्चात् द्वितीय स्थल में क्षायिकसम्यक्त्वी जीवों की संख्या का प्ररूपण करने वाले “खड्डय” इत्यादि चार सूत्र हैं। उससे आगे तृतीय स्थल में वेदकसम्यक्त्वी जीवों का प्रमाण बताने वाला “वेदग” इत्यादि एक सूत्र है। तदनंतर चतुर्थस्थल में उपशम सम्यक्त्वी जीवों का गुणस्थानों में प्रमाण कथन करने वाले “उवसम सम्माइट्टीसु” इत्यादि दो सूत्र हैं। तत्पश्चात् पंचमस्थल में सासादन आदि तीन गुणस्थानवर्ती जीवों का प्रमाण प्ररूपित करने वाले “सासण” इत्यादि तीन सूत्र हैं। इस प्रकार अधिकार के प्रारम्भ में सूत्रों की समुदायपातनिका कही गई है।

अब सर्वप्रथम सामान्य सम्यक्त्व वाले जीवों का प्रमाण बताने हेतु सूत्र अवतरित होता है—

सूत्रार्थ—

सम्यक्त्वमार्गणा के अनुवाद से सम्यग्दृष्टियों में असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान से लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तक जीव ओघप्ररूपणा के समान हैं।।१७४।।

हिन्दी टीका—सूत्र का अर्थ सुगम है क्योंकि यहाँ पर सामान्य सम्यक्त्व का अधिकार है। सामान्य को छोड़कर उसके विशेष नहीं पाये जाते हैं इसलिए ओघप्रमाण की प्ररूपणा ही यहाँ पर निःशेष—पूर्णरूप से कहना चाहिए।

इस प्रकार प्रथम स्थल में सामान्य सम्यक्त्वी जीवों का प्रमाण निरूपण करने वाला एक सूत्र पूर्ण हुआ।

अधुना क्षायिकसम्यक्त्वे चतुर्थगुणस्थानवर्तिनां प्रमाणप्ररूपणाय सूत्रमवतरति—

खड्यसम्माइट्टीसु असंजदसम्माइट्टी ओघं।।१७५।।

सूत्रं सुगमं।

यद्यपि अयं क्षायिकसम्यग्दृष्टिराशिः ओघ असंयतसम्यग्दृष्टिराशेः असंख्यातभागमात्रः, तर्हि अपि ओघप्ररूपणां लभते, पल्योपमस्य असंख्यातभागमात्रत्वं प्रति विशेषाभावात्।

एषामेव संयतासंयतादि-उपशान्तकषायान्तानां प्रमाणनिरूपणाय सूत्रावतारो भवति—

संजदासंजदप्पहुडि जाव उवसंतकसायवीदरागछदुमत्था दव्वपमाणेण केवडिया? संखेज्जा।।१७६।।

पूर्वसूत्रात् क्षायिकसम्यग्दृष्टिः इति अत्रानुवर्तते।

क्षायिकसम्यग्दृष्टिसंयतासंयताः संख्याताः कथं?

नैतद्वक्तव्यं, एतेषां मनुष्यगतिव्यतिरिक्तशेषगतिषु अभावात्।

पूर्वं बद्धतिर्यगायुष्काः सम्यक्त्वं गृहीत्वा दर्शनमोहनीयं क्षपयित्वा तिर्यक्षु उत्पद्यमानाः लभ्यन्ते तेन संयतासंयतक्षायिकसम्यग्दृष्टयः असंख्याताः लभ्यन्ते इति चेत्?

नैतत्, पूर्वं बद्धायुष्कक्षायिकसम्यग्दृष्टीनां तिर्यक्षु उत्पन्नानां संयमासंयमगुणस्थानाभावात्।

अब क्षायिकसम्यक्त्व में चतुर्थगुणस्थानवर्ती जीवों की संख्या बताने हेतु सूत्र कहा जा रहा है—

सूत्रार्थ—

क्षायिक सम्यग्दृष्टियों में असंयतसम्यग्दृष्टि जीव ओघप्ररूपणा के समान हैं।।१७५।।

हिन्दी टीका—सूत्र का अर्थ सुगम है। यहाँ अभिप्राय यह है कि यद्यपि यह क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीवों की राशि ओघ के असंयतसम्यग्दृष्टियों की राशि के असंख्यातवें भागमात्र है, तो भी वह ओघप्ररूपणा को प्राप्त होती है, क्योंकि पल्योपम के असंख्यातवें भागत्व के प्रति उक्त दोनों राशियों में कोई विशेषता नहीं है।

अब उन्हीं जीवों में संयतासंयत से लेकर उपशान्तकषाय गुणस्थानवर्ती जीवों का प्रमाण निरूपण करने हेतु सूत्र का अवतार होता है—

सूत्रार्थ—

संयतासंयत गुणस्थान से लेकर उपशांतकषायवीतरागछद्मस्थ गुणस्थान तक क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव द्रव्यप्रमाण की अपेक्षा कितने हैं? संख्यात हैं।।१७६।।

हिन्दी टीका—पूर्व सूत्र से यहाँ पर क्षायिकसम्यग्दृष्टि पद की अनुवृत्ति होती है?

शंका—क्षायिकसम्यग्दृष्टि संयतासंयत जीव संख्यात कैसे हैं?

समाधान—नहीं, क्योंकि संयतासंयत क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव मनुष्यगति को छोड़कर शेष गतियों में नहीं पाये जाते हैं।

शंका—जिन जीवों ने पहले तिर्यचायु का बंध कर लिया है, ऐसे जीव सम्यक्त्व को ग्रहण करके और दर्शनमोहनीय का क्षय करके तिर्यचों में उत्पन्न होते हुए पाये जाते हैं, इसलिए संयतासंयत क्षायिक-सम्यग्दृष्टि जीव असंख्यात होना चाहिए?

कुतः?

भोगभूमिमन्तरेण तेषां अन्यत्रोत्पत्तिसंभवाभावात्। तिर्यक्षु दर्शनमोहनीयक्षपणा चापि नास्ति। “णियमा मणुसगईए” इति आगम वचनात्।^१

क्षपकायोगिकेवलिनं एषामेव प्रमाणनिरूपणाय सूत्रावतारः क्रियते—

चउण्हं खवा अजोगिकेवली ओघं।।१७७।।

सूत्रं सुगमं। अत्र चतुर्णां कर्मणां घातिसंज्ञकानां क्षपकाः इत्यध्याहारः कर्तव्यः।

संप्रति एषामेव सयोगिनां प्रमाणनिरूपणाय सूत्रावतारः क्रियते श्रीभूतबलिसूरिवर्येण—

सजोगिकेवली ओघं।।१७८।।

कुतः? क्षायिकसम्यक्त्वेन विना सयोगिकेवलिनं अनुपलम्भात्। एवं द्वितीयस्थले क्षायिकसम्यक्त्व-गुणस्थानप्रमाणप्रतिपादनत्वेन सूत्रचतुष्टयं गतम्।

अधुना वेदकसम्यग्दृष्टिगुणस्थानप्रमाणनिरूपणाय सूत्रमवतरति—

समाधान— नहीं, क्योंकि जिन्होंने पहले तिर्यचायु का बंध कर लिया है, ऐसे तिर्यचों में उत्पन्न हुए क्षायिकसम्यग्दृष्टियों के संयमासंयम गुणस्थान नहीं पाया जाता है।

ऐसा कैसे हो सकता है?

क्योंकि भोगभूमि के बिना अन्यत्र उनकी उत्पत्ति संभव नहीं है तथा तिर्यचों में दर्शनमोहनीय की क्षपणा भी नहीं पाई जाती है क्योंकि दर्शनमोहनीय की क्षपणा नियम से मनुष्यगति में ही होती है ऐसा आगमवचन है।

अब क्षपक और अयोगिकेवली जीवों का इन्हीं में प्रमाण बतलाने हेतु सूत्र का अवतार किया जा रहा है—

सूत्रार्थ—

चारों क्षपक और अयोगिकेवली जीव ओघप्ररूपणा के समान हैं।।१७७।।

हिन्दी टीका— सूत्र का अर्थ सुगम है। यहाँ ‘क्षपक’ पद से घाति संज्ञा वाले चारों कर्मों के क्षपक हैं, ऐसा अध्याहार कर लेना चाहिए।

अब उन्हीं जीवों में सयोगिकेवलियों का प्रमाण बतलाने के लिए श्रीभूतबली आचार्यवर्य सूत्र का अवतार करते हैं—

सूत्रार्थ—

सयोगिकेवली जीव ओघप्ररूपणा के समान हैं ।।१७८।।

प्रश्न— सयोगिकेवली भगवन्तों का प्रमाण ओघप्ररूपणा के समान कैसे है ?

उत्तर— चूंकि सयोगिकेवली भगवान क्षायिकसम्यक्त्व के बिना नहीं पाये जाते हैं, इसलिए उनका प्रमाण ओघप्ररूपणा के समान है।

इस प्रकार द्वितीय स्थल में क्षायिकसम्यक्त्वी जीवों का गुणस्थानों में प्रमाण कथन करने वाले चार सूत्र पूर्ण हुए।

अब वेदकसम्यग्दृष्टि जीवों की गुणस्थानों में संख्या बताने हेतु सूत्र अवतरित हो रहा है—

वेदगसम्माइट्टीसु असंजदसम्माइट्टिप्पहुडि जाव अप्पमत्तसंजदा त्ति ओघं॥१७९॥

एषः असंयतसम्यग्दृष्टेरारभ्य अप्रमत्तसंयतपर्यंत ओघराशिरेव किञ्चित् न्यूनवेदकसम्यग्दृष्टिजीवराशिर्भवति, तेनौघत्वं न विरुध्यते।

एवं तृतीयस्थले वेदकसम्यग्दृष्टिनिरूपणत्वेन एकं सूत्रं गतम्।

संप्रति उपशमसम्यग्दृष्टीनां असंयत-संयतासंयतगुणस्थानयोः प्रमाणनिरूपणार्थं सूत्रावतारो भवति —

उवसमसम्माइट्टीसु असंजदसम्माइट्टि-संजदासंजदा ओघं॥१८०॥

द्वौ अपि राशी ओघासंयतसम्यग्दृष्टि-संयतासंयतानामसंख्यातभागमात्रौ स्तः, तथापि पल्योपमासंख्यातभागत्वेन समानत्वमापद्येते इति ओघं भणितं।

एषामेव प्रमत्ताद्युपशान्तानां प्रमाणनिरूपणाय सूत्रावतारः क्रियते —

पमत्तसंजदप्पहुडि जाव उवसंतकसायवीदरागछदुमत्था त्ति दव्वपमाणेण केवडिया? संखेज्जा॥१८१॥

सूत्रार्थ —

वेदकसम्यग्दृष्टियों में असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान से लेकर अप्रमत्तसंयत गुणस्थान तक जीव ओघप्ररूपणा के समान हैं॥१७९॥

हिन्दी टीका — असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान से लेकर अप्रमत्तसंयत गुणस्थान तक ओघराशि ही कुछ कम वेदकसम्यग्दृष्टि जीवराशि होती है, इसलिए ओघत्व विरोध को प्राप्त नहीं होता है।

इस प्रकार तृतीयस्थल में वेदक सम्यग्दृष्टियों का प्रमाण बताने वाला एक सूत्र हुआ।

अब उपशमसम्यग्दृष्टियों का असंयत और संयतासंयत गुणस्थानों में प्रमाण निरूपण करने हेतु सूत्र का अवतार होता है —

सूत्रार्थ —

उपशमसम्यग्दृष्टियों में असंयतसम्यग्दृष्टि और संयतासंयत जीव ओघप्ररूपणा के समान हैं॥१८०॥

हिन्दी टीका — ये दोनों भी राशियाँ ओघ असंयतसम्यग्दृष्टि और संयतासंयतों के असंख्यातवें भागप्रमाण होती हैं, तो भी पल्योपम के असंख्यातवें भागत्व की अपेक्षा उपशमसम्यग्दृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि और संयतासंयतों की ओघ असंयतसम्यग्दृष्टि और संयतासंयतों के साथ समानता है, इसलिये सूत्र में 'ओघ' ऐसा कहा है।

अब इन्हीं में प्रमत्तसंयत गुणस्थान से लेकर उपशांतकषाय गुणस्थान तक के जीवों की संख्या बताने हेतु सूत्र का अवतार किया जाता है —

सूत्रार्थ —

प्रमत्तसंयत गुणस्थान से लेकर उपशांतकषाय वीतरागछद्मस्थ गुणस्थान तक उपशमसम्यग्दृष्टि जीव द्रव्यप्रमाण की अपेक्षा कितने हैं ? संख्यात हैं ॥१८१॥

इमे ओघप्रमत्तादिराशेः संख्यातभागाः सन्ति।

एवं चतुर्थस्थले उपशमसम्यग्दृष्टेः प्रमाणनिरूपणत्वेन द्वे सूत्रे गते।

सासादनसम्यग्दृष्ट्यादेः प्रमाणनिरूपणाय सूत्रयावतारो भवति—

सासणसम्माइट्ठी ओघं॥१८२॥

सम्मामिच्छाइट्ठी ओघं॥१८३॥

मिच्छाइट्ठी ओघं॥१८४॥

सूत्रत्रयं सुगमं।

भागाभागं कथयिष्यति—

सर्वजीवराशेः अनंतखण्डे कृते बहुखण्डाः मिथ्यादृष्टयो भवन्ति। शेषस्य अनंतखण्डे कृते बहुखण्डाः सिद्धाः भवन्ति। शेषस्यासंख्यातखण्डे कृते बहुखण्डाः वेदकअसंयतसम्यग्दृष्टयः। शेषस्यासंख्यातखण्डे कृते बहुखण्डाः क्षायिकसम्यग्दृष्टयः। शेषस्यासंख्यातखण्डे कृते बहुखण्डाः उपशमासंयतसम्यग्दृष्टयः। शेषस्य संख्यातखण्डे कृते बहुखण्डाः सम्यग्मिथ्यादृष्टयः। शेषस्यासंख्यातखण्डे कृते बहुखण्डाः सासादनसम्यग्दृष्टयः। शेषस्यासंख्यातखण्डे कृते बहुखण्डाः वेदकसम्यग्दृष्टिसंयतासंयताः। शेषस्यासंख्यातखण्डे कृते बहुखण्डाः उपशमसम्यग्दृष्टिसंयतासंयताः। शेषस्य संख्यातखण्डे कृते बहुखण्डाः क्षायिक-

विशेष—ये ओघप्रमत्त आदि गुणस्थानवर्ती राशि के संख्यातवें भाग उस गुणस्थान में उपशमसम्यग्दृष्टि जीव होते हैं। तात्पर्य यह है कि इस अल्पबहुत्व अनुयोगद्वार के वचन से जाना जाता है कि प्रमत्तसंयत आदि उपशांतकषाय तक प्रत्येक गुणस्थान के उपशमसम्यग्दृष्टि जीव ओघप्रमाण को प्राप्त नहीं होते हैं।

इस प्रकार चतुर्थ स्थल में उपशमसम्यग्दृष्टियों का प्रमाण कहने वाले दो सूत्र पूर्ण हुए।

अब सासादनसम्यग्दृष्टि आदि गुणस्थानवर्ती जीवों की संख्या बतलाने हेतु तीनों सूत्रों का अवतार होता है—

सूत्रार्थ—

सासादनसम्यग्दृष्टि जीव ओघप्ररूपणा के समान पल्योपम के असंख्यातवें भाग हैं॥१८२॥

सूत्रार्थ—

सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव ओघप्ररूपणा के समान पल्योपम के असंख्यातवें भाग हैं॥१८३॥

सूत्रार्थ—

मिथ्यादृष्टि जीव ओघप्ररूपणा के समान अनन्तानन्त हैं॥१८४॥

हिन्दी टीका—इन तीनों सूत्रों का अर्थ सरल है।

अब यहाँ भागाभाग को कहते हैं—सर्वजीवराशि के अनंतखंड करने पर उनमें से बहुभाग मिथ्यादृष्टि जीव होते हैं। शेष एक भाग के अनन्त खंड करने पर बहुभाग सिद्ध जीव हैं। शेष एक भाग के असंख्यात खंड करने पर बहुभाग वेदक असंयतसम्यग्दृष्टि जीव हैं। शेष एक भाग के असंख्यात खंड करने पर बहुभाग

सम्यग्दृष्टिसंयतासंयताः। शेषस्य संख्यातखण्डे कृते बहुखण्डाः प्रमत्तसंयताः। शेषस्य संख्यातखण्डे कृते बहुखण्डाः अप्रमत्तसंयताः। शेषं ज्ञात्वा वक्तव्यम्।

एवं सम्यक्त्वमार्गणां ज्ञात्वा मिथ्यात्वं परिहृत्य सम्यक्त्वं गृहीत्वा मोक्षमार्गे गच्छद्भिः भवद्भिः सिद्धिकान्ता परिणेतव्या।

एवं पंचमस्थले सासादनादित्रिगुणस्थानवर्तिजीवानां प्रमाणनिरूपणत्वेन त्रीणि सूत्राणि गतानि।

इति षट्खण्डागमस्य प्रथमखण्डे तृतीयग्रन्थे द्रव्यप्रमाणानुगमनाम्नि द्वितीयप्रकरणे

गणिनीज्ञानमतीविरचितसिद्धान्तचिन्तामणिटीकायां सम्यक्त्व-

मार्गणानाम द्वादशोऽधिकारः समाप्तः।

क्षायिक असंयतसम्यग्दृष्टि जीव हैं। शेष एक भाग के असंख्यात खंड करने पर बहुभाग उपशम असंयतसम्यग्दृष्टि जीव हैं। शेष एक भाग के संख्यात खंड करने पर बहुभाग सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव हैं। शेष एक भाग के असंख्यात खंड करने पर बहुभाग सासादनसम्यग्दृष्टि जीव हैं। शेष एक भाग के असंख्यात खंड करने पर बहुभाग वेदकसम्यग्दृष्टि संयतासंयतजीव हैं। शेष एक भाग के असंख्यात खंड करने पर बहुभाग उपशमसम्यग्दृष्टि संयतासंयत जीव हैं। शेष एक भाग के संख्यात खंड करने पर बहुभाग क्षायिकसम्यग्दृष्टि संयतासंयत जीव हैं। शेष एक भाग के संख्यात खंड करने पर बहुभाग प्रमत्तसंयत जीव हैं। शेष एक भाग के संख्यात खंड करने पर बहुभाग अप्रमत्तसंयत जीव हैं। शेष भागाभाग का कथन जानकर करना चाहिए।

इस प्रकार सम्यक्त्वमार्गणा के सम्बन्ध में जान करके आपको मिथ्यात्व का त्याग करके सम्यक्त्व को ग्रहण करके मोक्षमार्ग में प्रवृत्ति करते हुए सिद्धिकान्ता का वरण करना चाहिए।

इस प्रकार पंचम स्थल में सासादन आदि तीनों गुणस्थानवर्ती जीवों का प्रमाण निरूपण करने वाले तीन सूत्र पूर्ण हुए।

इस प्रकार षट्खण्डागम ग्रंथ के प्रथम खंड में तृतीय ग्रंथ में द्रव्यप्रमाणानुगम

नाम के द्वितीय प्रकरण में गणिनी ज्ञानमती विरचित सिद्धान्तचिन्तामणि

टीका में सम्यक्त्वमार्गणा नामक बारहवां अधिकार समाप्त हुआ।



अथ संज्ञिमार्गणाधिकारः

अथ स्थलद्वयेन पंचभिः सूत्रैः संज्ञिमार्गणानाम त्रयोदशमाधिकारः कथ्यते — तत्र प्रथमस्थले संज्ञिनां गुणस्थानप्रमाणनिरूपणत्वेन “सण्णि” इत्यादि द्वे सूत्रे स्तः। तदनु द्वितीयस्थले असंज्ञिनां प्रमाणनिरूपणत्वेन “असण्णी” इत्यादिसूत्रत्रयं।

अधुना संज्ञिनां मिथ्यादृष्टिप्रमाणनिरूपणार्थं सूत्रमवतरति —

सण्णियाणुवादेण सण्णीसु मिच्छाइट्ठी दव्वपमाणेण केवडिया? देवेहिं सादिरेयं।।१८५।।

सर्वे देवमिथ्यादृष्टयः संज्ञिनश्चैव। तेषां संख्यातभागमात्राः त्रिगतिसंज्ञिमिथ्यादृष्टयो भवन्ति। तेन संज्ञिमिथ्यादृष्टयो देवेभ्यः सातिरेकाः इति।

एषामेव सासादनादीनां प्रमाणप्रतिपादनाय सूत्रमवतरति —

सासणसम्माइट्ठिप्पहुडि जाव खीणकसायवीदरागछदुमत्था त्ति ओघं।।१८६।।

एतत्सूत्रं सुगमं।

एवं प्रथमस्थले संज्ञिप्रमाणकथनेन सूत्रद्वयं गतम्।

अधुना असंज्ञिजीवानां प्रमाणनिरूपणाय सूत्रावतारो भवति —

अथ संज्ञिमार्गणा अधिकार प्रारंभ

अब दो स्थलों में पाँच सूत्रों के द्वारा संज्ञिमार्गणा नामक तेरहवां अधिकार प्रारंभ होता है। उनमें से प्रथम स्थल में संज्ञी जीवों का गुणस्थान में प्रमाण बताने हेतु “सण्णि” इत्यादि दो सूत्र हैं। उसके बाद द्वितीय स्थल में असंज्ञी जीवों का प्ररूपण करने वाले “असण्णी” इत्यादि तीन सूत्र हैं।

अब संज्ञी जीवों में मिथ्यादृष्टि जीवों का प्रमाण निरूपण करने हेतु सूत्र का अवतार होता है —

सूत्रार्थ —

संज्ञिमार्गणा के अनुवाद से संज्ञियों में मिथ्यादृष्टि जीव द्रव्यप्रमाण की अपेक्षा कितने हैं ? देवों से कुछ अधिक हैं।।१८५।।

हिन्दी टीका — सभी देव मिथ्यादृष्टि जीव संज्ञी ही होते हैं तथा उनके संख्यातवें भागप्रमाण तीन गतिसम्बन्धी संज्ञी मिथ्यादृष्टि जीव होते हैं इसलिए संज्ञी मिथ्यादृष्टि जीव देवों से कुछ अधिक हैं।

अब उन्हीं संज्ञी जीवों का सासादन आदि गुणस्थानों में प्रमाण बताने हेतु सूत्र का अवतार होता है —

सूत्रार्थ —

सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थान से लेकर क्षीणकषाय वीतरागछद्मस्थ गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थान में संज्ञी जीव ओघप्ररूपणा के समान हैं।।१८६।।

यह सूत्र सरल है।

इस प्रकार प्रथम स्थल में संज्ञी जीवों की संख्या का कथन करने वाले दो सूत्र पूर्ण हुए।

अब असंज्ञी जीवों का प्रमाण कथन करने के लिए सूत्र का अवतार होता है —

असण्णी दव्वपमाणेण केवडिया? अणंता॥१८७॥

सुगमं एतत्सूत्रं।

अधुना कालक्षेत्राभ्यां असंज्ञिनां प्रमाणनिरूपणाय सूत्रावतारो भवति—

अणंताणंताहि ओसप्पिणी-उस्सप्पिणीहि ण अवहिरंति कालेण॥१८८॥

खेत्तेण अणंताणंता लोगा॥१८९॥

एतयोः सूत्रयोरर्थो ज्ञायते।

अधुना भागाभागं वक्ष्यामि—सर्वजीवराशेः अनंतखण्डे कृते बहुखण्डाः असंज्ञिनो भवन्ति। शेषस्य अनंतखण्डे कृते बहुखण्डाः नैव संज्ञिनः नैवासंज्ञिनो भवन्ति। अस्यायमर्थः—शेषस्यैकभागस्य अनंतखण्डे कृते बहुखण्डाः संज्ञि-असंज्ञिव्यपदेशरहिताः जीवाः भवन्ति। शेषस्यैकभागस्य असंख्यातखण्डे कृते बहुखण्डाः संज्ञिमिथ्यादृष्टयो भवन्ति। शेषं ओघभागाभागभंगो ज्ञातव्यः।

एवं द्वितीयस्थले असंज्ञिजीवानां संख्यानिरूपणत्वेन त्रीणि सूत्राणि गतानि।

इति षट्खण्डागमस्य प्रथमखण्डे तृतीयग्रन्थे द्रव्यप्रमाणानुगमनाम्नि द्वितीयप्रकरणे

गणिनीज्ञानमतीविरचितसिद्धान्तचिन्तामणिटीकायां संज्ञिमार्गणानाम्

त्रयोदशमोऽधिकारः समाप्तः।

सूत्रार्थ—

असंज्ञी जीव द्रव्यप्रमाण की अपेक्षा कितने हैं ? अनन्त हैं ॥१८७॥

यह सूत्र भी सुगम है।

अब काल और क्षेत्र की अपेक्षा असंज्ञी जीवों का प्रमाण बतलाने हेतु दो सूत्रों का अवतार होता है—

सूत्रार्थ—

काल की अपेक्षा असंज्ञी मिथ्यादृष्टि जीव अनन्तानन्त अवसर्पिणियों और उत्सर्पिणियों के द्वारा अपहृत नहीं होते हैं॥१८८॥

सूत्रार्थ—

क्षेत्र की अपेक्षा असंज्ञी मिथ्यादृष्टि जीव अनन्तानन्त लोकप्रमाण हैं॥१८९॥

हिन्दी टीका—इन दोनों सूत्रों का अर्थ ज्ञात ही है अतः इनका विशेष व्याख्यान नहीं किया जा रहा है।

अब यहाँ भागाभाग को कहते हैं—सर्वजीवराशि के अनंत खंड करने पर उनमें से बहुभाग असंज्ञी जीव हैं। शेष एक भाग के अनंत खंड करने पर उनमें से बहुभाग संज्ञी और असंज्ञी इन दोनों व्यपदेशों से रहित जीव हैं। इसका अर्थ यह है कि शेष एक भाग के अनन्त खण्ड करने पर बहु खण्ड प्रमाण संज्ञी और असंज्ञी के व्यपदेश से रहित जीव होते हैं। शेष एक भाग के असंख्यात खंड करने पर बहुभाग संज्ञी मिथ्यादृष्टि जीव हैं। शेष भागाभाग का ओघ भागाभाग के समान कथन करना चाहिए।

इस प्रकार द्वितीय स्थल में असंज्ञी जीवों की संख्या का निरूपण करने वाले तीन सूत्र पूर्ण हुए।

इस प्रकार षट्खण्डागम ग्रंथ के प्रथम खंड में तृतीय ग्रंथ में द्रव्यप्रमाणानुगम

नाम के द्वितीय प्रकरण में गणिनी ज्ञानमती विरचित सिद्धान्तचिन्तामणि

टीका में संज्ञिमार्गणा नामक तेरहवां अधिकार समाप्त हुआ।

अथ आहारमार्गणाधिकारः

अथ स्थलद्वयेन त्रिभिः सूत्रैः आहारकमार्गणानाम् चतुर्दशोऽधिकारः प्रारभ्यते। तत्र प्रथमस्थले आहारकजीवगुणस्थानप्रमाणनिरूपणत्वेन “आहाराणुवादेण” इत्यादिसूत्रमेकं। तदनु द्वितीयस्थले अनाहारकगुणस्थानप्रमाणनिरूपणत्वेन “अणाहारएसु” इत्यादिसूत्रद्वयं, इति समुदायपातनिका।

अधुना आहारकजीवगुणस्थानप्रमाणनिरूपणाय सूत्रमवतरति —

आहाराणुवादेण आहारएसु मिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव सजोगिकेवलि ति ओघं।।१९०।।

सूत्रस्यार्थः सुगमः। एवं प्रथमस्थले आहारकप्रमाणकथनेन एकं सूत्रं गतम्। संप्रति अनाहारकजीव-गुणस्थानप्रमाणनिरूपणाय सूत्रावतारो भवति —

अणाहारएसु कम्मइयकायजोगिभंगो।।१९१।।

अनाहारकेषु मिथ्यादृष्टि-सासादनसम्यग्दृष्टि-असंयतसम्यग्दृष्टिसयोगिकेवलिनं प्रमाणं कर्मणकाययोगि-

अथ आहारमार्गणा अधिकार प्रारंभ

अब दो स्थलों में तीन सूत्रों के द्वारा आहारमार्गणा नामक चौदहवां अधिकार प्रारंभ होता है। उनमें से प्रथम स्थल में आहारक जीवों का गुणस्थानों में प्रमाण निरूपण करने हेतु “आहाराणुवादेण” इत्यादि एक सूत्र कहेंगे। उसके पश्चात् द्वितीय स्थल में अनाहारक जीवों की गुणस्थानों में संख्यानिरूपित करने हेतु “अणाहारएसु ” इत्यादि दो सूत्र हैं। यह सूत्रों की समुदायपातनिका हुई।

अब आहारक जीवों का गुणस्थानों में प्रमाण बताने हेतु सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ —

आहारमार्गणा के अनुवाद से आहारकों में मिथ्यादृष्टि गुणस्थान से लेकर सयोगिकेवली गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थान में जीव ओघप्ररूपणा के समान हैं।।१९०।।

सूत्र का अर्थ सुगम है। इतना विशेष है कि गुणस्थानप्रतिपन्न राशि और अनाहारक जीवराशि को तथा आहारक मिथ्यादृष्टि जीवराशि से भाजित उक्त राशियों के वर्ग को सर्व जीवराशि में मिला देने पर आहारक मिथ्यादृष्टि जीवों का प्रमाण लाने के लिए ध्रुवराशि होती है।

इस प्रकार प्रथम स्थल में आहारक जीवों का प्रमाण बताने वाला एक सूत्र पूर्ण हुआ।

अब अनाहारक जीवों का गुणस्थानों में प्रमाण प्ररूपण करने हेतु सूत्र का अवतार होता है —

सूत्रार्थ —

अनाहारकों में मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि और सयोगिकेवली जीवों का प्रमाण कर्मणकाययोगियों के प्रमाण के समान है।।१९१।।

हिन्दी टीका — अनाहारक जीवों में मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि एवं सयोगिकेवली भगवन्तों का प्रमाण कर्मणकाययोगी जीवों के प्रमाण सदृश जानना चाहिए।

प्रमाणसदृशं ज्ञातव्यम्।

अयोगिकेवलिनं प्रमाणप्रतिपादनाय सूत्रावतारः क्रियते श्रीभूतबलिभट्टारकेण—

अजोगिकेवली ओघं॥१९२॥

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—अनाहारिणः अयोगिकेवलिनः प्रवेशेन न्यूनतमेन एकः, अधिकतमेन अष्टोत्तरशतप्रमाणा भवन्तीति। अधुना भागाभागं कथयिष्यन्ति—

सर्वजीवराशेः असंख्यातखण्डे कृते बहुखण्डाः आहारिमिथ्यादृष्टयो भवन्ति। शेषस्य अनंतखण्डे कृते बहुखण्डाः अनाहारिबंधका भवन्ति। शेषस्यानन्तखण्डे कृते बहुखण्डाः अनाहारि-अबंधका भवन्ति। शेषस्यासंख्यातखण्डे कृते बहुखण्डाः आहारि-असंयतसम्यग्दृष्टयो भवन्ति। शेषस्य संख्यातखण्डे कृते बहुखण्डाः सम्यग्मिथ्यादृष्टयो भवन्ति। शेषस्यासंख्यातखण्डे कृते बहुखण्डाः आहारि-सासादनसम्यग्दृष्टयो भवन्ति। शेषस्यासंख्यातखण्डे कृते बहुखण्डाः संयतासंयताः भवन्ति। शेषस्यासंख्यातखण्डे कृते बहुखण्डाः अनाहारि-असंयतसम्यग्दृष्टयो भवन्ति। शेषस्यासंख्यातखण्डे कृते बहुखण्डाः अनाहारि-सासादनसम्यग्दृष्टयो

विशेषार्थ— धवला टीकाकार श्री वीरसेनाचार्य ने इन उपर्युक्त जीवों की ध्रुवराशि के बारे में वर्णन करते हुए कहा है—ओघ मिथ्यादृष्टियों की ध्रुवराशि को अन्तर्मुहूर्त से गुणित करने पर अनाहारक मिथ्यादृष्टियों के प्रमाण लाने के लिए ध्रुवराशि होती है। ओघअसंयत सम्यग्दृष्टियों के अवहारकाल को आवली के असंख्यातवें भाग से भाजित करने पर जो लब्ध आवे, उसे उसी में मिला देने पर आहारक असंयतसम्यग्दृष्टियों का अवहारकाल होता है। इसे आवली के असंख्यातवें भाग से गुणित करने पर सम्यग्मिथ्यादृष्टियों का अवहारकाल होता है। इसे संख्यात से गुणित करने पर आहारक सासादनसम्यग्दृष्टियों का अवहारकाल होता है। इसे आवली के असंख्यातवें भाग से गुणित करने पर आहारक संयतासंयतों का अवहारकाल होता है। इसे आवली के असंख्यातवें भाग से गुणित करने पर अनाहारक असंयतसम्यग्दृष्टियों का अवहारकाल होता है। इसे आवली के असंख्यातवें भाग से गुणित करने पर अनाहारक सासादनसम्यग्दृष्टियों का अवहारकाल होता है।

अब अयोगिकेवली भगवन्तों की संख्या का प्रतिपादन करने हेतु श्रीभूतबली भट्टारक (आचार्यदेव) द्वारा सूत्र का अवतार किया जाता है—

सूत्रार्थ—

अनाहारक अयोगिकेवली जीव ओघप्ररूपणा के समान हैं ॥१९२॥

हिन्दी टीका—अनाहारक अयोगिकेवली भगवन्तों का प्रमाण प्रवेश की अपेक्षा न्यूनतम एक है और अधिकतकरूप से एक सौ आठ (१०८) प्रमाण होता है।

अब यहाँ भागाभाग को कहते हैं—सर्वजीवराशि के असंख्यात खंड करने पर बहुभाग आहारक मिथ्यादृष्टि जीव हैं। शेष एक भाग के अनंत खंड करने पर बहुभाग अनाहारक बन्धयुक्त जीव हैं। शेष एक भाग के अनंत खंड करने पर बहुभाग अनाहारक अबन्धक जीव हैं। शेष एक भाग के असंख्यात खंड करने पर बहुभाग आहारक असंयतसम्यग्दृष्टि जीव हैं। शेष एक भाग के संख्यात खंड करने पर बहुभाग सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव हैं। शेष एक भाग के असंख्यात खंड करने पर बहुभाग आहारक सासादनसम्यग्दृष्टि जीव हैं। शेष एक भाग के असंख्यात खंड करने पर बहुभाग संयतासंयत जीव हैं। शेष एक भाग के असंख्यात खंड करने पर बहुभाग अनाहारक असंयतसम्यग्दृष्टि जीव हैं। शेष एक भाग के संख्यात खंड

भवन्ति। शेषस्य संख्यातखण्डे कृते बहुखण्डाः प्रमत्तसंयताः भवन्ति। शेषैकखण्डाः अप्रमत्तसंयता भवन्ति।
तात्पर्यमेतत् — आहारकानाहारकावस्थाविरहितनिजपरमानन्दामृतपानकरणार्थं भवद्भिः भेदाभेदरत्नत्रयं
पालयित्वा स्वात्मोपलब्धिः सिद्धिः साधनीया इति।

इत्थं द्वितीयस्थले अनाहारकजीवप्रमाणप्रतिपादनत्वेन सूत्रद्वयं गतम्।
चन्द्रगिरिगुफायां चन्द्रप्रभ आदि उत्कीर्णं जिनप्रतिमाभ्यो नमो नमः।
भुजंगप्रयातछंद —

मुनीनां मनोवार्धिराकासुधांशुः, मनोभूविजेता मनोध्वान्तहारी।
चलच्चित्तसंचारहान्यै सदा तं, मुदा स्तौमि चन्द्रप्रभं चन्द्रकान्तं॥१॥

एवं आहारकमार्गणाधिकारो नामा चतुर्दशोऽधिकारः समाप्तः।

इति श्रीमद्भगवत्पुष्पदन्तभूतबलिभट्टारकविरचिते षट्खण्डागम महाग्रन्थस्य प्रथमखण्डे
तृतीयग्रन्थे द्रव्यप्रमाणानुगमनामद्वितीयप्रकरणे श्रीवीरसेनाचार्यविरचितधवलाटीका-
प्रमुख अनेकग्रन्थाधारैः गणिनीज्ञानमतीकृत सिद्धान्तचिन्तामणिटीकायां
चतुर्दशभिरधिकारैः द्वितीयो महाधिकारः समाप्तः।

करने पर बहुभाग अनाहारक सासादनसम्यग्दृष्टि जीव हैं। शेष एक भाग के संख्यात खंड करने पर बहुभाग प्रमत्तसंयत जीव हैं। शेष एक भागप्रमाण अप्रमत्तसंयत जीव हैं।

तात्पर्य यह है कि आहारक और अनाहारक अवस्था से रहित अपनी आत्मा में परमानन्दरूपी अमृत का पान करने के लिए हम सभी को भेदाभेद रत्नत्रय का पालन करके निजात्मा की ही उपलब्धि और सिद्धि करनी चाहिए।

इस प्रकार द्वितीय स्थल में अनाहारक जीवों के प्रमाण को प्रतिपादित करने वाले दो सूत्र पूर्ण हुए।
चन्द्रगिरि पर्वत की गुफा में उत्कीर्ण चन्द्रप्रभ आदि जिनप्रतिमाओं को मेरा बारम्बार नमस्कार है।

श्लोकार्थ — जो मुनियों के मनरूपी समुद्र को वृद्धिगंत करने में चन्द्रमा के समान हैं, मनरूपी वृहत् काय पृथ्वी के विजेता हैं, मन के अज्ञान अन्धकार को नष्ट करने वाले हैं तथा जो अति चंचल चित्त की गति को रोकने वाले हैं ऐसे चन्द्रमा की कांति के समान सुशोभित श्री चन्द्रप्रभ तीर्थकर भगवान की मैं स्तुति करता हूँ।

यह प्रकरण चाँदवड़ (महाराष्ट्र) में लिखा गया है। वहाँ एक चन्द्रगिरि पर्वत है, उस पर्वत की गुफा में चन्द्रप्रभ भगवान एवं अन्य भगवन्तों की प्रतिमाएँ उत्कीर्ण हैं, इसीलिए टीकाकर्त्री पूज्य माताजी ने यहाँ उन्हें नमन करके अध्याय को परिपूर्ण किया है।

इस प्रकार आहारमार्गणा नाम का चौदहवां अधिकार समाप्त हुआ।

इस प्रकार श्रीमान् भगवान् पुष्पदन्त-भूतबली भट्टारक द्वारा विरचित षट्खण्डागम महाग्रंथ के प्रथम खंड में तृतीयग्रन्थ में द्रव्यप्रमाणानुगम नाम के द्वितीय प्रकरण में श्रीवीरसेनाचार्य विरचित धवला टीका को प्रमुख करके अन्य अनेक ग्रंथों के आधार से गणिनी ज्ञानमती माताजी द्वारा रचित सिद्धान्तचिन्तामणि टीका में चौदह अधिकारों के द्वारा द्वितीय महाधिकार समाप्त हुआ।



अथ क्षेत्रानुगमानुयोगद्वारनामः

(तृतीयो महाधिकारः)

अथ जंबूद्वीपे भरतक्षेत्रस्य आर्यखण्डे देवमनुष्यविद्याधरविनिर्मितसर्वकृत्रिमजिनप्रतिमाभ्यो नमो नमः ।

पृथिवीछंद — नमोऽस्तु जिनसद्धाने त्रितयलोकसंपदभृते !

नमोऽस्तु परमात्मने सकललोकचूडामणे ।

नमोऽस्तु जिनमूर्तये सकलदोषविच्छिन्नये !

पुनीहि मम रागमोहसहितं मनोऽज्ञानवत् ॥१॥

षट्खण्डागमस्य प्रथमखण्डे तृतीयग्रन्थे तृतीयक्षेत्रानुगम नामानुयोगद्वारं प्रारभ्यते । तत्र तावद् द्वौ महाधिकारौ स्तः । तस्मिन् तृतीयमहाधिकारे सूत्रचतुष्टयं । चतुर्थमहाधिकारे अष्टाशीतिसूत्रैः चतुर्दशाधिकाराः सन्ति । अत्र द्रव्यप्रमाणानुगमापेक्षया । इमौ द्वौ महाधिकारौ तृतीयचतुर्थौ कथितौ इति ज्ञातव्यम् । तस्मिन्नपि प्रथमगतिमार्गणायां द्वादश सूत्राणि । द्वितीयाधिकारे इंद्रियमार्गणायां सूत्रपञ्चकं । तृतीयाकाय-मार्गणाधिकारे सूत्रसप्तकं । चतुर्थयोगाधिकारे चतुर्दश सूत्राणि । पंचमवेदमार्गणाधिकारे सूत्रचतुष्टयं । षष्ठकषायमाधिकारे सूत्रचतुष्टयं । सप्तमे ज्ञानाधिकारे सप्तसूत्राणि । अष्टमसंयममार्गणायां नव सूत्राणि । नवमदर्शनमार्गणायां

अथ क्षेत्रानुगम प्रारम्भ

इस जम्बूद्वीप में भरतक्षेत्र के आर्यखण्ड में देव, मनुष्य एवं विद्याधरों के द्वारा निर्मित किये गये समस्त कृत्रिम जिनमंदिरों में विराजमान जिनप्रतिमाओं को मेरा पुनः पुनः नमस्कार होवे ।

मंगलाचरण

श्लोकार्थ — त्रैलोक्य की सम्पत्ति से समन्वित लोक के समस्त अकृत्रिम जिनमंदिरों को मेरा नमस्कार होवे, सम्पूर्ण लोक के चूडामणिस्वरूप परमात्मा — भगवान को मेरा नमस्कार होवे, समस्त दोषों के विनाश करने हेतु सभी जिनप्रतिमाओं को मेरा नमस्कार होवे तथा हे प्रभो ! राग और मोह से युक्त मुझ अज्ञानी का मन आप पवित्र कीजिए, ऐसी मेरी प्रार्थना है ।

नमोऽस्तु अकृत्रिम जिनमंदिर, तीन लोक संपदभर्ता ।

नमोऽस्तु परमात्मन् ! परमेष्ठिन् ! सकललोकचूडामणि नाथ ॥

नमोऽस्तु जिनप्रतिमा को मेरा, सकल दोष विच्छेद करो ।

रागमोह युत मम अज्ञानवान् मन झटिति पवित्र करो ॥

षट्खंडागम ग्रंथ के प्रथम खण्ड में तृतीय ग्रंथ में तृतीय क्षेत्रानुगम नाम का प्रकरण प्रारंभ होता है । उसमें दो महाधिकार हैं, जिनमें से तृतीय महाधिकार में चार सूत्र हैं, चतुर्थ महाधिकार में अट्ठासी (८८) सूत्रों के द्वारा चौदह अधिकार कहेंगे । यहाँ द्रव्य प्रमाणानुगम की अपेक्षा तृतीय-चतुर्थ ये दो महाधिकार कहे हैं, ऐसा समझना चाहिए । उसमें भी सर्व प्रथम तृतीय महाधिकार में गतिमार्गणा में बारह सूत्र हैं, द्वितीय अधिकार में इंद्रियमार्गणासम्बन्धी पाँच सूत्र हैं, तृतीय कायमार्गणा अधिकार में सात सूत्र हैं, चतुर्थ योगमार्गणाधिकार में चौदह सूत्र हैं, पंचम वेदमार्गणाधिकार में चार सूत्र हैं, छठे कषायमार्गणाधिकार में चार सूत्र हैं, सातवें ज्ञानमार्गणाधिकार में सात सूत्र हैं, आठवें संयममार्गणाधिकार में नौ सूत्र हैं, नवमें दर्शनमार्गणाधिकार में पाँच

सूत्रपंचकं। दशमे लेश्याधिकारे पंचसूत्राणि। एकादश भव्यमार्गणायां सूत्रद्वयं। द्वादशसम्यक्त्वमार्गणाधिकारे सूत्राणि सप्त। त्रयोदशसंज्ञिमार्गणायां सूत्रद्वयं। चतुर्दशाहारमार्गणाधिकारे पंच सूत्राणि इति द्वानवतिसूत्रैरयं क्षेत्रानुगमोऽस्ति।

अतस्तत्रापि तृतीयमहाधिकारे अधिकारशुद्धिपूर्वकत्वेन पातनिकासहितं व्याख्यानं क्रियते। ततः प्रथमस्थले मंगलाचरणपूर्वकं गुणस्थानमार्गणयोः क्षेत्रज्ञापनार्थं “खेत्ताणुगमेण” इत्यादिना प्रतिज्ञारूपेण एकं सूत्रं वक्ष्यते। तदनु द्वितीयस्थले संक्षेपेण मिथ्यादृष्टिजीवानां क्षेत्रनिरूपणत्वेन “ओघेण” इत्यादिना एकं सूत्रं। ततः परं तृतीयस्थले सासादनादिजीवानां सयोगिकेवलिनमन्तरेण द्वादशगुणस्थानेषु क्षेत्रप्रतिपादनपरत्वेन “सासन” इत्यादि एकं सूत्रं। तत्पश्चात् चतुर्थस्थले सयोगिजनानां समुद्घातगतेतराणां क्षेत्रनिरूपणत्वेन “सजोगिकेवली” इत्यादिसूत्रमेकं। एवं चतुरन्तरस्थलैः चतुर्भिः सूत्रैः समुदायपातनिका सूचिता भवति। अधुना निर्देशस्य भेदप्ररूपणार्थं सूत्रमवतारयति श्रीभूतबलिसूरिवर्यः—

खेत्ताणुगमेण दुविहो णिद्देसो, ओघेण आदेसेण य।।१।।

क्षेत्रानुगमापेक्षया निर्देशः द्विविधः— ओघेन— गुणस्थानापेक्षया, आदेसेण— मार्गणापेक्षया चेति।

सूत्र हैं, दशवें लेश्यामार्गणाधिकार में पाँच सूत्र हैं, ग्यारहवें भव्यमार्गणाधिकार में दो सूत्र हैं, बारहवें सम्यक्त्व मार्गणाधिकार में सात सूत्र हैं, तेरहवें संज्ञिमार्गणाधिकार में दो सूत्र हैं और चौदहवें आहारमार्गणाधिकार में पाँच सूत्र हैं। इस प्रकार बानवे (९२) सूत्रों के द्वारा यह क्षेत्रानुगम है।

उसमें भी तृतीय महाधिकार में अधिकारशुद्धिपूर्वक पातनिका सहित व्याख्यान किया जाएगा पुनः उसी के प्रथम स्थल में मंगलाचरणपूर्वक गुणस्थान और मार्गणा का क्षेत्र बतलाने हेतु “खेत्ताणुगमेण” इत्यादि प्रतिज्ञारूप से एक सूत्र कहेंगे। उसके पश्चात् द्वितीय स्थल में संक्षेप से मिथ्यादृष्टि जीवों का क्षेत्र निरूपण करने वाला “ओघेण” इत्यादि एक सूत्र है। उससे आगे तृतीय स्थल में सासादनसम्यग्दृष्टि आदि गुणस्थानवर्ती जीवों का सयोगिकेवली भगवन्तों के बिना बारह गुणस्थानों में क्षेत्र का प्रतिपादन करने वाला “सासन” इत्यादि एक सूत्र है। तत्पश्चात् चतुर्थस्थल में सयोगिकेवली समुद्घातप्राप्त से इतर— अतिरिक्त भगवन्तों का क्षेत्र निरूपण करने वाला “सजोगिकेवली” इत्यादि एक सूत्र है।

इस प्रकार चार अन्तर स्थलों के द्वारा चार सूत्रों में समुदायपातनिका सूचित की गई है।

विशेषार्थ— षट्खण्डागम में सत्प्ररूपणा नाम का प्रथम ग्रंथ है तथा उसी सत्प्ररूपणा के अन्तर्गत आलाप अधिकार का वर्णन करने वाला द्वितीय ग्रंथ है पुनः द्रव्यप्रमाणानुगम और क्षेत्रानुगम नामक यह तृतीय ग्रंथ है।

इस प्रथम खण्ड में आठ अनुयोगद्वार और नवमी चूलिका है। उसमें से प्रथम अनुयोगद्वार प्रथम पुस्तक में ‘सत्प्ररूपणा’ नाम से कहा गया है, द्वितीय अनुयोगद्वार ‘द्रव्यप्रमाणानुगम’ है एवं तृतीय अनुयोगद्वार ‘क्षेत्रानुगम’ नाम का है, ऐसा जानना। इसीलिए यहाँ सर्वत्र ‘तृतीयप्रकरणे’ ऐसा वाक्य आया है।

अब निर्देश के भेदों को बतलाने हेतु श्रीभूतबली आचार्य सूत्र का अवतार करते हैं—

सूत्रार्थ—

क्षेत्रानुगम की अपेक्षा निर्देश दो प्रकार का है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश ।।१।।

हिन्दी टीका— क्षेत्रानुगम अर्थात् क्षेत्र अनुयोगद्वार की अपेक्षा निर्देश के दो भेद हैं—

१. ओघनिर्देश— गुणस्थान की अपेक्षा २. आदेशनिर्देश— मार्गणा की अपेक्षा।

कश्चिदाह — क्षेत्रानुयोगद्वारस्य अवतारस्य किं फलं?

सूरिणा उच्यते — सत्प्ररूपणानामानुयोगद्वारात् एषां अस्तित्वं ज्ञातं, पुनः द्रव्यानुयोगद्वारात् प्रमाणमवगतं, एतत् चतुर्दशजीवसमासानां क्षेत्रप्रमाणं ज्ञातव्यं। अथवा अनन्तो जीवराशिः असंख्यातप्रदेशे लोकाकाशे किं सम्पाति न वा सम्पाति? इति संदेहेन दोलायमानस्य शिष्यस्य संदेहविनाशनार्थो वा क्षेत्रानुयोगद्वारस्य अवतारोऽस्ति।

अत्र श्रीवीरसेनाचार्येण निर्देशस्वामित्वसाधनाधिकरणस्थितिविधानैः षड्भिः अनुयोगद्वारैः क्षेत्रस्य मीमांसा क्रियते —

आकाशं — गगनं क्षेत्रस्य निर्देशः।

कस्य क्षेत्रं?

शून्योऽयं भंगः, नास्ति अस्य क्षेत्रस्य स्वामी कश्चित्।

केन क्षेत्रं?

पारिणामिकेन भावेन, क्षेत्रस्यात्युत्तौ नापि किञ्चिन्निमित्तं, स्वभावेनैव।

कस्मिन् क्षेत्रं?

स्वस्मिन्नेव क्षेत्रं, सारे स्तंभवत् एकत्रापि आधाराधेयभावदर्शनात्।

कियच्चिरं क्षेत्रं?

अनादिमनन्तं।

यहाँ कोई प्रश्न करता है — यहाँ क्षेत्रानुयोगद्वार के अवतार का फल क्या है ?

इसका समाधान आचार्यदेव ने किया है — सत्प्ररूपणा नाम के अनुयोगद्वार से उनका अस्तित्व जाना जाता है, पुनः द्रव्यानुयोगद्वार से जिनका संख्यारूप प्रमाण जान लिया गया है, ऐसे चौदह जीवसमासों के (गुणस्थानों के) क्षेत्रसम्बन्धी प्रमाण का जानना ही क्षेत्रानुयोगद्वार के अवतार का फल है अथवा असंख्यातप्रदेश वाले लोकाकाश में अनन्तप्रमाणवाली जीवराशि क्या समा जाती है ? या नहीं समाती है, इस प्रकार के संदेह से दोलायमान — घुलने वाले शिष्य के संदेह का विनाश करने हेतु क्षेत्रानुयोगद्वार का अवतार हुआ है।

अब यहाँ श्री वीरसेनाचार्य निर्देश, स्वामित्व, साधन, अधिकरण, स्थिति और विधान इन छह अनुयोगद्वारों के द्वारा क्षेत्र की मीमांसा करते हैं —

क्षेत्र का निर्देश आकाश है।

शंका — क्षेत्र किसका है ? अर्थात् इसका स्वामी कौन है ?

समाधान — यह भंगशून्य है, अर्थात् इसका स्वामी कोई नहीं है।

शंका — क्षेत्र किससे होता है, अर्थात् क्षेत्र का साधन या करण क्या है ?

समाधान — पारिणामिक भाव से क्षेत्र होता है, अर्थात् क्षेत्र की उत्पत्ति में कोई दूसरा निमित्त न होकर वह स्वभाव से है।

शंका — क्षेत्र किसमें रहता है, अर्थात् इसका अधिकरण क्या है ?

समाधान — अपने आप में ही यह रहता है, अर्थात् क्षेत्र का अधिकरण क्षेत्र ही है क्योंकि 'सार में स्तंभ है' इस प्रकार एक वस्तु में भी आधार आधेयभाव देखा जाता है।

शंका — कितने कालपर्यंत क्षेत्र रहता है, अर्थात् क्षेत्र की स्थिति कितनी है ?

समाधान — क्षेत्र अनादि और अनन्त है।

कतिविधं क्षेत्रम्?

द्रव्यार्थिकनयं प्रतीत्य चैकविधं। अथवा प्रयोजनमाश्रित्य द्विविधं लोकाकाशमलोकाकाशं चेति।
लोक्यन्ते उपलभ्यन्ते यस्मिन् जीवादिद्रव्याणि स लोकः। तद्विपरीतोऽलोकः। अथवा देशभेदेन त्रिविधः,
मंदरचूलिकातः ऊर्ध्वमूर्ध्वलोकः, मंदरमूलादधः अधोलोकः, मंदरपरिच्छिन्नो मध्यलोक इति।

यथा द्रव्याणि स्थितानि तथावबोधोऽनुगमः। क्षेत्रस्यानुगमः क्षेत्रानुगमः, तेन क्षेत्रानुगमेन द्विविधः
निर्देशः। निर्देशः प्रतिपादनं कथनमिति एकार्थः। ओघेन द्रव्यार्थिकनयावलम्बनेन, आदेशेन पर्यायार्थिक-
नयावलम्बनेन चेति।

किमर्थं उभयथा निर्देशः क्रियते?

न, उभयनयावस्थितसत्त्वानुग्रहार्थत्वात्^१।

एवं प्रथमस्थले प्रतिज्ञाकथनसूचकत्वेन एकं सूत्रं गतम्।

अधुना मिथ्यादृष्टिगुणस्थानजीवानां क्षेत्रनिरूपणाय सूत्रावतारो भवति—

ओघेण मिच्छादृष्टी केवडि खेत्ते? सव्वलोगे।।२।।

अत्र सूत्रे लोके इति उक्ते सप्तरज्जूनां घनो गृहीतव्यः। अस्यायमर्थः—

शंका — क्षेत्र कितने प्रकार का है ?

समाधान — द्रव्यार्थिक नय की अपेक्षा क्षेत्र एक प्रकार का है अथवा प्रयोजन के आश्रय से क्षेत्र दो प्रकार का है, लोकाकाश और अलोकाकाश। जिसमें जीवादि द्रव्य अवलोकन किए जाते हैं, पाये जाते हैं, उसे लोक कहते हैं। इसके विपरीत जहाँ जीवादि द्रव्य नहीं देखे जाते हैं, उसे अलोक कहते हैं। अथवा देश के भेद से क्षेत्र तीन प्रकार का है — मंदराचल (सुमेरूपर्वत) की चूलिका से ऊपर का क्षेत्र ऊर्ध्वलोक है, मंदराचल के मूल से नीचे का क्षेत्र अधोलोक है तथा मंदराचल से परिच्छिन्न अर्थात् तत्प्रमाण मध्यलोक है।

जिस प्रकार से द्रव्य अवस्थित हैं, उस प्रकार से उनको जानना अनुगम कहलाता है। क्षेत्र के अनुगम को क्षेत्रानुगम कहते हैं। उससे अर्थात् क्षेत्रानुगम से शरीर के (शरीरसामान्य और मुखादि अंगोपांगविशेष) निर्देश के समान दो प्रकार का निर्देश किया गया है। निर्देश, प्रतिपादन और कथन, ये सब एकार्थक हैं। ओघ से अर्थात् द्रव्यार्थिक नय के अवलम्बन से और आदेश से अर्थात् पर्यायार्थिक नय के अवलम्बन से निर्देश दो प्रकार का है।

शंका — दोनों नयों की अपेक्षा से निर्देश किसलिए किया जाता है ?

समाधान — नहीं, क्योंकि उभयनय — द्रव्यार्थिक नय तथा पर्यायार्थिकनय में अवस्थित शिष्यों के अनुग्रह के लिए आदेशनिर्देश किया जाता है।

इस प्रकार प्रथमस्थल में प्रतिज्ञा कथन को सूचित करने वाला एक सूत्र पूर्ण हुआ।

अब मिथ्यादृष्टि गुणस्थानवर्ती जीवों का क्षेत्र बतलाने हेतु सूत्र का अवतार होता है—

सूत्रार्थ —

ओघनिर्देश की अपेक्षा मिथ्यादृष्टि जीव कितने क्षेत्र में रहते हैं ? सर्वलोक में रहते हैं।।२।।

हिन्दी टीका — इस सूत्र में 'लोक में' ऐसा कहने से सात राजू के घनप्रमाण लोक का ग्रहण करना चाहिए। इसका अर्थ यह है—

“लोगो णाम सव्वागासमज्झत्थो चोद्दसरज्जुआयामो दोसु वि दिसासु मूलद्धतिणिण-चउब्भाग-
चरिमेसु सत्तेक्कपंचेक्करज्जुरुंदो सव्वत्थ सत्तरज्जुबाहल्लो वड्ढिहाणीहि, ट्ठिददोपेरंतो, चोद्दसरज्जुआयदरज्जु-
वग्गमुहलोगणालिगब्भो। एसो पिंडिज्जमाणो सत्तरज्जुघणपमाणो होदि”।”

लोगो अकट्टिमो खलु, अणाइणिहणो सहावणिव्वत्तो।

जीवाजीवेहि फुडो, णिच्चो तलरुक्खसंठाणो”।।

कश्चिदाशंकते — असंख्यातप्रदेशिनि लोके अनन्तसंख्याजीवाः कथं तिष्ठन्तीति चेत्?

तस्य परिहारः क्रियते — “अवगेज्झमाणजीवाजीवसत्तण्णहाणुववत्तीदो अवगाहण धम्मिओ लोगागासो
त्ति इच्छिदव्वो खीरकुंभस्स मधुकुंभो व्व”।” यथा मधुभृते कुंभे तत्प्रमाणदुग्धे प्रक्षिप्ते सति समस्तमपि
दुग्धं तस्मिन्नेव सम्माति एतदवगाहनशक्तिस्तत्र दृश्यते तथैव असंख्यातप्रदेशिनि लोकाकाशे अपि अनन्ताः
जीवाः अनन्तानन्तपुद्गलाश्चापि सम्मान्ति।

इतो विस्तरः — सर्वजीवानामवस्था त्रिविधा भवति-स्वस्थानसमुद्घात-उपपादभेदेन। तत्र स्वस्थानं
द्विविधं-स्वस्थानस्वस्थानं विहारवत्स्वस्थानं चेति। तत्र स्वात्मनः उत्पन्नग्रामे नगरे अरण्ये वा शयन-
निषीदन-चंद्रक्रमणादिव्यापारयुक्तावस्थानं स्वस्थानस्वस्थाननाम। स्वात्मनः उत्पन्नग्रामादीन् विहाय अन्यत्र

जो सर्व आकाश के मध्यभाग में स्थित है, चौदह राजु आयाम वाला है, दोनों दिशाओं के अर्थात् पूर्व
और पश्चिम दिशा के मूल, अर्धभाग, त्रि-चतुर्भाग और चरमभाग में यथाक्रम से सात, एक, पाँच और एक
राजु विस्तार वाला है तथा सर्वत्र सात राजु मोटा है, वृद्धि और हानि के द्वारा जिसके दोनों प्रान्तभाग स्थित हैं,
चौदहराजु लम्बी एक राजु के वर्गप्रमाण मुखवाली लोकनाली जिसके गर्भ में है, ऐसा यह पिंडरूप किया गया
लोक सात राजु के घनप्रमाण अर्थात् ७×७×७= ३४३ राजु है।

गाथार्थ — यह लोक निश्चय से अकृत्रिम है, अनादिनिधन है, स्वभाव से निर्मित है, जीव और अजीव
द्रव्यों से व्याप्त है, नित्य है तथा तालवृक्ष के आकार वाला है।।

यहाँ कोई शंका करता है कि असंख्यात प्रदेश वाले लोक में अनन्त संख्या वाले जीव कैसे रह सकते हैं ?
इसका समाधान करते हैं कि अवगाह्यमान जीव और अजीव द्रव्यों की सत्ता अन्यथा न बन सकने से
क्षीरकुंभ का मधुकुंभ के समान अवगाहनधर्म वाला लोकाकाश है। जैसे क्षीरकुंभ का मधुकुम्भ में अवगाहन
हो जाता है अर्थात् मधु से भरे हुए कलश में तत्प्रमाण वाले दूध से भरे हुए कलश का दूध डाल दिया जाए,
तो समस्त दूध उसी में समा जाता है, ऐसी अवगाहनाशक्ति देखी जाती है। उसी के समान आकाश की भी ऐसी
अवगाहनाशक्ति है कि असंख्य प्रदेशी होते हुए भी उसमें अनन्त जीव और अनंतानंत पुद्गलों का अवगाहन हो
जाता है।

इसका विस्तार करते हैं — समस्त जीवों की अवस्था तीन प्रकार की होती हैं — स्वस्थान अवस्था,
समुद्घात अवस्था और उपपाद अवस्था। उनमें से स्वस्थान के दो भेद हैं — स्वस्थानस्वस्थान और
विहारवत्स्वस्थान। उनमें से अपने उत्पन्न होने के ग्राम में, नगर में अथवा अरण्य में सोना, बैठना, चलना
आदि व्यापार से युक्त होकर रहने का नाम स्वस्थानस्वस्थान है। अपने उत्पन्न होने के ग्राम, नगर अथवा
अरण्य आदि को छोड़कर अन्यत्र शयन, निषीदन और परिभ्रमण आदि व्यापार — क्रिया से युक्त होकर रहने

१. षट्खण्डागम पु. ४ (धवला टीका समन्वित) पृ. २०। २. षट्खण्डागम पु. ४ (धवला टीका समन्वित) पृ. ११।

३. षट्खण्डागम पु. ४ (धवला टीका समन्वित) पृ. २३।

शयननिषीदन-चक्रमणादिव्यापारेणावस्थानं विहारवत्स्वस्थाननाम।

समुद्घातः सप्तविधः-उक्तं च—

वेदनकषायवेउव्वियओ य मरणंतिओ समुग्घादो।

तेजाहारो छट्ठो, सत्तमओ केवलीणं तु॥

“तत्र वेदनासमुद्घातो नाम—अक्खि-शिरो-वेदणादीहि जीवाणमुक्कस्सेण सरीरतिगुणविप्फुज्जणं।

कसायसमुग्घादो णाम—कोध-भयादीहि सरीरतिगुणविप्फुज्जणं।

वेउव्वियसमुग्घादो णाम—देव-णेरइयाणं वेउव्वियसरीरोदइल्लाणं साभावियमागारं छट्ठिय अण्णागारेणच्छणं।

अथवा—“एकत्वपृथक्त्वनानविध-विक्रियशरीरवाक्प्रचार-प्रहरणादिविक्रियाप्रयोजनो विक्रियिकसमुद्घातः१।”

मारणंतियसमुग्घादो णाम—अप्पणो वट्टमाणसरीरमछट्ठिय रिजुगईए वा जावुप्पज्जमाणखेतं ताव गंतूण सरीरतिगुणबाहल्लेण अण्णहा वा अंतोमुहुत्तमच्छणं।

कश्चिदाह—वेदनाकषायसमुद्घातौ मारणांतिकसमुद्घाते किन्नांतर्भवतः? नैतत्-मारणांतिकसमुद्घातः बद्धपरभवायुष्कानां एव भवति। वेदनाकषायसमुद्घातौ पुनः बद्धायुष्काणामबद्धायुष्काणां च भवतः। मारणांतिकसमुद्घातो निश्चयेन उत्पद्यमानदिशाभिमुखो भवति, न चैतरयोरेकदिशायां गमननियमः दशस्वपि दिशासु गमने प्रतिबद्धत्वात्। मारणांतिकसमुद्घातस्य आयामः उत्कृष्टेण आत्मनः उत्पद्यमानक्षेत्रपर्यवसानः,

का नाम विहारवत्स्वस्थान है।

समुद्घात सात प्रकार का होता है। कहा भी है—

गाथार्थ—वेदना, कषाय, वैक्रियिक, मारणांतिक, तैजस, आहारक और केवली ये सात समुद्घात हैं।

उनमें से नेत्रवेदना, शिरोवेदना आदि के द्वारा जीवों के प्रदेशों का उत्कृष्टतः शरीर से तिगुणे प्रमाण विसर्पण का नाम वेदनासमुद्घात है। क्रोध, भय आदि के द्वारा जीव के प्रदेशों का शरीर से तिगुणे प्रमाण प्रसर्पण का नाम कषाय समुद्घात है। वैक्रियिक शरीर के उदय वाले देव और नारकी जीवों का अपने स्वाभाविक आकार को छोड़कर अन्य आकार से रहने का नाम वैक्रियिक समुद्घात है।

अथवा एकत्व, पृथक्त्व आदि अनेक प्रकार की विक्रिया करके शरीर बना लेना, वचनों का प्रचार-प्रहरण—शस्त्र आदि विक्रिया ही है प्रयोजन जिसका, वह वैक्रियिक समुद्घात है।

अपने वर्तमान शरीर को नहीं छोड़कर ऋजुगति द्वारा अथवा विग्रहगति द्वारा आगे जिसमें उत्पन्न होना है, ऐसे क्षेत्र तक जाकर शरीर से तीन गुने विस्तार से अथवा अन्य प्रकार से अन्तर्मुहूर्त तक रहने का नाम मारणान्तिक समुद्घात है।

शंका—वेदनासमुद्घात और कषायसमुद्घात मारणान्तिक समुद्घात में अन्तर्भूत क्यों नहीं होते हैं?

समाधान—वेदना समुद्घात और कषायसमुद्घात का मारणान्तिक समुद्घात में अन्तर्भाव नहीं होता है, क्योंकि जिन्होंने परभव की आयु बांध ली है, ऐसे जीवों के ही मारणान्तिक समुद्घात होता है किन्तु वेदनासमुद्घात और कषायसमुद्घात, बद्धायुष्क जीवों के भी होते हैं और अबद्धायुष्क जीवों के भी होते हैं। मारणान्तिक समुद्घात निश्चय से आगे जहाँ उत्पन्न होना है, ऐसे क्षेत्र की दिशा के अभिमुख होता है किन्तु अन्य समुद्घातों के इस प्रकार एक दिशा में गमन का नियम नहीं है, क्योंकि उनका दर्शों दिशाओं में भी गमन पाया जाता है। मारणान्तिक समुद्घात की लम्बाई उत्कृष्टतः अपने उत्पद्यमान क्षेत्र के अन्त तक है किन्तु इतर

न चैतरयोः एष नियमोऽस्ति।

तेजोसरीरसमुग्धादो णाम — तेजइयसरीरविउवणं। तं दुविहं — णिस्सरणप्पयं अणिस्सरणप्पयं चेदि। तत्थ जं तं णिस्सरणप्पयं तेजइयसरीरविउवणं तं पि दुविहं, पसत्थमप्पसत्थं चेदि।

तत्थ अप्पसत्थं बारहजोयणाघायं णवजोयणावित्थारं सूचिअंगुलस्स संखेज्जदिभागबाहल्लं जासवणकुसुमसंकासं भूमिपव्वदादि-दहणक्खमं, पडिवक्खरहियं रोसिंधणं वामंसप्पभवं इच्छियखेत्तमेत्तविसप्पणं। जं तं पसत्थं तं पि एरिसं चेव, णवरि हंसधवलं दक्खिणंससंभवं अणुकं पाणिमिन्तं मारि-रोगादिपसमणक्खमं। जं तमणिस्सरणप्पयं तेजइयसरीरं तेणेत्थ अणाधियारो।

आहारसमुग्धादो णाम पत्तिङ्गीणं महारिणीणं होदि। तं च हत्थुस्सेधं हंसधवलं सव्वंगसुंदरं खणमेत्तेण अणेयजोयणलक्ख गमणक्खमं अप्पडिहयगमणं उत्तमंगसंभवं आणाकणिट्ठदाए असंजम्बहुलदाए च लद्धप्पसरूवं।

केवलिसमुग्धादो णाम — दंड-कवाड-पदर-लोगपूरणभेएण चउव्विहो। तत्थ दंडसमुग्धादो णाम — पुव्वसरीरबाहल्लेण तत्तिगुणबाहल्लेण वा सविकखंभादो सादिरेयतिगुणपरिट्ठएण केवलिजीवपदेसाणं दंडागारेण देसूणचोदसरज्जविसप्पणं। कवाडसमुग्धादो णाम-पुव्विल्लबाहल्लायामेण वादवल्यवदिरित्तसव्वखेत्तावूरणं। पदरसमुग्धादो णाम-केवलिजीवपदेसाणं वादवल्यरुद्धलोगखेत्तं मोत्तूण सव्वलोगावूरणं। लोगपूरण-समुग्धादो णाम-केवलिजीवपदेसाणं घणलोगमेत्ताणं सव्वलोगावूरणं।”

समुद्घातों का यह नियम नहीं है।

तैजस्क शरीर के विसर्पण का नाम तैजस्कशरीर समुद्घात है। वह दो प्रकार का होता है — निस्सरणात्मक और अनिस्सरणात्मक। उनमें जो निस्सरणात्मक तैजस्कशरीर विसर्पण है, वह भी दो प्रकार का है — प्रशस्ततैजस और अप्रशस्ततैजस। उनमें अप्रशस्तनिस्सरणात्मक तैजस्क शरीरसमुद्घात, बारहयोजन लम्बा, नौ योजन विस्तार वाला, सूच्यंगुल के संख्यातवें भाग मोटाई वाला, जपाकुसुम के सदृश लालवर्ण वाला, भूमि और पर्वतादि के जलाने में समर्थ, प्रतिपक्षरहित, रोषरूप ईधन वाला, बायें कंधे से उत्पन्न होने वाला और इच्छित क्षेत्रप्रमाण विसर्पण करने वाला होता है तथा जो प्रशस्त निस्सरणात्मक तैजस्कशरीर समुद्घात है, वह भी विस्तार आदि में तो अप्रशस्त तैजस के ही समान है, किन्तु इतनी विशेषता है कि वह हंस के समान धवलवर्ण वाला है, दाहिने कंधे से उत्पन्न होता है, प्राणियों की अनुकम्पा के निमित्त से उत्पन्न होता है और मारी रोग आदि के प्रशमन करने में समर्थ होता है। इनमें से जो अनिस्सरणात्मक तैजसशरीर समुद्घात है, उसका यहाँ पर अधिकार नहीं है।

जिनको ऋद्धि प्राप्त हुई है, ऐसे महर्षियों के आहारकसमुद्घात होता है। वह एक हाथ ऊँचा, हंस के समान धवलवर्ण वाला, सर्वांगसुन्दर, क्षणमात्र में कई लाख योजन गमन करने में समर्थ, अप्रतिहत गमन वाला, उत्तमांग अर्थात् मस्तक से उत्पन्न होने वाला तथा जो आज्ञा की अर्थात् श्रुतज्ञान की कनिष्ठता अर्थात् हीनता के होने पर और असंयम की बहुलता के होने पर जिसने अपना स्वरूप प्राप्त किया है, ऐसा है।

दंड, कपाट, प्रतर और लोकपूरण के भेद से केवलिसमुद्घात चार प्रकार का है। उनमें जिसकी अपने विष्कंभ से कुछ अधिक तिगुनी परिधि है, ऐसे पूर्व शरीर के बाहल्यरूप अथवा पूर्व शरीर से तिगुने बाहल्यरूप दंडाकार से केवली के जीवप्रदेशों का कुछ कम चौदह राजु फैलने का नाम दंडसमुद्घात है। दंडसमुद्घात में बताये गये बाहल्य और आयाम के द्वारा वातवलय से रहित संपूर्ण क्षेत्र के व्याप्त करने का

उपपादः एकविधः। सोऽपि उत्पन्नप्रथमसमये चैव भवति। तत्र ऋजुगत्या उत्पन्नानां क्षेत्रं बहुकं न लभ्यते, संकोचिताशेषजीवप्रदेशात्। विग्रहस्त्रिविधः—पाणिमुक्ता, लांगलिका, गोमूत्रिका चेति। तत्र पाणिमुक्ता एकविग्रहा। विग्रहः वक्रः कुटिलः इति एकार्थः। लांगलिका द्विविग्रहा। गोमूत्रिका त्रिविग्रहा।

तत्र मारणान्तिकेन विना विग्रहगत्या उत्पन्नानां ऋजुगत्या उत्पन्नप्रथमसमयावगाहनया समाना चैवावगाहना भवति। एतद्विशेषः—द्वयोरवगाहनयोः संस्थाने समानत्वनियमो नास्ति। कुतः? आनुपूर्वी—संस्थाननामकर्माभ्यां जनितसंस्थानानामेकत्वविरोधात्। अयमस्यार्थः—विग्रहगतौ जीवस्य आकारं आनुपूर्विनामकर्मादयनिमित्तं, तत्र संस्थाननामकर्मादयाभावात्। किन्तु ऋजुगतौ आनुपूर्विनामकर्मादयो नास्ति, आनुपूर्विनामकर्मादयस्तु कार्मणकाययोगिविग्रहगतौ एव भवति। अत्र ऋजुगतौ औदारिकमिश्र-वैक्रियिकमिश्रकाययोगयोः एव सद्भावात्।

मारणान्तिकसमुद्घातं कृत्वा विग्रहगत्या उत्पन्नानां प्रथमसमये असंख्यातयोजनमात्रा अवगाहना भवति, पूर्वं प्रसारित एक-द्वि-त्रिदण्डानां प्रथमसमये उपसंहाराभावात्।

एवं स्वस्थानस्य द्वौ भेदौ, समुद्घातस्य सप्त भेदाः, उपपादश्चैकः एतैर्दशाभिः विशेषणैः यथासंभवं विशेषितमिथ्यादृष्ट्यादि-चतुर्दशजीवसमासाणां क्षेत्रप्ररूपणां करिष्यामः।

नाम कपाट समुद्घात है। केवली भगवान के जीवप्रदेशों का वातवलय से रुके हुए लोकक्षेत्र को छोड़कर संपूर्ण लोक में व्याप्त होने का नाम प्रतरसमुद्घात है। घनलोकप्रमाण केवली भगवान के जीवप्रदेशों का सर्वलोक के व्याप्त करने को केवलिसमुद्घात कहते हैं।

उपपाद एक प्रकार का है और वह भी उत्पन्न होने के पहले समय में ही होता है। उपपाद में ऋजुगति से उत्पन्न हुए जीवों के क्षेत्र बहुत नहीं पाया जाता है क्योंकि इसमें जीव के समस्त प्रदेशों का संकोच हो जाता है। विग्रहगति तीन प्रकार की है—पाणिमुक्ता, लांगलिका और गोमूत्रिका। इनमें से पाणिमुक्ता गति एक विग्रहवाली होती है। विग्रह, वक्र और कुटिल ये सब एकार्थवाची नाम हैं। लांगलिका गति दो विग्रहवाली होती है और गोमूत्रिका गति तीन विग्रहवाली होती है। इनमें से मारणान्तिक समुद्घात के बिना विग्रहगति से उत्पन्न हुए जीवों के ऋजुगति से उत्पन्न हुए जीवों के प्रथम समय में होने वाली अवगाहना के समान ही अवगाहना होती है। विशेषता केवल इतनी है कि दोनों अवगाहनाओं के आकार में समानता का नियम नहीं है। ऐसा क्यों? क्योंकि आनुपूर्वी नामकर्म के उदय से उत्पन्न होने वाले और संस्थान नामकर्म के उदय से उत्पन्न होने वाले संस्थानों के एकत्व का विरोध है।

इसका अर्थ यह है कि विग्रहगति में जीव का जो आकार बनता है, वह आनुपूर्वी नामकर्म के उदय के निमित्त से होता है, क्योंकि वहाँ विग्रहगति में संस्थाननामकर्म के उदय का अभाव पाया जाता है किन्तु ऋजुगति में आनुपूर्वी नामकर्म का उदय नहीं रहता है। आनुपूर्वी नामकर्म का उदय कार्मणकाययोग वाली विग्रहगति में ही होता है। यहाँ ऋजुगति में औदारिकमिश्रकाययोग और वैक्रियिकमिश्रकाययोग का ही सद्भाव पाया जाता है।

मारणान्तिक समुद्घात को करके विग्रहगति में उत्पन्न जीवों के प्रथम समय में असंख्यात योजनमात्र की अवगाहना होती है क्योंकि पूर्व में प्रसारित—पहले फैलाये गये एक-दो और तीन दंडों का प्रथम समय में उपसंहार संकोच होता है।

इस प्रकार स्वस्थान के दो भेद, समुद्घात के सात भेद और एक उपपाद, इन दश विशेषणों से यथासंभव विशेषता को प्राप्त मिथ्यादृष्टि आदि चौदह गुणस्थानों के क्षेत्र का निरूपण करेंगे।

स्वस्थानस्वस्थान-वेदना-कषाय-मारणान्तिक-उपपादैः मिथ्यादृष्टयः कियत् क्षेत्रे? इति प्रश्ने सति-सर्वलोके इति ज्ञातव्यम्।

अत्र लोकस्य पंच भेदा ज्ञातव्या भवन्ति—

उक्तं च—“सामान्याधः-ऊर्ध्वतिर्यग्मनुष्यलोकान् पंच संस्थाप्यालापः क्रियते।” त्रिचत्वारिंशदधिकत्रयशत-घनरज्जुप्रमाणसर्वलोकः सामान्यलोकः कथ्यते। षण्णवत्यधिकएकशतघनरज्जुप्रमाणं लोकस्याधोभागः अधोलोकः उच्यते। सप्तचत्वारिंशदधिकएकशतघनरज्जुप्रमाणं लोकस्योर्ध्वभागः ऊर्ध्वलोकः गीयते। ऊर्ध्वाधोलोकयोर्मध्यस्थितः-पूर्वपश्चिमदिशोरेकरज्जुविष्कंभोत्तरदक्षिणदिशोः सप्तरज्जुआयामं एकलक्षयोजनोत्सेधं तिर्यग्लोकः मध्यलोको वा कथ्यते। सार्धद्वयद्वीपविस्तृतं-पंचचत्वारिंशल्लक्षयोजनविष्कंभ-एकलक्षयोजनोत्सेधं क्षेत्रं मनुष्यलोकः उच्यते।

अस्मिन् ग्रन्थे सर्वलोकेन सामान्यलोकः गृह्यते। द्वाभ्यां लोकाभ्यां ऊर्ध्वाधोलोकौ गृह्येते। त्रिलोकैः अधःऊर्ध्वतिर्यग्लोकाः, तथा च चतुर्भिर्लोकैः मनुष्यलोकं विहाय चत्वारो लोकाः गृह्यन्ते।

उपर्युक्त पंचराशयः कथं सर्वलोके कथ्यन्ते?

स्वस्थानस्वस्थानादिपंचराशयः अनन्ताः सन्ति अतः सर्वलोके भवन्ति। नानाजीवापेक्षया एतत्कथनं वर्तते। किंच, त्रसराशिः त्रसनाल्यामेव सर्वत्र पंचस्थावराः जीवा मिथ्यादृष्टय एव।

विहारवत्स्वस्थानमिथ्यादृष्टिजीवाः कियच्छेत्रे तिष्ठन्ति?

स्वस्थानस्वस्थान, वेदना समुद्घात, कषाय समुद्घात, मारणान्तिक समुद्घात और उपपाद की अपेक्षा मिथ्यादृष्टि जीव कितने क्षेत्र में रहते हैं ? ऐसा प्रश्न होने पर बताते हैं कि वे पूरे लोक में रहते हैं, ऐसा जानना चाहिए।

यहाँ लोक के पाँच भेद जानने योग्य हैं—

कहा भी है— सामान्य लोक, अधोलोक, ऊर्ध्वलोक, तिर्यक्लोक और मनुष्यलोक इन पाँचों को स्थापित करके आलाप कथन करते हैं—

तीन सौ तेतालीस घनराजुप्रमाण सर्वलोक को सामान्यलोक कहते हैं। एक सौ छ्यानवे घनराजुप्रमाण या चार राजु मोटे जगत्प्रतरप्रमाण लोक के अधोभाग को अधोलोक कहते हैं। एक सौ सैंतालीस घनराजु या तीन राजु मोटे जगत्प्रतरप्रमाण लोक के ऊर्ध्वभाग को ऊर्ध्वलोक कहते हैं। ऊर्ध्वलोक और अधोलोक के मध्य में स्थित, पूर्व-पश्चिम दिशा में एक राजु चौड़े, उत्तर-दक्षिण दिशा में सात राजु लम्बे और एक लाख योजन ऊँचे क्षेत्र को तिर्यक्लोक या मध्यलोक कहते हैं। ढाईद्वीपप्रमाण विस्तृत अर्थात् पैतालीस लाख योजन चौड़े और एक लाख योजन ऊँचे क्षेत्र को मनुष्यलोक कहते हैं।

इस ग्रंथ में सर्वलोक शब्द से सामान्य लोक का ग्रहण किया गया है। दो लोक कहने से ऊर्ध्वलोक और अधोलोक इन दो लोकों का ग्रहण किया जाता है। तीन लोकों का निर्देश होने पर अधोलोक, ऊर्ध्वलोक और तिर्यक्लोक का ग्रहण होता है तथा चार लोक कहने पर केवल मनुष्यलोक को छोड़कर शेष चारों लोकों का ग्रहण करना चाहिए।

प्रश्न— उपर्युक्त पाँचों राशियाँ सर्वलोक में कैसे कही गई हैं ?

उत्तर— स्वस्थानस्वस्थान आदि पाँचों राशियाँ अनन्त संख्या प्रमाण हैं अतः सर्वलोक में होती हैं। नाना जीवों की अपेक्षा यह कथन है, क्योंकि त्रस जीवों की राशियाँ तो त्रसनाली में ही रहती हैं तथा सम्पूर्ण लोक में सर्वत्र पंचस्थावर जीव मिथ्यादृष्टि ही रहते हैं।

विहारवत्स्वस्थान मिथ्यादृष्टि जीव कितने क्षेत्र में रहते हैं ? लोक के असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्र में

लोकस्यासंख्यातभागप्रमाणे क्षेत्रे तिष्ठन्ति। किंच, त्रसकायिक-अपर्याप्तराशिस्तु न विहरति, तत्र विहायोगतिनामकर्मोदयाभावात्।

“अत्र प्रकृते स्वयंप्रभनगेन्द्रपर्वतपरभागस्थितत्रसपर्याप्तराशिः प्रधानः, इतरकर्मभूमिजीवेभ्यः दीर्घायुष्काः बृहदवगाहनावन्तश्च। भोगभूमिषु पुनः विकलेन्द्रियाः न सन्ति। पंचेन्द्रिया अपि न सुष्ठु स्तोकाः, शुभ-कर्मोदयाधिकजीवानां बहूनामसंभवात्। स्वयंप्रभपर्वतपरभागस्थितजीवानां अवगाहना उत्कृष्टा इति ज्ञापनार्थं सूत्रमिदं —

संखो पुण बारह जोयणाणि गोम्ही भव तिकोसं तु।

भमरो जोयणमेगं, मच्छो पुण जोयणसहस्सो॥

एदाओ ओगाहणाओ घणांगुलपमाणेण कीरमाणे संखेज्जाणि घणांगुलाणि हवन्ति, तेण संखेज्ज-घणांगुलगुणारो विहारवदिसत्थाणरासिस्स ठविदो^१।”

अन्यच्च — विहारवत्स्वस्थाने न तिर्यक्क्षेत्रस्य प्रधानत्वं किन्तु देवक्षेत्रस्यैव। अतो इमे विहारवत्स्वस्थान-मिथ्यादृष्टयः “दोणहं लोगाणमसंखेज्जदिभागे^२।” द्वयोः ऊर्ध्वाधोलोकयोरसंख्यातभागप्रमाणे क्षेत्रे निवसन्ति। तेन तिर्यग्लोकस्य संख्यातभागे इति उक्तं। तद्यथा — “अट्ठाइज्जखेत्तादो विहारवदिसत्थाण-जीवखेत्तम-संखेज्जगुणं। कुदो? अट्ठाइज्जमि संखेज्जपमाणघणांगुलदंसणादो^३।”

वैक्रियिकसमुद्घातगतमिथ्यादृष्टयः कियत् क्षेत्रे तिष्ठन्ति?

रहते हैं। चूँकि त्रसकायिक अपर्याप्तराशि तो विहार करती नहीं है क्योंकि त्रसकायिक अपर्याप्तों में विहायोगति नामकर्म का उदय नहीं होता है।

प्रकृत में स्वयंप्रभनगेन्द्र पर्वत के परभाग में स्थित त्रसकायिक पर्याप्त जीवराशि प्रधान है, क्योंकि यह राशि इतर कर्मभूमिज जीवों की अपेक्षा दीर्घायु और बड़ी अवगाहना वाली है। भोगभूमि में तो विकलेन्द्रिय जीव नहीं होते हैं और वहाँ पर पंचेन्द्रिय जीव भी स्वल्प होते हैं क्योंकि शुभ कर्म के उदय की अधिकता वाले बहुत जीवों का होना असंभव है।

स्वयंप्रभ पर्वत के परभाग में स्थित जीवों की अवगाहना सबसे बड़ी होती है, इस बात का ज्ञान कराने के लिए यह गाथासूत्र है —

गाथार्थ — शंख नामक द्वीन्द्रिय जीव बारह योजन की लम्बी अवगाहना वाला होता है। गोम्ही नामक त्रीन्द्रिय जीव तीन कोस की लम्बी अवगाहना वाला होता है। भ्रमर नामक चतुरिन्द्रिय जैन्न एक योजन की लम्बी अवगाहना वाला होता है और महामत्स्य नामक पंचेन्द्रिय जीव एक हजार योजन की लम्बी अवगाहना वाला होता है। १२॥

योजनों और कोसों में कही गई इन अवगाहनाओं को घनांगुलप्रमाण से करने पर संख्यात घनांगुल होते हैं, इसलिये विहारवत्स्वस्थान राशि का गुणकार संख्यात घनांगुल स्थापित किया है।

अन्यत्र भी कहा है कि विहारवत्स्वस्थान में तिर्यक्क्षेत्र की प्रधानता नहीं है किन्तु देवक्षेत्र की ही प्रधानता समझना चाहिए। इसलिए ये विहारवत्स्वस्थान मिथ्यादृष्टि जीव दोनों लोकों के अर्थात् अधोलोक और ऊर्ध्वलोक के असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्र में रहते हैं इसीलिए तिर्यग्लोक के संख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्र में मिथ्यादृष्टि विहारवत्स्वस्थानराशि रहती है, ऐसा कहा है।

वह इस प्रकार है — विहारवत्स्वस्थान जीवों का क्षेत्र ढाईद्वीप से असंख्यातगुणा है। कैसे ?

१. षट्खण्डागम पु. ४ (धवला टीका समन्वित) पृ. ३३। २. षट्खण्डागम पु. ४ (धवला टीका समन्वित) पृ. ३२। ३. षट्खण्डागम पु. ४ (धवला टीका समन्वित) पृ. ३७।

लोकस्य असंख्यातभागे, द्वयोः ऊर्ध्वाधोलोकयोः असंख्यातभागे, तिर्यग्लोकस्य संख्यातभागे, सार्धद्वय-
द्वीपेभ्यः असंख्यातगुणे क्षेत्रे निवसन्ति।

मिथ्यादृष्टिजीवानां त्रीणि विशेषणानि न संभवन्ति, तत्कारणसंयमादिगुणाणामभावात्। आहारकसमुद्घात-
तैजससमुद्घात-केवलिसमुद्घाताः न संभवन्ति इति ज्ञातव्यं भवति।

मिथ्यादृष्टीनां स्वस्थानादयः सप्त विशेषाः सूत्रेण अनुद्दिष्टाः पुनः कथं अत्र गृहीताः?

“आइरियपरंपरागदुवदेसादो। किं च ‘मिच्छादिद्वी’ इति सामण्यवयणेण एदे सत्त वि मिच्छाद्विद्विसेसा
सूचिदा चेव, एदव्वदिरित्तमिच्छाद्विद्वीणमभावादो। सेस चत्तारि वि लोगा सुत्तेण सूचिदा चेव। सेस चदुण्हं
लोगाणं लोगपुधभूदानमणुवलंभादो। तम्हा सुत्तसंबद्धमेवेदि वक्खाणमिदि”।

एवं द्वितीयस्थले मिथ्यादृष्टिजीवानां क्षेत्रनिरूपणत्वेन एकं सूत्रं गतम्।

अधुना सासादनादिद्वादशगुणस्थानवर्तिनां क्षेत्रनिरूपणाय सूत्रावतारः क्रियते —

**सासणसम्माइद्विप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि त्ति केवडि खेत्ते? लोगस्स
असंखेज्जदिभाए।।३।।**

क्योंकि, ढाई द्वीप में संख्यातप्रमाण घनांगुल ही देखे जाते हैं।

वैक्रियिक समुद्घात को प्राप्त हुए मिथ्यादृष्टि जीव कितने क्षेत्र में रहते हैं ? सर्वलोक के असंख्यातवें
भागप्रमाण क्षेत्र में, ऊर्ध्वलोक और अधोलोक के असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्र में, तिर्यग्लोक के संख्यातवें
भागप्रमाण क्षेत्र में तथा अढाई द्वीप से असंख्यातगुणे क्षेत्र में रहते हैं।

मिथ्यादृष्टि जीवराशि के शेष तीन विशेषण अर्थात् आहारक समुद्घात तैजससमुद्घात और केवलिसमुद्घात संभव नहीं है, क्योंकि इनके कारणभूत संसमादि गुणों का मिथ्यादृष्टि के अभाव है।

आहारक समुद्घात, तैजससमुद्घात और केवलिसमुद्घात संभव नहीं हैं, ऐसा जानना चाहिए।

शंका — स्वस्थानादि सात विशेषण सूत्र में नहीं कहे गए हैं, फिर भी वे मिथ्यादृष्टि जीव के पाये जाते हैं, यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान — मिथ्यादृष्टि जीव के स्वस्थान आदि सात विशेषण पाये जाते हैं, यह बात आचार्य परम्परा से आये हुए उपदेश से जानी जाती है।

दूसरी बात यह है कि सूत्र में आये हुए ‘मिथ्यादृष्टि’ इस सामान्य वचन से स्वस्थान आदि सात विशेषण भी मिथ्यादृष्टि के विशेष हैं, यह सूचित हो ही जाता है क्योंकि इनको छोड़कर मिथ्यादृष्टि जीव नहीं पाये जाते हैं। इसी प्रकार घनलोक के अतिरिक्त ऊर्ध्वलोक, अधोलोक, तिर्यग्लोक और अढाईद्वीपसम्बन्धी लोक, ये चार लोक भी सूत्र से सूचित हो ही जाते हैं, क्योंकि घनलोक से पृथग्भूत उपर्युक्त शेष चार लोक नहीं पाये जाते हैं इसलिए स्वस्थानस्वस्थान राशि आदि का व्याख्यान सूत्र से संबद्ध ही है।

इस प्रकार द्वितीय स्थल में मिथ्यादृष्टि जीवों का क्षेत्र निरूपण करने वाला एक सूत्र पूर्ण हुआ। अब सासादन आदि बारह गुणस्थानवर्ती जीवों का क्षेत्र बतलाने के लिए सूत्र का अवतार करते हैं —

सूत्रार्थ —

सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थान से लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थान के जीव कितने क्षेत्र में रहते हैं ? लोक के असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्र में रहते हैं ।।३।।

सूत्रं सुगमं। यद्यपि अत्र प्रभृतिशब्देन त्रयोदश गुणस्थानानि संगृह्यन्ते तथापि अत्र सयोगिकेवलिनानां गुणस्थानं न गृह्यते, अग्रे एषां सूत्रस्य दर्शनात्। सासादनसम्यग्दृष्टि-सम्यग्मिथ्यादृष्टि-असंयतसम्यग्दृष्टयः स्वस्थानस्वस्थान-विहारवत्स्वस्थान-वेदना-कषाय-वैक्रियिकसमुद्घातपरिणताः कियत्क्षेत्रे तिष्ठन्ति? लोकस्य असंख्यातभागे, त्रयाणां लोकानामसंख्यातभागे, सार्धद्वयद्वीपात् असंख्यातगुणे क्षेत्रे तिष्ठन्ति। एतेषां त्रयाणां गुणस्थानानां मध्ये अत्र सौधर्मैशानराशिः प्रधानः। एतेषामवगाहना सप्तहस्तोत्सेधा। अंगुलगणनया अष्टषष्टिसदुत्सेधांगुलप्रमाणा, एतस्य दशतालविष्कंभा।

कुतः?

यतो देवमनुष्यनारकाणां उत्सेधः दश-नव-अष्टतालप्रमाणेन भणितः।

मारणान्तिकसमुद्घात-उपपादगतसासादनसम्यग्दृष्टि-असंयतसम्यग्दृष्टीनामेवमेव कथनं कर्तव्यम्। यः कश्चिद् विशेषः स धवलाटीकायां द्रष्टव्यः।

असंयतसम्यग्दृष्टिगुणस्थानसंबन्धि-उपपादेषु देवाः प्रधानाः। तथा असंयतगुणस्थानसंबन्धि-मारणान्तिक-समुद्घातेषु तिर्यञ्चः प्रधानाः। सम्यग्मिथ्यादृष्टिगुणस्थानेषु मारणान्तिक-उपपादौ न स्तः, अस्मिन् गुणस्थाने अनयोर्द्वयोः विरोधात्।

एवमेव संयतासंयतानां क्षेत्रं ज्ञातव्यं। अस्ति विशेषः-संयतासंयतानां उपपादो नास्ति, अपर्याप्तकाले संयमासंयमाभावात्।

हिन्दी टीका — सूत्र का अर्थ सुगम है। सूत्र का अभिप्राय यह है कि यद्यपि यहाँ प्रभृति शब्द से तेरहों गुणस्थानों का संग्रह हो जाता है, फिर भी यहाँ पर सयोगिकेवली गुणस्थान का ग्रहण नहीं करना चाहिए, क्योंकि आगे कहा जाने वाला इसका सूत्र देखा जाता है।

सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीव स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय और वैक्रियिकसमुद्घात से परिणतजीव कितने क्षेत्र में रहते हैं? लोक के असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्र में, ऊर्ध्वलोक आदि तीन लोकों के असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्र में और अढ़ाई द्वीप से असंख्यातगुणे क्षेत्र में रहते हैं।

इन तीन गुणस्थानों में सौधर्म और ऐशानकल्पसंबन्धी देवराशि प्रधान है। उनकी अवगाहना सात हाथ उत्सेधरूप है और अंगुल की अपेक्षा गणना करने पर एक सौ अड़सठ अंगुलप्रमाण है। इसके दशवें भागप्रमाण उस अवगाहना का विष्कंभ है।

शंका — यहाँ पर उत्सेध के दशवें भागप्रमाण विष्कंभ क्यों लिया है?

समाधान — चूंकि देव, मनुष्य और नारकियों का उत्सेध दश, नौ और आठ ताल के प्रमाण से कहा गया है, इसलिये यहाँ पर उत्सेध के दशवें भागप्रमाण विष्कंभ लिया है।

मारणान्तिक समुद्घात वाले, उपपाद जन्म को प्राप्त सासादनसम्यग्दृष्टि जीव एवं असंयतसम्यग्दृष्टि जीवों का कथन भी इसी प्रकार करना चाहिए। इनमें जो कुछ विशेषता है, उसे धवला टीका में देखना चाहिए।

असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसम्बन्धी उपपाद जन्म लेने वाले जीवों में देवों की प्रज्ञा है तथा असंयतगुणस्थानसम्बन्धी मारणान्तिक समुद्घात वाले जीवों में तिर्यच जीव प्रधान हैं। सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थानों में मारणान्तिक समुद्घात वाले और उपपाद जन्म वाले नहीं होते हैं, क्योंकि इस गुणस्थान में इन दोनों का विरोध पाया जाता है।

इसी प्रकार संयतासंयत गुणस्थानवर्ती जीवों का क्षेत्र जानना चाहिए। किंचित् विशेष यह है कि संयतासंयत जीवों का उपपाद जन्म नहीं है, क्योंकि अपर्याप्त काल में संयमासंयम का अभाव पाया जाता है।

संयतासंयतानां वैक्रियिकसमुद्घातः कथं संभवति?

नैतत्, विष्णुकुमारादिषु विक्रियात्मकस्य औदारिकशरीरस्य दर्शनात्। एषु पंचमगुणस्थानवर्तिषु मारणान्तिकसमुद्घातगतजीवाः ओघसंयतासंयतराशेः असंख्यातभागप्रमाणाः सन्ति।

प्रमत्तसंयतगुणस्थानादादाय अयोगिकेवल्लिगुणस्थानपर्यन्तानां जीवानां अवगाहना जघन्या सार्धत्रिरलिप्रमाणा, उत्कृष्टाश्च पंचविंशत्यधिकपंचशतधनुःप्रमाणा। इमे द्वे अपि अवगाहने भरतैरावतक्षेत्रयोरेव, विदेहेषु पंचशतधनुषां उत्सेधस्य नियमात्। अत्र विदेहक्षेत्रस्थसंयताः प्रधानाः सन्ति।

आहारकशरीरस्य उत्सेधः एकरत्निप्रमाणोऽस्ति, तथा उत्सेधस्य दशमभागप्रमाणविष्कंभोऽस्ति, शरीरस्यास्य दिव्यस्वरूपत्वात्।

इमे संयतादयः चतुर्लोकस्य असंख्यातभागक्षेत्रे तिष्ठन्ति, तथा मानुषक्षेत्रस्य संख्यातभागप्रमाणे क्षेत्रे निवसन्ति। सर्वे संयताः अष्टकोटि-नवनवतिलक्ष-नवनवतिसहस्र-नवशत-सप्तनवतिप्रमाणाः सन्ति।

एषां संयतानां मारणान्तिकक्षेत्रं मानुषलोकस्य असंख्यातगुणमेव सिद्ध्यति। अत्र स्वस्थानस्वस्थान-विहारवत्स्वस्थान-वेदना-कषाय-वैक्रियिक-आहारकमारणान्तिकसमुद्घातगतजीवानां क्षेत्रमुक्तं।

तैजससमुद्घातस्य नवयोजनप्रमाणविष्कंभ-द्वादशयोजनप्रमाणायामक्षेत्रस्य अंगुलानां परस्परं गुणयित्वा सूच्यंगुलस्य संख्यातभागप्रमाणबाहल्येन गुणिते सति तैजससमुद्घातस्य क्षेत्रं भवति।

स्वस्थानस्वस्थान-विहारवत्स्वस्थानपरिणताः अप्रमत्तसंयताः कियत् क्षेत्रे सन्ति?

शंका — संयतासंयत जीवों के वैक्रियिक समुद्घात कैसे संभव हो सकता है ?

समाधान — यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि विष्णुकुमार आदि मुनियों के विक्रियात्मक औदारिकशरीर देखा जाता है।

संयतासंयतों में भी मारणान्तिक समुद्घात को प्राप्त जीवराशि ओघसंयतासंयत राशि के असंख्यातवें भागप्रमाण होती है। प्रमत्तसंयत गुणस्थान से लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तक जीवों की जघन्य अवगाहना साढ़े तीन रत्निप्रमाण है और उत्कृष्ट अवगाहना पाँच सौ पचीस धनुष है। ये दोनों ही अवगाहनाएँ भरतऔर ऐरावत क्षेत्र में ही होती हैं और विदेहक्षेत्र में पाँच सौ धनुष के उत्सेध का नियम है। यहाँ विदेहक्षेत्र के संयतों की प्रधानता नहीं है।

आहारक शरीर का उत्सेध एक अरत्निप्रमाण है तथा उत्सेध के दशवें भागप्रमाण उसका विष्कंभ है, क्योंकि यह शरीर दिव्यस्वरूप है।

ये संयतादि चार लोकों (सामान्य आदि)के असंख्यातवें भाग क्षेत्र में रहते हैं तथा मानुषक्षेत्र के संख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्र में रहते हैं। सभी संयत कुल मिलाकर आठ करोड़ नित्यानवे लाख नित्यानवे हजार नौ सौ सत्तानवे प्रमाण हैं, अर्थात् तीन कम नौ करोड़ (८९९९९९९७) मुनिराजों की संख्या पूरे ढाईद्वीप में मानी गई है।

इन संयतों का मारणान्तिक क्षेत्र मानुषलोक का असंख्यातगुणा ही सिद्ध होता है। यहाँ स्वस्थान-स्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय, वैक्रियिक, आहारक और मारणान्तिक समुद्घात को प्राप्त जीवों का क्षेत्र कहा गया है।

तैजस समुद्घात के नौ योजनप्रमाण विष्कंभ और बारह योजनप्रमाण आयाम क्षेत्र के लिए हुए अंगुलों को परस्पर में गुणित करके सूच्यंगुल के संख्यातवें भाग प्रमाण बाहल्य से गुणित करने पर तैजस समुद्घात का क्षेत्र होता है।

स्वस्थानस्वस्थान और विहारवत्स्वस्थानरूप से परिणत अप्रमत्तसंयत जीव कितने क्षेत्र में रहते हैं?

सामान्यलोकादिचतुर्लोकानां असंख्यातभागप्रमाणक्षेत्रे, मानुषक्षेत्रस्य संख्यातभागप्रमाणक्षेत्रे च तिष्ठन्ति।
उपशमश्रेण्यारोहकाः स्वस्थानस्वस्थान-मारणान्तिकसमुद्घातगता मुनयः स्व-स्वस्थानप्रमत्त-
संयतसमानाः। क्षपकाः अयोगिकेवलिनश्च स्वस्थानस्वस्थान गताः प्रमत्तसंयतस्वस्थान-स्वस्थानसमानाः।
ममेदंभावविरहितानां उपशामक-क्षपकानां स्वस्थानस्वस्थानपदं कथं संभवति?

नैष दोषः, एषु गुणस्थानेषु ममेदं भावो वर्तते तेषु तथा ग्रहणात्। अत्र पुनः अवस्थानमात्रग्रहणमस्ति।^१
तात्पर्यमेतत्—अत्र सयोगिकेवलिंगुणस्थानमंतरेण सासादनादिद्वादशगुणस्थानवर्तिनां केवलिसमुद्घातं
विहाय नवपदानि व्याख्यातानि भवन्ति।

एवं तृतीयस्थले सासादनादिजीवानां क्षेत्रनिरूपणत्वेन एकं सूत्रं गतम्।

संप्रति सयोगिकेवलिनं क्षेत्रनिरूपणाय सूत्रमवतरति—

**सयोगिकेवली केवडि खेत्ते? लोगस्स असंखेज्जदिभागे, असंखेज्जेसु
वा भागेसु, सव्वलोगे वा॥४॥**

सूत्रस्यार्थः सुगमः।

अत्र सयोगिकेवलिनः स्वस्थानस्वस्थान-विहारवत्स्वस्थानक्षेत्रं प्रमत्तसंयतानां स्वस्थानस्वस्थान-

सामान्य लोक आदि चार लोकों के असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्र में रहते हैं और मानुषक्षेत्र के संख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्र में रहते हैं। मारणान्तिक समुद्घात को प्राप्त हुए अप्रमत्तसंयतों का क्षेत्र मारणान्तिक समुद्घात को प्राप्त हुए प्रमत्तसंयतों के क्षेत्र के समान होता है। उपशम श्रेणी के चारों गुणस्थानवर्ती उपशामक जीव स्वस्थानस्वस्थान और मारणान्तिक समुद्घात इन दोनों पदों में स्वस्थानस्वस्थान और मारणान्तिक समुद्घातगत प्रमत्तसंयतों के समान होते हैं। क्षपकश्रेणी के चार गुणस्थानवर्ती क्षपक और अयोगिकेवली जीवों का स्वस्थान स्वस्थान प्रमत्तसंयतों के स्वस्थानस्वस्थान के समान होता है।

शंका—यह मेरा है, इस प्रकार के भाव से रहित क्षपक और उपशामक जीवों के स्वस्थानस्वस्थान नाम का पद कैसे संभव है ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि जिन गुणस्थानों में 'यह मेरा है' इस प्रकार का भाव पाया जाता है, वहाँ वैसा ग्रहण किया है परन्तु यहाँ पर अर्थात् क्षपक और उपशामक गुणस्थानों में अवस्थानमात्र का ग्रहण किया गया है।

तात्पर्य यह है कि यहाँ सयोगिकेवली गुणस्थान के अतिरिक्त सासादन आदि बारह गुणस्थानवर्ती जीवों के केवली समुद्घात को छोड़कर नवपदों का व्याख्यान किया गया है।

इस प्रकार तृतीय स्थल में सासादन आदि जीवों का क्षेत्र निरूपण करने वाला एक सूत्र पूर्ण हुआ।

अब सयोगिकेवली अर्हंत भगवन्तों का क्षेत्र निरूपण करने के लिए सूत्र अवतरित होता है—

सूत्रार्थ—

सयोगिकेवली जीव कितने क्षेत्र में रहते हैं? लोक के असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्र में, अथवा लोक के असंख्यात बहुभागप्रमाण क्षेत्र में अथवा सर्वलोक में रहते हैं॥४॥

हिन्दी टीका—सूत्र का अर्थ सुगम है। यहाँ पर सयोगिकेवली का स्वस्थानस्वस्थान और विहारवत्स्वस्थान

विहारवत्स्वस्थानसदृशं वर्तते।

दण्डसमुद्घातगतकेवलिनः कियत् क्षेत्रे तिष्ठन्ति?

चतुर्णां लोकानां असंख्यातभागे, सार्धद्वयद्वीपात् असंख्यातगुणे च निवसन्ति।

कपाटगतकेवलिनः कियत् क्षेत्रे?

त्रयाणां लोकानामसंख्यातक्षेत्रे, तिर्यग्लोकस्य, संख्यातभागे सार्धद्वयद्वीपात् असंख्यातगुणे च। अत्र केवली भगवान् पूर्वाभिमुखो वा उत्तरामुखो वा यदि पल्यंकेन समुद्घातं करोति, तर्हि कपाटबाहल्यं षट्त्रिंशदंगुलानि भवन्ति। अथ यदि कायोत्सर्गेण कपाटं करोति, तर्हि द्वादशांगुलबाहल्यं कपाटं भवति।

प्रतरगतकेवलिनः कियत् क्षेत्रे?

लोकस्यासंख्यातभागेषु। तत्र लोकस्य असंख्यातभागं वातवलयरुद्धक्षेत्रं मुक्त्वा शेषबहुभागेषु निवसन्ति।

लोकपूरणगतकेवलिनो भगवन्तः कियत् क्षेत्रे?

सर्वलोके इति ज्ञातव्यम्। अत्रापि गणितेन विस्तरः धवलाटीकायां द्रष्टव्योऽस्ति।

अन्यत्रापि सरलभाषायां — “दण्डसमुद्घातं कायोत्सर्गेण स्थितश्चेत्-द्वादशांगुलप्रमाणसमवृत्तं मूलशरीरप्रमाणसमवृत्तं वा। उपविष्टश्चेत्-शरीरत्रिगुणबाहुल्यं वायूनलोकोदयं वा प्रथमसमये करोति। कपाटसमुद्घातं धनुःप्रमाणबाहुल्योदयं पूर्वाभिमुखश्चेत् दक्षिणोत्तरतः करोति। उत्तराभिमुखश्चेत् पूर्वापरतः आत्मप्रसर्पणं द्वितीयसमये करोति।.....प्रतरावस्थायां सयोगकेवली वातवलयत्रयादर्वागेव आत्मप्रदेशैर्निरंतरं

क्षेत्र प्रमत्तसंयतों के स्वस्थानस्वस्थान और विहारवत्स्वस्थान क्षेत्र के समान होता है। दण्डसमुद्घात को प्राप्त हुए केवलीजीव कितने क्षेत्र में रहते हैं? सामान्यलोक आदि चार लोकों के असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्र में और अढ़ाईद्वीपसंबंधी लोक से असंख्यातगुणे क्षेत्र में रहते हैं।

कपाटसमुद्घात को प्राप्त हुए केवली कितने क्षेत्र में रहते हैं? सामान्यलोक आदि तीन लोकों के असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्र में, तिर्यग्लोक के संख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्र में और अढ़ाईद्वीप से असंख्यातगुणे क्षेत्र में रहते हैं।

केवलीजिन पूर्वाभिमुख अथवा उत्तराभिमुख होकर समुद्घात को करते हुए यदि पल्यंकासन से समुद्घात को करते हैं तो कपाटक्षेत्र का बाहल्य छत्तीस अंगुल होता है और यदि कायोत्सर्ग से कपाटसमुद्घात करते हैं तो बारह अंगुलप्रमाण बाहल्य वाला कपाटसमुद्घात होता है।

प्रतरसमुद्घात को प्राप्त हुए केवली जिन कितने क्षेत्र में रहते हैं? लोक के असंख्यात बहुभागप्रमाण क्षेत्र में रहते हैं। लोक के असंख्यातवें भागप्रमाण वातवलय से रुके हुए क्षेत्र को छोड़कर लोक के शेष बहुभागों में रहते हैं।

लोकपूरण समुद्घात को प्राप्त केवली भगवान् कितने क्षेत्र में रहते हैं? सम्पूर्ण लोक में रहते हैं, ऐसा जानना चाहिए। यहाँ भी गणित के द्वारा उसका विस्तृत वर्णन धवला टीका में द्रष्टव्य है। अन्यत्र भी सरल भाषा में कहा है — समुद्घात करने वाले कायोत्सर्ग से स्थित हैं तो दण्ड समुद्घात को बारह अंगुलप्रमाण समवृत्त (गोलाकार) करेंगे अथवा मूल शरीरप्रमाण समवृत्त करेंगे और यदि वह बैठे हुए हैं तो प्रथम समय में शरीर से त्रिगुण बाहुल्य अथवा तीन वातवलय कम लोकप्रमाण करेंगे। कपाट समुद्घात को यदि पूर्वाभिमुख होकर करेंगे तो दक्षिण-उत्तर की ओर एक धनुषप्रमाण विस्तार होगा और उत्तराभिमुख होकर करेगा तो पूर्व-पश्चिम की ओर द्वितीय समय में आत्मप्रसर्पण करेंगे। इसका विशेष व्याख्यान संस्कृत महापुराण पंजिका में है। प्रतर

लोकं व्याप्नोति। लोकपूरणावस्थायां वातवलयत्रयमपि व्याप्नोति।

तेन सर्वलोकः क्षेत्रम्^१।''

तात्पर्यमेतत् — स्वस्थानस्वस्थान-विहारवत्स्वस्थान-केवलिसमुद्घातनामानि त्रीण्येव स्थानानि सयोगिकेवलिभगवतां संभवन्ति। किं च, केवलिसमुद्घातोऽपि सर्वेषां केवलानां नास्ति केषाञ्चित् केवलिनामेव इति ज्ञात्वा सर्वेभ्यः दशस्थानेभ्यः अनुत्तरं सिद्धस्थानमस्तीति ततः सिद्धपदप्राप्त्यर्थमेव पुरुषार्थो विधेयः अस्माभिर्मुमुक्षुजनैः।

एवं चतुर्थस्थले सयोगिकेवलिक्षेत्र-समुद्घातगतकेवलिक्षेत्रप्रतिपादनपरं एकं सूत्रं गतम्।

इति श्रीमद्भगवत्पुष्पदन्तभूतबलि-विरचितषट्खण्डागमग्रन्थस्य प्रथमखण्डे
तृतीयग्रन्थे श्रीभूतबलिसूरिकृतक्षेत्रानुगमनाम्नि तृतीयप्रकरणे धवला-
टीकादिनानाग्रन्थाधारेण गणिनीज्ञानमतीकृतसिद्धान्त-
चिन्तामणिटीकायां गुणस्थानेषु क्षेत्रप्ररूपकः
तृतीयो महाधिकारः समाप्तः।

की अपेक्षा लोक का असंख्यातभागप्रमाण क्षेत्र होता है। प्रतर अवस्था में सयोगिकेवली तीनों वातवलयों के नीचे ही आत्मप्रदेशों के द्वारा लोक को व्याप्त करते हैं। लोकपूरण अवस्था में तीनों वातवलयों को भी व्याप्त करते हैं अतः लोकपूरण अवस्था में सर्वलोक क्षेत्र है।

तात्पर्य यह है कि स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान और केवलिसमुद्घात नाम के तीन स्थान सयोगिकेवली भगवन्तों के होते हैं, क्योंकि केवली समुद्घात भी सभी केवलियों के नहीं होता है, किन्हीं-किन्हीं केवलियों के ही होता है, ऐसा जानकर सभी दश स्थानों से अनुत्तर सिद्धस्थान होता है इसलिए सिद्धपद की प्राप्ति हेतु ही हम सभी मुमुक्षुजनों को पुरुषार्थ करना चाहिए।

इस प्रकार चतुर्थस्थल में सयोगिकेवली भगवन्तों का क्षेत्र तथा समुद्घात अवस्था को प्राप्त केवलियों का क्षेत्र प्रतिपादन करने वाला एक सूत्र पूर्ण हुआ।

इस प्रकार श्रीमान् भगवत्पुष्पदन्त-भूतबली आचार्य विरचित षट्खण्डागम ग्रंथ
के प्रथम खंड में तृतीयग्रंथ में श्रीभूतबलीसूरिकृत क्षेत्रानुगम नाम के तृतीय
प्रकरण में धवला टीका आदि अन्य अनेक ग्रंथों के आधार से
गणिनी आर्थिका ज्ञानमतीकृत सिद्धान्तचिन्तामणि टीका में
गुणस्थानों में क्षेत्र की प्ररूपणा करने वाला
तृतीय महाधिकार समाप्त हुआ।



अथ चतुर्थो महाधिकारः

अथ क्षेत्रानुगमे चतुर्थ महाधिकारे मार्गणासुक्षेत्रप्ररूपणायां चतुर्दशाधिकाराः सन्ति। तत्र तावत् प्रथमतः चतुःस्थलैः द्वादशसूत्रैः गतिमार्गणानाम् प्रथमाधिकारः प्रारभ्यते। तत्र प्रथमस्थले नरकगतौ नारकाणां क्षेत्रप्ररूपणपरत्वेन “आदेसेण गदियाणुवादेण” इत्यादिसूत्रद्वयं। तदनु द्वितीयस्थले तिरश्चां गुणस्थानापेक्षया क्षेत्रकथनत्वेन “तिरिक्खगदीए” इत्यादि-सूत्रचतुष्टयं। ततः परं तृतीयस्थले मनुष्याणां गुणस्थानेषु क्षेत्रप्रतिपादनपरत्वेन “मणुसगदीए” इत्यादिसूत्रत्रयं। तत्पश्चात् चतुर्थस्थले देवेषु गुणस्थानापेक्षया क्षेत्रनिरूपणत्वेन “देवगदीए” इत्यादिसूत्रत्रयं कथ्यते इति समुदायपातनिका सूचिता भवति।

संप्रति नरकगतौ नारकाणां क्षेत्रनिरूपणाय सूत्रमवतरति —

आदेसेण गदियाणुवादेण णिरयगदीए णेरइएसु मिच्छाइट्टिप्पहुडि जाव असंजदसम्माइट्टि त्ति केवडि खेत्ते? लोगस्स असंखेज्जदिभागे।।५।।

सूत्रस्यार्थः सुगमः। अत्र सूत्रे अनुवादपदेन सूत्रस्याकर्तृत्वकथनफलं ज्ञातव्यं अस्यायमर्थः— श्रीभूतबलिसूरिः कथयति अस्य सूत्रार्थस्य वक्तारो जिनेन्द्रदेवा गणधरदेवा वा, नाहं, अहं तु केवलं अस्यानुवादमेव करिष्यामीति।

अथ चतुर्थ महाधिकार प्रारम्भ

अब क्षेत्रानुगम में चतुर्थ महाधिकार में मार्गणाओं के अन्तर्गत क्षेत्रप्ररूपणा में चौदह अधिकार हैं। उनमें सर्वप्रथम चार स्थलों में बारह सूत्रों के द्वारा गतिमार्गणा नाम का प्रथम अधिकार प्रारंभ होता है। उनमें से प्रथम स्थल में नरकगति में नारकी जीवों की क्षेत्रप्ररूपणा को बतलाने वाले “आदेसेण गदियाणुवादेण” इत्यादि दो सूत्र कहेंगे। उसके पश्चात् द्वितीय स्थल में तिर्यचों का गुणस्थान की अपेक्षा क्षेत्र कथन करने हेतु “तिरिक्खगदीए” इत्यादि चार सूत्र हैं। उसके आगे तृतीय स्थल में मनुष्यों का गुणस्थानों में क्षेत्र प्रतिपादन करने हेतु “मणुसगदीए” इत्यादि तीन सूत्र हैं। तत्पश्चात् चतुर्थस्थल में देवों का गुणस्थान की अपेक्षा क्षेत्रनिरूपण करने की मुख्यता वाले ‘देवगदीए’ इत्यादि तीन सूत्र कहेंगे। इस प्रकार अधिकार के प्रारंभ में सूत्रों की समुदायपातनिका हुई है।

अब नरकगति में नारकियों का क्षेत्र निरूपण करने के लिए सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ —

आदेश की अपेक्षा गत्यनुवाद से नरकगति में नारकियों में मिथ्यादृष्टि गुणस्थान से लेकर असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थान के जीव कितने क्षेत्र में रहते हैं? लोक के असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्र में रहते हैं ।।५।।

हिन्दी टीका — सूत्र का अर्थ सुगम है। यहाँ सूत्र में अनुवाद पद के ग्रहण करने का अर्थ सूत्र के अकर्तृकत्व का प्ररूपण करना है। इसका अर्थ यह है — श्रीभूतबली सूरि कहते हैं कि इस सूत्र के वक्ता — अर्थ के कहने वाले जिनेन्द्रदेव अथवा गणधरदेव हैं, न कि मैं। मैं तो केवल इसका अनुवाद ही करूँगा अर्थात् श्रीभूतबली आचार्य ने इस सूत्र की प्रामाणिकता बतलाई है कि साक्षात् जिनेन्द्र भगवान के मुख से निकले हुए ये वचन हम सभी के लिए ग्रहण करने योग्य हैं।

उक्तं च श्रीवीरसेनाचार्येण — “अणुवादग्रहणं सुतस्स अकट्टिवुत्तपरूवणफलं”।” अतो विस्तरः — स्वस्थानस्वस्थान-विहारवत्स्वस्थान-वेदना-कषाय-वैक्रियिकसमुद्घातगतनारकमिथ्यादृष्टिजीवाः कियत् क्षेत्रे निवसन्ति?

सामान्यलोकादिचतुर्लोकानामसंख्यातभागप्रमाणक्षेत्रे, सार्धद्वयद्वीपप्रमाणमानुषलोकस्य संख्यातगुणे क्षेत्रे च तिष्ठन्ति।

अत्र नारकाणां अवगाहना ज्ञातव्या भवति-प्रथमनरकपृथिव्यां प्रथमप्रस्तरे नारकाणामुत्सेधाः त्रयोहस्ताः। सप्तमपृथिव्यां पंचशतधनुःप्रमाणाः। अत्र उत्सेधाष्टमभागो विष्कंभोऽस्ति तेषामिति ज्ञातव्यं। अत्रावगाहनापेक्षया सप्तमपृथिवी प्रधाना, प्रथमपृथिवीअवगाहनातः सप्तमपृथिव्यावगाहनायाः संख्यातगुणत्वोपलम्भात्। द्रव्यं प्रति प्रथमपृथिवी प्रधाना, शेषद्वितीयादिपृथिवीद्रव्यात् प्रथमपृथिवीद्रव्यस्य असंख्यातगुणितोपलम्भात्।

स्वस्थानस्वस्थानराशिः मूलनारकराशेः संख्यातबहुभागप्रमाणास्ति। विहारवत्स्वस्थान-वेदना-कषाय-वैक्रियिकसमुद्घातगतनारकाशयो मूलराशेः संख्यातभागप्रमाणाः सन्ति। अत्रास्ति विशेषः — वेदनाकषाय-समुद्घातयोः अवगाहना सर्वत्र नवगुणा, वैक्रियिकसमुद्घाते अवगाहना च सर्वत्र संख्यातगुणा ज्ञातव्या। तथा च मारणान्तिकसमुद्घातगतजीवानां अत्र विग्रहगतौ रज्जु-असंख्यातभागप्रमाणा दीर्घता उपलभ्यते अतोऽस्मिन् समुद्घाते प्रथमपृथिवीद्रव्यं प्रधानं कर्तव्यम्।

एवमेव सासादनसम्यग्दृष्टिनारकाणां स्वस्थानस्वस्थानादयो ज्ञातव्याः। अस्ति विशेषस्तेषां उपपादो न वर्तते।

धवला टीका में श्रीवीरसेनाचार्य ने कहा है — “अनुवाद पद को ग्रहण करने का फल सूत्र के अकर्तृकत्व का प्ररूपण करना है।” इसी का विस्तार करते हैं —

स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात और वैक्रियिकसमुद्घात को प्राप्त हुए मिथ्यादृष्टि नारकी जीव कितने क्षेत्र में रहते हैं? सामान्यलोक आदि चार लोकों के असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्र में रहते हैं और अर्द्धद्वीपप्रमाण मानुषलोक से संख्यातगुणे क्षेत्र में रहते हैं। अब इसके अर्थ के प्ररूपण करने के लिए यहाँ पर नारकियों की अवगाहना कहते हैं।

सातवीं पृथिवी के नारकियों का उत्सेध पाँच सौ धनुष है। यहाँ नारकियों में उत्सेध के आठवें भाग-प्रमाण विष्कम्भ होता है, ऐसा जानना चाहिए। अवगाहना की अपेक्षा यहाँ सातवीं पृथिवी प्रधान है क्योंकि पहली पृथिवी की अवगाहना से सातवीं पृथिवी की अवगाहना संख्यातगुणी पाई जाती है तथा द्रव्यप्रमाण की अपेक्षा पहली पृथिवी प्रधान है, शेष छह पृथिवियों के द्रव्यप्रमाण से पहली पृथिवी का द्रव्य असंख्यातगुणा पाया जाता है।

स्वस्थानस्वस्थान राशि मूल नारकराशि के संख्यात बहुभाग है। विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात और वैक्रियिकसमुद्घात को प्राप्त राशियां मूलराशि के संख्यातवें भागप्रमाण हैं। इतनी विशेषता है कि वेदनासमुद्घात और कषायसमुद्घात में सर्वत्र अवगाहना को नौगुणी और वैक्रियिकसमुद्घात में अवगाहना को सर्वत्र संख्यातगुणी कर लेना चाहिए। मारणान्तिक समुद्घात से परिणत हुए जीव के यहाँ विग्रहगति में राजु के असंख्यातवें भागप्रमाण दीर्घता भी पाई जाती है इसलिए इस समुद्घात में प्रथम पृथिवी का द्रव्य प्रधान करना चाहिए।

इसी प्रकार सासादन सम्यग्दृष्टि नारकियों के भी स्वस्थानस्वस्थान आदि समझना चाहिए। इतनी विशेषता है कि उनके उपपाद नहीं पाया जाता है।

इत्थमेव सम्यग्मिथ्यादृष्टिनारकाणामपि स्वस्थानस्वस्थानादयोऽवगन्तव्याः तत्रापि मारणान्तिकसमुद्घातो नास्ति। असंयतसम्यग्दृष्टिनारकाणां स्वस्थानस्वस्थानादयः सासादननारकाणां स्वस्थानस्वस्थानादिवत्, अत्र विशेषः एषामुपपादोऽस्ति। मारणान्तिकसमुद्घातोपपादयोः सम्यग्दृष्टिनारकाः संख्याता एवोपलभ्यन्ते। संप्रति सप्तपृथिवीगतनारकाणां क्षेत्रप्ररूपणाय सूत्रावतारो भवति—

एवं सत्तसु पुढवीसु णेरइया॥६॥

अनेनैव प्रकारेण सप्तसु पृथिवीषु नारकाः लोकस्य असंख्यातभागप्रमाणे क्षेत्रे वसन्ति। इदं सूत्रं द्रव्यार्थिकनयमवलम्ब्य स्थितं। पर्यायार्थिकनयावलम्बनेन तु प्रथमपृथिवीगतनारकाणां प्ररूपणा ओघप्ररूपणा तुल्या अस्ति, किं स्वस्थानस्वस्थानादिपदापेक्षया द्वितीयादिपंचपृथिवीगतनारकाणां प्ररूपणासु असंयत-सम्यग्दृष्टीनामुपपादो नास्ति। तथा च सप्तमपृथिव्यां सासादनसम्यग्दृष्टिषु मारणान्तिकपदाभावो वर्तते, असंयतसम्यग्दृष्टीनां मारणान्तिकोपपादयोरभावोऽस्ति।

एवं प्रथमस्थले नारकाणां क्षेत्रकथनत्वेन सूत्रद्वयं गतम्।

संप्रति तिर्यग्गतौ मिथ्यादृष्टिजीवानां क्षेत्रप्रतिपादनाय सूत्रावतारो भवति—

तिरिक्खगदीए तिरिक्खेसु मिच्छादिट्ठी केवडि खेत्ते? सव्वलोए॥७॥

इसी प्रकार सम्यग्मिथ्यादृष्टि नारकियों के भी स्वस्थानस्वस्थान आदि जानना चाहिए। यहाँ इतनी विशेषता है कि इनके मारणान्तिक समुद्घात नहीं होता है। असंयतसम्यग्दृष्टि नारकियों के स्वस्थानस्वस्थान आदि सासादनसम्यग्दृष्टि नारकियों के स्वस्थानस्वस्थान आदि के समान हैं। यहाँ इतनी विशेषता है कि इनके उपपाद पाया जाता है। मारणान्तिक समुद्घात और उपपाद में सम्यग्दृष्टि नारकी संख्यात ही पाये जाते हैं।

अब सप्तमपृथिवी के नारकियों की क्षेत्रप्ररूपणा बताने हेतु सूत्र का अवतार होता है—

सूत्रार्थ—

इसी प्रकार सातों पृथिवियों में नारकी जीव लोक के असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्र में रहते हैं॥६॥

हिन्दी टीका—इसी उपर्युक्त प्रकार से सातों नरक पृथिवियों में नारकी जीव लोक के असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्र में निवास करते हैं। यह सूत्र द्रव्यार्थिक नय का अवलंबन लेकर स्थित है। पर्यायार्थिक नय का अवलम्बन करने पर तो पहली पृथिवी की प्ररूपणा नारकियों की ओघप्ररूपणा के तुल्य है क्योंकि पहली पृथिवी में सामान्यप्ररूपणा से सर्व गुणस्थानों की सर्वपदों की अपेक्षा समानता पाई जाती है किंतु स्वस्थान-स्वस्थान आदि पदों की अपेक्षा द्वितीयादि पाँच पृथिवियों की प्ररूपणा ओघप्ररूपणा के समान नहीं है क्योंकि उन पृथिवियों में असंयतसम्यग्दृष्टियों का उपपाद नहीं होता है। इसी प्रकार सातवीं पृथिवी की प्ररूपणा भी नारक सामान्य प्ररूपणा के तुल्य नहीं है क्योंकि सातवीं पृथिवी में सासादनसम्यग्दृष्टिसंबंधी मारणान्तिक पद का और असंयतसम्यग्दृष्टिसंबंधी मारणान्तिक और उपपाद पद का अभाव है।

इस प्रकार प्रथम स्थल में नारकियों का क्षेत्र कथन करने वाले दो सूत्र पूर्ण हुए।

अब तिर्यग्गति में मिथ्यादृष्टि जीवों का क्षेत्र प्रतिपादन करने के लिए सूत्र का अवतार होता है—

सूत्रार्थ—

तिर्यग्गति में तिर्य्चों में मिथ्यादृष्टि जीव कितने क्षेत्र में रहते हैं? सर्वलोकमें रहते हैं॥७॥

सूत्र सुगमं।

अत्र एष विशेषः—वैक्रियिकसमुद्घातगतजीवाः तिर्यग्लोकस्य असंख्यातभागे। किंच, तिर्यक्षु विक्रियमाणराशिः पल्योपमस्य असंख्यातभागमात्रघनांगुलैः गुणितश्रेणिमात्रः इति गुरुपदेशोऽस्ति।

सासादनादिसंयतासंयततिर्यञ्चः कियत् क्षेत्रे इति प्रतिपादनाय सूत्रमवतरति—

सासणसम्माइट्टिप्पहुडि जाव संजदासंजदा त्ति केवडि खेत्ते? लोगस्स असंखेज्जदिभागे।।८।।

सूत्रं सुगमं। स्वस्थानस्वस्थान-विहारवत्स्वस्थान-वेदना-कषाय-वैक्रियिकपदैः परिणतसासादन-सम्यग्दृष्टितिर्यञ्चः कियत् क्षेत्रे सन्ति? चतुर्लोकानामसंख्यातभागे, सार्धद्वयद्वीपादसंख्यातगुणे क्षेत्रे तिष्ठन्ति। अत्रास्ति विशेषः—वैक्रियिकसमुद्घातराशिः मूलराशेरसंख्यातभागः, तिर्यक्षु विक्रियमाणजीवानां प्रचुरं संभवाभावात्।

एवं सम्यग्मिथ्यादृष्टि-असंयतसम्यग्दृष्टि-संयतासंयतानां ज्ञातव्यं। उपपादगतसासादनतिर्यञ्चः चतुर्लोकस्यासंख्यातभागक्षेत्रे, सार्धद्वयद्वीपस्य असंख्यातगुणितक्षेत्रे निवसन्ति। उपपादपदे असंयतसम्यग्दृष्टयः तिर्यञ्चः संख्याताः एव। किं च यैः कैश्चित् मनुष्यैः सम्यग्दर्शनात् प्राक् तिर्यगायुःबन्धो कृतः तेषामेव तिर्यक्षूपपादो नान्येषां। सम्यग्मिथ्यादृष्टि-संयतासंयतानां उपपादो नास्ति।

हिन्दी टीका—सूत्र का अर्थ सुगम है। यहाँ विशेष यह है—

वैक्रियिकसमुद्घात को प्राप्त तिर्यच जीव तिर्यग्लोक के असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्र में रहते हैं क्योंकि तिर्यचों में विक्रिया करने वाली राशि पल्योपम के असंख्यातवें भागमात्र घनांगुलों से गुणित जागत्श्रेणीप्रमाण है, ऐसा गुरु का उपदेश है।

अब सासादन आदि संयतासंयत गुणस्थानपर्यन्त के तिर्यच जीव कितने क्षेत्र में रहते हैं ऐसा प्रतिपादन करने के लिए सूत्र अवतरित होता है—

सूत्रार्थ—

सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थान से लेकर संयतासंयत गुणस्थान तक के तिर्यच जीव कितने क्षेत्र में रहते हैं? लोक के असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्र में रहते हैं।।८।।

हिन्दी टीका—सूत्र का अर्थ सुगम है। स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात और वैक्रियिकसमुद्धारूप से परिणत सासादनसम्यग्दृष्टि तिर्यच जीव कितने क्षेत्र में रहते हैं? सामान्यलोक आदि चार लोकों के असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्र में और अर्द्धद्वीप से असंख्यातगुणे क्षेत्र में रहते हैं। इतनी विशेषता है कि वैक्रियिक समुद्घात को प्राप्त राशि मूलराशि के असंख्यातवें भागप्रमाण है क्योंकि तिर्यचों में विक्रिया करने वाले जीव प्रचुर मात्रा में संभव नहीं है।

इसी प्रकार सम्यग्मिथ्यादृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि और संयतासंयत तिर्यचों के भी स्वस्थानस्वस्थान आदि के विषय में समझना चाहिए।

उपपाद को प्राप्त सासादनसम्यग्दृष्टि तिर्यच सामान्यलोक आदि चार लोकों के असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्र में और अर्द्धद्वीप से असंख्यातगुणे क्षेत्र में रहते हैं। उपपाद में असंयतसम्यग्दृष्टि तिर्यच संख्यात ही होते हैं क्योंकि जिन मनुष्यों ने सम्यग्दर्शन के पहले तिर्यचायु का बंध कर लिया है, ऐसे मनुष्य सम्यग्दृष्टियों के बिना दूसरे सम्यग्दृष्टियों का तिर्यचों में उपपाद नहीं होता है। सम्यग्मिथ्यादृष्टि और संयतासंयत तिर्यचों के उपपाद नहीं होता है।

संप्रति पञ्चेन्द्रियतिरश्चां क्षेत्रनिरूपणाय सूत्रमवतरति —

**पंचिंदियतिरिक्ख-पंचिंदियतिरिक्खपज्जत्त-पंचिंदियतिरिक्खजोणिणीसु
मिच्छाइट्टिप्पहुडि जाव संजदासंजदा केवडि खेत्ते? लोगस्स असंखेज्जदिभागे।।९।।**

सूत्रस्यार्थः सुगमः। इदं सूत्रं देशामर्शकं, संगृहीतानेकसूत्रत्वात्। तद्यथा-स्वस्थानस्वस्थान-विहारवत्स्वस्थान-वेदना-कषायसमुद्घातगतपंचेन्द्रिय-तिर्यग्मिथ्यादृष्टिजीवाः कियत् क्षेत्रे? सामान्योर्ध्वार्धः-त्रिलोकानामसंख्यातभागे, तिर्यग्लोकस्य संख्यातभागे, सार्धद्वयद्वीपादसंख्यातगुणे क्षेत्रं तिष्ठन्ति। अत्र पंचेन्द्रियतिर्यक्पर्याप्तराशिरेव गृहीतव्यः। अपर्याप्तावगाहनातः पर्याप्तावगाहनायाः असंख्यात-गुणितत्वोपलम्भात्। तत्रापि स्वस्थानस्वस्थानराशिः मूलराशेः संख्यातबहुभागमात्रः, शेषराशयः तस्य संख्यातभागमात्राः। एवं पंचेन्द्रियतिर्यक्पर्याप्तयोनिमतीमिथ्यादृष्टीनां ज्ञातव्यं।

वैक्रियिकसमुद्घातगतमिथ्यादृष्टयः कियत् क्षेत्रे?

चतुर्णां लोकानामसंख्यातभागे, सार्धद्वयद्वीपादसंख्यातगुणे क्षेत्रे निवसन्ति। एवं पंचेन्द्रियतिर्यग्योनिमती-मिथ्यादृष्टीनां ज्ञातव्यं।

मारणान्तिकसमुद्घातगतपंचेन्द्रियतिर्यग्मिथ्यादृष्टयः कियत् क्षेत्रे?

त्रयाणां लोकानां असंख्यातभागे सन्ति, किंच, पंचेन्द्रियतिर्यक्पर्याप्तराशेः पल्योपमस्य असंख्यात-भागमात्रभागहारस्य सत्त्वात्।

पंचेन्द्रियतिर्यक्पर्याप्त-पंचेन्द्रियतिर्यग्योनिमती जीवाः मारणान्तिकसमुद्घातगताः तिर्यग्लोकस्य मनुष्यलोकस्य

अब पंचेन्द्रिय तिर्यच जीवों का क्षेत्रनिरूपण करने के लिए सूत्र अवतरित होता है—

सूत्रार्थ —

**पंचेन्द्रियतिर्यच, पंचेन्द्रियतिर्यच पर्याप्त और पंचेन्द्रियतिर्यच योनिनी जीवों में
मिथ्यादृष्टि गुणस्थान से लेकर संयतासंयत गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थान के तिर्यच
कितने क्षेत्र में रहते हैं? लोक के असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्र में रहते हैं।।९।।**

हिन्दी टीका — सूत्र का अर्थ सुगम है। यह सूत्र देशामर्शक है क्योंकि इसमें अनेक सूत्रों का अर्थ संग्रहीत है। उसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है — स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्घात और कषायसमुद्घात को प्राप्त पंचेन्द्रियतिर्यच मिथ्यादृष्टि जीव कितने क्षेत्र में रहते हैं? सामान्यलोक, ऊर्ध्वलोक और अधोलोक, इन तीन लोकों के असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्र में, तिर्यग्लोक के संख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्र में और अर्द्धद्वीप से असंख्यातगुणे क्षेत्र में रहते हैं। यहाँ पर पंचेन्द्रिय तिर्यच अपर्याप्त जीवराशि को छोड़कर पंचेन्द्रिय तिर्यच पर्याप्त राशि का ही ग्रहण करना चाहिए क्योंकि अपर्याप्तों की अवगाहना से पर्याप्तों की अवगाहना असंख्यातगुणी पाई जाती है। यहाँ पर स्वस्थान स्वस्थान राशि मूलराशि के संख्यात बहुभागप्रमाण होती है। शेष राशियाँ मूलराशि के संख्यातवें भागमात्र होती हैं। इसी प्रकार पंचेन्द्रिय तिर्यच पर्याप्त तथा पंचेन्द्रियतिर्यच योनिनी मिथ्यादृष्टियों की स्वस्थानस्वस्थानराशि आदि समझना चाहिये। वैक्रियिकसमुद्घात को प्राप्त पंचेन्द्रिय तिर्यच मिथ्यादृष्टि जीव कितने क्षेत्र में रहते हैं? सामान्यलोक आदि चार लोकों के असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्र में और अर्द्धद्वीप से असंख्यातगुणे क्षेत्र में रहते हैं। इसी प्रकार पंचेन्द्रिय तिर्यच पर्याप्त तथा पंचेन्द्रिय तिर्यच योनिनी मिथ्यादृष्टियों का वैक्रियिकसमुद्घातगत क्षेत्र जानना चाहिये। मारणान्तिकसमुद्घात को प्राप्त पंचेन्द्रिय तिर्यच पर्याप्त मिथ्यादृष्टि जीव कितने क्षेत्र में रहते हैं? सामान्यलोक, ऊर्ध्वलोक और अधोलोक इन तीन लोकों के असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्र में रहते हैं क्योंकि पंचेन्द्रिय तिर्यच

चासंख्यातगुणे क्षेत्रे तिष्ठन्ति। एष विशेषोऽत्र-योनिनीनां असंयतसम्यग्दृष्टितिरश्चीनां उपपादो नास्ति।

अधुना पंचेन्द्रियापर्याप्ततिरश्चां क्षेत्रनिरूपणाय सूत्रमवतरति —

पंचिंदियतिरिक्ख-अपज्जत्ता केवडि खेत्ते? लोगस्स असंखेज्जदिभागे।।१०।।

सूत्रं सुगमं। स्वस्थानस्वस्थान-वेदना-कषायसमुद्घातगता इमे अपर्याप्ताः तिर्यञ्चः चतुर्लोकानाम-संख्यातभागे तिष्ठन्ति, उत्सेधांगुलं पल्लोपमस्य असंख्यातभागेन खंडयित्वा यदेकभागं लब्धं, तावत्प्रमाणं पंचेन्द्रियतिर्यगपर्याप्तजीवानामवगाहना अस्ति। इमे अपर्याप्ताः सार्धद्वयद्वीपादसंख्यातगुणे क्षेत्रे तिष्ठन्ति। एषां विहारवत्स्वस्थानवैक्रियिकसमुद्घातौ न स्तः। मारणान्तिक-उपपादगतौ अपर्याप्तौ त्रयाणां लोकानाम-संख्यातभागे तिष्ठन्ति, तिर्यग्मानुषलोकयोरसंख्यातगुणेक्षेत्रे तिष्ठन्ति।

एवं द्वितीयस्थले तिर्यग्जीवानां क्षेत्रप्ररूपणत्वेन सूत्रचतुष्टयं गतम्।

संप्रति मनुष्याणां चतुर्दशगुणस्थानापेक्षया क्षेत्र प्रतिपादनाय सूत्रमवतरति —

मणुसगदीए मणुस-मणुसपज्जत्त-मणुसिणीसु मिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव अजोगिकेवली केवडि खेत्ते? लोगस्स असंखेज्जदिभागे।।११।।

पर्याप्तराशि का भागहार पल्लोपम के असंख्यातवें भागमात्र पाया जाता है। मारणान्तिकसमुद्घातगत पंचेन्द्रिय तिर्यच पर्याप्त जीव तिर्यग्लोक और मनुष्यलोक से असंख्यातगुणे क्षेत्र में रहते हैं। इतनी विशेषता है कि योनिनी तिर्यचों में असंयतसम्यग्दृष्टियों का उपपाद नहीं होता है।

अब पञ्चेन्द्रिय अपर्याप्त तिर्यचों का क्षेत्रनिरूपण करने के लिए सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ —

पंचेन्द्रिय तिर्यच अपर्याप्त जीव कितने क्षेत्र में रहते हैं ? लोक के असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्र में रहते हैं।।१०।।

हिन्दी टीका — सूत्र का अर्थ सुगम है। स्वस्थानस्वस्थान, वेदनासमुद्घात और कषायसमुद्घात को प्राप्त हुए पंचेन्द्रिय तिर्यच अपर्याप्त जीव सामान्यलोक आदि चार लोकों के असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्र में रहते हैं क्योंकि उत्सेध घनांगुल को पल्लोपम के असंख्यातवें भाग से खंडित करके जो एक भाग लब्ध आवे, तत्प्रमाण पंचेन्द्रिय तिर्यच अपर्याप्त जीव की अवगाहना है तथा पंचेन्द्रिय तिर्यच अपर्याप्त जीव अर्द्धाद्वीप से असंख्यातगुणे क्षेत्र में रहते हैं। पंचेन्द्रिय तिर्यच अपर्याप्त जीवों के विहारवत्स्वस्थान और वैक्रियिकसमुद्घात नहीं पाया जाता है। मारणान्तिकसमुद्घात और उपपाद को प्राप्त हुए पंचेन्द्रिय तिर्यच अपर्याप्त जीव सामान्यलोक आदि तीन लोकों के असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्र में रहते हैं, तिर्यग्लोक और मनुष्यलोक से असंख्यातगुणे क्षेत्र में मारणान्तिकसमुद्घात और उपपाद पद प्राप्त पंचेन्द्रिय तिर्यच अपर्याप्त जीव रहते हैं।

इस प्रकार द्वितीयस्थल में तिर्यच जीवों का क्षेत्रप्ररूपण करने वाले चार सूत्र पूर्ण हुए।

अब मनुष्यों के चौदह गुणस्थानों की अपेक्षा क्षेत्र का प्रतिपादन करने हेतु सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ —

मनुष्यगति में मनुष्य, मनुष्यपर्याप्त और मनुष्यनियों में मिथ्यादृष्टि गुणस्थान से लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थान में जीव कितने क्षेत्र में रहते हैं? लोक के असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्र में रहते हैं ।।११।।

सूत्रस्यार्थः सुगमः।

स्वस्थानस्वस्थान-विहारवत्स्वस्थान-वेदना-कषाय-वैक्रियिकसमुद्घातगतमिथ्यादृष्टयः सामान्यमनुष्याः पर्याप्तमनुष्याः योनिमतीमनुष्यिन्यः — भावस्त्रीवेदमनुष्याः इमे त्रिविधा अपि चतुर्णां लोकानामसंख्यातभागे क्षेत्रे, मानुषक्षेत्रस्य संख्यातभागे क्षेत्रे च, मनुष्यपर्याप्तमिथ्यादृष्टिक्षेत्रग्रहणात्।

मारणान्तिकगतमिथ्यादृष्टयः इमे मनुष्याः त्रयाणां लोकानामसंख्यातभागे, तिर्यग्नरलोकाभ्यामसंख्यातगुणे क्षेत्रे निवसन्ति, अत्र प्रधानीकृतमनुष्यापर्याप्तराशित्वात्। एवं उपपादपदस्यापि कथनं ज्ञातव्यं।

सासादनसम्यग्दृष्टि-असंयतसम्यग्दृष्टिमनुष्याः स्वस्थानस्वस्थान-विहारवत्स्वस्थान-वेदना-कषाय-वैक्रियिकसमुद्घातैः परिणताः चतुर्लोकानामसंख्यातभागे, मानुषक्षेत्रस्य संख्यातभागे तिष्ठन्ति। मारणान्तिक-उपपादगताः चतुर्लोकानामसंख्यातभागे, सार्धद्वयद्वीपादसंख्यातगुणे तिष्ठन्ति।

सम्यग्मिथ्यादृष्टयः स्वस्थानस्वस्थान-विहारवत्स्वस्थान-वेदना-कषाय-वैक्रियिकसमुद्घातपरिणताः चतुर्लोकानामसंख्यातभागे, मानुषक्षेत्रस्य संख्यातभागे निवसन्ति।

संयतासंयताः स्वस्थानस्वस्थान-विहारवत्स्वस्थान-वेदना-कषाय-वैक्रियिकसमुद्घातपरिणताः चतुर्लोकानामसंख्यातभागे, मानुषक्षेत्रस्य संख्यातभागे तिष्ठन्ति। मारणान्तिकसमुद्घातगताः चतुर्लोकानामसंख्यातभागे मानुषक्षेत्रस्यासंख्यातगुणे क्षेत्रे निवसन्ति।

हिन्दी टीका—सूत्र का अर्थ सरल है। स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात और वैक्रियिकसमुद्घात को प्राप्त हुए मिथ्यादृष्टि सामान्य मनुष्य, पर्याप्त मनुष्य और मनुष्यिनी मिथ्यादृष्टि अर्थात् भावस्त्रीवेदी मनुष्य, ये तीनों प्रकार के मनुष्य भी सामान्य लोक आदि चार लोकों के असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्र में और मनुष्य क्षेत्र के संख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्र में रहते हैं क्योंकि यहाँ पर मनुष्य पर्याप्त मिथ्यादृष्टियों के क्षेत्र का ग्रहण किया है। मारणान्तिक समुद्घात को प्राप्त हुए मनुष्य और मनुष्यिनी मिथ्यादृष्टि जीव सामान्यलोक आदि तीन लोकों के असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्र में और तिर्यग्लोक तथा मनुष्यलोक से असंख्यातगुणे क्षेत्र में रहते हैं क्योंकि यहाँ पर मनुष्य अपर्याप्तराशि की प्रधानता है। इसी प्रकार उपपाद का भी कथन करना चाहिए। स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात और वैक्रियिकसमुद्घात से परिणत हुए सासादनसम्यग्दृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि सामान्यमनुष्य सामान्यलोक आदि चार लोकों के असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्र में और मानुषक्षेत्र के संख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्र में रहते हैं। मारणान्तिक समुद्घात और उपपाद को प्राप्त हुए सासादनसम्यग्दृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि सामान्यमनुष्य सामान्यलोक आदि चार लोकों के असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्र में और अढ़ाईद्वीप से असंख्यातगुणे क्षेत्र में रहते हैं। स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात और वैक्रियिकसमुद्घात रूप से परिणत हुए सम्यग्मिथ्यादृष्टि उक्त मनुष्य सामान्यलोक आदि चार लोकों के असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्र में और मनुष्यक्षेत्र के संख्यातवें भाग प्रमाण क्षेत्र में रहते हैं।

स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात और वैक्रियिकसमुद्घात इन पदों से परिणत हुए संयतासंयत उक्त मनुष्य सामान्यलोक आदि चार लोकों के असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्र में और मनुष्यक्षेत्र के संख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्र में रहते हैं। मारणान्तिक समुद्घात को प्राप्त हुए संयतासंयत सामान्य मनुष्य सामान्यलोक आदि लोकों के असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्र में और मनुष्य क्षेत्र से असंख्यातगुणे क्षेत्र में रहते हैं। प्रमत्तसंयत गुणस्थान से लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तक

प्रमत्तसंयतादारभ्य अयोगिकेवलिपर्यन्त मनुष्याणां प्ररूपणा गुणस्थानप्ररूपणावत् ज्ञातव्या। एतत्कथनं त्रिविधमनुष्याणां ज्ञातव्यं। अस्ति कश्चित् विशेषः — भावस्त्रीवेदमनुष्याणां प्रमत्तगुणस्थाने तैजसाहारसमुद्घातौ न स्तः। स्त्रीणां असंयतसम्यग्दृष्टीनां उपपादो नास्तीति।

सयोगिकेवलिक्षेत्रनिरूपणाय सूत्रमवतरति —

सजोगिकेवली केवडि खेत्ते? ओघं॥१२॥

एतस्य सूत्रस्यार्थो मूलौघसूत्रानुसारेण लोकस्य असंख्यातभागे क्षेत्रे, असंख्यातेषु भागेषु वा, सर्वलोके वा इति वक्तव्यः।

अपर्याप्तमनुष्याणां क्षेत्रनिरूपणाय सूत्रावतारः क्रियते —

मणुसअपज्जत्ता केवडि खेत्ते? लोगस्स असंखेज्जदिभागे॥१३॥

इमे लब्ध्यपर्याप्तमनुष्याः स्वस्थानस्वस्थान-वेदना-कषायसमुद्घातपरिणताः निश्चितक्रमेण चतुर्लोकानामसंख्यातभागे, मानुषक्षेत्रस्य संख्यातभागे च निवसन्ति। विन्यासक्रमेण पुनः असंख्यातानि मानुषक्षेत्रपर्यन्तक्षेत्राणि गच्छन्ति।

मारणान्तिकगताः लब्ध्यपर्याप्ताः मनुष्याः ओघप्ररूपणावत् ज्ञातव्याः।

सामान्य मनुष्यों के यथासंभव स्वस्थानस्वस्थान आदि पदों को क्षेत्र मूलोघ अर्थात् गुणस्थान प्ररूपणा के समान जानना चाहिए। यह समस्त कथन तीन प्रकार के मनुष्यों में भी जानना चाहिए।

यहाँ इतनी विशेषता है कि भावस्त्रीवेदी मनुष्यों के प्रमत्तगुणस्थान में तैजस और आहारक समुद्घात नहीं होते हैं। असंयतसम्यग्दृष्टि स्त्रियों के उपपाद नहीं होता है।

अब सयोगिकेवली भगवन्तों के क्षेत्र का निरूपण करने के लिए सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ —

सयोगिकेवली भगवान कितने क्षेत्र में रहते हैं ? ओघप्ररूपणा में सयोगिजिनों का जो क्षेत्र कह आये हैं, तत्प्रमाण क्षेत्र में रहते हैं ॥१२॥

हिन्दी टीका — इस सूत्र का अर्थ मूलोघ अर्थात् गुणस्थान प्ररूपणा के कथन करने वाले सूत्र के अनुसार इस प्रकार किया जाता है कि सयोगिकेवली भगवान लोक के असंख्यातवें भाग क्षेत्र में, लोक के असंख्यात बहुभागप्रमाण क्षेत्र में अथवा सर्वलोक में रहते हैं, ऐसा जानना चाहिए।

अब अपर्याप्त मनुष्यों का क्षेत्र निरूपण करने के लिए सूत्र का अवतार किया जाता है —

सूत्रार्थ —

लब्ध्यपर्याप्त मनुष्य कितने क्षेत्र में रहते हैं ? लोक के असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्र में रहते हैं॥१३॥

हिन्दी टीका — ये लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्य स्वस्थानस्वस्थान, वेदनासमुद्घात और कषायसमुद्घात से परिणत हुए निश्चित क्रम — संचित क्रम से चारों लोकों के असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्र में और मनुष्यक्षेत्र के संख्यातवें भाग क्षेत्र में निवास करते हैं। विन्यासक्रम से तो असंख्यात मनुष्यक्षेत्रपर्यन्त लब्ध्यपर्याप्त मनुष्यों का क्षेत्र होता है। मारणान्तिक समुद्घात को प्राप्त लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्यों का क्षेत्र मनुष्यों की ओघप्ररूपणा — गुणस्थानप्ररूपणा के समान जानना चाहिए।

एवं तृतीयस्थले मनुष्याणां क्षेत्रनिरूपणत्वेन सूत्रत्रयं गतम्।

अधुना देवगतौ क्षेत्रप्रतिपादनाय सूत्रावतारः क्रियते —

देवगदीए देवेसु मिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव असंजदसम्मादिट्ठि त्ति केवडि खेत्ते? लोगस्स असंखेज्जदिभागे।।१४।।

सूत्रं सुगमं।

स्वस्थानस्वस्थान-विहारवत्स्वस्थान-वेदना-कषाय-वैक्रियिकसमुद्घातगतदेवमिथ्यादृष्टयः त्रयाणां लोकानामसंख्यातभागे, तिर्यग्लोकस्य संख्यातभागे, मानुषक्षेत्रादसंख्यातगुणे निवसन्ति, प्रधानीकृत-ज्योतिष्कराशित्वात्। मारणान्तिकउपपादपरिणतमिथ्यादृष्टयः त्रयाणां लोकानामसंख्यातभागे, नरतिर्यग्लोकाभ्याम-संख्यातगुणे क्षेत्रे च तिष्ठन्ति। शेषगुणस्थानानामोघवत्।

एतत्कथनं सामान्यदेवानां वर्तते। अग्रे चतुर्णिकायदेवानां क्षेत्रं वक्ष्यते।

संप्रति भवनवास्यादि ग्रैवेयकपर्यंतदेवानां क्षेत्रप्रतिपादनाय सूत्रमवतरति —

एवं भवणवासियप्पहुडि जाव उवरिम-उवरिमगेवज्जविमाणवासियदेवा त्ति।।१५।।

इस प्रकार तृतीय स्थल में मनुष्यों का क्षेत्र निरूपण करने वाले तीन सूत्र पूर्ण हुए।

अब देवगति में क्षेत्र का प्रतिपादन करने के लिए सूत्र का अवतार किया जा रहा है —

सूत्रार्थ —

देवगति में देवों में मिथ्यादृष्टि गुणस्थान से लेकर असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थान के देव कितने क्षेत्र में रहते हैं ? लोक के असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्र में रहते हैं ।।१४।।

हिन्दी टीका — सूत्र का अर्थ सुगम है। स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषाय-समुद्घात और वैक्रियिक समुद्घात को प्राप्त हुए देव मिथ्यादृष्टि जीव सामान्यलोक आदि तीन लोकों के असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्र में, तिर्यग्लोक के संख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्र में और मानुषक्षेत्र से असंख्यातगुणे क्षेत्र में रहते हैं क्योंकि यहाँ पर ज्योतिष्क देवराशि प्रधान है। मारणान्तिक समुद्घात और उपपादरूप से परिणत हुए मिथ्यादृष्टि देव सामान्यलोक आदि तीन लोकों के असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्र में और मनुष्यलोक तथा तिर्यग्लोक से असंख्यातगुणे क्षेत्र में रहते हैं। देवों के शेष गुणस्थानों की प्ररूपणा ओघप्ररूपणा के समान है।

यह कथन सामान्य देवों का है। आगे चारों निकाय के देवों का क्षेत्र कहेंगे।

अब भवनवासी आदि देवों से लेकर ग्रैवेयकपर्यन्त देवों का क्षेत्र प्रतिपादन करने के लिए सूत्र का अवतार किया जाता है —

सूत्रार्थ —

भवनवासी देवों से लेकर उपरिम-उपरिम ग्रैवेयक के विमानवासी देवों तक का क्षेत्र इसी प्रकार होता है।।१५।।

एतेन देशामर्शकसूत्रेण सूचितार्थः उच्यते — स्वस्थानस्वस्थान-विहारवत्स्वस्थान-वेदना-कषाय-वैक्रियिक-उपपादपरिणतभवनवासिमिथ्यादृष्टयः चतुर्लोकानामसंख्यातभागे, सार्धद्वयद्वीपादसंख्यातगुणे क्षेत्रे विहरन्ति। उपपादपरिणतभवनवासिनः तिर्यग्लोकस्य असंख्यातभागे क्षेत्रे निवसन्ति। मारणान्तिकगत-भवनवासिमिथ्यादृष्टयः सामान्यलोकादित्रयाणां लोकानां असंख्यातभागे, तिर्यग्लोकस्य असंख्यातगुणे सार्धद्वयद्वीपस्यासंख्यातगुणे क्षेत्रे च विहरन्ति। शेषकथनमोघवत्। अस्ति विशेषः-असंयतसम्यग्दृष्टीनां भवनवासिदेवेषूपपादो नास्ति। वानव्यन्तर-ज्योतिष्कदेवयोः क्षेत्रं देवसामान्यक्षेत्रवत्। अत्रापि असंयत-सम्यग्दृष्टीनां अनयोर्देवयोरुपपादो नास्ति।

सौधर्मैशानकल्पयोः स्वस्थानस्वस्थान-विहारवत्स्वस्थान-वेदना-कषाय-वैक्रियिकप्राप्तमिथ्यादृष्टिदेवाः चतुर्लोकानामसंख्यातभागे, मानुषक्षेत्रस्यासंख्यातगुणे क्षेत्रे च निवसन्ति। अत्र सर्वपदगतानां क्षेत्रस्य वर्णनं भवनवासिवत् ज्ञातव्यम्। अनयोः मिथ्यादृष्टिदेवानां मारणान्तिकोपपादसंबन्धिक्षेत्रं देवसामान्यवत्। शेषगुणस्थानानां स्वस्थानस्वस्थानक्षेत्रं देवसामान्यवत्।

सानत्कुमारकल्पादारभ्य उपरिम-उपरिमग्रैवेयकपर्यंतमिथ्यादृष्टिदेवानां स्वस्थानस्वस्थानादिक्षेत्रं ओघसासादन-स्वस्थानस्वस्थानादिक्षेत्रवत्। एवमेव सासादनादीनां ओघवत् ज्ञातव्यं।

हिन्दी टीका — इस देशामर्शक सूत्र से सूचित हुए अर्थ को कहते हैं —

स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात, वैक्रियिकसमुद्घात और उपपादन रूप से परिणत हुए भवनवासी मिथ्यादृष्टि देव सामान्यलोक आदि चार लोकों के असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्र में और अढ़ाईद्वीप से असंख्यातगुणे क्षेत्र में रहते हैं।

उपपादपरिणत भवनवासी देव तिर्यग्लोक के असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्र में रहते हैं। मारणान्तिक समुद्घात को प्राप्त हुए मिथ्यादृष्टि भवनवासी देव सामान्यलोक आदि तीन लोकों के असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्र में, तिर्यग्लोक से असंख्यातगुणे क्षेत्र में और ढाईद्वीप से भी असंख्यातगुणे क्षेत्र में रहते हैं। शेष कथन ओघ — गुणस्थानप्ररूपणा के समान है। इतनी विशेषता है कि असंयतसम्यग्दृष्टियों का भवनवासियों में उपपाद नहीं होता है। वानव्यन्तर और ज्योतिषी देवों का क्षेत्र देवसामान्य के क्षेत्र के समान है। इतनी विशेषता है कि असंयत-सम्यग्दृष्टियों का वानव्यन्तर और ज्योतिषियों में उपपाद नहीं होता है।

सौधर्म और ईशानकल्प में स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात और वैक्रियिकसमुद्घात को प्राप्त हुए मिथ्यादृष्टि देव सामान्यलोक आदि चार लोकों के असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्र में और मानुषक्षेत्र से असंख्यातगुणे क्षेत्र में रहते हैं। यहाँ पर सर्व पदगत जीवों के क्षेत्रों का वर्णन भवनवासियों के क्षेत्र के समान करना चाहिए। सौधर्म और ईशानकल्प में देवमिथ्यादृष्टियों के मारणान्तिक समुद्घात और उपपादसम्बन्धी क्षेत्र देवसामान्य के मारणान्तिक समुद्घात और उपपादगत के समान जानना चाहिए।

सनत्कुमारकल्प से लेकर उपरिम-उपरिम ग्रैवेयक तक मिथ्यादृष्टि देवों का स्वस्थानस्वस्थान आदि क्षेत्र ओघ सासादनसम्यग्दृष्टि के स्वस्थानस्वस्थान आदि क्षेत्र के समान है।

इसी प्रकार सासादनसम्यग्दृष्टि आदि जीवों का क्षेत्र ओघ — गुणस्थानप्ररूपणा के समान जानना चाहिए।

अधुना नवानुदिशपंचानुत्तरवासिदेवानां क्षेत्रनिरूपणाय सूत्रावतारो भवति—

अणुदिसादि जाव सव्वट्टुसिद्धिविमाणवासियदेवा असंजदसम्मादिट्ठी केवडि खेत्ते? लोगस्स असंखेज्जदिभागे।।१६।।

सूत्रं सुगमं। स्वस्थानस्वस्थान-विहारवत्स्वस्थान-वेदना-कषाय-वैक्रियिक-मारणान्तिक-उपपादगत असंयतसम्यग्दृष्टयः चतुर्णां लोकानामसंख्यातभागे, सार्धद्वयद्वीपादसंख्यातगुणे निवसन्ति इति ज्ञातव्यं। अस्ति विशेषः—सर्वार्थसिद्धौ स्वस्थानस्वस्थान-विहारवत्स्वस्थान-वेदना-कषाय-वैक्रियिकपदेषु देवा मानुषक्षेत्रस्य संख्यातभागप्रमाणे क्षेत्रे विहरन्ति। किं च, सर्वार्थसिद्धौ वेदना-कषाय-समुद्घातयोः तन्निमित्तेन उत्पद्यमानस्तोकविस्फूर्जनं भवति—उभयोः समुद्घातयोः आत्मप्रदेशानां बाह्यविसर्पणं किञ्चिदेव भवति एतत् प्रतीत्य तथोपदेशात्, कारणे कार्योपचारात् वा।

तात्पर्यमेतत्—नव अनुदिश-पंचानुत्तरेषु सर्वे देवा-अहमिन्द्रा सम्यग्दृष्टय एव। तत्र इन्द्रियसुखानां पराकाष्ठा वर्तते तथापि असातावेदनीयोदस्य अस्तित्वापेक्षया वेदनासमुद्घातः कथ्यते न च तत्र वेदनासद्भावः, अतएव कारणे कार्यस्योपचारः क्रियते। एतज्ज्ञात्वा सम्यग्दर्शनरत्नं कदाचिदपि न त्यक्तव्यम् अस्माभिरिति। एवं चतुर्थस्थले देवानां क्षेत्रप्ररूपणपराणि त्रीणि सूत्राणि गतानि।

अब नव अनुदिशविमानों एवं पाँच अनुत्तरविमानवासी देवों का क्षेत्र निरूपण करने के लिए सूत्र का अवतार होता है—

सूत्रार्थ—

नौ अनुदिशों से लेकर सर्वार्थसिद्धि विमान तक के असंयतसम्यग्दृष्टि देव कितने क्षेत्र में रहते हैं? लोक के असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्र में रहते हैं।।१६।।

हिन्दी टीका—सूत्र का अर्थ सरल है। स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात, वैक्रियिकसमुद्घात, मारणान्तिक समुद्घात और उपपाद को प्राप्त हुए उक्त असंयतसम्यग्दृष्टि देव सामान्यलोक आदि चार लोकों के असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्र में और अर्द्धद्वीप से असंख्यातगुणे क्षेत्र में रहते हैं, ऐसा यहाँ कथन करना चाहिए। इतनी विशेषता है कि सर्वार्थसिद्धि में स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात और वैक्रियिकसमुद्घात इन स्थानों में देव मानुषक्षेत्र के संख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्र में रहते हैं क्योंकि सर्वार्थसिद्धि में वेदनासमुद्घात और कषायसमुद्घात देवों के उनके निमित्त से उत्पन्न होने वाला स्तोक उस्फूर्जन होता है अर्थात् उक्त दोनों समुद्घातों में आत्मप्रदेशों का बाह्य विस्तार बहुत कम होता है, इस अपेक्षा उक्त प्रकार का उपदेश दिया है अथवा कारण में कार्य के उपचार से उक्त प्रकार का उपदेश दिया है।

तात्पर्य यह है कि नव अनुदिश विमान एवं पाँच अनुत्तरविमानों में सभी देव-अहमिन्द्र सम्यग्दृष्टि ही होते हैं। वहाँ अहमिन्द्र देवों के इन्द्रियसुखों की पराकाष्ठा है अर्थात् सांसारिक सुख की चरम सीमा उनमें पाई जाती है, फिर भी असातावेदनीय कर्म के उदय का अस्तित्व होने से उसकी अपेक्षा से वेदना समुद्घात कहा जाता है, न कि वहाँ वेदना का सद्भाव रहता है। इसलिए कारण में कार्य का उपचारमात्र किया गया है, ऐसा जानकर सम्यग्दर्शनरूपी रत्न को कदाचित् भी हम लोगों को नहीं छोड़ना चाहिए।

इस प्रकार चतुर्थस्थल में देवों की क्षेत्रप्ररूपणा का कथन करने वाले तीन सूत्र पूर्ण हुए।

विशेषार्थ — इस गतिमार्गणा के वर्णन में संसार की चारों गतियों के पश्चात् पंचम सिद्धगति को प्राप्त करने की प्रेरणा दी गई है, क्योंकि सिद्धगति में जाने के बाद यह जीव कभी भी सांसारिक गतियों में पुनः परिभ्रमण नहीं करता है। यद्यपि वर्तमान हुण्डावसर्पिणी के इस पंचमकाल में उस पंचमगति की प्राप्ति भरतक्षेत्र के किसी भी मनुष्य को नहीं हो सकती है, फिर भी उसके मार्ग का ज्ञान कराने के लिए गणधर आदि महामुनियों ने विभिन्न ग्रंथों की रचना की है। उनमें से ही जैनधर्म के महान् प्रभावक आचार्य श्रीकुन्दकुन्दस्वामी ने मोक्षपाहुड़ ग्रंथ में कहा है —

अज्जवि तिरयणसुद्धा, अप्पा झाएवि लहइ इन्दत्तं।

लोयंतियदेवत्तं, तत्थ चुदा णिव्वुदिं जंति ॥७७॥

अर्थात् आज भी इस पंचमकाल में रत्नत्रय से शुद्ध आत्मा(मुनि)अपनी आत्मा का ध्यान करके इन्द्रत्व और लौकांतिक देव के पद को प्राप्त कर लेते हैं और वहाँ से च्युत होकर निर्वाण को प्राप्त कर लेते हैं।

यहाँ अभिप्राय यह है कि पंचमकाल के अन्त तक दिगम्बर जैन भावलिंगी साधु इस धरती पर विचरण करते हुए भगवान् महावीर की जिनमुद्रा को प्रदर्शित करते रहेंगे, अतः जब तक मुनिव्रत धारण करने की पूर्ण क्षमता न प्रगट हो जावे, तब तक उन तपस्वी सन्तों की भक्ति, सेवा, वैयावृत्ति करके अपने संसार को अल्प करना चाहिए।

श्री पद्मनंदि आचार्य भी कहते हैं —

संप्रत्यस्ति न केवली किल कलौ, त्रैलोक्यचूडामणिः।

तद्वाचः परमासतेऽत्र भरत-क्षेत्रे जगद्द्योतिकाः ॥

सदरत्नत्रयधारिणो यतिवरास्तासां समालम्बनं।

तत्पूजा जिनवाचि पूजनमतः, साक्षाज्जिनः पूजितः।।

अर्थात् इस समय भरतक्षेत्र में त्रैलोक्यचूडामणि केवली भगवान् नहीं हैं, फिर भी लोक को प्रकाशित करने वाले उनके वचन तो यहाँ विद्यमान हैं और उनके वचनों का अवलम्बन लेने वाले रत्नत्रयधारी श्रेष्ठ यतिगण भी मौजूद हैं। इसलिए उन मुनियों की पूजा जिनवचनों की पूजा है और जिनवचन की पूजा से साक्षात् जिनदेव की पूजा की गई है, ऐसा समझना चाहिए।

सारांशरूप में यहाँ गतिमार्गणा का सार समझकर चारों गतियों में सर्वश्रेष्ठ मनुष्यगति का सदुपयोग करते हुए यथाशक्ति संयम धारण कर आत्मकल्याण करना चाहिए, क्योंकि जैसे विशाल समुद्र के अन्दर गिरी हुई मणि को खोजना अत्यन्त कठिन कार्य है, उसी प्रकार अनंतसंसार समुद्र में खोई हुई मनुष्यगति का प्राप्त होना दुर्लभ से दुर्लभ होता है। जिस प्रकार चौराहे पर चिन्तामणि रत्न की प्राप्ति दुर्लभ है, उसी प्रकार मनुष्य जन्म तथा जिनधर्म का शरण आदि मिलना दुर्लभ है, इसलिए इस दुर्लभ मनुष्यपर्याय को पाकर ऐसा काम करना चाहिए जिससे पुनः पंचपरिवर्तनरूप संसार में परिभ्रमण न करना पड़े अन्यथा अन्त में पश्चात्ताप के अतिरिक्त कुछ अर्थ नहीं निकलेगा।

श्री पद्मनंदिपंचविंशतिका में भी कहा है कि —

स्नग्धराछन्द —

कर्माब्धौ तद्विचित्रोदयलहरिभर व्याकुलेव्याप्तदुग्ध ,

भ्राम्यन्नर्कादिकीर्णै मृतिजननलसद्वाडवावर्तगते।

एवं षट्खण्डागमे तृतीयग्रन्थे क्षेत्रानुगमनाम्नि तृतीयप्रकरणे गणिनी-
ज्ञानमतीकृतसिद्धान्तचिन्तामणिटीकायां गतिमार्गणा
नाम प्रथमोऽधिकारः समाप्तः।

मुक्तः शक्त्या हतांगः प्रतिगति स पुमान् मज्जनोन्मज्जनाभ्या,

मप्राप्यज्ञानपोतं तदनुगतिजडः पारगामी कथं स्यात् ॥१३१॥

अर्थ — जिस प्रकार कोई शक्तिहीन मनुष्य मगरमच्छ आदि से व्याप्त भयंकर समुद्र में पड़ जावे, तो वह नाना प्रकार के गोते खाता है किन्तु यदि उसको जहाज मिल जावे, तो वह शीघ्र ही पार हो जाता है, उस ही प्रकार कर्म (जिसका दूसरा नाम संसार है) इस प्रकार का भयंकर समुद्र है, इसमें भी जब तक जीव ज्ञानरूपी जहाज को प्राप्त नहीं करते, तब तक नाना प्रकार की गतियों में भ्रमण करते हैं किन्तु जिस समय वे उस अनुकूल ज्ञानरूपी जहाज को पा लेते हैं तो वे बात की बात में संसाररूपी समुद्र से पार हो जाते हैं तथा फिर उनको संसाररूपी समुद्र में आना भी नहीं पड़ता इसलिए जिन जीवों को इस संसाररूपी समुद्र को पार करने की अभिलाषा है, उनको अवश्य ही ज्ञानरूपी अखण्ड जहाज का आश्रय लेना चाहिए।

भावार्थ यह है कि जहाँ प्रतिक्षण दुःख ही दुःख है, ऐसी नरक-तिर्यच आदि गतियों की बात तो जाने दो, किन्तु जहाँ पर सदा अणिमा-महिमा आदि ऋद्धिरूपी लक्ष्मी निवास करती हैं, ऐसी देवगति में हे आत्मन! तेरे लिए अंशमात्र भी सुख नहीं है क्योंकि वहाँ से भी तुझे मरण करके नीचे गिरना ही पड़ता है, इसलिए आचार्य कहते हैं कि हे जीव! तुझे अपनी मनुष्यपर्याय से अविनाशी मोक्षपद के लिए सर्वदा प्रयत्न करना चाहिए।

इस प्रकार षट्खण्डागम में तृतीय ग्रंथ में क्षेत्रानुगम नामक तृतीय प्रकरण
में गणिनी ज्ञानमती कृत सिद्धान्तचिन्तामणि नामक टीका में
गतिमार्गणा नाम का प्रथम अधिकार समाप्त हुआ।



अथ इन्द्रियमार्गणाधिकारः

अथ स्थलत्रयेण पंचभिः सूत्रैः इन्द्रियमार्गणानाम द्वितीयोऽधिकारः प्रारभ्यते। तत्र प्रथमस्थले एकेन्द्रियाणां क्षेत्रकथनत्वेन “इंद्रियाणुवादेण” इत्यादिसूत्रमेकं। तदनु द्वितीयस्थले विकलत्रयाणां क्षेत्रप्रतिपादनत्वेन “वीइंदिय” इत्यादिसूत्रमेकं। ततः परं तृतीयस्थले पंचेन्द्रियाणां क्षेत्रनिरूपणत्वेन “पंचिंदिय” इत्यादिना त्रीणि सूत्राणि इति समुदायपातनिका।

अधुना एकेन्द्रियाणां क्षेत्रप्ररूपणाय सूत्रमवतरति —

इंद्रियाणुवादेण एइंदिया बादरा सुहुमा पज्जत्ता अपज्जत्ता केवडि खेत्ते?
सव्वलोगे।।१७।।

सूत्रस्यार्थः सुगमः।

अत्र लोकनिर्देशेन पंचानां लोकानां ग्रहणं भवति, देशामर्शकत्वाल्लोकस्य। बादरसूक्ष्मादिवचनेन स्वस्थानस्वस्थान-वेदना-कषाय-वैक्रियिक-मारणान्तिक-उपपादपरिणतजीवानां ग्रहणं भवति, षड्विधावस्था-व्यतिरिक्तबादरादीनामभावात्।

इमे स्वस्थान-वेदना-कषाय-मारणान्तिक-उपपादगता एकेन्द्रियाः सर्वलोके निवसन्ति। वैक्रियिक-

अथ इन्द्रियमार्गणा अधिकार प्रारंभ

अब तीन स्थलों में पाँच सूत्रों के द्वारा इन्द्रियमार्गणा नाम का द्वितीय अधिकार प्रारम्भ होता है। उनमें से प्रथम स्थल में एकेन्द्रिय जीवों का क्षेत्र कथन करने हेतु “इंद्रियाणुवादेण” इत्यादि एक सूत्र है। उसके पश्चात् द्वितीय स्थल में विकलत्रय जीवों के क्षेत्र कथन की मुख्यता से “वीइंदिय” इत्यादि एक सूत्र है। उससे आगे तृतीय स्थल में पंचेन्द्रिय जीवों का क्षेत्र निरूपण करने वाले “पंचिंदिय” इत्यादि तीन सूत्र हैं। अधिकार के प्रारंभ में सूत्रों की यह समुदायपातनिका हुई है।

अब सर्वप्रथम एकेन्द्रिय जीवों के क्षेत्र का निरूपण करने हेतु सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ —

इन्द्रियमार्गणा के अनुवाद से एकेन्द्रिय जीव, बादर एकेन्द्रिय जीव, सूक्ष्म एकेन्द्रियजीव, बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त जीव, बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्त जीव, सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त जीव और सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्त जीव कितने क्षेत्र में रहते हैं ? सर्वलोक में रहते हैं।।१७।।

हिन्दी टीका — सूत्र का अर्थ सुगम है। इस सूत्र में लोक पद के निर्देश से पाँचों लोकों — सामान्यलोक, ऊर्ध्वलोक, मध्यलोक, अधोलोक और मनुष्यलोक का ग्रहण किया है क्योंकि यहाँ लोक पद का निर्देश देशामर्शक है। सूत्र में बादर और सूक्ष्म आदि वचन से स्वस्थानस्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात, वैक्रियिकसमुद्घात, मारणान्तिकसमुद्घात और उपपाद पद से परिणत हुए जीवों का ग्रहण किया है क्योंकि उक्त छह प्रकार की अवस्थाओं के अतिरिक्त बादर आदि जीव नहीं पाये जाते हैं।

ये स्वस्थानस्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात, मारणान्तिक समुद्घात और उपपाद को प्राप्त

समुद्घातगताः चतुर्णां लोकानामसंख्यातभागे। मानुषक्षेत्रं तु न विज्ञायते, संप्रतिकाले विशिष्टोपदेशाभावात्^१।

बादरैकेन्द्रियाः सामान्याः बादरैकेन्द्रियपर्याप्ताः स्वस्थान-वेदना-कषायसमुद्घातगताः त्रिलोकानां संख्यातभागे नरतिर्यग्लोकाभ्यां असंख्यातगुणे। तद्यथा — मंदरमूलात् उपरि यावत् शतारसहस्रारकल्प इति पंचरज्जु-उत्सेधेन लोकनाली समचतुरस्रा वातेन परिपूर्णा अस्ति।

वैक्रियिकसमुद्घातगता इमे एकेन्द्रियाः क्षेत्रेण सामान्यएकेन्द्रियवत्। मारणान्तिक-उपपादगत-बादरैकेन्द्रियाणां बादरैकेन्द्रियपर्याप्तानां क्षेत्रं सर्वलोकः। बादरैकेन्द्रियापर्याप्तानां क्षेत्रं बादरैकेन्द्रियसमानं। किंतु अपर्याप्तानां वैक्रियिकसमुद्घातपदं नास्ति।

स्वस्थानस्वस्थान-वेदना-कषाय-मारणान्तिक-उपपादगताः सूक्ष्मैकेन्द्रियजीवाः इमे पर्याप्ता अपर्याप्ताश्च सर्वलोके निवसन्ति, सूक्ष्मजीवानां सर्वत्रावस्थानं प्रति विरोधाभावात्।

एवं एकेन्द्रियक्षेत्रव्यवस्थापकत्वेन प्रथमस्थले सूत्रमेकं गतम्।

विकलत्रयाणां क्षेत्रनिरूपणाय सूत्रावतारो भवति —

वीइंदिय-तीइंदिय-चउरिंदिया-तस्सेव पज्जत्ता अपज्जत्ता य केवडि खेत्ते? लोगस्स असंखेज्जदिभागे।।१८।।

हुए एकेन्द्रिय जीव सर्वलोक में रहते हैं। वैक्रियिक समुद्घात को प्राप्त हुए एकेन्द्रिय जीव सामान्यलोक आदि चार लोकों के असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्र में रहते हैं किन्तु मानुषक्षेत्र के सम्बन्ध में नहीं जाना जाता है कि उसके कितने भाग में रहते हैं क्योंकि वर्तमानकाल में इस प्रकार का विशिष्ट उपदेश नहीं पाया जाता है।

स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्घात और कषायसमुद्घात को प्राप्त हुए बादर एकेन्द्रिय और बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त जीव सामान्यलोक आदि तीन लोकों के संख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्र में तथा मनुष्यलोक और तिर्यग्लोक से असंख्यातगुणे क्षेत्र में रहते हैं। इसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है — मन्दराचल के मूलभाग से लेकर ऊपर शतार और सहस्रार कल्प तक पाँच राजु उत्सेधरूप से समचतुरस्र लोकनाली वायु से परिपूर्ण है।

वैक्रियिक समुद्घात को प्राप्त हुए बादर एकेन्द्रिय और बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त जीवों का क्षेत्र वैक्रियिकसमुद्घातगत सामान्य एकेन्द्रियों के क्षेत्र के समान होता है। मारणान्तिक समुद्घात और उपपाद को प्राप्त हुए बादर एकेन्द्रिय और बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त जीव सर्वलोक में रहते हैं। बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्तों का क्षेत्र बादर एकेन्द्रियों के समान होता है। इतनी विशेषता है कि बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्तों के वैक्रियिकसमुद्घात पद नहीं होता है। स्वस्थानस्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात, मारणान्तिक समुद्घात और उपपाद को प्राप्त हुए सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीव और उन्हीं के पर्याप्त-अपर्याप्त जीव सर्वलोक में रहते हैं क्योंकि सूक्ष्म जीवों के सर्वलोक में पाये जाने में कोई विरोध नहीं है।

इस प्रकार प्रथम स्थल में एकेन्द्रिय जीवों के क्षेत्र की व्यवस्था बताने वाला एक सूत्र पूर्ण हुआ।

अब विकलत्रय जीवों का क्षेत्र निरूपण करने के लिए सूत्र का अवतार होता है —

सूत्रार्थ —

द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय जीव और उन्हीं के पर्याप्त तथा अपर्याप्त जीव कितने क्षेत्र में रहते हैं? लोक के असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्र में रहते हैं।।१८।।

सूत्रमेतत्सुगमं।

इमे विकलत्रया जीवाः स्वस्थानस्वस्थान-विहारवत्स्वस्थान-वेदना-कषायसमुद्घातगताः त्रिलोकानाम-संख्यातभागे, तिर्यग्लोकस्य संख्यातभागे, सार्धद्वयद्वीपादसंख्यातगुणे क्षेत्रे च निवसन्ति। अस्ति विशेषः — विकलत्रयाः अपर्याप्ताः चतुर्लोकानामसंख्यातभागे तिष्ठन्ति। इमे त्रयोऽपि जीवाः पर्याप्ता अपर्याप्ताश्च मारणान्तिक-उपपादगताः त्रिलोकानामसंख्यातभागे, तिर्यग्लोकादसंख्यातगुणे, सार्धद्वयद्वीपादपि असंख्यातगुणे च क्षेत्रे निवसन्ति। अन्यत्रापि उक्तं —

विकलेन्द्रियाणां लोकस्यासंख्येयभागः क्षेत्रं। देवनारकमनुष्यवत्तेषां नियतोत्पादस्थानत्वात्। विकला हि अर्धतृतीये द्वीपे लवणोदकालोदसमुद्रद्वये स्वयंभूरमणद्वीपार्धपरभागे स्वयम्भूरमणसमुद्रे चोत्पद्यन्ते न पुनरसंख्यद्वीपसमुद्रेषु न च नरकस्वर्गभोगभूम्यादिषु^१।”

एवं द्वितीयस्थले द्विन्द्रिय-त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रियाणां क्षेत्रकथनेन एकं सूत्रं गतम्।

संप्रति पंचेन्द्रियाणां गुणस्थानेषु क्षेत्रप्रतिपादनाय सूत्रमवतरति —

पंचिन्द्रिय-पंचिन्द्रियपञ्जत्तएसु मिच्छाइट्टिप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि त्ति केवडि खेत्ते? लोगस्स असंखेज्जदिभागे।।१९।।

हिन्दी टीका — स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्घात और कषायसमुद्घात इन पदों से परिणत हुए उक्त विकलत्रय जीव सामान्यलोक आदि तीन लोकों के असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्र में, तिर्यग्लोक के संख्यातवें भाग में और अढ़ाईद्वीप से असंख्यातगुणे क्षेत्र में रहते हैं। यहाँ इतनी विशेषता है कि तीनों ही विकलेन्द्रियों के अपर्याप्त जीव सामान्यलोक आदि चार लोकों के असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्र में रहते हैं। मारणान्तिकसमुद्घात और उपपाद को प्राप्त हुए तीनों विकलेन्द्रिय और उनके पर्याप्त तथा अपर्याप्त जीव सामान्यलोक आदि तीन लोकों के असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्र में, तिर्यग्लोक से असंख्यातगुणे क्षेत्र में तथा अढ़ाईद्वीप से भी असंख्यातगुणे क्षेत्र में रहते हैं। अन्यत्र भी कहा है —

विकलेन्द्रियों का क्षेत्र लोक का असंख्यातवाँ भाग है, क्योंकि देव, नारकी और मनुष्यों के समान विकलेन्द्रियों का नियत उत्पाद स्थान है। सर्वत्र विकलेन्द्रिय नहीं होते हैं। जम्बूद्वीप, धातकी खंड, अर्धपुष्कर, लवणसमुद्र, कालोदधि समुद्र, स्वयम्भूरमण द्वीप का अर्ध परभाग और स्वयंभूरमण समुद्र इन में ही विकलेन्द्रिय जीव उत्पन्न होते हैं। शेष असंख्यातद्वीप-समुद्रों में, स्वर्गों में-नरकों में तथा भोगभूमियों में विकलत्रय उत्पन्न नहीं होते।

इस प्रकार द्वितीय स्थल में दो इंद्रिय, तीन इंद्रिय और चार इंद्रिय जीवों का क्षेत्र बतलाने वाला एक सूत्र पूर्ण हुआ।

अब पंचेन्द्रिय जीवों का गुणस्थानों में क्षेत्र बतलाने के लिए सूत्र प्रगट होता है —

सूत्रार्थ —

पंचेन्द्रिय और पंचेन्द्रियपर्याप्त जीवों में मिथ्यादृष्टि गुणस्थान से लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थान के जीव कितने क्षेत्र में रहते हैं ? लोक के असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्र में रहते हैं ।।१९।।

अर्थ: सूत्रस्य सुगमः।

स्वस्थानस्वस्थान-विहारवत्स्वस्थान-वेदना-कषाय-वैक्रियिकसमुद्घातगत-पञ्चेन्द्रियमिथ्यादृष्टयः त्रिलोकानामसंख्येयभागे, तिर्यग्लोकस्य संख्येयभागे, सार्धद्वयद्वीपादसंख्येयगुणे। मारणान्तिक-उपपादगत-मिथ्यादृष्टयः त्रिलोकानामसंख्येयभागे, नरतिर्यग्लोकयोरसंख्यातगुणे। एतेषां क्षेत्रं पूर्ववद् ज्ञातव्यम्। सासादनादीनामोघवत् क्षेत्रम्। एवं पर्याप्तानामपि वक्तव्यम्।

सयोगिकेवलिनं क्षेत्रनिरूपणाय सूत्रमवतरति—

सजोगिकेवली ओघं॥२०॥

एतस्य सूत्रस्यार्थः पूर्वं प्ररूपितोऽतोऽत्र नोच्यते।

अपर्याप्तपंचेन्द्रियाणां क्षेत्रनिरूपणार्थं सूत्रावतारो भवति—

पंचिंदियअपज्जत्ता केवडि खेत्ते? लोगस्स असंखेज्जदिभागे॥२१॥

सूत्रं सुगमं। स्वस्थान-वेदना-कषायसमुद्घातगतपंचेन्द्रियापर्याप्ताः चतुर्लोकानामसंख्येयभागे, सार्धद्वयद्वीपादसंख्यातगुणे। किं च अंगुलस्यासंख्येयभागमात्रावगाहना एतेषामपर्याप्तानां। मारणान्तिक-

हिन्दी टीका — सूत्र का अर्थ सुगम है।

स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात और वैक्रियिकसमुद्घात को प्राप्त हुए पंचेन्द्रिय मिथ्यादृष्टि देव सामान्यलोक आदि तीन लोकों के असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्र में तिर्यग्लोक के संख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्र में और अढ़ाईद्वीप से असंख्यातगुणे क्षेत्र में रहते हैं। मारणान्तिक समुद्घात और उपपाद को प्राप्त हुए पंचेन्द्रिय मिथ्यादृष्टि जीव सामान्यलोक आदि तीन लोकों के असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्र में और मनुष्यलोक तथा तिर्यग्लोक से असंख्यातगुणे क्षेत्र में रहते हैं। इन क्षेत्रों को पहले के समान समझना चाहिए। सासादनसम्यग्दृष्टि आदि का स्वस्थानस्वस्थान आदि पदगत क्षेत्र ओघसासादन-सम्यग्दृष्टि आदि के स्वस्थानस्वस्थान आदि पदगत क्षेत्र के समान जानना चाहिए। इसी प्रकार पर्याप्तों के क्षेत्र का भी कथन करना चाहिए।

अब सयोगिकेवली भगवन्तों का क्षेत्र निरूपण करने के लिए सूत्र अवतरित होता है—

सूत्रार्थ —

सयोगिकेवलियों का क्षेत्र सामान्यप्ररूपणा के समान है ॥२०॥

इस सूत्र का अर्थ पहले कह चुके हैं, अतः यहाँ उसे पुनः नहीं कहा जा रहा है।

अब अपर्याप्त पंचेन्द्रिय जीवों का क्षेत्र निरूपण करने के लिए सूत्र का अवतार होता है—

सूत्रार्थ —

लब्ध्यपर्याप्त पंचेन्द्रिय जीव कितने क्षेत्र में रहते हैं ? लोक के असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्र में रहते हैं ॥२१॥

हिन्दी टीका — सूत्र का अर्थ सुगम है।

स्वस्थानस्वस्थान, वेदनासमुद्घात और कषायसमुद्घात को प्राप्त हुए लब्ध्यपर्याप्त पंचेन्द्रिय जीव सामान्यलोक आदि चार लोकों के असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्र में और अढ़ाईद्वीप से असंख्यातगुणे क्षेत्र में रहते हैं क्योंकि लब्ध्यपर्याप्त पंचेन्द्रियों की अवगाहना अंगुल के असंख्यातवें भागप्रमाण है। मारणान्तिकसमुद्घात

उपपादगताः त्रिलोकानामसंख्येयभागे, नरतिर्यग्लोकयोरसंख्यातगुणे च निवसन्ति। तात्पर्यमेतत्—इमे एकेन्द्रियाः जीवाः सर्वलोके तिष्ठन्ति अतो सिद्धशिलायां अपि तिष्ठन्ति किंतु तत्रापि कर्मसहितैकेन्द्रियपर्यायत्वेन न च कर्मविमुक्तसिद्धपर्यायत्वेन, इति ज्ञात्वा अष्टकर्मणां विनाशनाय प्रयत्नो विधेयोऽस्माभिः मुमुक्षुभिरिति, पंचेन्द्रियपर्यायलब्धस्य एवमेव सारो ज्ञातव्यः।

एवं तृतीयस्थले पंचेन्द्रियजीवानां क्षेत्रनिरूपणपराणि त्रीणि सूत्राणि गतानि।

और उपपाद को प्राप्त हुए लब्धपर्याप्त पंचेन्द्रिय जीव सामान्यलोक आदि तीन लोकों के असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्र में तथा मनुष्यलोक और तिर्यग्लोक से असंख्यातगुणे क्षेत्र में रहते हैं।

तात्पर्य यह है कि ये एकेन्द्रिय जीव सर्वलोक में रहते हैं अतः सिद्धशिला पर भी रहते हैं किंतु वहाँ भी वे कर्मसहित एकेन्द्रिय पर्याय में रहते हैं न कि कर्मों से विमुक्त होकर सिद्धपर्यायरूप से रहते हैं ऐसा जानकर हम सभी मुमुक्षुओं को—मोक्षप्राप्ति के इच्छुक मनुष्यों को आठों कर्मों का विनाश करने हेतु प्रयत्न करना चाहिए, पंचेन्द्रियपर्याय को प्राप्त करने का यही सार जानना चाहिए।

इस प्रकार तृतीय स्थल में पंचेन्द्रिय जीवों का क्षेत्र निरूपण करने वाले तीन सूत्र पूर्ण हुए।

विशेषार्थ—इन्द्रियमार्गणा के अन्तर्गत एकेन्द्रिय स्थावर जीवों से लेकर पंचेन्द्रिय मनुष्यों तक का क्षेत्र बताते हुए कहा गया है कि मनुष्यपर्याय में अपनी इन्द्रियों का सदुपयोग करते हुए रत्नत्रयधारण का पुरुषार्थ अवश्य करना चाहिए। पद्मनन्दिपंचविंशतिका नामक ग्रंथ में आचार्य श्रीपद्मनन्दि स्वामी ने लिखा है—

पृथ्वी छन्द—

किमाल कोलाहलैरमलबोधसम्पन्निधेः,

समस्ति किल कौतुकं किल तवात्मनो दर्शने।

विरुद्धसकलेन्द्रियो रहसि मुक्तसंग्रहः

कियन्त्यपि दिनान्यतः स्थिरमना भवान् पश्यतु ॥१४४॥

अर्थात् हे आत्मन् ! यदि तू समस्त निर्मलज्ञान के धारी आत्मा को देखने की इच्छा करता है तो तूझे समस्त स्पर्शन आदि इन्द्रियों को रोककर तथा समस्त प्रकार के परिग्रह का त्याग करके कुछ दिन एकांत में बैठकर तथा कुछ दिन स्थिरमन होकर उसको देखना चाहिए, व्यर्थ कोलाहल करने से क्या प्रयोजन है ?

तात्पर्य यह है कि जब तक इन्द्रियाँ बाह्य पदार्थों में फँसी रहेंगी तथा जब तक निरन्तर परिग्रह में ममता रहेगी और जब तक मन चंचल रहेगा, तब तक कदापि आत्मा का स्वरूप देखने में नहीं आ सकता है। इसलिए जो भव्यजीव आत्मा के स्वरूप को देखना चाहते हैं, उन्हें अपने इन्द्रियविषयों को रोकना चाहिए तथा परिग्रह का त्याग करना चाहिए, तभी आत्मा का स्वरूप जाना जा सकता है।

देखो ! एकेन्द्रिय से लेकर असंज्ञी पंचेन्द्रिय तक के जीव तो स्वभावतः मन के बिना किसी प्रकार के हेयोपादेय का चिन्तन ही नहीं कर सकते हैं इसलिए काललब्धि आने पर ही उनका कल्याण संभव है, किन्तु पाँचों इंद्रियाँ और मन को पाकर भी जो मनुष्य केवल संसार-शरीर-भोगों के प्रति ही अत्यासक्त रहते हुए आत्मतत्त्व के ज्ञान से शून्य रहते हैं, उनके लिए आचार्यों ने दीर्घसंसारी की संज्ञा प्रदान की है।

उपर्युक्त पद्मनन्दिपंचविंशतिका ग्रंथ में ही आगे आचार्यश्री ने जीव-आत्मा और मन का संवाद प्रस्तुत करते हुए कहा है—

एवं षट्खंडागमप्रथमखंडे तृतीयग्रन्थे क्षेत्रानुगम नाम तृतीयप्रकरणे गणिनी-
ज्ञानमतीकृतसिद्धान्तचिन्तामणिटीकायां इंद्रियमार्गणानाम
द्वितीयोऽधिकारः समाप्तः।

शार्दूलविक्रीडित छन्द —

भो चेतःकिमु जीव तिष्ठसि कथं, चिन्तास्थितं सा कुतो,
रागद्वेषवशान्त्वयोः परिचयः, कस्माच्च जातस्तव।
इष्टानिष्टसमागमादिति यदि, स्वप्नं तदावां गतौ,
नो चेन्मुंच समस्तमेतदचिरा-दिष्टादि संकल्पनम्॥१४५॥

अर्थात् जीव मन से पूछता है कि रे मन ! तू कैसे रहता है ? मन उत्तर देता है कि मैं सदा चिन्ता में व्यग्र रहता हूँ । फिर जीव पूछता है कि तुझे चिन्ता क्यों है ? तब मन कहता है कि मुझे राग-द्वेष के कारण सर्वदा चिन्ता बनी रहती है। फिर जीव पूछता है कि तेरा इनके साथ परिचय कहाँ से हुआ ? तब मन उत्तर देता है कि भली-बुरी वस्तुओं के सम्बन्ध से रागद्वेष का परिचय हुआ है। तब जीव पुनः कहता है कि हे मन ! यदि ऐसी बात है तो शीघ्र ही भली-बुरी वस्तुओं के सम्बन्ध को छोड़ो, नहीं तो हम दोनों को नरक में जाना पड़ेगा ।

सारांश यह है कि स्वभाव से न कोई वस्तु अच्छी है न बुरी, इसलिए इष्ट तथा अनिष्ट में राग-द्वेष करना निष्प्रयोजन है क्योंकि रागद्वेष से केवल दुःख ही भोगने पड़ते हैं, इसलिए समस्त परवस्तुओं को छोड़कर समता ही धारण करनी चाहिए, ऐसी अपने-अपने मन को सभी भव्यजीवों को शिक्षा देनी चाहिए । पंचेन्द्रिय की पूर्णता के साथ-साथ अनिन्द्रिय — मन को प्राप्त करने का यही सार है।

इस प्रकार षट्खंडागम ग्रंथ के प्रथम खंड में तृतीय ग्रन्थ में क्षेत्रानुगम नामक
तृतीय प्रकरण में गणिनी ज्ञानमती कृत सिद्धान्तचिन्तामणि टीका में
इन्द्रियमार्गणा नामक द्वितीय अधिकार समाप्त हुआ।



अथ कायमार्गणाधिकारः

अथ स्थलद्वयेन सप्तसूत्रैः कायमार्गणानाम तृतीयोऽधिकारः प्रारभ्यते। तत्र प्रथमस्थले स्थावरकायजीवानां क्षेत्रप्ररूपणत्वेन “कायाणुवादेण” इत्यादिसूत्रचतुष्टयं। तदनु द्वितीयस्थले त्रसकायजीवानां क्षेत्रप्रतिपादनत्वेन “तसकाइय” इत्यादिसूत्रत्रयं वक्ष्यते इति समुदायपातनिका।

अधुना पृथिवीकायिकादिजीवानां क्षेत्रनिरूपणाय सूत्रमवतार्यते श्रीभूतबलिभट्टारकेण —

कायाणुवादेण पुढविकाइया आउकाइया तेउकाइया वाउकाइया,
बादरपुढविकाइया बादरआउकाइया बादरतेउकाइया बादरवाउकाइया,
बादरवणप्फदिकाइयपत्तेयसरीरा तस्सेव अपज्जत्ता, सुहुमपुढविकाइया
सुहुमआउकाइया सुहुमतेउकाइया सुहुमवाउकाइया तस्सेव पज्जत्ता अपज्जत्ता
य केवडि खेत्ते? सव्वलोगे।।२२।।

सूत्रस्यार्थः सुगमः।

सूत्रकथित षड्विंशतिविधाः स्थावरकायजीवराशयः सामान्यकथनेन सर्वलोके निवसन्ति। विशेषापेक्षया कथ्यन्ते —

स्वस्थान-वेदना-कषाय-मारणान्तिक-उपपादगताः पृथिवीकायिकाः सूक्ष्मपृथिवीकायिकाः तेषां पर्याप्ताः

अथ कायमार्गणा अधिकार प्रारंभ

अब दो स्थलों में सात सूत्रों के द्वारा कायमार्गणा नाम का तृतीय अधिकार प्रारंभ होता है। उनमें से प्रथम स्थल में स्थावरकाय जीवों का क्षेत्र प्ररूपण करने की मुख्यता से “कायाणुवादेण” इत्यादि चार सूत्र कहेंगे। उसके पश्चात् द्वितीय स्थल में त्रसकायिक जीवों का क्षेत्र प्रतिपादन करने वाले “तसकाइय” इत्यादि तीन सूत्र कहेंगे, यह सूत्रों की समुदायपातनिका हुई।

अब पृथिवीकायिक आदि जीवों का क्षेत्र निरूपण करने के लिए श्रीभूतबली भट्टारक स्वामी सूत्र का अवतार करते हैं —

सूत्रार्थ —

कायमार्गणा के अनुवाद से पृथिवीकायिक, अष्कायिक, तैजस्कायिक, वायुकायिक जीव तथा बादर पृथिवीकायिक, बादर अष्कायिक, बादर तैजस्कायिक, बादरवायुकायिक और बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर जीव तथा इन्हीं पाँच बादरकायसम्बन्धी अपर्याप्तजीव, सूक्ष्मपृथिवीकायिक, सूक्ष्मअष्कायिक, सूक्ष्म तैजस्कायिक, सूक्ष्म वायुकायिक और इन्हीं सूक्ष्मों के पर्याप्त और अपर्याप्त जीव कितने क्षेत्र में रहते हैं ? सर्वलोक में रहते हैं ।।२२।।

हिन्दी टीका — सूत्र का अर्थ सुगम है। सूत्र में वर्णित छब्बीस प्रकार की स्थावरकायिक जीवराशियाँ सामान्य कथन के अनुसार सम्पूर्ण लोक में निवास करती हैं तथा विशेष कथन के अनुसार उनका वर्णन करते हैं — स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात, मारणान्तिकसमुद्घात और उपपाद को प्राप्त हुए पृथिवीकायिक

अपर्याप्ताः, अप्कायिकाः सूक्ष्माप्कायिकाः तेषामेव पर्याप्ताः अपर्याप्ताः, तेजस्कायिकाः सूक्ष्मतेजस्कायिकाः तेषामेव पर्याप्ताः अपर्याप्ताः, वायुकायिकाः सूक्ष्मवायुकायिकाः तेषामेव पर्याप्ताः अपर्याप्ताश्च इमे षोडशजीवराशयः पूर्वोक्त स्वस्थानादिपंचस्थानगताः सर्वलोके तिष्ठन्ति, उत्तराशीनां परिमाणस्य असंख्यातलोकप्रमाणत्वात्।

वैक्रियिकसमुद्घातगततेजस्कायिकराशिः पंचानां लोकानामसंख्यातभागे क्षेत्रे तिष्ठति। वैक्रियिकसमुद्घातगतवायुकायिकराशिः चतुर्लोकानामसंख्यातभागप्रमाणे क्षेत्रे वसति, अयं वायुकायिकराशिः मानुषक्षेत्रापेक्षया कियत् क्षेत्रे विहरति एतन्न ज्ञायते।

स्वस्थानस्वस्थान-वेदना-कषायसमुद्घातगता बादरपृथिवीकायिकाः तेषामेव अपर्याप्ताः जीवाः त्रिलोकानामसंख्यातभागे, तिर्यग्लोकस्य संख्यातगुणे, सार्धद्वयद्वीपादसंख्यातगुणे च क्षेत्रे निवसन्ति। किं च इमे बादरपृथिवीकायिकाः अपर्याप्ताश्च पृथिवीमाश्रित्य एव निवसन्ति। अतः इमाः पृथिव्यः जगत्प्रतरप्रमाणेन कथयन्ति—

तत्र प्रथमपृथिवी एकरज्जुविष्कंभा सप्तरज्जुदीर्घा एकलक्षाशीतिसहस्रयोजनबाहल्या। इयं घनफलापेक्षया स्वबाहल्यस्य सप्तमभागबाहल्यं जगत्प्रतरप्रमाणं भवति। अस्यायमर्थः—प्रथमपृथिवी दक्षिणोत्तरयोः सप्तरज्जुः, पूर्वपश्चिमयोः एकरज्जुः एकलक्षाशीतिसहस्रयोजनबाहल्या अस्ति।

द्वितीया पृथिवी सप्तमभागोन-द्विरज्जुविष्कंभा सप्तरज्जु-आयता द्वात्रिंशद्योजनसहस्रबाहल्या अस्ति। इयं घनफलापेक्षया चतुर्लक्षषोडशसहस्रयोजनानां एकोनपंचाशद्-भागबाहल्यं जगत्प्रतरप्रमाणमस्ति।

और सूक्ष्मपृथिवीकायिक तथा उन्हीं के पर्याप्त और अपर्याप्त जीव, अप्कायिक और सूक्ष्म अप्कायिक तथा उन्हीं के पर्याप्त और अपर्याप्त जीव, तैजस्कायिक और सूक्ष्म तैजस्कायिक तथा उन्हीं के पर्याप्त और अपर्याप्त जीव, वायुकायिक और सूक्ष्म वायुकायिक तथा उन्हीं के पर्याप्त और अपर्याप्त ये सोलह प्रकार के जीव सर्वलोक में रहते हैं क्योंकि उक्त राशियों का परिमाण असंख्यात लोकप्रमाण है। वैक्रियिकसमुद्घात को प्राप्त हुई तैजस्कायिकराशि पाँचों लोकों के असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्र में रहती है। वैक्रियिकसमुद्घात को प्राप्त हुई वायुकायिकराशि सामान्यलोक आदि चार लोकों के असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्र में रहती है। वैक्रियिकसमुद्घात को प्राप्त हुई वायुकायिक राशि मानुषक्षेत्र की अपेक्षा कितने क्षेत्र में रहती है, यह नहीं जाना जाता है। स्वस्थानस्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात को प्राप्त हुए बादर पृथिवीकायिक और उन्हीं के अपर्याप्त जीव सामान्यलोक आदि तीन लोकों के असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्र में, तिर्यग्लोक से संख्यातगुणे क्षेत्र में और अढ़ाईद्वीप से असंख्यातगुणे क्षेत्र में रहते हैं। चूंकि बादर पृथिवीकायिक जीव और उन्हीं के अपर्याप्त जीव पृथिवी का आश्रय लेकर ही रहते हैं, इसलिए इन पृथिवियों को जगत्प्रतर के प्रमाण से कहते हैं। उनमें से एक राजु चौड़ी, सात राजु लम्बी और बीस हजार योजन कम दो लाख योजन मोटी पहली पृथिवी है। यह घनफल की अपेक्षा अपने बाहल्य के सातवें भाग जगत्प्रतरप्रमाण है। इसका अर्थ यह है कि पहली पृथ्वी दक्षिण और उत्तर में सात राजू है, पूर्व-पश्चिम में एक राजू है और एक लाख अस्सी हजार योजन मोटी है।

दूसरी पृथिवी एक राजु के सात भागों में से एक भाग कम दो राजु चौड़ी, सात राजु लम्बी और बत्तीस हजार योजन मोटी है। यह घनफल की अपेक्षा चार लाख सोलह हजार योजनों के उन्चासवें भाग बाहुल्य जगत्प्रतर प्रमाण है।

तृतीयपृथिवी एकरज्ज्वाः सप्तभागेषु द्विभागोन त्रिरज्जुविष्कंभा सप्तरज्जुआयता अष्टाविंशतिसहस्रयोजन-
बाहल्या। इयं पंचलक्षद्वात्रिंशत्सहस्रयोजनानां एकोनपंचाशद्भागबाहल्यरूपं जगत्प्रतरप्रमाणमस्ति।

चतुर्थपृथिवी एकरज्ज्वाः सप्तभागैभ्यः त्रिभागोन-चतुःरज्जुविष्कंभा सप्तरज्जुआयता चतुर्विंशति-
सहस्रयोजनबाहल्या। इयं घनफलापेक्षया षड्लक्षयोजनानां एकोनपंचाशद्भागबाहल्यरूपं जगत्प्रतर-
प्रमाणमस्ति।

पंचमपृथिवी एकरज्जुसप्तभागैभ्यः चतुर्भागोनपंचरज्जुविष्कंभा सप्तरज्जुआयताविंशतिसहस्रयोजनबाहल्या।
घनफलापेक्षया षड्लक्षविंशतिसहस्रयोजनानां एकोनपंचाशद्भागबाहल्यरूप-जगत्प्रतरप्रमाणमस्ति।

षष्ठपृथिवी एकरज्ज्वाः सप्तभागैभ्यः पंचभागोन-षड्रज्जुविष्कंभा सप्तरज्जु-आयता षोडशसहस्रयोजन-
बाहल्या। घनफलापेक्षया पंचलक्षद्विंशतिसहस्रयोजनानां एकोनपंचाशद्भागबाहल्यरूपं जगत्प्रतरप्रमाणं
भवति।

सप्तमपृथिवी एकरज्जु-सप्तभागैभ्यः षड्भागोन-सप्तरज्जुविष्कंभा सप्तरज्जु-आयता अष्टसहस्रयोजन-
बाहल्या। घनफलापेक्षया त्रिलक्षचतुश्चत्वारिंशत्सहस्रयोजनानां एकोनपंचाशद्भागबाहल्यरूप-जगत्प्रतरप्रमाणं
भवति।

अष्टमपृथिवी सप्तरज्जु-आयता एकरज्जुविष्कंभा अष्टयोजनबाहल्या, इयं घनफलापेक्षया एकयोजनस्य
सप्तमभागाधिकएकयोजन बाहल्यं जगत्प्रतरप्रमाणं भवति*।

तीसरी पृथिवी एक राजु के सात भागों में से दो भाग कम तीन राजु चौड़ी, सात राजु लम्बी और अट्ठाईस
हजार योजन मोटी है। यह घनफल की अपेक्षा पाँच लाख बत्तीस हजार योजनों के उन्चासवें भाग बाहल्यरूप
जगत्प्रतर प्रमाण है।

चौथी पृथिवी एक राजु के सात भागों में से तीन भाग कम चार राजु चौड़ी, सात राजु लम्बी और
चौबीस हजार योजन मोटी है। यह घनफल की अपेक्षा छह लाख योजनों के उन्चासवें भाग बाहल्यरूप
जगत्प्रतर प्रमाण है।

पाँचवीं पृथिवी एक राजु के सात भागों में से चार भाग कम पाँच राजु चौड़ी, सात राजु लम्बी और
बीस हजार योजन मोटी है। यह घनफल की अपेक्षा छह लाख बीस हजार योजनों के उन्चासवें भाग
बाहल्यरूप जगत्प्रतर प्रमाण है।

छठी पृथिवी एक राजु के सात भागों में से पाँच भाग कम छह राजु चौड़ी, सात राजु लम्बी और सोलह
हजार योजन मोटी है। यह घनफल की अपेक्षा पाँच लाख बानवे हजार योजनों के उन्चासवें भाग बाहल्यरूप
जगत्प्रतर प्रमाण है।

सातवीं पृथिवी एक राजु के सात भागों में से छह भाग कम सात राजु चौड़ी, सात राजु लम्बी और आठ
हजार योजन मोटी है। यह घनफल की अपेक्षा तीन लाख चवालीस हजार योजनों के उन्चासवें भाग
बाहल्यरूप जगत्प्रतर प्रमाण है।

आठवीं पृथिवी सात राजु लम्बी, एक राजु चौड़ी और आठ योजन मोटी है। यह घनफल की अपेक्षा
एक योजन के सात भाग करने पर उनमें से सातवां भाग अर्थात् एक भाग अधिक एक योजन बाहल्यरूप
जगत्प्रतर प्रमाण है।

एतेषां सर्वेषां एकत्रीकृते तिर्यग्लोकबाहल्येभ्यः संख्यातगुणितबाहल्यं जगत्प्रतरं भवति। अत्र असंख्याताः लोकमात्राः पृथिवीकायिकाः तिष्ठन्ति। तेन तिर्यग्लोकात् संख्यातगुणा इति सिद्धम्।

एतैः पदैः लोकस्य असंख्यातभागे तिष्ठन्तः बादरपृथिवीकायिकाः सूत्रेण “सव्वलोगे चिट्ठंति” इति उक्ताः तत्कथं घटते?

नैतत्, मारणान्तिक-उपपादपदे प्रतीत्य तथोपदेशात्। मारणान्तिक-उपपादगताः सर्वलोके^१।

एवं बादराष्कायिकानां तेषामपर्याप्तानां च वक्तव्यमस्ति।

अत्र एषः विशेषो ज्ञातव्यः —

प्रथमपृथिवीतः सप्तमपृथिवीपर्यन्ताः इमाः सप्त पृथिव्यः नरकभूमयः उच्यन्ते। अष्टमपृथिवी तु ईषत्प्राग्भारा नाम्ना अस्ति अस्यां मध्ये सिद्धशिला वर्तते।

उक्तं च त्रिलोकसारे —

तिहुवणमुड्डारूढा, ईसिपभारा धरट्टमी रून्दा।

दिग्घा इगिसगरज्जू, अडयोजनपमिदबाहल्ला।।५५६।।

तम्मज्जे रूप्यमयं, छत्तायारं मणुस्समहिवासं।

सिद्धक्खेत्तं मज्झड-वेडं कमहीण बेहुलियं।।५५७।।

इन सबको एकत्रित करने पर तिर्यग्लोक के बाहल्य से संख्यातगुणे बाहल्यरूप जगत्प्रतर होता है। इन पृथिवियों में असंख्यात लोकप्रमाण पृथिवीकायिक जीव रहते हैं, इसलिए वे तिर्यग्लोक से संख्यातगुणे क्षेत्र में रहते हैं, यह सिद्ध हुआ।

शंका — इन पदों की अपेक्षा बादर पृथिवीकायिक जीव जब कि लोक के असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्र में रहते हैं, तो वे ‘सर्वलोक में रहते हैं’ ऐसा जो सूत्र द्वारा कहा गया है, वह कैसे घटित होता है ?

समाधान — नहीं, क्योंकि मारणान्तिकसमुद्घात और उपपाद की अपेक्षा ‘बादर पृथिवीकायिक जीव सर्वलोक में रहते हैं’ इस प्रकार का उपदेश दिया गया है।

इसी प्रकार बादर जलकायिक जीवों का एवं उन्हीं अपर्याप्त जीवों का कथन करना चाहिए। यहाँ यह विशेष जानना चाहिए कि —

प्रथम पृथिवी से सातवीं पृथिवी तक ये सातों पृथिवियाँ नरकभूमियाँ कहलाती हैं।

आठवीं पृथिवी का नाम ईषत् प्राग्भार है, इसके बीच में सिद्धशिला रहती है।

त्रिलोकसार ग्रंथ में कहा है —

गाथार्थ — तीन लोक के मस्तक पर आरूढ ईषत्प्राग्भार नाम वाली आठवीं पृथिवी है, इसकी चौड़ाई और लम्बाई क्रम से एक एवं सात राजु तथा बाहल्य आठ योजनप्रमाण है।।५५६।।

इस आठवीं पृथिवी के ठीक मध्य में रजतमय छत्राकार अर्थात् “उत्तानस्थित पात्रमिव चषकमिवेत्यर्थः” (माधवचन्द्र त्रैविद्यदेवकृत टीकानुसार) सीधे रखे कटोरे के समान और मनुष्य क्षेत्र के व्यासप्रमाण (पैंतालीस लाख योजन) सिद्धक्षेत्र है। जिसकी मध्य की मोटाई आठ योजन है और अन्यत्र क्रम-क्रम से हीन होती हुई अन्त में सीधे रखे हुए कटोरे के समान मोटाई रह गई है। इस सिद्धक्षेत्र के ऊपरवर्ती तनुवातवलय में

उत्ताणट्टिदमंते पत्तं व तणु तदुवरि तणुवादे।

अट्टगुणट्टा सिद्धा, चिट्ठंति अणंतसुहत्तिता॥५५८॥

कश्चिदाह — पृथिवीषु सर्वत्र जलं नोपलभ्यते, अतोऽपकायिकाः सर्वत्र पृथिवीषु न भवन्ति इति चेत्?

आचार्यः प्राह — बादरनामकर्मोदयेण बादरत्वमुपगतानां अनुपलंभानामपि सर्वपृथिवीषु अस्तित्व-विरोधाभावात्।

एवं उपर्युक्तप्रकारेण बादरतेजस्कायिकानां तस्यैव अपर्याप्तानां च ज्ञातव्यं भवति, तत्रास्ति विशेषः — एषां वैक्रियिकपदमस्ति, इमे च पंचानां लोकानामसंख्यातभागे तिष्ठन्ति।

तेजस्कायिका बादरा सर्वपृथिवीषु भवन्तीति कथं ज्ञायते?

आगमात् ज्ञायते, यत् बादरतेजस्कायिकाः सर्वपृथिवीषु सन्ति।

एवं उपर्युक्तप्रकारेण बादरवायुकायिकानां तेषां अपर्याप्तानां च पदानि वक्तव्यानि। अस्ति विशेषः —

सम्यक्त्ववादि आठ गुणों से युक्त और अनन्तसुख से तृप्त सिद्ध परमेष्ठी स्थित हैं॥५५७, ५५८॥

भावार्थ — तात्पर्य यह है कि ऊर्ध्वलोक में स्थित सर्वार्थसिद्धि इन्द्रक विमान के ध्वजादण्ड से बारह योजन ऊपर जाकर अर्थात् तीनलोक के मस्तक पर आरूढ़ ईषत्प्राग्भार संज्ञा वाली अष्टमी पृथिवी है। इसकी चौड़ाई एक राजु, लम्बाई (उत्तर-दक्षिण) सात राजु एवं मोटाई आठ योजनप्रमाण है तथा इतनी विशाल आठवीं पृथिवी के ठीक मध्य भाग में ४५ लाख योजन व्यासप्रमाण सिद्धक्षेत्र — सिद्धों का निवास स्थान सिद्धशिला है अर्थात् उतने मात्र क्षेत्र में अनन्तानन्त सिद्ध परमेष्ठी विराजमान हैं और आगे भी अनन्तकाल तक मोक्ष जाने वाले सभी अनन्तानन्त सिद्ध परमेष्ठी वहीं जाकर विराजमान होंगे। इस सिद्धशिला के अतिरिक्त आठवीं पृथिवी के शेष भाग में अनन्त एकेन्द्रिय निगोदिया जीव रहते हैं। उनमें ही हम लोग अनेकों बार आठवीं पृथ्वी पर जा चुके हैं किन्तु कर्मों को नष्ट करके सिद्ध बनकर कभी भी वहाँ नहीं गये हैं। वहाँ एक बार जाने के बाद पुनः कभी वापस संसार में यह जीव नहीं आता है, इसलिए अब वहाँ जाने हेतु ही हम सभी को तप, संयम आदि पालन कर कर्म नष्ट करने का पुरुषार्थ करना चाहिए।

यहाँ कोई शंका करता है कि —

पृथिवियों में सर्वत्र जल नहीं पाया जाता है, इसलिए जलकायिक जीव पृथिवियों में सर्वत्र नहीं रहते हैं?

आचार्य इस शंका का समाधान करते हैं —

बादर नामकर्म के उदय से बादरपने को प्राप्त हुए जलकायिक जीव सब पृथिवियों में नहीं रहते हुए भी उसका सर्व पृथिवियों में अस्तित्व होने में कोई विरोध नहीं आता है।

इस प्रकार उपर्युक्त विधि से अर्थात् बादर जलकायिक और उन्हीं के अपर्याप्त जीवों के समान बादर तेजस्कायिक और उन्हीं के अपर्याप्त जीवों का स्वस्थानस्वस्थान आदि पूर्वोक्त पदों में कथन करना चाहिए। उसमें विशेषता यह है कि इन बादरतेजस्कायिक जीवों के वैक्रियिकसमुद्घात पद भी होता है और वे पाँचों लोकों के असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्र में रहते हैं।

प्रश्न — बादर तेजस्कायिक जीव सभी पृथिवियों में रहते हैं, यह कैसे जाना जाता है ?

उत्तर — आगम ग्रंथों से यह जाना जाता है कि बादर तेजस्कायिक जीव सर्व पृथिवियों में रहते हैं।

इसी प्रकार बादर वायुकायिक जीव एवं उन्हीं अपर्याप्त जीवों के पदों का उपर्युक्त प्रकार से कथन

स्वस्थान-वेदना-कषायसमुद्घातगतानां बादरवायुकायिक-बादरवायुकायिकापर्याप्तानां त्रिलोकानाम-संख्यातभागप्रमाणं क्षेत्रमस्ति, नरतिर्यग्लोकाभ्यां असंख्यातगुणितक्षेत्रं च। वैक्रियिकसमुद्घातप्राप्ताः बादरवायुकायिकाः चतुर्लोकानामसंख्यातभागे निवसन्ति, किन्तु अत्र मनुष्यक्षेत्रं न ज्ञायते। सर्वेषां अपर्याप्तजीवानां वैक्रियिकपदं नास्ति।

बादरवनस्पतिकायिकप्रत्येकशरीराः तेषामपर्याप्ताः जीवाः, बादरनिगोदप्रतिष्ठितास्तेषामेवापर्याप्ताः जीवाः, बादरपृथिवीकायिकजीवसदृशाः एव।

अधुना बादरपृथिवीकायिकादिजीवानां क्षेत्रनिरूपणाय सूत्रावतारो भवति —

**बादरपुढविकाइया बादरआउकाइया बादरतेउकाइया बादरवणप्फदिका-
इयपत्तेयसरीरा पज्जत्ता केवडि खेत्ते? लोगस्स असंखेज्जदिभागे।।२३।।**

बादरपृथिवीपर्याप्ताः स्वस्थान-वेदना-कषायसमुद्घातगताः चतुर्लोकानामसंख्येयभागे, सार्धद्वयद्वीपाद-संख्यातगुणे च तिष्ठन्ति।

मारणान्तिक-उपपादगताः त्रिलोकामसंख्येयभागे, नरतिर्यग्लोकाभ्यामसंख्यातगुणे च तिष्ठन्ति। एवं बादरजलकायिकपर्याप्ताः। बादरवनस्पतिकायिकप्रत्येकशरीरपर्याप्ताः वेदनाकषायस्वस्थानेषु तिर्यग्लोकस्य संख्यातभागे। एतेषां राशीनां पल्योपमस्य असंख्यातभागमात्रा जगत्प्रतराणि प्रतरांगुलेन खण्डयित्वा

करना चाहिए। इसमें विशेषता यह है कि स्वस्थान, वेदनासमुद्घात और कषायसमुद्घात को प्राप्त हुए बादर वायुकायिक और बादर वायुकायिक अपर्याप्त जीव सामान्यलोक आदि तीन लोकों के असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्र में और तिर्यग्लोक तथा मनुष्यलोक इन दो लोकों से असंख्यातगुणे क्षेत्र में रहते हैं। वैक्रियिकसमुद्घात को प्राप्त हुए बादर वायुकायिक जीव सामान्यलोक आदि चार लोकों के असंख्यातवें भाग-प्रमाण क्षेत्र में रहते हैं किन्तु यहाँ मनुष्यक्षेत्र नहीं जाना जाता है कि उसके कितने भाग में रहते हैं। सभी अपर्याप्त जीवों में वैक्रियिक समुद्घात पद नहीं होता है। बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर और उन्हीं के अपर्याप्त जीव तथा बादर निगोद प्रतिष्ठित और उन्हीं के अपर्याप्त जीव, बादर पृथिवीकायिक जीवों के समान हैं।

अब बादर पृथिवीकायिक आदि जीवों को क्षेत्र निरूपण करने हेतु सूत्र का अवतार होता है —

सूत्रार्थ —

बादर पृथिवीकायिक पर्याप्त जीव, बादर जलकायिक पर्याप्त जीव, बादर तैजस्कायिक पर्याप्त जीव और बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर पर्याप्त जीव कितने क्षेत्र में रहते हैं ? लोक के असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्र में रहते हैं ।।२३।।

हिन्दी टीका — स्वस्थानस्वस्थान, वेदनासमुद्घात और कषायसमुद्घात को प्राप्त हुए बादर पृथिवीकायिक पर्याप्त जीव सामान्यलोक आदि चार लोकों के असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्र में और अढ़ाईद्वीप से असंख्यातगुणे क्षेत्र में रहते हैं। मारणान्तिक समुद्घात और उपपाद को प्राप्त हुए बादर पृथिवीकायिक पर्याप्त जीव सामान्यलोक आदि तीन लोकों के असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्र में तथा मनुष्य और तिर्यग्लोक से असंख्यातगुणे क्षेत्र में रहते हैं। बादर जलकायिक पर्याप्त जीव भी स्वस्थानस्वस्थान आदि पदों में इसी प्रकार रहते हैं। बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर पर्याप्त जीववेदना, कषाय, स्वस्थानपद में स्थित हुए तिर्यग्लोक के संख्यातभाग में रहते हैं। पल्योपम के असंख्यातवें भागप्रमाण जगत्प्रतरों को प्रतरांगुल से खंडित करके जो एक भाग लब्ध

एकखण्डमात्रप्रमाणं भवति।

अत्र कश्चिदाह — प्रत्येकशरीरपर्याप्त जघन्यावगाहनतः द्वीन्द्रियपर्याप्त-जघन्यावगाहना असंख्यातगुणा इति कथं ज्ञायते?

आचार्यदेवः समाधत्ते — वेदनाक्षेत्रविधाने उक्तावगाहनादण्डकात् इति।

अधुना 'वेदनाक्षेत्रविधाने' कथितावगाहनादण्डकानि उच्यन्ते —

१. सूक्ष्मनिगोदापर्याप्तजीवस्य जघन्यावगाहना सर्वतः स्तोका।
२. सूक्ष्मवायुकायिक-अपर्याप्तस्य जघन्यावगाहना असंख्यातगुणा।
३. सूक्ष्मतेजस्कायिक-अपर्याप्तस्य जघन्यावगाहना असंख्यातगुणा।
४. सूक्ष्माष्कायिक-अपर्याप्तस्य जघन्यावगाहना असंख्यातगुणा।
५. सूक्ष्मपृथिवीकायिक-अपर्याप्तस्य जघन्यावगाहना असंख्यातगुणा।
६. बादरवायुकायिक-अपर्याप्तस्य जघन्यावगाहना असंख्यातगुणा।
७. बादरतेजस्कायिक-अपर्याप्तस्य जघन्यावगाहना असंख्यातगुणा।
८. बादराष्कायिक-अपर्याप्तस्य जघन्यावगाहना असंख्यातगुणा।
९. बादरपृथिवीकायिक-अपर्याप्तस्य जघन्यावगाहना असंख्यातगुणा।
१०. बादरनिगोदजीव-अपर्याप्तस्य जघन्यावगाहना असंख्यातगुणा।
११. निगोदप्रतिष्ठितजीव-अपर्याप्तस्य जघन्यावगाहना असंख्यातगुणा।

आवे, उतना इन राशियों का प्रमाण है।

यहाँ कोई शंका करता है कि प्रत्येक शरीर पर्याप्त जीवों की जघन्य अवगाहना से ही द्वीन्द्रियपर्याप्त जीवों की जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी है, यह कैसे जाना जाता है?

आचार्यदेव इसका समाधान करते हैं — वेदनाक्षेत्र विधान में कहे गए अवगाहनादण्डक से जाना जाता है कि प्रत्येक शरीर पर्याप्त जीवों की जघन्य अवगाहना से द्वीन्द्रिय पर्याप्त जीवों की जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी है।

अब 'वेदनाक्षेत्र विधान' में कहे गये अवगाहनादण्डकों का वर्णन करते हैं —

१. सूक्ष्म निगोद अपर्याप्त जीव की जघन्य अवगाहना सबसे स्तोक है।
२. इससे सूक्ष्म वायुकायिक अपर्याप्त जीव की जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी है।
३. इससे सूक्ष्म तैजस्कायिक अपर्याप्त जीव की जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी है।
४. इससे सूक्ष्म जलकायिक अपर्याप्त जीव की जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी है।
५. इससे सूक्ष्म पृथिवीकायिक अपर्याप्त जीव की जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी है।
६. इससे बादर वायुकायिक अपर्याप्त जीव की जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी है।
७. इससे बादर तैजस्कायिक अपर्याप्त जीव की जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी है।
८. इससे बादर जलकायिक अपर्याप्त जीव की जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी है।
९. इससे बादर पृथिवीकायिक अपर्याप्त जीव की जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी है।
१०. इससे बादर निगोद अपर्याप्त जीव की जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी है।
११. इससे निगोद प्रतिष्ठित अपर्याप्त जीव की जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी है।

२९. सूक्ष्मपृथिवीकायिकनिर्वृत्ति-पर्याप्तस्य जघन्यावगाहना असंख्यातगुणा।
३०. सूक्ष्मपृथिवीकायिकनिर्वृत्ति-अपर्याप्तस्य उत्कृष्टावगाहना विशेषाधिका।
३१. सूक्ष्मपृथिवीकायिकनिर्वृत्ति-पर्याप्तस्य उत्कृष्टावगाहना विशेषाधिका।
३२. बादरवायुकायिकनिर्वृत्तिपर्याप्तस्य जघन्यावगाहना असंख्यातगुणा।
३३. बादरवायुकायिकनिर्वृत्ति-अपर्याप्तस्य उत्कृष्टावगाहना विशेषाधिका।
३४. बादरवायुकायिकनिर्वृत्ति-पर्याप्तस्य उत्कृष्टावगाहना विशेषाधिका।
३५. बादरतेजस्कायिकनिर्वृत्ति-पर्याप्तस्य जघन्यावगाहना असंख्यातगुणा।
३६. बादरतेजस्कायिकनिर्वृत्ति-अपर्याप्तस्य उत्कृष्टावगाहना विशेषाधिका।
३७. बादरतेजस्कायिकनिर्वृत्ति-पर्याप्तस्य उत्कृष्टावगाहना विशेषाधिका।
३८. बादराष्कायिकनिर्वृत्ति-पर्याप्तस्य जघन्यावगाहना असंख्यातगुणा।
३९. बादराष्कायिकनिर्वृत्ति-अपर्याप्तस्य उत्कृष्टावगाहना विशेषाधिका।
४०. बादराष्कायिकनिर्वृत्ति-पर्याप्तस्य उत्कृष्टावगाहना विशेषाधिका।
४१. बादरपृथिवीकायिकनिर्वृत्ति-पर्याप्तस्य जघन्यावगाहना असंख्यातगुणा।
४२. बादरपृथिवीकायिकनिर्वृत्ति-अपर्याप्तस्य उत्कृष्टावगाहना विशेषाधिका।
४३. बादरपृथिवीकायिकनिर्वृत्ति-पर्याप्तस्य उत्कृष्टावगाहना विशेषाधिका।
४४. बादरनिगोदनिर्वृत्तिपर्याप्तस्य जघन्यावगाहना असंख्यातगुणा।
४५. बादरनिगोदनिर्वृत्ति-अपर्याप्तस्य उत्कृष्टावगाहना विशेषाधिका।

- [illegible]

६३. बादरवनस्पतिप्रत्येकशरीरनिर्वृत्तिपर्याप्तस्य उत्कृष्टावगाहना संख्यातगुणा।

६४. पंचेन्द्रियनिर्वृत्तिपर्याप्तस्य उत्कृष्टावगाहना संख्यातगुणा^१।

एवं चतुषष्टिअवगाहनाः क्रमेण कथिताः।

अत्र सूक्ष्मात् सूक्ष्मस्य अवगाहनागुणाकारो आवल्याः असंख्येयभागः। सूक्ष्मात् बादरस्य अवगाहना-गुणाकारः पल्योपमस्य असंख्येयभागः। बादराद् सूक्ष्मस्य अवगाहनागुणाकारः आवल्याः असंख्येयभागः। बादराद् बादस्य अवगाहनागुणाकारः पल्योपमस्य असंख्येयभागः। बादराद् बादरस्य अवगाहनागुणाकारः संख्याताः समयाः।

अत्र बादरवनस्पतिकायिकप्रत्येकशरीरपर्याप्तस्य जघन्यावगाहना घनांगुलस्य असंख्येयभागः इत्युक्ते भवतु नामेदं, प्रतरांगुलभागहारात् घनांगुलभागहारः संख्यातगुणः इति कुतः ज्ञायते?

‘तिर्यग्लोकस्य संख्यातभागे’ इति गुरुपदेशात् ज्ञायते। एतस्मात् चैव बादरवनस्पतिकायिकप्रत्येकशरीरस्य अवगाहनायां जीवबहुत्वं च ज्ञातव्यम्।

कश्चिदाह — बादरनिगोदप्रतिष्ठितपर्याप्ताः सूत्रे किमिति नोक्ताः?

आचार्यः प्राह — नैतत्, तेषां प्रत्येकशरीरेषु अंतर्भावात्।

बादरतेजस्कायिकपर्याप्ताः स्वस्थान-वेदना-कषाय-वैक्रियिकसमुद्घातगताः पंचानां लोकानामसंख्यातभागे।

६३. इससे बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर निर्वृत्तिपर्याप्त जीव की उत्कृष्ट अवगाहना संख्यातगुणी है।

६४. इससे पंचेन्द्रिय निर्वृत्तिपर्याप्त जीव की उत्कृष्ट अवगाहना संख्यातगुणी है।

इस प्रकार चौंसठ अवगाहनादण्डक क्रम से कहे गये हैं —

यहाँ एक सूक्ष्म जीव से दूसरे सूक्ष्म जीव की अवगाहना का गुणकार आवली का असंख्यातवाँ भाग है। सूक्ष्मजीव से बादर जीवों की अवगाहना का गुणकार पल्योपम का असंख्यातवाँ भाग है। बादर जीव से सूक्ष्म जीव की अवगाहना का गुणकार आवली का असंख्यातवाँ भाग है। बादर जीव से अन्य बादर जीव की अवगाहना का गुणकार पल्योपम का असंख्यातवाँ भाग है। बादर से बादर की अवगाहना का गुणकार संख्यात समय है अर्थात् बादर पर्याप्त द्वीन्द्रिय जीव की जघन्य अवगाहना से बादर पर्याप्त त्रीन्द्रिय आदि जीवों की अवगाहना का गुणकार संख्यात समय है।

शंका — यहाँ पर बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर पर्याप्त की जघन्य अवगाहना घनांगुल के असंख्यातवें भाग कही है, सो वह भले ही रही आवे, किन्तु प्रतरांगुल के भागहार से घनांगुल का भागहार संख्यातगुणा होता है, यह कैसे जाना जाता है?

समाधान — ‘तिर्यग्लोक के संख्यातवें भाग में रहते हैं’ इस प्रकार के गुरुपदेश से जाना जाता है कि प्रतरांगुल के भागहार से घनांगुल का भागहार संख्यातगुणा है तथा उक्त इसी गुरुपदेश से बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर की अवगाहना में जीवों की अधिकता भी जाननी चाहिए।

यहाँ कोई प्रश्न करता है कि सूत्र में बादर निगोदप्रतिष्ठित पर्याप्त जीव क्यों नहीं कहे?

आचार्यदेव इस का समाधान देते हैं कि यह कोई दोष नहीं है क्योंकि बादर निगोदप्रतिष्ठित पर्याप्त जीवों का प्रत्येक शरीर पर्याप्त वनस्पतिकायिक जीवों में अन्तर्भाव हो जाता है।

स्वस्थानस्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात और वैक्रियिकसमुद्घातगत बादर तैजस्कायिक

मारणान्तिक-उपपादगताः चतुर्लोकानामसंख्येयभागे, मानुषक्षेत्रादसंख्यातगुणे क्षेत्रे च तिष्ठन्ति।

अत्र चतुःषष्टिकोष्टकान्तर्गताः चतुःषष्टि-अवगाहनाः ज्ञातव्याः।

बादरवायुकायिकानां क्षेत्रनिरूपणाय सूत्रावतारो भवति—

बादरवाउक्काइयपज्जत्ता केवडि खेत्ते? लोगस्स संखेज्जदिभागे।।२४।।

पर्याप्त जीव पांचों लोकों के असंख्यातवें भाग में रहते हैं। मारणान्तिकसमुद्घात और उपपादगत वे ही बादर तैजस्कायिक जीव चारों लोकों के असंख्यातवें भाग में और मनुष्यलोक से असंख्यातगुणे क्षेत्र में रहते हैं।

यहाँ चौंसठ कोष्टकों के अन्तर्गत चौंसठ प्रकार की अवगाहनाएँ जानना चाहिए।

चौंसठ अवगाहनों का यंत्र

(गाथा ९७ से गाथा १०१)

सूक्ष्मनिगोद १ वात २ तेज ३ अप् ४ पृथ्वी ५ अप.ज.	सूक्ष्म निगोद १८ वात २१ तेज २४ अप् २७ पृथ्वी ३० अपर्याप्त उत्कृष्ट	वादर वात ६ तेज ७ अप् ८ पृथ्वी ९ निगोद १० प्र. प्रत्येक ११ अप. ज.	वादर वात ३३ तेज ३६ अप् ३९ पृथ्वी ४२ निगोद ४५ प्रति प्रत्येक ४८ अपर्याप्त उत्कृष्ट	अप्र. प्रत्येक १२ वेन्द्री १३ तेइन्द्री १४ चतुरिन्द्रिय १५ पंचेन्द्रिय १६ अप. ज.	तेइन्द्री ५५ चौइन्द्री ५६ वेइन्द्री ५७ अप्रतिष्ठित ५८ पंचेन्द्रिय ५९ अपर्याप्त उत्कृष्ट
	तेइन्द्री ६० चौइन्द्री ६१ वेइन्द्रिय ६२ अप्रतिष्ठित प्रत्येक ६३ पंचेन्द्रिय ६४ पर्याप्त उत्कृष्ट	सूक्ष्म निगोद १७ वात २० तेज २३ अप् २६ पृथ्वी २९ पर्याप्त. ज.	वादर वात ३२ तेज ३५ अप् ३८ पृथ्वी ४१ निगोद ४४ प्र. प्रत्येक ४७ पर्याप्त ज.	अप्र. प्रत्येक ५० वेइन्द्री ५१ तेइन्द्री ५२ चौइन्द्री ५३ पंचेन्द्रिय ५४ पर्याप्त. ज.	
		सूक्ष्मनिगोद १९ वात २२ तेज २५ अप् २८ पृथ्वी ३१ पर्याप्त उत्कृष्ट	वादर वात ३४ तेज ३७ अप् ४० पृथ्वी ४३ निगोद ४६ प्रति प्रत्येक ४९ पर्याप्त उत्कृष्ट		

अब बादर वायुकायिक जीवों का क्षेत्र निरूपण करने के लिए सूत्र का अवतार होता है—

सूत्रार्थ—

बादर वायुकायिक पर्याप्त जीव कितने क्षेत्र में रहते हैं ? लोक के संख्यातवें भाग में रहते हैं।।२४।।

स्वस्थान-वेदना-कषाय-मारणान्तिक-उपपादगताः बादरवायुकायिकपर्याप्ताः त्रिलोकानां संख्यातभागे, द्वाभ्यां लोकाभ्यां असंख्यातगुणे।

बादरवायुकायिकपर्याप्तराशिः मारणान्तिक-उपपादपदाभ्यां सर्वलोके कथं न भवति?

न भवति, किंच रज्जुप्रतरमुखेन पंचरज्जुआयामेन स्थितक्षेत्रे चैव प्रायेण तेषामुत्पत्तित्वात्।

अन्यक्षेत्रांतरं गत्वा उत्पद्यमानजीवानां अतिस्तोकत्वं कथमवगम्यते? “बादरवाउक्काडयपज्जत्ता लोगस्स संखेज्जदिभागे” इति सूत्रादवगम्यते। अन्यथा सूत्रस्य पृथक् आरंभो निरर्थको भवेत् बादरवायु-अपर्याप्तेषु अंतर्भावोऽपि भवेत्, किन्तु नैतत् अतएव एतत्सूत्रं सार्थकमेव।

वैक्रियिकसमुद्घातगताः चतुर्लोकानामसंख्येयभागे। सार्धद्वयद्वीपस्य व्यवस्था न विज्ञायते।

संप्रति वनस्पतिकायिकनिगोदजीवानां क्षेत्रनिरूपणाय सूत्रमवतरति—

वणप्फदिकाडय-णिगोदजीवा बादरा सुहुमा पज्जत्तापज्जत्ता केवडि खेत्ते? सव्वलोगे।।२५।।

हिन्दी टीका—स्वस्थान, वेदना, कषाय, मारणान्तिक समुद्घात एवं उपपाद पद को प्राप्त बादरवायुकायिक पर्याप्त जीव तीनों लोकों के संख्यातवें भाग में और दो लोकों (तिर्यग्लोक एवं मनुष्यलोक) के असंख्यातगुणे क्षेत्र में रहते हैं।

शंका—बादर वायुकायिक पर्याप्तराशि लोक के संख्यातवें भागप्रमाण है, जब वह मारणान्तिकसमुद्घात उपपाद पदों को प्राप्त हो, तब वह सर्वलोक में क्यों नहीं रहती है ?

समाधान—नहीं रहती है, क्योंकि राजुप्रतरप्रमाण मुख से और पांच राजु आयाम से स्थित क्षेत्र में ही प्रायः करके उन बादर वायुकायिक पर्याप्त जीवों की उत्पत्ति होती है।

शंका—अन्य क्षेत्रान्तर को जाकर उत्पन्न होने वाले बादर वायुकायिक पर्याप्त जीव अत्यन्त थोड़े हैं, यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान—बादर वायुकायिक पर्याप्त जीव लोक के संख्यातवें भाग में रहते हैं, इस सूत्र से जाना जाता है। यदि ऐसा न माना जावे, तो इस सूत्र का पृथक् आरंभ निरर्थक हो जाएगा, क्योंकि फिर तो उनका बादर वायुकायिक अपर्याप्तों में अन्तर्भाव हो जायेगा किन्तु ऐसा नहीं है अतः यह सूत्र सार्थक ही है। वैक्रियिक समुद्घातगत बादर वायुकायिक पर्याप्त जीव सामान्यलोक आदि चार लोकों के असंख्यातवें भाग में रहते हैं। अढ़ाईद्वीप से अधिक क्षेत्र में रहते हैं या कम में, यह जाना नहीं जाता है।

अब वनस्पतिकायिक निगोद जीवों का क्षेत्र बतलाने हेतु सूत्र अवतरित होता है—

सूत्रार्थ—

वनस्पतिकायिक जीव, निगोदजीव, वनस्पतिकायिक बादरजीव, वनस्पतिकायिक सूक्ष्मजीव, वनस्पतिकायिक बादर पर्याप्त जीव, वनस्पतिकायिक बादर अपर्याप्त जीव, वनस्पतिकायिक सूक्ष्म पर्याप्त जीव, वनस्पतिकायिक सूक्ष्म अपर्याप्त जीव, निगोद बादर पर्याप्त जीव, निगोद बादर अपर्याप्त जीव, निगोद सूक्ष्म पर्याप्त जीव और निगोद सूक्ष्म अपर्याप्त जीव कितने क्षेत्र में रहते हैं? सर्वलोक में रहते हैं ।।२५।।

वनस्पतिकायिकजीवाः, निगोदजीवाः, वनस्पतिकायिकबादरजीवाः, वनस्पतिकायिकसूक्ष्मजीवाः, वनस्पतिकायिकबादरपर्याप्तजीवाः, वनस्पतिकायिकबादर-अपर्याप्तजीवाः, वनस्पतिकायिकसूक्ष्मपर्याप्तजीवाः, वनस्पतिकायिकसूक्ष्म-अपर्याप्तजीवाः, निगोदबादरपर्याप्तजीवाः, निगोदबादरअपर्याप्तजीवाः, निगोदसूक्ष्म-पर्याप्तजीवाः, निगोदसूक्ष्म-अपर्याप्तजीवाश्च कियत् क्षेत्रे तिष्ठन्ति?

सर्वलोके तिष्ठन्ति।

वनस्पतिकायिकाः सूक्ष्मवनस्पतिकायिकाः एषां पर्याप्ताः अपर्याप्ताश्च स्वस्थान-वेदना-कषाय-मारणान्तिक-उपपादगताः इमे सर्वलोके निवसन्ति। एवमेव निगोदजीवाः सूक्ष्मनिगोदजीवाः एषां पर्याप्ताः अपर्याप्ताश्च सर्वलोके निवसन्ति।

स्वस्थान-वेदनासमुद्घातगताः बादरवनस्पतिकायिकाः बादरनिगोदजीवाश्च तेषां पर्याप्ताः अपर्याप्ताश्च त्रिलोकानामसंख्यातभागे, तिर्यग्लोकस्य संख्यातगुणे मानुषक्षेत्रस्यासंख्यातगुणे क्षेत्रे च तिष्ठन्ति।

मारणान्तिक-उपपादगताश्च इमे बादरजीवाः सर्वलोके निवसन्ति। उपयुक्ताः सर्वे बादरजीवाः पृथिवीं आश्रित्य एव तिष्ठन्ति, अतो लोकस्य असंख्यातभागे निवसन्ति।

एतत् कथं ज्ञायते?

एतदगुरुपदेशाद् ज्ञायते, यत् बादरवनस्पतिकायिकजीवा पृथिवीराश्रित्य एव तिष्ठन्ति।

एवं प्रथमस्थले पंचविधस्थावरकायजीवानां क्षेत्रनिरूपणपरं सूत्रचतुष्टयं गतम्।

हिन्दी टीका—सूत्र का अभिप्राय यह है कि एकेन्द्रिय स्थावर जीवों में वनस्पतिकायिक जीव, निगोदिया जीव, वनस्पतिकायिक बादर जीव, वनस्पतिकायिक सूक्ष्मजीव, वनस्पतिकायिक बादर पर्याप्त जीव, वनस्पतिकायिक बादर अपर्याप्त जीव, वनस्पतिकायिक सूक्ष्म पर्याप्त जीव, वनस्पतिकायिक सूक्ष्म अपर्याप्त जीव, निगोद बादर पर्याप्त जीव, निगोद बादर अपर्याप्त जीव, निगोद सूक्ष्म पर्याप्त जीव और निगोद सूक्ष्म अपर्याप्त जीव कितने क्षेत्र में रहते हैं? ऐसा प्रश्न होने पर उत्तर प्राप्त होता है कि वे सम्पूर्ण लोक में रहते हैं।

वनस्पतिकायिक जीव, सूक्ष्मवनस्पतिकायिक तथा उनके पर्याप्त-अपर्याप्त जीव, स्वस्थान, वेदना, कषाय, मारणांतिक समुद्घात और उपपाद पद को प्राप्त सभी जीव सम्पूर्ण लोक में रहते हैं। इसी प्रकार निगोदजीव और सूक्ष्म निगोद जीव तथा उनके पर्याप्त और अपर्याप्त जीव सर्वलोक में रहते हैं, ऐसा जानना चाहिए। स्वस्थान और वेदना समुद्घात बादर वनस्पतिकायिक और बादर निगोद जीव तथा उनके पर्याप्त और अपर्याप्त जीव सामान्यलोक आदि तीन लोकों के असंख्यातवें भाग में, तिर्यग्लोक से संख्यातगुणे और मानुषक्षेत्र से असंख्यातगुणे क्षेत्र में रहते हैं। मारणांतिक समुद्घात और उपपादगत ये सब बादर जीव सर्वलोक में रहते हैं। बादर जीव पृथिवियों का ही आश्रय लेकर रहते हैं, इसलिये वे लोक के असंख्यातवें भाग में रहते हैं।

शंका—यह कैसे जाना जाता है?

समाधान—यह बात गुरु के उपदेश से जानी जाती है क्योंकि बादर वनस्पतिकायिक जीव पृथिवियों के ही आश्रय से रहते हैं।

इस प्रकार प्रथम स्थल में पाँच प्रकार के स्थावरकायिक जीवों का क्षेत्र निरूपण करने वाले चार सूत्र पूर्ण हुए।

अधुना त्रसजीवानां क्षेत्रप्रतिपादनार्थं सूत्रावतारः क्रियते —

**तसकाइय-तसकाइयपज्जत्तएसु मिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि
त्ति केवडि खेत्ते? लोगस्स असंखेज्जदिभागे।।२६।।**

सूत्रं सुगमं।

त्रसकायिक-त्रसकायिकपर्याप्तमिथ्यादृष्टयः स्वस्थान-विहारवत्स्वस्थान-वेदना-कषाय-वैक्रियिक-समुद्घातगताः त्रिलोकानामसंख्येयभागे, तिर्यग्लोकस्य संख्येयभागे, सार्धद्वयद्वीपादसंख्यातगुणे। मारणान्तिक-उपपादगताः त्रिलोकानामसंख्यातभागे, नरतिर्यग्लोकाभ्यामसंख्यातगुणे क्षेत्रे तिष्ठन्ति। शेषगुणस्थानानां व्यवस्था पंचेन्द्रियभंगवत् ज्ञातव्या।

सयोगिकेवलिनं क्षेत्रप्ररूपणाय सूत्रमवतरति —

सजोगिकेवली ओघं।।२७।।

सूत्रं सुगमं वर्तते।

त्रसापर्याप्तानां क्षेत्रनिरूपणाय सूत्रमवतरति —

तसकाइय-अपज्जत्ता पंचिंदिय अपज्जत्ताणं भंगो।।२८।।

अब त्रसजीवों का क्षेत्र प्रतिपादन करने के लिए सूत्र का अवतार किया जा रहा है —

सूत्रार्थ —

त्रसकायिक और त्रसकायिक पर्याप्त जीवों में मिथ्यादृष्टि गुणस्थान से लेकर आयोगिकेवली गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीव कितने क्षेत्र में रहते हैं ? लोक के असंख्यातवें भाग में रहते हैं ।।२६।।

हिन्दी टीका — सूत्र का अर्थ सरल है।

त्रसकायिक और त्रसकायिक पर्याप्त मिथ्यादृष्टि जीव स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात और वैक्रियिकसमुद्घातगत जीव सामान्यलोक आदि तीनों लोकों के असंख्यातवें भाग में, तिर्यग्लोक के संख्यातवें भाग में और अढ़ाईद्वीप से असंख्यातगुणे क्षेत्र में रहते हैं। मारणांतिक समुद्घात और उपपादगत त्रसकायिक और त्रसकायिक पर्याप्त मिथ्यादृष्टि जीव तीनों लोकों के असंख्यातवें भाग में तथा मनुष्यलोक और तिर्यग्लोक से असंख्यातगुणे क्षेत्र में रहते हैं। शेष गुणस्थानवर्ती त्रसकायिक और त्रसकायिक पर्याप्त जीवों का क्षेत्र पंचेन्द्रिय जीवों के क्षेत्रों के समान जानना चाहिए।

अब सयोगिकेवली भगवन्तों का क्षेत्र बतलाने हेतु सूत्र का अवतार होता है —

सूत्रार्थ —

सयोगिकेवली का क्षेत्र ओघनिरूपित सयोगिकेवली के क्षेत्र के समान है।।२७।।

सूत्र का अर्थ सुगम है, इसलिए यहाँ विशेष वर्णन नहीं किया जा रहा है।

अब त्रसकायिक अपर्याप्त जीवों का क्षेत्र निरूपण करने के लिए सूत्र का अवतरित होता है —

सूत्रार्थ —

त्रसकायिक लब्ध्यपर्याप्त जीवों का क्षेत्र पंचेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तकों के क्षेत्र के समान है।।२८।।

त्रसकायिक-लब्ध्यपर्याप्तजीवानां क्षेत्रं पंचेन्द्रियलब्ध्यपर्याप्तक्षेत्रवत् ज्ञातव्यम्।

तात्पर्यमेतत् — एषां षट्कायजीवानां क्षेत्राणि ज्ञात्वा मनोवचनकायैः कृतकारितानुमोदनैश्च तेषां हिंसा त्यक्तव्या, अनेन जीवदयाप्रतिपालनेनैव मोक्षमार्गः सुलभो भवति।

एवं द्वितीयस्थले त्रसकायजीवानां क्षेत्रनिरूपणत्वेन त्रीणि सूत्राणि गतानि।

हिन्दी टीका — त्रसकायिक लब्ध्यपर्याप्तक जीवों का क्षेत्र पंचेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक जीवों के क्षेत्र के समान जानना चाहिए।

तात्पर्य यह है कि इन छहों काय वाले जीवों का क्षेत्र जानकर हम सभी को मन, वचन, काय से तथा कृत, कारित, अनुमोदनापूर्वक उन सभी जीवों की हिंसा का त्याग करना चाहिए। उस त्याग के द्वारा जीवदयारूप धर्म का प्रतिपालन करने से ही मोक्षमार्ग सुलभ होता है।

इस प्रकार द्वितीय स्थल में त्रसकायिक जीवों का क्षेत्र निरूपण करने वाले तीन सूत्र पूर्ण हुए।

विशेषार्थ — इस कार्यमार्गणा अधिकार में पंचस्थावर एवं त्रसकायिक जीवों का क्षेत्र बताया गया है कि ये सभी जीव सम्पूर्ण लोक के भीतर अपनी-अपनी योग्यतानुसार रहते हैं तथा इस प्रकार की चौरासी लाख योनियों में अनादिकाल से भ्रमण करते हुए हम सभी ने अनन्त पर्यायों को प्राप्त किया है पुनः अब महान पुण्योदय से त्रसकाय में मनुष्यपर्याय प्राप्त हुई है उसका सदुपयोग करते हुए अणुव्रत एवं महाव्रतों को धारण करके मोक्षमार्ग को साकार करने की प्रेरणा आचार्यों ने प्रदान की है इसीलिए षट्कायिक जीवों का विशेष व्याख्यान जानना आवश्यक होता है।

गोम्मतसार जीवकाण्ड में आचार्य श्रीनेमिचंद्र सिद्धान्तचक्रवर्ती ने एक मात्र स्पर्शन इन्द्रिय को प्राप्त करने वाले नित्यनिगोदिया जीव का स्वरूप बताया है —

अत्थि अणंता जीवा, जेहिं ण पत्तो तसाण परिणामो।

भावकलंकसुपउरा, णिगोदवासं ण मुंचंति ।।

अर्थ — ऐसे अनन्तानन्त जीव हैं कि जिन्होंने त्रसों की पर्याय अभी तक कभी भी नहीं पाई है और जो निगोद अवस्था में होने वाले दुर्लेश्यारूप परिणामों से अत्यंत अभिभूत रहने के कारण निगोदस्थान को कभी नहीं छोड़ते हैं।

अभिप्राय यह है कि निगोद के दो भेद होते हैं — एक नित्यनिगोद और दूसरा चतुर्गति निगोद (इतर निगोद)। इनमें से जिन्होंने कभी त्रसपर्याय को प्राप्त कर लिया हो, उन्हें चतुर्गति निगोद कहते हैं और जिन जीवों ने अनादिकाल से अभी तक कभी भी त्रसपर्याय को नहीं पाया है अथवा जो भविष्य में भी कभी त्रसपर्याय को नहीं पाएंगे, उनको नित्यनिगोद जीव कहते हैं। यहाँ नित्य शब्द के दोनों ही अर्थ होते हैं — एक तो अनादि और दूसरा अनादि अनन्त। इन दोनों प्रकार के जीवों की संख्या अनन्तानन्त है। तीनलोक के चित्र में सातवें नरक के नीचे एक राजुप्रमाण क्षेत्र में इन नित्य निगोदिया जीवों का स्थान दर्शाया जाता है अर्थात् वह स्थान निगोदिया जीवों की खान समझना चाहिए। वहाँ इतनी प्रचुर मात्रा में वे जीव रहते हैं कि छह महीना आठ समय में छह सौ आठ जीवों के उसमें से निकलकर मोक्ष चले जाने पर भी उसकी संख्या में कोई कमी नहीं आती है।

उन निगोदिया जीवों की स्थिति के बारे में पं. दौलतराम जी ने छहढाला में कहा है —

एवं षट्खंडागमप्रथमखंडे तृतीयग्रन्थे क्षेत्रानुगमनाम्नि तृतीय-
प्रकरणे गणिनीज्ञानमतीकृत सिद्धान्तचिन्तामणिटीकायां
कायमार्गणानामतृतीयोऽधिकारः समाप्तः।

एक श्वास में अठ-दस बार, जन्म्यो मर्यो भर्यो दुख भार ।

निकसि भूमि जल पावक भयो, पवन प्रत्येक वनस्पति थयो ।।

अर्थात् वे निगोदिया जीव एक स्वांस वाले समय में अठारह बार जनम-मरण करते हैं, यही उनकी नियति है, ऐसा समझकर निगोद में जाने से बचने हेतु हम सभी को पुरुषार्थ करना चाहिए।

इन एकेन्द्रिय निगोद जीवों के अतिरिक्त यह जीव न जाने कितनी बार पंच स्थावरों में, विकलत्रयों में तथा पंचेन्द्रिय होकर भी नरकगति, पशुगति आदि के दुःखों को अनादिकाल से सहन कर रहा है तथा औदारिक-वैक्रियिक आदि शरीरों को धारण करके अपने विविध रूपों को प्रगट कर रहा है। इन छहों काय के जीवों का आकार बताते हुए गोम्मटसार में कहा है—

मसुरंबुबिन्दु सूई, कलावधयसण्णिहो हवे देहो।

पुढवी आदिचउण्हं, तरुतसकाया अणेयविहा ।।

अर्थ — पृथिवीकायिक जीवों का शरीर मसूर के समान, जलकायिक का जलबिन्दु सदृश, अग्नि जीवों का सुइयों के समूह सदृश, वायुकायिक का ध्वजा सदृश होता है। वनस्पति और त्रसकायिक जीवों का शरीर अनेक प्रकार का होता है।

जिस प्रकार कोई भारवाहक पुरुष कावड़ी के द्वारा भार ढोता है उसी प्रकार यह जीव कायरूपी कावड़ी के द्वारा कर्मभार को ढो रहा है। जैसे मलिन स्वर्ण अग्नि के द्वारा सुसंस्कृत होकर बाह्य और अभ्यंतर दोनों प्रकार के मल से रहित हो जाता है, उसी प्रकार ध्यान के द्वारा यह जीव भी शरीर और कर्मबन्ध दोनों प्रकार के मल से रहित होकर सिद्ध परमात्मा बन जाता है।

यद्यपि यह काय मल का बीज और मल की योनिस्वरूप अत्यन्त निंद्य है, कृतघ्न के समान है, फिर भी इसी काय से रत्नत्रयरूपी निधि प्राप्त की जा सकती है अतः इस काय को संयमरूपी भूमि में बो करके मोक्षफल को प्राप्त कर लेना चाहिए। स्वर्गादि अभ्युदय तो भूसे के सदृश स्वयं ही मिल जाते हैं इसलिए संयम के बिना एक क्षण भी नहीं रहना चाहिए, यही कायमार्गणा का सार है।

इस प्रकार षट्खंडागम ग्रंथ के प्रथम खंड में तृतीय ग्रंथ में क्षेत्रानुगम नामक
तृतीय प्रकरण में गणिनी ज्ञानमती कृत सिद्धान्तचिन्तामणि टीका
में कायमार्गणा नामक तृतीय अधिकार समाप्त हुआ।



अथ योगमार्गणाधिकारः

अत्र स्थलपंचकेन चतुर्दशभिः सूत्रैः योगमार्गणानाम् चतुर्थोऽधिकारः प्रारभ्यते। तत्र प्रथमस्थले मनोवचनयोगिनां क्षेत्रनिरूपणत्वेन “जोगाणुवादेण” इत्यादि सूत्रमेकं। तदनु द्वितीयस्थले काययोगि औदारिककाययोगिक्षेत्रप्रतिपादनत्वेन “ओरालिय” इत्यादिसूत्रसप्तकं। ततः परं तृतीयस्थले वैक्रियिककाय-योगिक्षेत्रकथनत्वेन “वेउव्विय” इत्यादिसूत्रद्वयं। तत्पश्चात् चतुर्थस्थले आहारकयोगिनां क्षेत्रकथनमुख्यत्वेन “आहारकाय” इत्यादिसूत्रमेकं। तदनंतरं कर्मणकाययोगिनां क्षेत्रनिरूपणत्वेन “कम्मइयकाय” इत्यादिसूत्रत्रयम् इति समुदायपातनिका।

अधुना मनोवचनयोगिनां गुणस्थानापेक्षया क्षेत्रनिरूपणाय सूत्रमवतरति—

जोगाणुवादेण पंचमणजोगि-पंचवचिजोगीसु मिच्छादिट्टिप्पहुडि जाव सजोगिकेवली केवडि खेत्ते? लोगस्स असंखेज्जदिभागे।।२९।।

सूत्रस्यार्थः सुगमः।

पंचमनोयोगि-पंचवचनयोगिमिथ्यादृष्टयः स्वस्थानस्वस्थान-विहारवत्स्वस्थान-वेदना-कषाय-वैक्रियिकसमुद्घातगताः त्रिलोकानामसंख्यातभागे, तिर्यग्लोकस्य संख्यातभागे, सार्धद्वयद्वीपादसंख्यातगुणे च क्षेत्रे तिष्ठन्ति।

अथ योगमार्गणा अधिकार प्रारंभ

अब यहाँ पाँच स्थलों में चौदह सूत्रों के द्वारा योगमार्गणा नाम का चतुर्थ अधिकार प्रारंभ होता है। उनमें से प्रथम स्थल में मनोयोगी और वचनयोगी जीवों का क्षेत्र निरूपण करने हेतु “जोगाणुवादेण” इत्यादि एक सूत्र कहेंगे। उसके बाद द्वितीय स्थल में काययोगी जीवों में औदारिक शरीर धारण करने वाले जीवों का क्षेत्र प्रतिपादन करने वाले “ओरालिय” इत्यादि सात सूत्र हैं। उससे आगे तृतीय स्थल में वैक्रियिककाययोगी जीवों का क्षेत्रकथन करने वाले “वेउव्विय” इत्यादि दो सूत्र हैं। तत्पश्चात् चतुर्थस्थल में आहारक काययोगी जीवों के क्षेत्रकथन की मुख्यता वाला “आहारकाय” इत्यादि एक सूत्र है। तदनंतर कर्मणकाययोगी जीवों का क्षेत्र निरूपण करने वाले “कम्मइयकाय” इत्यादि तीन सूत्र हैं। इस प्रकार अधिकार के प्रारंभ में सूत्रों की समुदायपातनिका हुई है।

अब मनोयोगी और वचनयोगी जीवों का गुणस्थान की अपेक्षा क्षेत्र निरूपण बरने हेतु सूत्र अवतरित होता है—
सूत्रार्थ—

योगमार्गणा के अनुवाद से पाँचों मनोयोगी और पाँचों वचनयोगियों में मिथ्यादृष्टि गुणस्थान से लेकर सयोगिकेवली गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीव कितने क्षेत्र में रहते हैं? लोक के असंख्यातवें भाग में रहते हैं ।।२९।।

हिन्दी टीका—सूत्र का अर्थ सुगम है। स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात और वैक्रियिकसमुद्घातगत पाँचों मनोयोगी और पाँचों वचनयोगी मिथ्यादृष्टि जीव सामान्य-लोक आदि तीन लोकों के असंख्यातवें भाग में, तिर्यग्लोक के संख्यातवें भाग में और अढ़ाईद्वीप से असंख्यातगुणे क्षेत्र में रहते हैं।

वैक्रियिकसमुद्घातगतानां कथं मनोयोग-वचनयोगानां संभवः?

नैतत्, तेषामपि निष्पन्नोत्तरशरीराणां मनोयोग-वचनयोगानां परावृत्तिसंभवात्।

मारणान्तिकसमुद्घातगताः त्रिलोकानामसंख्यातभागे, नरतिर्यग्लोकाभ्यामसंख्यातगुणे क्षेत्रे च तिष्ठन्ति।

मारणान्तिकसमुद्घातगतानां असंख्यातयोजनायामेन स्थितानां मूर्च्छितसंज्ञिजीवानां च कथं मनोयोग-वचनयोगसंभवः इति चेत् ?

नैष दोषः, बाधककारणाभावात् निर्भरसुप्तजीवानामिव अव्यक्तानां तत्र मनोयोगवचनयोगसंभवं प्रति विरोधाभावात्।

मनोवचनयोगेषु उपपादो नास्ति।

सासादनसम्यग्दृष्ट्यादि-असमुद्घातगतसयोगिकेवलिपर्यतानां मूलौघभंगो ज्ञातव्यः। केवलं अस्ति विशेषः — सासादन-असंयतसम्यग्दृष्टीनां उपपादो नास्ति।

अधुना सामान्यकाययोगिनां क्षेत्रनिरूपणार्थं सूत्रमवतरति —

कायजोगीसु मिच्छादृष्टी ओघं।।३०।।

सूत्रं सुगमं। स्वस्थानस्वस्थान-वेदना-कषाय-मारणान्तिक-उपपादगताः काययोगी मिथ्यादृष्टयः सर्वलोके सन्ति। विहारवत्स्वस्थान-वैक्रियिक-समुद्घातगताः त्रिलोकानामसंख्यातभागे, तिर्यग्लोकस्य संख्यातभागे, सार्धद्वयद्वीपादसंख्यातगुणे क्षेत्रे च तिष्ठन्ति।

शंका — वैक्रियिक समुद्घात को प्राप्त जीवों के मनोयोग और वचनयोग कैसे संभव है?

समाधान — नहीं, क्योंकि निष्पन्न हुआ है विक्रियात्मक उत्तम शरीर जिनके, ऐसे जीवों के मनोयोग और वचनयोगों का परिवर्तन संभव है।

मारणान्तिक समुद्घातगत पाँचों मनोयोगी और पाँचों वचनयोगी मिथ्यादृष्टि जीव सामान्यलोक आदि तीन लोकों के असंख्यातवें भाग में, मनुष्यलोक और तिर्यग्लोक से असंख्यातगुणे क्षेत्र में रहते हैं।

शंका — मारणान्तिक समुद्घात को प्राप्त, असंख्यात योजन आयाम से स्थित और मूर्च्छित हुए संज्ञी जीवों के मनोयोग और वचनयोग कैसे संभव हैं ?

समाधान — नहीं, क्योंकि बाधक कारण के अभाव होने से निर्भर (भरपूर) सोते हुए जीवोंके समान अव्यक्त मनोयोग और वचनयोग मारणान्तिक समुद्घातगत मूर्च्छित अवस्था में ही संभव हैं, इसमें कोई विरोध नहीं है।

मनोयोगी और वचनयोगी जीवों के उपपादपद नहीं होता है। सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थान से लेकर समुद्घात रहित सयोगिकेवली गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती मनोयोगी और वचनयोगी जीवों का क्षेत्र गुणस्थान में कथित क्षेत्र के समान है। यहाँ केवल विशेष बात यह है कि सासादनसम्यग्दृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि मनोयोगी और वचनयोगी जीवों के उपपादपद नहीं होता है।

अब सामान्यकाययोगी जीवों के क्षेत्र का निरूपण करने हेतु सूत्र प्रगट होता है —

सूत्रार्थ —

काययोगियों में मिथ्यादृष्टि जीवों का क्षेत्र ओघ के समान सर्वलोक है।।३०।।

हिन्दी टीका — सूत्र का अर्थ सुगम है। स्वस्थानस्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात, मारणान्तिक समुद्घात और उपपादगत काययोगी मिथ्यादृष्टि जीव सर्वलोक में रहते हैं। विहारवत्स्वस्थान और वैक्रियिक-समुद्घातगत काययोगी मिथ्यादृष्टि जीव सामान्यलोक आदि तीन लोकों के असंख्यातवें भाग में, तिर्यग्लोक के

अधुना सासादनादिक्षीणकषायपर्यंतानां क्षेत्रप्ररूपणाय सूत्रमवतरति—

सासणसम्मादिट्टिप्पहुडि जाव खीणकसायवीदरागछदुमत्था केवडि खेत्ते?

लोगस्स असंखेज्जदिभागे॥३१॥

सूत्रं सुगमं। योगाभावाद्दत्र सूत्रे अयोगिजिनानां ग्रहणं न भवति।

अधुना सयोगिनां क्षेत्रनिरूपणाय सूत्रावतारः क्रियते—

सजोगिकेवली ओघं॥३२॥

सूत्रं सुगमं।

औदारिककाययोगिनां क्षेत्रकथनाय सूत्रमवतरति—

ओरालियकायजोगीसु मिच्छाइट्टी ओघं॥३३॥

सूत्रं सुगमं। एते औदारिककाययोगिनः मिथ्यादृष्टयः स्वस्थान-वेदना-कषाय-मारणान्तिकसमुद्घातगताः सर्वलोके तिष्ठन्ति, सूक्ष्मपर्याप्तैकेन्द्रियाणां सर्वलोकक्षेत्रेषु संभवात्। किन्तु एषामुपपादो नास्ति, निरुद्धौदारिककाययोगात्। विहारवत्स्वस्थानगताः त्रयाणां लोकानामसंख्यातभागे, तिर्यग्लोकस्य संख्यातभागे, संख्यातवें भाग में और ढाईद्वीप से असंख्यातगुणे क्षेत्र में रहते हैं।

अब सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थान से लेकर क्षीणकषायगुणस्थानपर्यन्त जीवों का क्षेत्र बतलाने के लिए सूत्र का अवतार होता है—

सूत्रार्थ—

सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थान से लेकर क्षीणकषायवीतरागछद्मस्थ गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती काययोगी जीव कितने क्षेत्र में रहते हैं ? लोक के असंख्यातवें भाग में रहते हैं॥३१॥

हिन्दी टीका—सूत्र का अर्थ सरल है। योग का अभाव होने से यहाँ सूत्र में अयोगिकेवली जिनों का ग्रहण नहीं किया गया है।

अब सयोगिकेवली जिनेन्द्र भगवन्तों का क्षेत्र कथन करने हेतु सूत्र अवतरित होता है—

सूत्रार्थ—

काययोग वाले सयोगिकेवली का क्षेत्र ओघ सयोगिकेवली के क्षेत्र के समन है॥३२॥

हिन्दी टीका—सूत्र का अर्थ सुगम है। यहाँ अभिप्राय यही है कि तेरहवें गुणस्थानवर्ती सयोगिकेवली अरिहंत भगवान लोक के असंख्यात बहुभागों में और सम्पूर्ण लोक में रहते हैं।

अब औदारिककाययोगी जीवों का क्षेत्र कथन करने के लिए सूत्र अवतरित होता है—

सूत्रार्थ—

औदारिक काययोगियों में मिथ्यादृष्टि जीवों का क्षेत्र ओघ के समान सर्वलोह है॥३३॥

हिन्दी टीका—सूत्र का अर्थ सुगम है। स्वस्थानस्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात और मारणान्तिक समुद्घातगत ये औदारिककाययोगी मिथ्यादृष्टि जीव सर्वलोक में रहते हैं, क्योंकि सूक्ष्म पर्याप्त एकेन्द्रिय जीव सर्वलोकवर्ती क्षेत्रों में संभव हैं किन्तु उक्त जीवों के उपपादपद नहीं होता है,

किं च-त्रसपर्याप्तराशेः संख्यातभागस्य संचारो — विहारः भवतीति गुरुपदेशोऽस्ति^१। सार्धद्वयद्वीपादसंख्यातगुणे क्षेत्रे च निवसन्ति। इमे वैक्रियिकसमुद्घातगताः चतुर्लोकानामसंख्यातभागे, सार्धद्वयद्वीपादसंख्यातगुणे क्षेत्रे च निवसन्ति, किंच-औदारिककाययोगे निरुद्धे वैक्रियिककाययोगि-सहगतवैक्रियिकसमुद्घातस्य असंभवात्।

औदारिककाययोगिसासादनादिसयोगिपर्यन्तानां क्षेत्रकथनाय सूत्रमवतरति —

सासनसम्मादिट्टिप्पहुडि जाव सजोगिकेवली लोगस्स असंखेज्जदिभागे।।३४।।

सूत्रं सुगमं।

सयोगिकेवलिनः कथं लोकस्यासंख्यातभागे कथ्यन्ते?

नैष दोषः, औदारिककाययोगेन निरुद्धं — व्याप्तं क्षेत्रं लोकस्यासंख्यातभागमेव, तत्र औदारिकमिश्र-कार्मण-काययोगसहगत-कपाट-प्रतर-लोकपूरणानां असंभवात्। सासनसम्यग्दृष्टि-असंयतसम्यग्दृष्टीनामुपपादो नास्ति, प्रमत्ते आहारकसमुद्घातो नास्ति अस्मिन् योगे। शेषं ज्ञात्वा वक्तव्यम्।

क्योंकि यहाँ पर औदारिककाययोग से निरुद्ध जीवों का क्षेत्र बताया जा रहा है। विहारवत्स्वस्थानवाले औदारिककाययोगी जीव सामान्यलोक आदि तीन लोकों के असंख्यातवें भाग में और तिर्यग्लोक के संख्यातवें भाग में रहते हैं, क्योंकि “समस्त त्रसपर्यायराशि के संख्यातवें भाग का ही संचार (विहार) होता है” ऐसा गुरु का उपदेश है। उक्त औदारिककाययोगी मिथ्यादृष्टि जीव अढ़ाईद्वीप से असंख्यातगुणे क्षेत्र में रहते हैं। वैक्रियिकसमुद्घात औदारिककाययोगी मिथ्यादृष्टि जीव सामान्यलोक आदि चार लोकों के असंख्यातवें भाग में और अढ़ाईद्वीप से असंख्यातगुणे क्षेत्र में रहते हैं, क्योंकि औदारिककाययोग से निरुद्ध होने पर क्षेत्र का वर्णन करते समय वैक्रियिककाययोगी जीवों के होने वाला वैक्रियिक समुद्घात असंभव है।

अब औदारिककाययोगी सासादन गुणस्थान से लेकर सयोगिकेवलीपर्यन्त जीवों का क्षेत्रकथन करने के लिए सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ —

सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थान से लेकर सयोगिकेवली गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती औदारिककाययोगी जीव लोक के असंख्यातवें भाग में रहते हैं।।३४।।

हिन्दी टीका — सूत्र सुगम है।

शंका — सयोगिकेवली भगवान लोक के असंख्यातवें भाग में रहते हैं, इतना ही क्यों कहा?

समाधान — यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि औदारिककाययोग से निरुद्ध क्षेत्र लोक का असंख्यातवाँ भाग ही है उसमें औदारिक मिश्र और कार्मणकाययोग से सहित जीवों के कपाट, प्रतर और लोकपूरण समुद्घातों का होना असंभव है।

सासादनसम्यग्दृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि औदारिक काययोगी जीवों के उपपादपद नहीं होता है। प्रमत्तगुणस्थान में आहारकसमुद्घात पद भी नहीं है, क्योंकि यहाँ पर औदारिक काययोगियों का क्षेत्र बताया जा रहा है। शेष गुणस्थानों में यथासंभव पद जानकर कहना चाहिए।

औदारिकमिश्रकाययोगिनां मिथ्यादृष्टिक्षेत्रनिरूपणाय सूत्रावतारो भवति—

ओरालियमिस्सकायजोगीसु मिच्छादिद्वी ओघं॥३५॥

सूत्रं सुगमं। अस्ति विशेषो यः— स्वस्थान-वेदना-कषाय-मारणान्तिक-उपपादगताः औदारिकमिश्रकाय-योगिमिथ्यादृष्टयः सर्वलोके। विहारवत्स्वस्थान-वैक्रियिकसमुद्घातौ अत्र न स्तः।

एषामेव मिश्रकाययोगिनां शेषगुणस्थानापेक्षया क्षेत्रनिरूपणाय सूत्रमवतरति—

सासणसम्मादिद्वी असंजदसम्मादिद्वी सजोगिकेवली केवडि खेत्ते?

लोगस्स असंखेज्जदिभागे॥३६॥

अत्र पूर्वसूत्रात् औदारिकमिश्रकाययोगोऽनुवर्तते। अत्र मिश्रकाययोगे सासादनसम्यग्दृष्टयः स्वस्थान-वेदना-कषायसमुद्घातगताः चतुर्लोकानामसंख्यातभागे, सार्धद्वयद्वीपादसंख्यातगुणे। अस्मिन् योगे शेषपदानि न सन्ति, तेषां तत्र विरोधात्।

असंयतसम्यग्दृष्टयः स्वस्थान-वेदना-कषायसमुद्घातगताः चतुर्लोकानामसंख्यातभागे, मानुषक्षेत्रस्य संख्यातभागे, तेषां संख्यातराशिप्रमाणत्वात्। औदारिकमिश्रे स्थितानां उपपादाभावात्। अथवा अस्त्युपपादः

अब औदारिकमिश्रकाययोगी जीवों में मिथ्यादृष्टियों का क्षेत्र निरूपण करने के लिए सूत्र का अवतार होता है—

सूत्रार्थ—

औदारिकमिश्रकाययोगियों में मिथ्यादृष्टि जीव ओघ के समान सर्वलोक में रहते हैं॥३५॥

हिन्दी टीका—सूत्र का अर्थ सरल है। यहाँ जो विशेषता है, उसे कहते हैं—

स्वस्थानस्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात, मारणान्तिकसमुद्घात और उपपाद पदगत औदारिक मिश्रकाययोगी मिथ्यादृष्टि जीव सर्वलोक में रहते हैं। यहाँ पर विहारवत्स्वस्थान और वैक्रियिकसमुद्घात ये दो पद नहीं होते हैं।

अब इन्हीं औदारिकमिश्रकाययोगी जीवों का शेष गुणस्थानों की अपेक्षा क्षेत्र निरूपण करने के लिए सूत्र अवतरित होता है—

सूत्रार्थ—

औदारिकमिश्रकाययोग वाले, सासादनसम्यग्दृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि और सयोगिकेवली कितने क्षेत्र में रहते हैं? लोक के असंख्यातवें भाग में रहते हैं ॥३६॥

हिन्दी टीका—यहाँ पूर्वसूत्र से “औदारिकमिश्रकाययोग” इस पद की अनुवृत्ति चली आ रही है। यहाँ औदारिकमिश्रकाययोगियों में स्वस्थानस्वस्थान, वेदनासमुद्घात और कषायसमुद्घातगत सासादनसम्यग्दृष्टि जीव सामान्यलोक आदि चार लोकों के असंख्यातवें भाग में और अर्द्धद्वीप से असंख्यातगुणे क्षेत्र में रहते हैं। यहाँ पर मिश्रकाययोग में शेष विहारवत्स्वस्थान आदि पद नहीं होते हैं, क्योंकि सासादन गुणस्थान के साथ उन पदों का यहाँ पर विरोध है।

स्वस्थानस्वस्थान, वेदनासमुद्घात और कषायसमुद्घात औदारिकमिश्रकाययोगी असंयतसम्यग्दृष्टि

सासादन-असंयतसम्यग्दृष्टिगुणस्थानाभ्यां सह अक्रमेण उपात्तभवशरीरप्रथमसमये तस्य सद्भावात्। अन्यच्च-स्वस्थानादिपंचावस्थाव्यतिरिक्तौदारिकमिश्रजीवानामभावात्।

सयोगिकेवली भगवान् अस्मिन् योगे कपाटगतः त्रिलोकानामसंख्यातभागे, तिर्यग्लोकस्य संख्यातभागे, सार्धद्वयद्वीपादसंख्यातगुणे क्षेत्रे च निवसन्ति।

एवं द्वितीयस्थले सामान्यकाययोगि-औदारिककाय-औदारिकमिश्रकाययोगिनां क्षेत्रनिरूपणपराणि सप्त सूत्राणि गतानि।

संप्रति वैक्रियिककाययोगिनां गुणस्थानापेक्षया क्षेत्रकथनाय सूत्रमवतरति—

वेउव्वियकायजोगीसु मिच्छाइट्टिप्पहुडि जाव असंजदसम्मादिट्ठी केवडि खेत्ते? लोगस्स असंखेज्जदिभागे।।३७।।

सूत्रस्यार्थः सुगमः। स्वस्थानस्वस्थान-विहारवत्स्वस्थान-वेदना-कषाय-वैक्रियिकसमुद्घातगताः मिथ्यादृष्टिजीवाः वैक्रियिककाययोगे त्रयाणां लोकानामसंख्यातभागे, तिर्यग्लोकस्य संख्यातभागे, सार्धद्वयद्वीपादसंख्यातभागे च, अत्र प्रधानीकृतज्योतिष्कदेवराशित्वात्। मारणान्तिकसमुद्घातगताः त्रिलोकानामसंख्यातभागे, नरतिर्यग्लोकाभ्यामसंख्यातगुणे च। सासादनादीनां प्ररूपणा ओघप्ररूपणानुल्या।

जीव सामान्यलोक आदि चार लोकों के असंख्यातवें भाग में और मनुष्यक्षेत्र में संख्यातवें भाग में रहते हैं, क्योंकि वे संख्यात राशिप्रमाण होते हैं।

औदारिकमिश्रकाययोग में स्थित सासादन और असंयतसम्यग्दृष्टि जीवों का पुनः औदारिकमिश्रकाययोगियों में उपपाद नहीं होता है। अथवा, उपपाद होता है, क्योंकि सासादन और असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान के साथ अक्रम से ग्रहण किये गए नये भवसम्बन्धी शरीर के प्रथम समय में उसका सद्भाव पाया जाता है। दूसरी बात यह है कि स्वस्थानस्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात, केवलिसमुद्घात और उपपाद इन पाँच अवस्थाओं के अतिरिक्त औदारिक मिश्रकाययोगी जीवों का अभाव है।

कपाट समुद्घातगत औदारिकमिश्रकाययोगी सयोगिकेवली भगवान् सामान्यलोक आदि तीन लोकों के असंख्यातवें भाग में, तिर्यग्लोक के संख्यातवें भाग में और अर्द्धाद्वीप से असंख्यातगुणे क्षेत्र में रहते हैं।

इस प्रकार द्वितीयस्थल में सामान्यकाययोगी, औदारिककाययोगी एवं औदारिकमिश्रकाययोगी जीवों का क्षेत्र निरूपण करने वाले सात सूत्र पूर्ण हुए।

अब वैक्रियिककाययोगी जीवों का गुणस्थान की अपेक्षा क्षेत्रकथन करने के लिए सूत्र अवतरित होता है—

सूत्रार्थ —

वैक्रियिककाययोगियों में मिथ्यादृष्टि गुणस्थान से लेकर असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीव कितने क्षेत्र में रहते हैं ? लोक के असंख्यातवें भाग में रहते हैं।।३७।।

हिन्दी टीका — सूत्र का अर्थ सुगम है।

स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात और वैक्रियिकसमुद्घातगत वैक्रियिककाययोगी मिथ्यादृष्टि जीव सामान्यलोक आदि तीन लोकों के असंख्यातवें भाग में, तिर्यग्लोक के संख्यातवें भाग में और अर्द्धाद्वीप से असंख्यातगुणे क्षेत्र में रहते हैं, क्योंकि यहाँ वैक्रियिककाययोग के प्रकरण में ज्योतिष्क

अत्र सर्वत्र उपपादो नास्तीति विशेषः ज्ञातव्यः।

वैक्रियिकमिश्रकाययोगिनां गुणस्थानापेक्षया क्षेत्रनिरूपणाय सूत्रमवतरति —

वेडव्वियमिस्सकायजोगीसु मिच्छाड्ढी सासणसम्मादिट्ठी असंजदसम्मादिट्ठी केवडि खेत्ते? लोगस्स असंखेज्जदिभागे।।३८।।

एतस्यार्थः सुगमः। वैक्रियिकमिश्रकाययोगिनो मिथ्यादृष्टयः स्वस्थान-वेदना-कषायसमुद्घातगताः त्रिलोकानामसंख्यातभागे, तिर्यग्लोकस्य संख्यातभागे, सार्धद्वयद्वीपादसंख्यातगुणे च। सासादनसम्यग्दृष्टयः असंयतसम्यग्दृष्टयः स्वस्थान-वेदना-कषायसमुद्घातगताः चतुर्लोकानामसंख्यातभागे, सार्धद्वयद्वीपाद-संख्यातगुणे च क्षेत्रे तिष्ठन्ति।

एवं तृतीयस्थले वैक्रियिककाय-वैक्रियिकमिश्रकाययोगिनां क्षेत्रनिरूपणत्वेन द्वे सूत्रे गते।

संप्रति आहारकयोगिनां क्षेत्रनिरूपणाय सूत्रावतारो भवति —

आहारकायजोगीसु आहारमिस्सकायजोगीसु पमत्तसंजदा केवडि खेत्ते? लोगस्स असंखेज्जदिभागे।।३९।।

देवराशि की प्रधानता है। मारणान्तिकसमुद्घातगत वैक्रियिककाययोगी मिथ्यादृष्टि जीव सामान्यलोक आदि तीन लोकों के असंख्यातवें भाग में और नरलोक तथा तिर्यग्लोक, इन दोनों लोकों से असंख्यातगुणे क्षेत्र में रहते हैं। सासादनसम्यग्दृष्टि आदि शेष तीन गुणस्थानवर्ती वैक्रियिककाययोगी जीवों के स्वस्थानादि पदों की क्षेत्रप्ररूपणा गुणस्थान की क्षेत्रप्ररूपणा के तुल्य है। विशेषता केवल यह है कि इन सभी गुणस्थानों में उपपादपद नहीं होता है।

अब वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीवों का गुणस्थान की अपेक्षा क्षेत्र बतलाने हेतु सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ —

वैक्रियिकमिश्रकाययोगियों में मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानवर्ती जीव कितने क्षेत्र में रहते हैं? लोक के असंख्यातवें भाग में रहते हैं।।३८।।

हिन्दी टीका — इस सूत्र का अर्थ सुगम है। स्वस्थान, वेदनासमुद्घात और कषायसमुद्घात को प्राप्त हुए वैक्रियिकमिश्रकाययोगी मिथ्यादृष्टि जीव सामान्यलोक आदि तीन लोकों के असंख्यातवें भाग में, तिर्यग्लोक के संख्यातवें भाग में और अर्द्धद्वीप से असंख्यातगुणे क्षेत्र में रहते हैं। स्वस्थान, वेदनासमुद्घात और कषायसमुद्घात को प्राप्त हुए सासादनसम्यग्दृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीव सामान्यलोक आदि चार लोकों के असंख्यातवें भाग में और अर्द्धद्वीप से असंख्यातगुणे क्षेत्र में रहते हैं।

इस प्रकार तृतीय स्थल में वैक्रियिककाययोगी और वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीवों का क्षेत्र बतलाने वाले दो सूत्र पूर्ण हुए।

अब आहारककाययोगी जीवों का क्षेत्र निरूपण करने के लिए सूत्र का अवतार होता है —

सूत्रार्थ —

आहारककाययोगियों में और आहारकमिश्रकाययोगियों में प्रमत्तसंयतगुणस्थानवर्ती जीव कितने क्षेत्र में रहते हैं ? लोक के असंख्यातवें भाग में रहते हैं।।३९।।

सूत्रं सुगमं वर्तते। स्वस्थानस्वस्थान-विहारवत्स्वस्थानपरिणत प्रमत्तसंयताः चतुर्लोकानामसंख्यातभागे, मानुषक्षेत्रस्य संख्यातभागे। मारणान्तिकसमुद्घातगताः चतुर्लोकानामसंख्यातभागे, सार्धद्वयद्वीपादसंख्यातगुणे। अत्र शेषपदानि न सन्ति। आहारकमिश्रकाययोगिनः प्रमत्तसंयताः स्वस्थानगताः चतुर्लोकानामसंख्यातभागे, मानुषक्षेत्रस्य संख्यातभागे क्षेत्रे तिष्ठन्ति।

एवं चतुर्थस्थले आहारककाय-आहारकमिश्रकाययोगिनां क्षेत्रनिरूपणत्वेन एकं सूत्रं गतम्।

कर्मणकाययोगिमिथ्यादृष्टीनां क्षेत्रप्रतिपादनाय सूत्रावतारो भवति—

कम्मइयकायजोगीसु मिच्छाइट्ठी ओघं॥४०॥

सूत्रं सुगमं। स्वस्थान-वेदना-कषाय-उपपादगताः कर्मणकाययोगिमिथ्यादृष्टयः येन सर्वत्र सम्बद्धाः भवन्ति, तेन सर्वलोके प्रोक्ता भवन्ति।

अत्र सासादन-असंयतसम्यग्दृष्टयोः क्षेत्रनिरूपणाय सूत्रमवतरति—

सासणसम्मादिट्ठी असंजदसम्माइट्ठी ओघं॥४१॥

हिन्दी टीका—सूत्र का अर्थ सरल है। स्वस्थानस्वस्थान और विहारवत्स्वस्थान इन दोनों पदों से परिणत आहारकाययोगी प्रमत्तसंयत सामान्यलोक आदि चार लोकों के असंख्यातवें भाग में और मानुषक्षेत्र के संख्यातवें भाग में रहते हैं। मारणान्तिकसमुद्घातगत आहारकाययोगी सामान्यलोक आदि चार लोकों के असंख्यातवें भाग में और अढ़ाईद्वीप से असंख्यातगुणे क्षेत्र में रहते हैं। आहारकाययोगी प्रमत्तसंयत के उक्त तीन पदों के सिवाय शेष सात पद नहीं होते हैं। स्वस्थानगत आहारकमिश्रकाययोगी प्रमत्तसंयत सामान्यलोक आदि चारों लोकों के असंख्यातवें भाग में और मानुषक्षेत्र के संख्यातवें भाग में रहते हैं।

इस प्रकार चतुर्थस्थल में आहारककाययोगी एवं आहारकमिश्रकाययोगी मुनियों का क्षेत्र निरूपण करने वाला एक सूत्र पूर्ण हुआ।

अब कर्मणकाययोगी मिथ्यादृष्टि जीवों का क्षेत्र प्रतिपादन करने के लिए सूत्र का अवतार होता है—

सूत्रार्थ—

कर्मणकाययोगियों में मिथ्यादृष्टि जीव ओघमिथ्यादृष्टि के समान सर्वलोक में रहते हैं॥४०॥

सूत्र का अर्थ सरल है। यहाँ अभिप्राय यह है कि स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात और उपपाद इन पदों को प्राप्त कर्मणकाययोगी मिथ्यादृष्टि जीव चूंकि सर्वत्र सर्वकाल में पाये जाते हैं इसलिए वे सम्पूर्ण लोक में रहते हैं, ऐसा कहा गया है।

अब यहाँ सासादनसम्यग्दृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टियों का क्षेत्र निरूपण करने के लिए सूत्र अवतरित होता है—

सूत्रार्थ—

कर्मणकाययोगी सासादनसम्यग्दृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीव ओघ के समान लोक के असंख्यातवें भाग में रहते हैं॥४१॥

सूत्रं सुगमं। एतौ द्वौ अपि राशी येन चतुर्लोकानामसंख्यातभागे, सार्धद्वयद्वीपादसंख्यातगुणे क्षेत्रे च तिष्ठतः तेन सूत्रे ओघमिति उक्तं।

सयोगिकेवलिनं कार्मणकाययोगे क्षेत्रप्ररूपणाय सूत्रमवतरति—

सजोगिकेवली केवडि खेत्ते? लोगस्स असंखेज्जेसु भागेसु सव्वलोगे वा।।४२।।

सूत्रं सुगमं। एषां प्रतर-लोकपूरणसमुद्गतानां केवलिभगवतां कार्मणकाययोगो भवति। तत्प्रकरणं पूर्वं प्रोक्तं अतो नात्र विस्तरः क्रियते।

एवं पंचमस्थले कार्मणकाययोगिक्षेत्रप्रतिपादनत्वेन त्रीणि सूत्राणि गतानि।

हिन्दी टीका—सूत्र का अर्थ सुगम है। इन दोनों गुणस्थानवर्ती कार्मणकाययोगी जीवों की राशियाँ चारों लोकों के असंख्यातवें भाग में और ढाईद्वीप से असंख्यातगुणे क्षेत्र में रहती हैं, इसलिए सूत्र में “ओघ” ऐसा पद कहा गया है।

अब सयोगिकेवली भगवन्तों का कार्मणकाययोग में क्षेत्रप्ररूपण करने के लिए सूत्र अवतरित होता है—
सूत्रार्थ—

कार्मणकाययोगी सयोगिकेवली भगवान कितने क्षेत्र में रहते हैं ? लोक के असंख्यात बहुभागों में और सर्वलोक में रहते हैं।।४२।।

हिन्दी टीका—यह सूत्र सरल है। इन प्रतर और लोकपूरण समुद्घात को प्राप्त हुए केवली भगवन्तों के कार्मणकाययोग होता है। वह प्रकरण पूर्व सूत्रों में बताया गया है इसलिए यहाँ उसका विस्तार नहीं किया जा रहा है।

इस प्रकार पंचम स्थल में कार्मणकाययोगी जीवों के क्षेत्र का प्रतिपादन करने वाले तीन सूत्र पूर्ण हुए।

विशेषार्थ—इस योगमार्गणा अधिकार में चौदहों गुणस्थानवर्ती जीवों का क्षेत्र सम्पूर्ण लोक में बताया गया है। योग का मूलस्वरूप बताते हुए गोम्मटसार जीवकांड में आचार्य श्री नेमिचंद्र सिद्धान्तचक्रवर्ती ने कहा है—

पुगलविवाइदेहो-दयेणमणवयणकायजुत्तस्स ।

जीवस्स जा हु सत्ती, कम्मागमकारणं जोगो।।

अर्थात् पुद्गलविपाकी शरीर नामकर्म के उदय से मन-वचन-काय से युक्त जीव की जो कर्मों के ग्रहण करने के कारणभूत शक्ति है, उसको योग कहते हैं अर्थात् आत्मा की अनंतशक्तियों में से एक योगशक्ति भी है, उसके दो योग हैं— भावयोग और द्रव्ययोग।

कर्मों को ग्रहण करने में कारणभूत जीव की शक्ति भावयोग और जीव के प्रदेशों का परिस्पंदन द्रव्ययोग है। जिस प्रकार लोहे में रहने वाली दहनशक्ति अग्नि के सम्बन्ध से काम किया करती है उसी प्रकार जीव के समस्त लोकप्रमाण प्रदेशों में कर्म नोकर्म को ग्रहण करने की सामर्थ्य पायी जाती है फिर भी पुद्गलविपाकी शरीर और आंगोपांग नामकर्म के उदय से प्राप्त मनोवर्गणा भाषावर्गणा के पुद्गल स्कन्धों के संयोग से ही वह कर्म नोकर्म को ग्रहण करने का कार्य किया जाता है। सत्य, असत्य, उभय और अनुभय से निमित्त से चार मन के और चार वचन के ऐसे आठ योग हुये और औदारिक, औदारिक मिश्र, वैक्रियिक, वैक्रियिकमिश्र, आहारक, आहारकमिश्र और कार्मण ऐसे सात काय के, ऐसे मन-वचन-काय सम्बन्धी पंद्रह योग होते हैं। सत्य के दश भेद हैं—**जनपदसत्य**—जो व्यवहार में रूढ़ हो जैसे भक्त, भात चोरू आदि। **सम्पत्ति सत्य**—जैसे-साधारण स्त्री को देवी कहना, **स्थापना सत्य**—प्रतिमा का चन्द्रभद्र कहना, **नाम सत्य**—

इति षट्खंडागमप्रथमखंडे तृतीयग्रन्थे क्षेत्रानुगमनाम तृतीयप्रकरणे
गणिनीज्ञानमतीकृत सिद्धान्तचिन्तामणिटीकायां
योगमार्गणानाम चतुर्थोऽधिकारः समाप्तः।

किसी पुरुष को जिनदत्त कहना, रूपसत्य — बगुले को सफेद कहना, प्रतीतिसत्य — बेल को बड़ा कहना, व्यवहार सत्य — सामग्री संचय करते समय “भात पकाता हूँ”, ऐसा कहना, सम्भावना सत्य — इन्द्र जम्बूद्वीप को पलट सकता है, ऐसा कहना। भावसत्य — शुष्क पक्व आदि को प्रासुक कहना, उपमासत्य — पल्योपम आदि से प्रमाण बताना। ये दश प्रकार के सत्य वचन हैं। इनसे विपरीत असत्य वचन हैं। जिनमें दोनों मिश्र हों, वे उभय वचन हैं एवं जो न सत्य हों न मृषा हों, वे अनुभय वचन हैं। अनुभय वचन के नव भेद हैं —

आमंत्रणी — यहाँ आओ, आज्ञापनी — यह कार्य करो, याचनी — यह मुझको दो, आपृच्छनी — यह क्या है? प्रज्ञापनी — मैं क्या करूँ? प्रत्याख्यानी — मैं यह छोड़ता हूँ, संशयवचनी — यह बताका है या पताका, इच्छानुलोम्नी — मुझको ऐसा होना चाहिये और अनक्षरगता — जिसमें अक्षर स्पष्ट न हो, क्योंकि इनके सुनने से व्यक्त और अव्यक्त दोनों अंशों का ज्ञान होता है। द्वीन्द्रिय से असैनीपंचेन्द्रिय तक अनक्षर भाषा है और सैनी पंचेन्द्रिय की आमंत्रणी आदि भाषायें होती हैं। भगवान के सत्य मनोयोग, अनुभय मनोयोग, सत्य वचनयोग, अनुभय वचनयोग, औदारिक, औदारिकमिश्र और कर्मण ये सात योग होते हैं। शेष संसारी जीवों में यथासंभव योग होते हैं। चौदहवें गुणस्थान में योग रहित अयोगी होते हैं। औदारिक, औदारिकमिश्र योग तिर्यच व मनुष्यों के होते हैं।

वैक्रियिकमिश्र देव तथा नारकियों के होते हैं। आहारक, आहारकमिश्र छोटे गुणस्थानवर्ती मुनि के ही कदाचित् किन्हीं के हो सकता है। प्रमत्तविरत मुनि को किसी सूक्ष्म विषय में शंका होने पर या अकृत्रिम जिनालय की वंदना के लिए असंयम के परिहार करने हेतु आहारक पुतला निकलता है और यहाँ पर केवली के अभाव में अन्य क्षेत्र में केवली या श्रुतकेवली के निकट जाकर आता है और मुनि को समाधान हो जाता है। आहारक ऋद्धि और विक्रियाऋद्धि का कार्य एक साथ नहीं हो सकता है। बादर अग्निकायिक, वायुकायिक और पंचेन्द्रिय तिर्यचों के भी विक्रिया हो सकती है। देव, भोगभूमिज, चक्रवर्ती पृथक् विक्रिया से शरीर आदि बना लेते हैं किन्तु नारकियों में अपृथक् विक्रिया ही है। वे अपने शरीर को ही आयुध, पशु आदि का रूप बनाया करते हैं। देव मूलशरीर को वही स्थान पर छोड़कर विक्रिया शरीर से ही जन्मकल्याणक आदि में आते हैं, मूल शरीर से कभी नहीं आते हैं। कर्मणयोग विग्रहगति में एक, दो या तीन समय तक होता है और समुद्घात केवली के होता है। जो योग रहित, अयोगीजिन अनुपम और अनंत बल से युक्त हैं, वे अ इ उ ऋ लृ पंच ह्रस्व अक्षर के उच्चारण मात्र काल में सिद्ध होने वाले हैं, उन्हें मेरा नमस्कार होवे।

इस प्रकार षट्खंडागम ग्रंथ के प्रथम खंड में तृतीय ग्रंथ में क्षेत्रानुगम नाम के तृतीय प्रकरण में गणिनी ज्ञानमतीकृत सिद्धान्तचिन्तामणि टीका में योगमार्गणा नाम का चतुर्थ अधिकार समाप्त हुआ।



अथ वेदमार्गणाधिकारः

अथ स्थलत्रयेण चतुर्भिः सूत्रैः वेदमार्गणानाम् पंचमोऽधिकारः प्रारभ्यते। तत्र प्रथमस्थले स्त्रीपुरुष-वेदिनोः क्षेत्रप्ररूपणाय “वेदाणुवादेण” इत्यादिसूत्रमेकं। ततः परं द्वितीयस्थले नपुंसकवेदिनां क्षेत्रप्ररूपणत्वेन “णवुंसय” इत्यादिना एकं सूत्रं। तदनु तृतीयस्थले अपगतवेदिनां क्षेत्रप्रतिपादनत्वेन “अवगद” इत्यादिसूत्रद्वयम्। इति समुदायपातनिका।

अधुना स्त्री-पुरुषवेदिनोः गुणस्थानापेक्षया क्षेत्रप्रतिपादनाय सूत्रावतारो भवति —

वेदाणुवादेण इत्थिवेद-पुरिसवेदेसु मिच्छाइट्टिप्पहुडि जाव अणियट्ठि ति केवडि खेत्ते? लोगस्स असंखेज्जदिभागे।।४३।।

सूत्रार्थः सुगमः। स्वस्थानस्वस्थान-विहारवत्स्वस्थान-वेदना-कषाय-वैक्रियिकसमुद्घातगताः द्रव्य-भाववेदिमिथ्यादृष्टयो जीवाः त्रिलोकानामसंख्यातभागे, तिर्यग्लोकस्य संख्यातभागे, सार्धद्वयद्वीपादसंख्यातगुणे च, अत्र प्रधानीकृतदेवीस्त्रीवेदराशित्वात्^१, अतो ज्ञायतेऽत्र द्रव्यभावस्त्रीवेदस्य ग्रहणमस्ति किं च स्वर्गेषु देवपर्यायेषु द्रव्यभावयोर्वैषम्यं नास्तीति।

अथ वेदमार्गणा अधिकार प्रारंभ

अब तीन स्थलों में चार सूत्रों के द्वारा वेदमार्गणा नामक पंचम अधिकार प्रारम्भ होता है। उनमें से प्रथम स्थल में स्त्रीवेदी और पुरुषवेदी जीवों की क्षेत्र प्ररूपणा बतलाने के लिए “वेदाणुवादेण” इत्यादि एक सूत्र कहेंगे। उसके आगे द्वितीय स्थल में नपुंसकवेदी जीवों का क्षेत्रनिरूपण करने हेतु “णवुंसय” इत्यादि एक सूत्र है। पुनः तृतीय स्थल में वेदरहित अरिहंत-सिद्ध भगवन्तों का क्षेत्र प्रतिपादन करने वाले “अवगद” इत्यादि दो सूत्र हैं। अधिकार के प्रारंभ में सूत्रों की यह समुदायपातनिका कही गई है अर्थात् इस अधिकार में कुल चार सूत्रों के द्वारा वेदमार्गणा का व्याख्यान किया जाएगा।

अब स्त्रीवेदी और पुरुषवेदी जीवों का गुणस्थान की अपेक्षा क्षेत्र बतलाने हेतु सूत्र का अवतार होता है —

सूत्रार्थ —

वेदमार्गणा के अनुवाद से स्त्रीवेदी और पुरुषवेदियों में मिथ्यादृष्टि गुणस्थान से लेकर अनिवृत्तिकरणगुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीव कितने क्षेत्र में रहते हैं? लोक के असंख्यातवें भाग में रहते हैं।।४३।।

हिन्दी टीका — सूत्र का अर्थ सरल है। स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषाय-समुद्घात और विक्रियिकसमुद्घातगत स्त्रीवेदी मिथ्यादृष्टि जीव सामान्यलोक आदि तीन लोकों के असंख्यातवें भाग में, तिर्यग्लोक के संख्यातवें भाग में और अर्द्धाद्वीप से असंख्यातगुणे क्षेत्र में रहते हैं, क्योंकि यहाँ पर देवगतिसम्बन्धी स्त्रीवेदराशि की प्रधानता है, इसलिए यहाँ जानना है कि यहाँ द्रव्यवेद-भाववेद एक हैं क्योंकि स्वर्गों में देवों के द्रव्य और भाववेद में विषमता नहीं है अर्थात् उनके जो द्रव्यवेद रहता है, वही भाववेद पाया जाता है। मारणान्तिक समुद्घात और उपपादगत स्त्रीवेदी मिथ्यादृष्टि सामान्यलोक आदि तीन लोकों के असंख्यातवें भाग में और नरलोक तथा तिर्यग्लोक इन दोनों लोकों से असंख्यातगुणे क्षेत्र में रहते हैं।

मारणान्तिक-उपपादगताः इमाः स्त्रीवेदिन्यः त्रिलोकानामसंख्यातभागे, नरतिर्यग्लोकाभ्यामसंख्यातगुणे।

सासादनसम्यग्दृष्ट्यादि अनिवृत्तिकरणगुणस्थानपर्यंतानां ओघवत् क्षेत्रं ज्ञातव्यं। अस्त्यत्र विशेषः — असंयतसम्यग्दृष्टिषु उपपादो नास्ति। प्रमत्तसंयते तैजसाहारकसमुद्घातौ न स्तः^१।

एतेन एतज्ज्ञायते यत् प्रमत्ताप्रमत्तापूर्वकरणानिवृत्तिकरणगुणस्थानेषु द्रव्यवेदेन पुरुषाः एव भाववेदेन स्त्रीवेदिनो भवन्ति न च द्रव्यवेदस्त्रियः इति।

स्वस्थानस्वस्थान-विहारवत्स्वस्थान-वेदना-कषाय-वैक्रियिकसमुद्घातगताः पुरुषवेदिनः मिथ्यादृष्ट्यः त्रिलोकानामसंख्यातभागे, तिर्यग्लोकस्य संख्यातभागे, सार्धद्वयद्वीपादसंख्यातगुणे क्षेत्रे च निवसन्ति। मारणान्तिक-उपपादगताः त्रिलोकानामसंख्यातभागे, नरतिर्यग्लोकाभ्यामसंख्यातगुणे च। सासादन-सम्यग्दृष्ट्यादि-अनिवृत्तिकरण-उपशामक-क्षपकपर्यन्तानाम् ओघवत् क्षेत्रं ज्ञातव्यम्।

एवं प्रथमस्थले स्त्रीपुरुषवेदिक्षेत्रनिरूपणत्वेन एकं सूत्रं गतम्।

संप्रति नपुंसकवेदिनां गुणस्थानापेक्षया क्षेत्रनिरूपणाय सूत्रमवतरति —

णवुंसयवेदेसु मिच्छादिट्टिप्पहुडि जाव अणियट्ठि ति ओघं॥४४॥

सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थान से लेकर अनिवृत्तिकरण गुणस्थान तक के स्त्रीवेदी जीवों का क्षेत्र ओघ के समान लोक का असंख्यातवाँ भाग है। यहाँ विशेष बात यह है कि असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान में स्त्रीवेदियों के उपपाद नहीं होता है। प्रमत्तसंयत में तैजस और आहारक समुद्घात नहीं होता है।

इस कथन के द्वारा यह ज्ञात होता है कि प्रमत्तसंयत, अप्रमत्तसंयत, अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण गुणस्थानों में द्रव्य से पुरुषवेद ही रहता है, उनके भाव से स्त्रीवेद हो सकता है किन्तु इन गुणस्थानों में द्रव्य से स्त्रीवेदी जीव नहीं रह सकते हैं।

भावार्थ — द्रव्यस्त्री वेदियों के केवल प्रारंभिक पाँच गुणस्थान ही पाये जाते हैं, उससे आगे के गुणस्थान उनके नहीं हो सकते हैं इसीलिए आर्यिकाओं के उपचार महाव्रती होने पर भी पंचमगुणस्थान ही माना गया है। दिग्म्बर जैन आगम की मान्यतानुसार इसीलिए स्त्रीमुक्ति का निषेध किया गया है। इन सिद्धान्त ग्रंथों में वेदमार्गणा के प्रकरण में द्रव्यवेद और भाववेद का सूक्ष्मता से अवलोकन करना चाहिए।

स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात और वैक्रियिक समुद्घात को प्राप्त हुए पुरुषवेदी मिथ्यादृष्टि जीव सामान्यलोक आदि तीन लोकों के असंख्यातवें भाग में, तिर्यग्लोक के संख्यातवें भाग में और अढ़ाईद्वीप से असंख्यातगुणे क्षेत्र में रहते हैं। मारणान्तिकसमुद्घात और उपपाद को प्राप्त पुरुषवेदी मिथ्यादृष्टि जीव सामान्यलोक आदि तीन लोकों के असंख्यातवें भाग में, नरलोक और तिर्यग्लोक से असंख्यातगुणे क्षेत्र में रहते हैं। सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थान से लेकर अनिवृत्तिकरण उपशामक और अनिवृत्तिकरण क्षपक गुणस्थान तक पुरुषवेदी जीवों के स्वस्थानादि पदों का क्षेत्र गुणस्थान क्षेत्र के समान जानना चाहिए।

इस प्रकार प्रथम स्थल में स्त्री और पुरुषवेदी जीवों का क्षेत्र निरूपण करने वाला एक सूत्र पूर्ण हुआ।

अब नपुंसकवेदी जीवों का गुणस्थान की अपेक्षा से क्षेत्र बतलाने हेतु सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ —

नपुंसकवेदी जीवों में मिथ्यादृष्टि गुणस्थान से लेकर अनिवृत्तिकरण गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीवों का क्षेत्र ओघक्षेत्र के समान है॥४४॥

सूत्रं सुगमं। स्वस्थानस्वस्थान-वेदना-कषाय-मारणान्तिक-उपपादगतनपुंसकवेदिमिथ्यादृष्टयः सर्वलोके। विहारवत्स्वस्थान-वैक्रियिकसमुद्घातगताः त्रिलोकानामसंख्यातभागे, तिर्यग्लोकस्य संख्यातभागे।

अस्ति विशेषः — वैक्रियिकसमुद्घातगताः तिर्यग्लोकस्य असंख्यातभागे। सार्धद्वयद्वीपादसंख्यातगुणे क्षेत्रे? येन तिष्ठन्ति तेन ओघमिति घटते। सासादनसम्यग्दृष्टिप्रभृति यावत् अनिवृत्तिकरणगुणस्थानमिति एतेषामपि प्ररूपणा ओघतुल्या अस्ति, किंतु प्रमत्तगुणस्थाने तैजसाहारकपदे न स्तः।

अत्रापि पंचमगुणस्थानपर्यन्ताः नपुंसकवेदिनः द्रव्येण भावेन च संभवन्ति किंतु षष्ठगुणस्थानादुपरि नवमगुणस्थानपर्यन्तं भावेनैव नपुंसकवेदिनः न च द्रव्येण इति निश्चेतव्यम् भवद्भिः। एतस्मादेव सूत्रात् इति।

एवं द्वितीयस्थले द्रव्यभावनपुंसकवेदवतां क्षेत्रनिरूपणत्वेन एकं सूत्रं गतम्।

संप्रति वेदविरहितानां गुणस्थानापेक्षया क्षेत्रनिरूपणाय सूत्रमवतरति —

अवगदवेदएसु अणियट्टिप्पहुडि जाव अजोगिकेवली केवडि खेत्ते? लोगस्स असंखेज्जदिभागे।।४५।।

हिन्दी टीका — सूत्र का अर्थ सुगम है। स्वस्थानस्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात मारणान्तिक समुद्घात और उपपाद इन पदों को प्राप्त नपुंसकवेदी मिथ्यादृष्टि जीव सम्पूर्ण लोक में रहते हैं। विहारवत्स्वस्थान और वैक्रियिकसमुद्घातगत वे ही जीव सामान्यलोक आदि तीन लोकों के असंख्यातवें भाग में और तिर्यग्लोक के संख्यातवें भाग में रहते हैं। यहाँ विशेष बात यह है कि वैक्रियिक समुद्घातगत नपुंसकवेदी मिथ्यादृष्टि जीव तिर्यग्लोक के असंख्यातवें भाग में रहते हैं तथा उक्त दोनों पदों को प्राप्त नपुंसकवेदी मिथ्यादृष्टि जीव, चूंकि अढ़ाईद्वीप से असंख्यातगुणे क्षेत्र में रहते हैं, इसलिये सूत्र में कहा गया 'ओघ' यह पद घटित हो जाता है। सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थान से लेकर अनिवृत्तिकरण गुणस्थान तक भी इन नपुंसकवेदी जीवों की क्षेत्रप्ररूपणा ओघवर्णित क्षेत्रप्ररूपणा के तुल्य है किन्तु प्रमत्तसंयत गुणस्थान में नपुंसकवेदियों के तैजससमुद्घात और आहारकसमुद्घात ये दो पद नहीं होते हैं।

यहाँ भी पंचमगुणस्थान तक द्रव्य और भाव नपुंसकवेदी जीव रहते हैं किन्तु छठे गुणस्थान से नवमें गुणस्थानपर्यन्त भाव से ही नपुंसकवेदी जीव पाये जाते हैं, वहाँ द्रव्य से कोई नपुंसकवेदी नहीं हो सकते हैं, ऐसा इस सूत्र के द्वारा निश्चितरूप से समझना चाहिए।

इस प्रकार द्वितीय स्थल में द्रव्य और भाव नपुंसकवेदी जीवों के क्षेत्र का निरूपण करने वाला एक सूत्र पूर्ण हुआ।

अब वेदरहित — अपगतवेदी जीवों का गुणस्थान की अपेक्षा से क्षेत्र निरूपण करने हेतु सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ —

अपगतवेदी जीवों में अनिवृत्तिकरण गुणस्थान के अवेदभाग से लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीव कितने क्षेत्र में रहते हैं? लोक के असंख्यातवें भाग में रहते हैं।।४५।।

अर्थो ज्ञायते। इमे नवमगुणस्थानस्य अवेदभागादारभ्य अयोगिकेवलिपर्यन्ताः महामुनयः चतुर्लोकानाम-
संख्यातभागे, मानुषक्षेत्रस्य संख्यातभागे स्वस्थानस्थाः तिष्ठन्ति। इमे मारणान्तिकसमुद्घातगताः उपशामकाः
चतुर्लोकानामसंख्यातभागे, सार्धद्वयद्वीपादसंख्यातगुणे च तिष्ठन्ति इति कथितं भवति।

संप्रति सयोगिनां क्षेत्रनिरूपणाय सूत्रावतारो भवति—

सजोगिकेवली ओघं॥४६॥

पूर्वं प्ररूपितार्थमिदं सूत्रमिति अत्र एतस्यार्थो नोच्यते।

तात्पर्यमेतत्—इमां वेदमार्गणां ज्ञात्वा पूर्णब्रह्मचर्यं पालयित्वा अपगतवेदस्थानानि प्राप्तव्यानि।

एवं तृतीयस्थले वेदरहितमहामुनीनां क्षेत्रप्ररूपणत्वेन सूत्रद्वयम् गतम्।

हिन्दी टीका—इस सूत्र का अर्थ यह जानना है कि ये नवमें गुणस्थान के अवेद भाग से आरम्भ करके अयोगिकेवली नामक चौदहवें गुणस्थानपर्यन्त महामुनि चारों लोकों के असंख्यातवें भाग में तथा मनुष्य क्षेत्र के संख्यातवें भाग में स्वस्थान में स्थित रहते हैं। मारणान्तिक समुद्घात को प्राप्त उपशामक—उपशमश्रेणी वाले मुनि चारों लोकों के असंख्यातवें भाग में और ढाईद्वीप से असंख्यातगुणे क्षेत्र में रहते हैं, ऐसा कहा गया है।

अब सयोगिकेवली गुणस्थानवर्ती अरिहंत भगवन्तों का क्षेत्र निरूपण करने के लिए सूत्र का अवतार होता है—

सूत्रार्थ—

अपगतवेदी सयोगिकेवली भगवन्तों का क्षेत्र ओघ के समान है॥४६॥

सूत्र का अर्थ पूर्व में प्ररूपित किया जा चुका है, इसलिए यहाँ पुनः इसका अर्थ नहीं कहा जा रहा है। तात्पर्य यह है कि इस वेदमार्गणा को जानकर पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन करके वेदरहित अवस्था को प्राप्त करना चाहिए।

इस प्रकार तृतीय स्थल में वेदरहित महामुनिराजों के क्षेत्र का निरूपण करने वाले को सूत्र पूर्ण हुए।

विशेषार्थ—वेदमार्गणा के प्रकरण में तीनों वेद वाले जीवों का, अपगतवेदी महामुनियों एवं केवली भगवन्तों का क्षेत्र बताते हुए वेदरहित अवस्था प्राप्त करने की प्रेरणा प्रदान की गई है। सो यहाँ सामान्य और सरलरूप में वेद के सम्बन्ध में ज्ञान प्राप्त करने हेतु बताते हैं—

पुरिसिच्छिसंढवेदोदयेण, पुरिसिच्छिसंढओ भावे।

णामोदयेण दव्वे, पाएण समा कहिं विसमा॥

अर्थात् पुरुष, स्त्री और नपुंसक वेदकर्म के उदय से भावपुरुष भावस्त्री, भावनपुंसक होता है और नामकर्म के उदय से द्रव्यपुरुष द्रव्यस्त्री, द्रव्यनपुंसक होता है। सो यह भाववेद और द्रव्यवेद प्रायः करके समान होते हैं परन्तु कहीं-कहीं विषम भी होते हैं। वेद नामक नोकषाय के उदय से जीवों के भाववेद होता है और निर्माण नामकर्म सहित आंगोपांग नामकर्म के उदय से द्रव्यवेद होता है। ये दोनों ही वेद प्रायः करके तो समान ही होते हैं अर्थात् जो भाववेद वही द्रव्यवेद और जो द्रव्यवेद वही भाववेद परन्तु कहीं-कहीं विषमता भी हो जाती है अर्थात् भाववेद दूसरा, द्रव्यवेद दूसरा। यह विषमता देवगति और नरकगति में तो सर्वथा नहीं पाई जाती है, मनुष्य और तिर्यग्गति में जो भोगभूमिज हैं उनमें भी नहीं पाई जाती है, बाकी के

इति षट्खंडागमप्रथमखंडे तृतीयग्रन्थे क्षेत्रानुगमनाम्नितृतीयप्रकरणे
गणिनीज्ञानमतीकृतसिद्धान्तचिन्तामणिटीकायां
वेदमार्गणानाम पंचमोऽधिकारः समाप्तः।

तिर्यञ्च मनुष्यों में क्वचित् वैषम्य भी पाया जाता है। वेद के तीन भेद होते हैं — पुरुष, स्त्री और नपुंसक वेद। नरकगति में द्रव्य और भाव दोनों वेद नपुंसक ही हैं। देवगति में पुरुष, स्त्रीरूप दो वेद हैं, जिनके जो द्रव्यवेद है, वही भाववेद रहता है, यही बात भोगभूमिजों में भी है। कर्मभूमि के तिर्यच और मनुष्य में विषमता पाई जाती है। किसी का द्रव्यवेद पुरुष है तो भाववेद पुरुष, स्त्री या नपुंसक कोई भी रह सकता है, हां! जन्म से लेकर मरण तक एक ही वेद का उदय रहता है, बदलता नहीं है। द्रव्य से पुरुषवेदी, भाव से स्त्रीवेदी या नपुंसकवेदी है फिर भी मुनि बनकर छठे-सातवें आदि गुणस्थानों को प्राप्त कर मोक्ष जा सकते हैं किन्तु यदि द्रव्य से स्त्रीवेद है और भाव से पुरुषवेद है तो भी उसके पंचम गुणस्थान के ऊपर नहीं हो सकता है। अतएव दिगम्बर आम्नाय में स्त्रीमुक्ति का निषेध है। **पुरुषवेद** — जो उत्कृष्ट गुण या भोगों के स्वामी हैं, लोक में उत्कृष्ट कर्म को करते हैं, स्वयं उत्तम हैं, वे पुरुष हैं। **स्त्रीवेद** — जो मिथ्यात्व असंयम आदि से अपने को दोषों से ढके और मृदुभाषण आदि से पर के दोष को ढके, वह स्त्री है। **नपुंसकवेद** — जो स्त्री और पुरुष इन दोनों लिंगों से रहित हैं, ईंट के भट्टे की अग्नि के समान कषाय वाले हैं, वे नपुंसक हैं। स्त्री और पुरुष का यह सामान्य लक्षण है, वास्तव में रावण आदि अनेक पुरुष भी दोषी देखे जाते हैं और भगवान की माता, आर्यिका महासती सीता आदि अनेक स्त्रियाँ महान श्रेष्ठ देखी जाती हैं। अतः सर्वथा एकान्त नहीं समझना चाहिए। तृण की अग्निवत् पुरुषवेद की कषाय, कंडे की अग्निवत् स्त्रीवेद की कषाय और अवे की अग्नि समान नपुंसकवेदी की कषाय से रहित जो अपगतवेदी हैं, वे अपनी आत्मा से ही उत्पन्न अनन्त सुख को भोगते रहते हैं। ऐसे उन अपगतवेदी सिद्धपरमेष्ठी भगवान के गुणों का स्मरण करते हुए वेदरहित अवस्था प्राप्त करने का प्रयत्न करना चाहिए।

इस प्रकार षट्खंडागम ग्रंथ के प्रथम खंड में तृतीय ग्रंथ के क्षेत्रानुगम नामक
तृतीय प्रकरण में गणिनी ज्ञानमती कृत सिद्धान्तचिन्तामणि टीका
में वेदमार्गणा नामक पंचम अधिकार समाप्त हुआ।



अथ कषायमार्गणाधिकारः

अथ स्थलद्वयेन सूत्रैः चतुर्भिः कषायमार्गणानाम षष्ठोऽधिकारः प्रारभ्यते। तत्र प्रथमस्थले क्रोधादिकषाय-सहितानां क्षेत्रनिरूपणत्वेन “कसायाणुवादेण” इत्यादिसूत्रत्रयं। तदनु द्वितीयस्थले कषायविरहितानां क्षेत्रप्रतिपादनत्वेन “अकसाईसु” इत्यादिसूत्रमेकं इति समुदायपातनिका।

संप्रति क्रोधादिकषायेषु मिथ्यादृष्टीनां क्षेत्रनिरूपणाय सूत्रमवतरति —

**कसायाणुवादेण क्रोधकसाइ-माणकसाइ-मायकसाइ-लोभकसाईसु
मिच्छादिद्वी ओघं॥४७॥**

सूत्रं सुगमं।

एषां क्रोधादिकषायसहितानां मिथ्यादृष्टीनां क्षेत्रं ओघवत् सर्वलोकोऽस्ति। चतुःकषायसहिताः मिथ्यादृष्टयः स्वस्थानस्वस्थान-वेदना-कषाय-मारणान्तिक-उपपादगताः सर्वलोके अवस्थानं कुर्वन्ति। विहारवत्स्वस्थान-वैक्रियिकसमुद्घातगताः अपि त्रिलोकानामसंख्यातभागे, तिर्यग्लोकस्य संख्यातभागे, सार्धद्वयद्वीपादसंख्यातगुणे क्षेत्रे चावस्थानं कुर्वन्ति। ततः चतुःकषायमिथ्यादृष्टयः द्रव्यार्थिकनयेन ओघत्वं लभन्ते।

अथ कषायमार्गणा अधिकार प्रारंभ

अब दो स्थलों में चार सूत्रों के द्वारा कषायमार्गणा नामक छठा अधिकार प्रारंभ होता है। उसमें से प्रथम स्थल में क्रोधादि कषाय से सहित जीवों का क्षेत्र निरूपण करने वाले “कसायाणुवादेण” इत्यादि तीन सूत्र कहेंगे। उसके बाद द्वितीय स्थल में कषाय रहित जीवों का क्षेत्र प्रतिपादन करने वाला “अकसाईसु” इत्यादि एक सूत्र है। इस प्रकार अधिकार के प्रारंभ में सूत्रों की यह समुदायपातनिका हुई है।

अब क्रोधादि कषायों से सहित मिथ्यादृष्टि जीवों का क्षेत्र निरूपण करने हेतु सूत्र का अवतार होता है —
सूत्रार्थ —

कषायमार्गणा के अनुवाद से क्रोधकषायी, मानकषायी, मायाकषायी और लोभकषायी जीवों में मिथ्यादृष्टियों का क्षेत्र ओघ के समान सम्पूर्ण लोक है॥४७॥

हिन्दी टीका — सूत्र का अर्थ सुगम है। इन क्रोध आदि कषाय से सहित मिथ्यादृष्टि जीवों का क्षेत्र गुणस्थान के समान सर्वलोक है अर्थात् सम्पूर्ण लोक में ये जीव पाये जाते हैं।

चारों कषाय सहित मिथ्यादृष्टि जीव जो स्वस्थानस्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात, मारणांतिक समुद्घात और उपपाद पद को प्राप्त हैं, वे सम्पूर्ण लोक में अवस्थान करते हैं।

विहारवत्स्वस्थान और वैक्रियिक समुद्घात को प्राप्त मिथ्यादृष्टि जीव भी तीनों लोकों के असंख्यातवें भाग में, तिर्यग्लोक के संख्यातवें भाग में और ढाईद्वीप से असंख्यातगुणे क्षेत्र में अवस्थान करते रहते हैं इसीलिए चारों कषाय संयुक्त मिथ्यादृष्टि जीव द्रव्यार्थिक नय से ओघपने को प्राप्त हो जाते हैं।

अब सासादन गुणस्थान से लेकर अनिवृत्तिकरणगुणस्थान तक के जीवों का क्षेत्र निरूपण करने के लिए सूत्र का अवतार होता है —

सासादनादि अनिवृत्तिगुणस्थानपर्यंतानां क्षेत्रनिरूपणाय सूत्रावतारो भवति—

सासणसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव अणियट्ठि त्ति केवडि खेत्ते? लोगस्स असंखेज्जदिभागे।।४८।।

सूत्रं सुगमं।

पूर्वसूत्रेण द्रव्यार्थिकनयावलम्बिशिष्याणामनुग्रहोऽस्ति, अस्मिन् सूत्रे पर्यायार्थिकनयावलम्बि-शिष्याणामनुग्रहो वर्तते, किंच—“एदेण दव्वपज्जवट्ठियणयपज्जायपरिणदजीवाणुगहकारिणो जिणा इदि जाणाविदं।”

अस्यायमर्थः—एतेन कथनेन द्रव्यार्थिक-पर्यायार्थिकद्वयनयपर्यायपरिणतजीवानुग्रहकारिणः जिनाः इति ज्ञापितः श्रीवीरसेनाचार्येण धवलाटीकाकारेण।

इमे चतुर्विधकषायसहिताः स्वस्थानस्वस्थान-विहारवत्स्वस्थान-वेदना-कषाय-वैक्रियिक-मारणान्तिक-उपपादगतसासादनसम्यग्दृष्टि-असंयतसम्यग्दृष्टिजीवाः चतुर्लोकानामसंख्यातभागे, सार्धद्वयद्वीपादसंख्यातगुणे क्षेत्रे तिष्ठन्ति। एवं सम्यग्मिथ्यादृष्टीनां क्षेत्रं, किंतु अत्र मारणान्तिकोपपादौ न स्तः। एवमेव संयतासंयतानां क्षेत्रं, अत्रापि उपपादपदं नास्ति। शेषगुणस्थानानि चतुर्लोकानामसंख्यातभागे, मानुषक्षेत्रस्य संख्यातभागे। विशेषेण मारणान्तिकसमुद्घातगताः मानुषक्षेत्रादसंख्यातगुणे क्षेत्रे निवसन्ति।

लोभकषायविशेषप्रतिपादनार्थं उत्तरसूत्रमवतरति—

सूत्रार्थ—

सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थान से लेकर अनिवृत्तिकरण गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती चारों कषाय वाले जीव कितने क्षेत्र में रहते हैं ? लोक के असंख्यातवें भाग में रहते हैं।।४८।।

हिन्दी टीका—सूत्र का अर्थ सरल है। पूर्व सूत्र के द्वारा द्रव्यार्थिक नय का अवलम्बन लेने वाले शिष्यों का अनुग्रह किया गया है। इस सूत्र में पर्यायार्थिक नयावलम्बी शिष्यों का अनुग्रह किया गया है क्योंकि “जिन भगवान् द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक इन दोनों नयस्वरूप पर्यायों से परिणत जीवों के अनुग्रह करने वाले होते हैं” ऐसा बतलाया है।

इसका अर्थ यह है कि इस कथन के द्वारा द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक इन दोनों नयों की पर्यायों से परिणत जीवों का जिनेन्द्र भगवान् अनुग्रह करते हैं, ऐसा श्रीवीरसेनाचार्य ने धवलाटीका में ज्ञापित किया है।

इन चारों कषाय से सहित स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात, वैक्रियिकसमुद्घात, मारणान्तिकसमुद्घात और उपपाद इन पदों को प्राप्त सासादनसम्यग्दृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीव सामान्यलोक आदि चार लोकों के असंख्यातवें भाग में और अर्द्धद्वीप से असंख्यातगुणे क्षेत्र में रहते हैं। इसी प्रकार से चारों कषाय वाले सम्यग्मिथ्यादृष्टियों का क्षेत्र जानना चाहिए। विशेष बात यह है कि यहाँ पर मारणान्तिकसमुद्घात और उपपाद ये दो पद नहीं हैं। शेष गुणस्थानवर्ती चारों कषाय वाले जीव सामान्यलोक आदि चारों लोकों के असंख्यातवें भाग में और मानुषक्षेत्र के संख्यातवें भाग में रहते हैं। विशेष रूप से मारणान्तिक समुद्घातगत चारों कषाय वाले संयत जीव मानुषक्षेत्र से असंख्यातगुणे क्षेत्र में रहते हैं।

अब लोभकषाय का विशेष व्याख्यान करने के लिए उत्तरसूत्र अवतरित होता है—

णवरि विसेसो, लोभकसाईसु सुहुमसांपराइयसुद्धिसंजदा उवसमा खवा केवडि खेत्ते? लोगस्स असंखेज्जदिभागे।।४९।।

एतस्यार्थः सुगमः।

एवं प्रथमस्थले कषायिनां जीवानां क्षेत्रनिरूपणपराणि त्रीणि सूत्राणि गतानि।

संप्रति कषायविरहितां क्षेत्रनिरूपणाय सूत्रावतारो भवति—

अकसाईसु चदुट्टाणमोघं।।५०।।

अत्र सूत्रे 'ट्टाण' शब्दः गुणस्थानवाचकोऽस्ति। 'अवयवेषु प्रवृत्ताः शब्दाः समुदायेष्वपि वर्तन्ते' इति न्यायात्। उपशान्तकषायः कथमकषायः?

नैष दोषः, भावकषायभावं दृष्ट्वा तस्यापि अकषायत्वसिद्धिर्भवति। तात्पर्यमेतत्—इमे क्रोधादिकषायाः एवं आत्मानं कषन्ति—हिंसन्ति एभ्यः एव कर्मणां बंधो भवतीति ज्ञात्वा कषायविनाशनाय प्रयत्नो विधेयः यावत्कषायाणां नाशो न भवेत् तावत् शनैः शनैः कषायाः कृशीकरणीयाः अस्माभिरिति।

एवं द्वितीयस्थले अकषायमुनीनां भगवतां च क्षेत्रनिरूपणत्वेन एकं सूत्रं गतम्।

सूत्रार्थ—

विशेष बात यह है कि लोभकषायी जीवों में सूक्ष्मसाम्परायिक शुद्धिसंयत उपशमक और क्षपक जीव कितने क्षेत्र में रहते हैं? लोक के असंख्यातवें भाग में रहते हैं।।४९।।

इस सूत्र का अर्थ सरल है।

इस प्रकार प्रथम स्थल में कषायसंयुक्त जीवों का क्षेत्र निरूपण करने वाले तीन सूत्र पूर्ण हुए।

अब कषायरहित महामुनियों का क्षेत्र निरूपण करने के लिए सूत्र का अवतार होता है—

सूत्रार्थ—

अकषायी जीवों में उपशान्तकषाय आदि चारों गुणस्थानों का क्षेत्र ओघक्षेत्र के समान है।।५०।।

हिन्दी टीका—यहाँ सूत्र में “ट्टाण” अर्थात् “स्थान” शब्द गुणस्थान का वाचक है, क्योंकि अवयवों में प्रवृत्त हुए शब्द समुदायों में भी रहते हैं, ऐसा न्याय है।

प्रश्न—उपशान्तकषाय गुणस्थान को अकषाय क्यों कहा है ?

उत्तर—यह कोई कषाय नहीं है, क्योंकि भावकषाय के अभाव की विवक्षा से उपशान्तकषाय गुणस्थान के भी अकषायपने की सिद्धि हो जाती है।

तात्पर्य यह है कि ये क्रोधादि कषायें ही आत्मा को कसती हैं—हिंसा करती हैं, इनसे ही कर्मों का बन्ध होता है, ऐसा जानकर जब तक कषायों का नाश करने हेतु हम सभी को प्रयत्न करना चाहिए तथा जब तक कषायों का नाश नहीं होवे, तब तक धीरे-धीरे कषायों को कृश करना चाहिए।

इस प्रकार द्वितीयस्थल में कषायरहित मुनियों का एवं भगवन्तों का क्षेत्र निरूपण करने वाला एक सूत्र पूर्ण हुआ।

विशेषार्थ—कृष विलेखने धातु से यह कषाय शब्द बना है। जिसका अर्थ जोतना होता है। कषाय यह किसान के स्थानापन्न है। जिस तरह किसान लम्बे-चौड़े खेत को इसलिए जोतता है कि उसमें बोया हुआ बीज अधिक से अधिक प्रमाण में उत्पन्न हो, उसी तरह कषाय द्रव्यापेक्षया अनाद्यनिधन कर्मरूपी क्षेत्र को जिसकी कि सीमा बहुत दूर तक है, इस तरह से जोतता है कि शुभाशुभ फल इसमें अधिक से अधिक उत्पन्न हों।

सम्यक्त्व देशचारित्र सकलचारित्र यथाख्यातचारित्ररूपी परिणामों को जो कषे—घाते, न होने दे,

इति षट्खंडागमप्रथमखंडे तृतीयग्रन्थे क्षेत्रानुगमनाम्नि तृतीयप्रकरणे गणिनीज्ञानमतीविरचित-
सिद्धान्तचिन्तामणिटीकायां कषायमार्गणानाम षष्ठोऽधिकारः समाप्तः।

उसको कषाय कहते हैं। इसके अनन्तानुबंधी, अप्रत्याख्यानावरण, प्रत्याख्यानावरण एवं संज्वलन इस प्रकार चार भेद हैं। अनन्तानुबन्धी आदि चारों के क्रोध, मान, माया, लोभ इस तरह चार-चार मतभेद होने से कषाय के उत्तरभेद सोलह होते हैं किन्तु कषाय के उदयस्थानों की अपेक्षा से असंख्यात लोकप्रमाण भेद हैं। जो सम्यक्त्व को रोके, उसको अनन्तानुबन्धी, जो देशचारित्र को रोके, उसको अप्रत्याख्यानावरण, जो सकलचारित्र को रोके, उसको प्रत्याख्यानावरण, जो यथाख्यातचारित्र को रोके, उसको संज्वलन कषाय कहते हैं।

जो कषाय के अनन्तानुबंधी आदि चार भेद बताये हैं, वे उसके स्वरूप और विषय को बताते हैं। जिससे उनका जाति भेद और वे आत्मा के किस-किस गुण का घात करते हैं, यह मालूम हो जाता है। इस गाथा में सब प्रकार के क्रोधों में से प्रत्येक क्रोध के उसकी शक्ति के तरतम स्थानों की अपेक्षा चार-चार भेद बताये हैं। साथ ही इन तरतम स्थानों के द्वारा बंधने वाले कर्मों और प्राप्त होने वाले संसार फल की विशेषता को भी दिखाया है। शक्ति की अपेक्षा क्रोध के चार भेद इस प्रकार हैं—उत्कृष्ट, अनुकृष्ट, अजघन्य और जघन्य। इन्हीं चार भेदों को यहाँ पर क्रम से दृष्टांत गर्भित शिला भेद आदि नाम से बताया है। जिस तरह शिला, पृथ्वी, धूलि और जल में की गई रेखा उत्तरोत्तर अल्प-अल्प समय में मिटती है उसी तरह उत्कृष्टादि कषाय स्थानों के विषय में समझना चाहिए तथा वे अपने-अपने योग्य आयु, गति आनुपूर्वी आदि कर्मों के बंधन की योग्यता रखते हैं।

मान भी चार प्रकार का होता है—पत्थर के समान, हड्डी के समान, काठ के समान तथा बेंत के समान। ये चार प्रकार के मान भी क्रम से नरक, तिर्यच, मनुष्य तथा देवगति के उत्पादक हैं।

माया भी चार प्रकार की होती है—बाँस की जड़ के समान, मेढ़े के सींग के समान, गोमूत्र के समान, खुरपा के समान। यह चार तरह की माया भी क्रम से जीव को नरक, तिर्यच, मनुष्य और देवगति में ले जाती है। माया के ये चार भेद कुटिलता की अपेक्षा से हैं। जितनी अधिक कुटिलता जिसमें पाई जाये वह उतनी ही उत्कृष्ट माया कही जाती है और वह उक्त क्रमानुसार गतियों की उत्पादक होती है। वेणुमूल में सबसे अधिक वक्रता पाई जाती है, इसलिए शक्ति की अपेक्षा उत्कृष्ट माया का यह दृष्टांत है। इसी प्रकार अनुकृष्ट माया का मेषश्रंग, अजघन्य माया का गोमूत्र और जघन्य माया का खुरपा दृष्टांत समझना चाहिए।

लोभ कषाय भी चार प्रकार की है—क्रिमिराग के समान, चक्रमल (रथ आदि के पहियों के भीतर का ओंगन) के समान, शरीर के मल के समान, हल्दी के रंग के समान। यह भी क्रम से नरक, तिर्यच, मनुष्य एवं देवगति की उत्पादक है।

जिस प्रकार किरिमिजी का रंग अत्यंत गाढ़ होता है, बड़ी ही मुश्किल से छूटता है, उसी प्रकार जो लोभ सबसे अधिक गाढ़ हो, उसको किरिमिजी के समान कहते हैं। इससे जो जल्दी-जल्दी छूटने वाले हैं, उनको क्रम से ओंगन, शरीर मल, हल्दी के रंग के सदृश समझना चाहिये।

जिनके स्वयं को, दूसरे को तथा दोनों को ही बाधा देने और बन्धन करने तथा असंयम करने में निमित्तभूत क्रोधादिक कषाय नहीं हैं तथा जो बाह्य और अभ्यन्तर मल से रहित हैं, ऐसे जीवों को अकषाय कहते हैं।

गुणस्थानों की अपेक्षा ग्यारहवें गुणस्थान से लेकर सभी जीव अकषाय हैं।

इस प्रकार षट्खंडागम ग्रंथ के प्रथम खंड में तृतीय ग्रंथ में क्षेत्रानुगम नामक
तृतीय प्रकरण में गणिनी ज्ञानमती विरचित सिद्धान्तचिन्तामणि टीका
में कषायमार्गणा नामक छठा अधिकार समाप्त हुआ।

अथ ज्ञानमार्गणाधिकारः

अथ स्थलचतुष्टयेन सप्तभिः सूत्रैः ज्ञानमार्गणानाम सप्तमोऽधिकारः प्रारभ्यते। तत्र प्रथमस्थले त्रिविधाज्ञानक्षेत्रप्ररूपणत्वेन “णाणाणुवादेण” इत्यादिसूत्रत्रयं। तदनु द्वितीयस्थले त्रिविधज्ञानानां क्षेत्रनिरूपणत्वेन “आभिणिबोहिय” इत्यादिसूत्रमेकं। ततः परं तृतीयस्थले मनःपर्ययज्ञानानां क्षेत्रप्रतिपादनत्वेन “मणपज्जव” इत्यादिसूत्रमेकं। तत्पश्चात् चतुर्थस्थले केवलज्ञानानां क्षेत्रकथनप्रकारेण “केवलणाणीसु” इत्यादिसूत्रद्वयम् इति समुदायपातनिका।

अधुना ज्ञानमार्गणायां द्विविधाज्ञानक्षेत्रप्ररूपणाय सूत्रावतारः क्रियते—

णाणाणुवादेण मदिअण्णाणि-सुदअण्णाणीसु मिच्छादिट्ठी ओघं।।५१।।

सूत्रं सुगमं।

मिथ्यादृष्टिगुणस्थानाद् व्यतिरिक्तसासादनमपि संभवति एषु अज्ञानेषु अतः निर्धारणार्थेषु सप्तमी वर्ततेऽस्मिन् सूत्रे।

सासादनगुणस्थाने क्षेत्रप्ररूपणाय सूत्रावतारो भवति—

सासणसम्मादिट्ठी ओघं।।५२।।

अथ ज्ञानमार्गणा अधिकार प्रारंभ

अब चार स्थलों में सात सूत्रों के द्वारा ज्ञानमार्गणा नाम का सातवाँ अधिकार प्रारंभ होता है। उनमें से प्रथम स्थल में तीन प्रकार के मिथ्याज्ञानी जीवों का क्षेत्र प्ररूपण करने वाले “णाणाणुवादेण” इत्यादि तीन सूत्र कहेंगे। उसके बाद द्वितीय स्थल में तीन प्रकार के ज्ञानी जीवों का क्षेत्र कथन करने वाला “आभिणिबोहिय” इत्यादि एक सूत्र है। उससे आगे तृतीय स्थल में मनःपर्ययज्ञानी जीवों का क्षेत्र प्रतिपादन करने हेतु “मणपज्जव” इत्यादि एक सूत्र है। तत्पश्चात् चतुर्थ स्थल में केवलज्ञानी जीवों का क्षेत्र कथन करने वाले “केवलणाणीसु” इत्यादि दो सूत्र हैं। इस प्रकार सूत्रों की समुदायपातनिका हुई है।

अब ज्ञानमार्गणा में प्रथम प्रकार के दो अज्ञानी जीवों का क्षेत्र प्ररूपण करने के लिए सूत्र का अवतार किया जा रहा है—

सूत्रार्थ—

ज्ञानमार्गणा के अनुवाद से मत्यज्ञानी और श्रुताज्ञानियों में मिथ्यादृष्टियों का क्षेत्र ओघ के समान सर्वलोक है ।।५१।।

सूत्र का अर्थ सुगम है।

मिथ्यादृष्टि गुणस्थान के अतिरिक्त सासादनगुणस्थानवर्ती जीवों में भी ये कुमति-कुश्रुतज्ञान पाये जाते हैं इसीलिए इस सूत्र में निर्धारण अर्थ में सप्तमी विभक्ति का प्रयोग किया गया है।

अब सासादन गुणस्थान में क्षेत्रप्ररूपणा बतलाने हेतु सूत्र का अवतार होता है—

सूत्रार्थ—

सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानवर्ती मत्यज्ञानी और श्रुताज्ञानियों का क्षेत्र ओघसासादन-सम्यग्दृष्टि के समान लोक का असंख्यातवाँ भाग है।।५२।।

अत्र पूर्वसूत्रेण मतिश्रुताज्ञानिनोः पदस्य अनुवृत्ति वर्तते। शेषं सुगमं।

अचेतन-क्षणक्षयिशब्दस्य अविनष्टरूपेण अनुवृत्तिः कथं इति चेत् ?

नैष दोषः, अस्य सूत्रस्य अवयवभावेन स्थितान्यशब्दस्य पूर्वशब्देन समानत्वं विलोक्य 'स चैव एषः' इति प्रत्यभिज्ञानप्रत्ययनिमित्तस्य शब्दस्य अनुवृत्तिविरोधाभावात्।

संप्रति विभंगज्ञानिक्षेत्रप्रतिपादनाय सूत्रावतारः क्रियते —

विभंगण्णाणीसु मिच्छादिद्वी सासणसम्मादिद्वी केवडि खेत्ते? लोगस्स असंखेज्जदिभागे।।५३।।

सूत्रं सुगमं। विभंगज्ञानिनो मिथ्यादृष्टयः स्वस्थानस्वस्थान-विहारवत्स्वस्थान-वेदना-कषाय-वैक्रियिकसमुद्घातगताः त्रिलोकानामसंख्यातभागे तिर्यग्लोकस्य संख्यातभागे सार्धद्वयद्वीपादसंख्यातगुणे क्षेत्रे च तिष्ठन्ति। मारणान्तिकसमुद्घातगताः एवं चैव, केवलमस्ति विशेषः-तिर्यग्लोकस्य असंख्यातगुणे इति वक्तव्यम्। अत्र कुअवधिज्ञाने उपपादपदं नास्ति। सासादनसम्यग्दृष्टयः सवैरपि पदैः चतुर्लोकानाम-संख्यातभागे, सार्धद्वयद्वीपादसंख्यातगुणे च। अत्रापि उपपादो नास्ति।

एवं प्रथमस्थले त्रिविधाज्ञानवतां क्षेत्रनिरूपणत्वेन त्रीणि सूत्राणि गतानि।

हिन्दी टीका — यहाँ पूर्व सूत्र से “कुमति-कुश्रुतज्ञानी जीवों में” इस पद की अनुवृत्ति चली आ रही है, शेष कथन सुगम है।

शंका — अचेतन और क्षण-क्षयी शब्द की अविनष्ट रूप से अनुवृत्ति कैसे हो सकती है ?

समाधान — यह कोई दोष नहीं है क्योंकि इस सूत्र के अवयवरूप से स्थित अन्य शब्द की पूर्व शब्द के साथ समानता देखकर, यह वही है, इस सूत्र के प्रत्यभिज्ञान की प्रतीति के निमित्तभूत शब्द की अनुवृत्ति होने में कोई विरोध नहीं आता है।

अब विभंगज्ञानियों का क्षेत्र प्रतिपादन करने हेतु सूत्र का अवतार होता है —

सूत्रार्थ —

विभंगज्ञानियों में मिथ्यादृष्टि जीव और सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानवर्ती जीव कितने क्षेत्र में रहते हैं? लोक के असंख्यातवें भाग में रहते हैं।। ५३।।

हिन्दी टीका — सूत्र का अर्थ सरल है। विभंगज्ञानी मिथ्यादृष्टि जीव स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात और वैक्रियिकसमुद्घात को प्राप्त तीनलोकों के असंख्यातवें भाग में, तिर्यग्लोक के संख्यातवें भाग में और अर्द्धद्वीप से असंख्यातगुणे क्षेत्र में रहते हैं। मारणांतिक समुद्घातगत विभंगज्ञानियों का क्षेत्र भी इसी प्रकार ही है। विशेषता केवल इतनी है कि वे तिर्यग्लोक से असंख्यातगुणे क्षेत्र में रहते हैं। यहाँ विभंगज्ञानी मिथ्यादृष्टि जीवों के उपपादपद नहीं होता है, (क्योंकि पर्याप्तावस्था में ही विभंगज्ञान उत्पन्न होता है)। विभंगज्ञानी सासादनसम्यग्दृष्टि जीव स्वस्थानादि सभी संभव पदों की अपेक्षा चारों लोकों के असंख्यातवें भाग में और अर्द्धद्वीप से असंख्यातगुणे क्षेत्र में रहते हैं। यहाँ पर भी उपपाद पद नहीं है।

इस प्रकार प्रथमस्थल में तीनों प्रकार के मिथ्याज्ञानी जीवों का क्षेत्र बताने वाले तीन सूत्र पूर्ण हुए। अब तीन प्रकार के सम्यग्ज्ञानी जीवों के गुणस्थान की अपेक्षा क्षेत्र का कथन करने हेतु सूत्र का अवतार होता है —

अधुना त्रिविधज्ञानिनां गुणस्थानापेक्षया क्षेत्रनिरूपणाय सूत्रमवतरति —

**आभिणिबोहिय-सुद-ओहिणाणीसु असंजदसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव
खीणकसायवीदराग छदुमत्था केवडि खेत्ते? लोगस्स असंखेज्जदिभागे।।५४।।**

सूत्रस्य एतस्यार्थः पूर्वोक्तः वर्ततेऽतो नात्र पुनः कथ्यते।

एवं द्वितीयस्थले मतिश्रुतावधिज्ञानिनां क्षेत्रनिरूपणपरं एकं सूत्रं गतम्।

सूत्रार्थ —

आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानियों में असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान से लेकर क्षीणकषायवीतरागछद्मस्थ गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीव कितने क्षेत्र में रहते हैं ? लोक के असंख्यातवें भाग में रहते हैं ।।५४।।

इस सूत्र की व्याख्या पूर्व में की जा चुकी है, इसलिए यहाँ पुनः वर्णन नहीं किया जा रहा है।

इस प्रकार द्वितीय स्थल में मति-श्रुत और अवधिज्ञानी जीवों का क्षेत्र निरूपण बरने वाला एक सूत्र पूर्ण हुआ।

विशेषार्थ — इन्द्रिय और मन से उत्पन्न होने वाले ज्ञान को मतिज्ञान कहते हैं तथा श्रुतज्ञान मतिज्ञान- पूर्वक ही होता है अर्थात् एकेन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय तक सभी जीवों में मति-श्रुत इन दो ज्ञानों का सद्भाव अवश्य पाया जाता है, वे चाहे मिथ्यारूप हों या सम्यक् रूप। इन्द्रिय और मन की सहायता से उत्पन्न होने वाले इन दोनों ज्ञानों को परोक्षज्ञान की संज्ञा दी है तथा व्यवहार में इनका कार्य प्रत्यक्ष दिखने के कारण न्याय की भाषा में इन दोनों ज्ञानों को सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष भी कहा है तथा अवधिज्ञान को देशप्रत्यक्ष कहकर उसके दो भेद माने हैं— गुणप्रत्यय अवधिज्ञान और भवप्रत्यय अवधिज्ञान। इनमें से गुणप्रत्यय अवधिज्ञान ऋद्धिधारी मुनियों के होता है एवं भवप्रत्यय अवधिज्ञान देव और नारकियों के जन्म से ही होता है। हाँ, उनमें इस ज्ञान की हीनाधिकता पाई जाती है। यहाँ इस सूत्र में मति-श्रुत-अवधिज्ञानी जीव कहाँ तक पाए जाते हैं उनका क्षेत्र बताया है, फिर भी मैं तत्त्वार्थ राजवार्तिक ग्रंथ के आधार से यहाँ अवधिज्ञान के क्षेत्र का भी वर्णन कर रही हूँ।

दस प्रकार के भवनवासियों का अवधिक्षेत्र जघन्य २५ योजन है। उत्कृष्ट असुरकुमारों के अवधिज्ञान का विषय नीचे की ओर तथा तिरछा असंख्यात कोड़ा-कोड़ी योजन है और ऊपर ऋतुविमान के ऊपरी भाग तक है। नागकुमारादि नव भवनवासियों के उत्कृष्ट अवधिज्ञान का विषय नीचे की तरफ असंख्यात हजार योजन है, ऊपर सुमेरु पर्वत के शिखर तक तथा तिरछा असंख्यात हजार योजन है। आठ प्रकार के व्यन्तरों का अवधिज्ञान का विषय जघन्य २५ योजन, उत्कृष्ट नीचे असंख्यात हजार योजन, ऊपर अपने विमान के ऊपरी भाग तक और तिरछे असंख्यात कोड़ा-कोड़ी योजन है। ज्योतिषी देवों के अवधिज्ञान का जघन्य विषय नीचे की ओर संख्यात योजन-उत्कृष्ट असंख्यात हजार योजन, ऊपर की ओर उत्कृष्ट अपने विमान के ऊपरी भाग तक तथा तिरछे असंख्यात कोड़ा-कोड़ी योजन है।

वैमानिकों में सौधर्म और ईशान स्वर्ग वासी देवों के जघन्य अवधिज्ञान का विषय ज्योतिषियों के उत्कृष्ट क्षेत्रप्रमाण है। उत्कृष्ट अवधि नीचे की ओर रत्नप्रभा के अन्तिम पटल तक है। सानत्कुमार और माहेन्द्र स्वर्गवासियों के अवधिज्ञान का जघन्य क्षेत्र रत्नप्रभा के अन्तिम पटल तक है और उत्कृष्ट क्षेत्र शर्कराप्रभा के अन्तिम पटल तक है। ब्रह्म, ब्रह्मोत्तर, लान्तव और कापिष्ठ में जघन्य अवधि का क्षेत्र नीचे की ओर शर्कराप्रभा

के अन्तिम पटल तक है और उत्कृष्ट बालुकाप्रभा का अन्तिम भाग है। शुक्र, महाशुक्र, शतार और सहस्रार में नीचे की ओर जघन्य अवधि बालुकाप्रभा का अन्तिमभाग और उत्कृष्ट पंकप्रभा का अन्तिम भाग है। आनत, प्राणत, आरण और अच्युतस्वर्ग में नीचे की ओर जघन्य अवधि पंकप्रभा का अन्तिम भाग और उत्कृष्ट धूमप्रभा का अन्तिम भाग है। नव ग्रैवेयकों की जघन्य अवधि धूमप्रभा के अन्तिम भाग तक और उत्कृष्ट तमःप्रभा के अन्तिम भाग प्रमाण है। नव अनुदिश और पाँच अनुत्तर विमानवासी देवों के अवधिज्ञान का क्षेत्रलोकनालीपर्यन्त है। सौधर्मादि अनुत्तरपर्यन्त विमानवासियों की अवधि का क्षेत्र ऊपर की ओर अपने-अपने विमानों के ऊपरी भाग तक है, तिरछा असंख्यात कोड़ा-कोड़ी योजन है।

नारकियों में एक योजन से लेकर अर्ध-अर्ध योजन कम करना, जब तक एक गव्यूति न रह जाए। जैसे-रत्नप्रभा स्थित नारकियों के अवधिज्ञान का विषय नीचे एक योजन प्रमाण है। शर्कराप्रभा में साढ़े तीन कोस प्रमाण क्षेत्र, बालुकाप्रभा में नीचे अवधिज्ञान का विषय तीन कोस, पंकप्रभा में ढाई कोस, धूमप्रभा में दो कोस, तमःप्रभा में डेढ़ कोस आदि महातमःप्रभा में एक कोसप्रमाण अवधिज्ञान का क्षेत्र है अर्थात् उतने क्षेत्र में स्थित वस्तु को वह प्रत्यक्ष जानता है। सर्व (सातों) ही पृथिवियों के नारकियों के ऊपर की ओर अवधिज्ञान के क्षेत्र का विषय अपने-अपने नरक बिलों के ऊपरी भाग तक है और असंख्यात कोड़ा-कोड़ी योजन है।

तिर्यच और मनुष्यों के क्षयोपशम के निमित्त से होने वाला छह विकल्प वाला अवधिज्ञान होता है।

अनुगामी, अननुगामी, वर्धमान, हीयमान, अवस्थित और अनवस्थित के भेद से छह प्रकार का है। कोई अवधि सूर्य के प्रकाश के समान भवान्तर में जाने वाले के पीछे जाता है, वह अनुगामी है। मूर्ख के प्रश्न के समान वहीं गिर जाता है-भवान्तर में साथ नहीं जाता है, वह अननुगामी है। सम्यग्दर्शनादि गुणों की विशुद्धि के कारण अरणी के निर्मथन से उत्पन्न शुष्क पत्रों से उपचीयमान ईंधन के समूह में वृद्धिगत अग्नि के समान बढ़ता रहता है वह वर्धमान अवधिज्ञान है, वह असंख्यात लोकपरिमाण तक बढ़ता रहता है। जो ईंधन रहित अग्नि के समान, जिस परिमाण से उत्पन्न हुआ था उससे प्रतिदिन सम्यग्दर्शनादि गुणों की हीन, संक्लेश परिणाम की वृद्धि के योग से अंगुल के असंख्यात भाग तक घटता रहे, वह हीयमान अवधिज्ञान है। सम्यग्दर्शनादि गुणों के अवस्थान से अवधिज्ञान मुक्तिप्राप्ति या केवलज्ञानपर्यन्त जैसे का तैसा बना रहे, न बढ़े और न घटे, वह अवस्थित अवधिज्ञान है जैसे-तिलादि चिन्ह न घटते हैं और न बढ़ते हैं। जिस परिमाण में उत्पन्न हुआ अवधिज्ञान, सम्यग्दर्शनादि गुणों की वृद्धि एवं हानि के कारण वायु से प्रेरित जल की तरंगों के समान जहाँ तक घट सकता है, वहाँ तक घटता रहे और जहाँ तक बढ़ सकता है, वहाँ तक बढ़ता रहे, वह अनवस्थित अवधिज्ञान है।

दूसरी प्रकार से भी अवधिज्ञान के तीन भेद हैं — देशावधि, परमावधि, सर्वावधि। देशावधिज्ञान का सर्वजघन्यक्षेत्र उत्सेधांगुल के असंख्यातवें भाग, जघन्यकाल आवलि के असंख्येय भाग और द्रव्य अंगुल के असंख्यातवें भाग क्षेत्रप्रदेश प्रमाण है अर्थात् उतने क्षेत्रप्रमाण स्थित असंख्यात और अनन्त स्कन्ध प्रदेशों में इस ज्ञान की प्रवृत्ति होती है। स्वविषयस्कन्धगत अनन्त वर्ण, रस आदि भाव को जानना इस ज्ञान का भाव है।

इसी प्रकार अवधि ज्ञानोपयोग दो प्रकार का है — अनेकक्षेत्र और एकक्षेत्र। श्रीवृक्ष, स्वस्तिक, नंदावर्त आदि किसी एक चिन्ह के स्थान से उपयोग करना एकक्षेत्र है और अनेक क्षेत्र से प्रकट होना अनेकक्षेत्र है। इन चिन्हों की अपेक्षा रखने के कारण इसे पराधीन या परोक्ष नहीं कह सकते क्योंकि इन्द्रियों को ही 'पर' कहा गया है, जैसे कहा है—“इन्द्रियाँ पर हैं। इन्द्रियों से भी परे मन है। मन से भी परे बुद्धि और बुद्धि से भी परे आत्मा है।” अतः इन्द्रियों की अपेक्षा न होने से इसे परोक्ष नहीं कह सकते, इस प्रकार बहुत प्रकार का अवधिज्ञान होता है।

अधुना मनःपर्ययज्ञानिक्षेत्रकथनाय सूत्रमवतरति —

**मणपज्जवणाणीसु पमत्तसंजदप्पहुडि जाव खीणकसायवीदरागछदुमत्था
लोगस्स असंखेज्जदिभागे।।५५।।**

सूत्रं सुगमं।

एषु त्रिषु सूत्रेषु पर्यायार्थिकनयदेशना किमर्थ?

बहूनां जीवानामनुग्रहार्थत्वात्।

द्रव्यार्थिकनयावलम्बिजीवेभ्यः पर्यायार्थिकनयस्थितजीवानां बहुत्वं कथमवगम्यते?

नैतत्, संग्रहनयरुचिजीवेभ्यः बहूनां विस्तररुचिजीवानामुपलंभात्। शेषमवगतार्थः।

एवं तृतीयस्थले मनःपर्ययज्ञानिक्षेत्रनिरूपणत्वेन एकं सूत्रं गतम्।

अब मनःपर्ययज्ञानी महामुनियों का क्षेत्र कथन करने के लिए सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ —

**मनःपर्ययज्ञानियों में प्रमत्तसंयत गुणस्थान से लेकर क्षीणकषायवीतरागछद्मस्थ
गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीव लोक के असंख्यातवें भाग में रहते हैं।।५५।।**

हिन्दी टीका — सूत्र का अर्थ सरल है।

प्रश्न — इन अभी कहे गये तीनों सूत्रों में पर्यायार्थिकनय का उपदेश किसलिए दिया गया है ?

उत्तर — बहुत से जीवों के अनुग्रह करने के लिए पर्यायार्थिकनय का उपदेश दिया गया है।

प्रश्न — द्रव्यार्थिकनय का अवलम्बन लेने वाले जीवों से पर्यायार्थिक नय वाले जीव बहुत हैं, यह कैसे जाना जाता है ?

उत्तर — ऐसा नहीं कहना, क्योंकि संग्रहनय — संक्षेपरुचि वाले जीवों से विस्तररुचि वाले जीव बहुत पाये जाते हैं। शेष सूत्र का अर्थ तो ज्ञात ही है।

इस प्रकार तृतीयस्थल में मनःपर्ययज्ञानी मुनियों का क्षेत्र निरूपण करने वाला एक सूत्र पूर्ण हुआ।

विशेषार्थ — ऋजुमति और विपुलमति के भेद से मनःपर्ययज्ञान दो प्रकार का होता है।

ऋजु का अर्थ सरल है, विपुल का अर्थ कुटिल है। परकीय मनोगत मन-वचन-कायगत पदार्थों को मनःपर्यय जानता है। जिसकी मति ऋजु है, उसको ऋजुमति कहते हैं। अनिर्वर्त या कुटिल को विपुल कहते हैं क्योंकि परकीय मनोगत अनिर्वर्तित या वक्र, मन-वचन-कायसम्बन्धी पदार्थ को जानता है, वह विपुलमति मनःपर्ययज्ञान होता है।

क्षेत्र की अपेक्षा जघन्य से विपुलमति मनःपर्ययज्ञान योजन पृथक्त्व को जानता है और उत्कृष्ट मानुषोत्तर पर्वत के भीतर की बात जानता है अर्थात् मानुषोत्तर पर्वत के भीतर स्थित प्रश्न करने वाले मानव के मन की बात जानता है न कि उतने क्षेत्र में स्थित पदार्थों को जानता है।

विशुद्धि और अप्रतिपात की अपेक्षा इन दोनों में विशेषता है।

विशुद्धि की अपेक्षा ऋजुमति से विपुलमति द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की अपेक्षा विशुद्धतर है क्योंकि द्रव्य की अपेक्षा सर्वावधि के विषयभूत कार्माण द्रव्य का अनन्तवाँ भाग ऋजुमति मनःपर्ययज्ञान का विषय है क्योंकि अनन्त के भी अनन्त भेद हैं और ऋजुमति के भी द्रव्य का अनन्तवाँ भाग विपुलमति मनःपर्यय का

केवलज्ञानिनां क्षेत्रप्रतिपादनाय सूत्रमवतरति—

केवलणाणीसु सजोगिकेवली ओघं॥५६॥

सूत्र सुगमं। अत्र किमर्थं द्रव्यार्थिकनयोऽवलम्बितः?

नैतत्, पर्यायार्थिकनयावलम्बने कारणाभावात्। पर्यायार्थिकनयावलम्बनं विशेषप्रतिपादनार्थं, न चात्र कोऽपि विशेषोऽस्ति। न च पूर्वसूत्रैः व्यभिचारः, प्रत्येकं गुणस्थानेषु तत्र ज्ञानभेदोपलम्भात्।

अयोगिकेवलानां क्षेत्रप्रतिपादनाय सूत्रावतारः क्रियते—

विषय है। प्रकृष्ट क्षयोपशमविशुद्धि भाव के योग के कारण अप्रतिपाती होने से भी विपुलमति विशिष्ट है— प्रवर्धमान चारित्र वाला ही विपुलमति मनःपर्ययज्ञान का स्वामी है, कषाय के उद्रेक से हीयमान चारित्र वाला स्वामी होने से ऋजुमति प्रतिपाती है।

मनःपर्ययज्ञान मनुष्यों के ही होता है। देव, नारकी और तिर्यचों के उत्पन्न नहीं होता।

मनुष्यों में पर्याप्त मनुष्यों में ही मनःपर्ययज्ञान होता है, सम्मूर्छिम मनुष्यों में नहीं। कर्मभूमिज गर्भज मनुष्यों के मनःपर्ययज्ञान होता है, भोगभूमिज मनुष्यों के नहीं। कर्मभूमि में भी पर्याप्त मनुष्यों में होता है, अपर्याप्तों में नहीं पर्याप्तों में भी सम्यग्दृष्टि संयमी मुनियों के मनःपर्ययज्ञान होता है—मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि और संयतासंयत के मनःपर्ययज्ञान नहीं होता। प्रमत्त गुणस्थान से लेकर क्षीणकषायगुणस्थानपर्यन्त संयमीजनों के मनःपर्ययज्ञान होता है, ऊपर के गुणस्थानों में नहीं। जो संयमी प्रवर्द्धमानचारित्र वाले हैं, उनके ही मनःपर्ययज्ञान होता है परन्तु जिनका चारित्र हीयमान है, वे मनःपर्ययज्ञान के पात्र नहीं हैं। इतना ही नहीं, प्रवर्द्धमान चारित्र वाले संयमियों में सात ऋद्धियों में से किसी एक ऋद्धिप्राप्त मुनि के ही मनःपर्ययज्ञान होता है, सर्व संयमियों के नहीं। ऋद्धिप्राप्त मुनियों में भी सर्वऋद्धिधारी मुनियों के मनःपर्ययज्ञान नहीं होता। यह ज्ञान मनुष्यक्षेत्र में ही उत्पन्न होता है, बाहर नहीं। इस प्रकार मनःपर्ययज्ञान की विशेषता जानकर हम सभी को मनःपर्ययज्ञानधारी समस्त गणधर भगवन्तों की भक्ति करते हुए उसकी प्राप्ति हेतु भावना भानी चाहिए।

अब केवलज्ञानी अरिहंत भगवन्तों का क्षेत्र बतलाने हेतु सूत्र अवतरित होता है—

सूत्रार्थ—

केवलज्ञानियों में सयोगिकेवली का क्षेत्र ओघक्षेत्र के समान है ॥ ५६॥

हिन्दी टीका—सूत्र सरल है, फिर भी शंका-समाधान से उक्त विषय का खुलासा करते हैं।

शंका—इस सूत्र में द्रव्यार्थिकनय का अवलम्बन किसलिए किया गया है ?

समाधान—ऐसी बात नहीं है, क्योंकि पर्यायार्थिकनय के अवलम्बन करने का यहाँ कोई कारण नहीं है। पर्यायार्थिकनय का अवलम्बन विशेष प्रतिपादन के लिए किया जाता है किन्तु यहाँ पर कोई भी विशेषता नहीं है, जिसके बतलाने के लिए पर्यायार्थिक नय का अवलम्बन किया जाए और न यहाँ पर पूर्व सूत्रों से, जो कि पर्यायार्थिकनय हैं, व्यभिचार दोष ही आता है, क्योंकि इन गुणस्थानों में से प्रत्येक गुणस्थान में ज्ञानभेद पाया जाता है।

अब अयोगिकेवली भगवन्तों का क्षेत्र बताने हेतु सूत्र का अवतार किया जा रहा है—

अयोगिकेवली ओघं।।५७।।

सूत्रं सुगमं।

एष अयोगिकेवली भगवान् नवसु पदेषु कुत्र वर्तते?

शेष पदसंभवाभावात् स्वस्थान-स्वस्थानपदे तिष्ठति। अयोगिकेवलिनः ममेदंबुद्धिः नास्ति स्वोत्पन्नग्रामगृहादिस्वस्थानमपि नास्ति। अतः एतदपि स्वस्थानस्वस्थानपदमपि नास्ति इति चेत्?

नैष दोषः, वीतरागाणां आत्मनः अवस्थितप्रदेशस्यैव स्वस्थानव्यपदेशात्। न सरागाणां एष न्यायः, तत्र ममेदंभावसंभवात्। अथवा एष चैव न्यायः सर्वत्र गृहीतव्यः विरोधाभावात्।

एवं चतुर्थस्थले केवलानां क्षेत्रनिरूपणत्वेन सूत्रद्वयं गतम्।

तात्पर्यमेतत् — इत्थं ज्ञानमार्गणां ज्ञात्वा अज्ञानभावं परित्यज्य मतिश्रुतज्ञानाभ्यां आत्मानं भावयित्वा केवलज्ञानार्थः प्रयत्नो विधेयः।

सूत्रार्थ —

अयोगिकेवली भगवान् ओघ के समान लोक के असंख्यातर्वे भाग में रहते हैं।।५७।।

हिन्दी टीका — सूत्र का अर्थ सरल है किन्तु सूत्र में वर्णित विषय से सम्बन्धित ही यहाँ कुछ शंकाओं के माध्यम से विषय का स्पष्टीकरण किया जा रहा है।

शंका — ये अयोगिकेवली भगवान् स्वस्थानादि नौ पदों में से किस पद में रहते हैं?

समाधान — अयोगिकेवली के विहारवत्स्वस्थानादि शेष पद संभव न होने से वे स्वस्थानस्वस्थान पद में रहते हैं।

शंका — अयोगिकेवली भगवान् में 'मम इदं' अर्थात् 'यह मेरा है.....' ऐसी बुद्धि तो देखी नहीं जाती है, उनके लिए अपना जन्मस्थान, ग्राम, घर आदि स्वस्थान भी नहीं माने हैं अतः यह स्वस्थानस्वस्थान पद भी उनके नहीं बन सकता है?

समाधान — यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि वीतरागियों के अपनी आत्मा के — अपने रहने के प्रदेश को ही स्वस्थान के नाम से कहा गया है किन्तु सरागियों के लिये यह न्याय नहीं है, क्योंकि उनमें ममेदंभाव संभव है अथवा 'अपने रहने के प्रदेश को स्वस्थान कहते हैं' यही न्याय सर्वत्र ग्रहण करना चाहिए क्योंकि उसके मानने में कोई विरोध नहीं है।

इस प्रकार चतुर्थस्थल में केवली भगवन्तों का क्षेत्र निरूपण करने वाले दो सूत्र पूर्ण हुए।

तात्पर्य यह है कि इस ज्ञानमार्गणा की व्याख्या जानकर हम सभी भव्यात्माओं को अज्ञानभाव का त्याग करके मति-श्रुतज्ञान के द्वारा आत्मा की भावना-चिन्तन करके केवलज्ञान की प्राप्ति का प्रयत्न करना चाहिए।

विशेषार्थ — जिनके द्वारा जीव त्रिकालविषयक भूत, भविष्यत, वर्तमानसम्बन्धी समस्त द्रव्य और उनके गुण तथा उनकी अनेक पर्यायों को जाने, उसको ज्ञान कहते हैं।

ज्ञान के पाँच भेद हैं — मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय तथा केवल। इनमें से आदि के चार ज्ञान क्षायोपशमिक और केवलज्ञान क्षायिक है तथा मति, श्रुत दो ज्ञान परोक्ष और शेष तीन प्रत्यक्ष हैं।

आदि के तीन ज्ञान मिथ्या भी होते हैं।

मति अज्ञान — दूसरे के उपदेश के बिना ही विषय, यन्त्र, कूट, पंजर तथा बंध आदि के विषय में जो

बुद्धि प्रवृत्त होती है, उसको मति अज्ञान कहते हैं।

श्रुत अज्ञान—चोर शास्त्र, हिंसा शास्त्र, भारत, रामायण आदि परमार्थ-शून्य शास्त्र और उनका उपदेश कुश्रुतज्ञान है।

विभंग ज्ञान—विपरीत अवधिज्ञान को विभंगज्ञान या कुअवधिज्ञान कहते हैं।

मति ज्ञान—इन्द्रिय और मन के द्वारा होने वाला ज्ञान मतिज्ञान है। उसके अवग्रह, ईहा, अवाय, धारणा से चार भेद हैं। इनको पाँच इन्द्रिय और मन से गुणा करके, बहु आदि बारह भेदों से गुणा कर देने से २८८ भेद होते हैं तथा व्यंजनावग्रह को चक्षु और मन बिना चार इन्द्रिय से और बहु आदि बारह भेद से गुणा करने से ४८ ऐसे २८८+४८=३३६ भेद होते हैं।

श्रुतज्ञान—मतिज्ञान के विषयभूत पदार्थ से भिन्न पदार्थ का ज्ञान श्रुतज्ञान है। इस श्रुतज्ञान के अक्षरात्मक, अनक्षरात्मक अथवा शब्दजन्य और लिंगजन्य ऐसे दो भेद हैं। इनमें शब्दजन्य श्रुतज्ञान मुख्य है।

दूसरी तरह से श्रुतज्ञान के भेद हैं—पर्याय, पर्यायसमास, अक्षर, अक्षरसमास, पद, पदसमास, संघात, संघातसमास, प्रतिपत्तिक, प्रतिपत्तिक समास, अनुयोग, अनुयोगसमास, प्राभूत प्राभूत, प्राभूतप्राभूत समास, प्राभूत, प्राभूतसमास, वस्तु, वस्तुसमास, पूर्व, पूर्वसमास इस तरह श्रुतज्ञान के बीस भेद हैं।

सूक्ष्म निगोदिया लब्धपर्याप्तक के जो सबसे जघन्य ज्ञान होता है उसको पर्याय ज्ञान कहते हैं। इनको ढकने वाले आवरण कर्म का फल इस ज्ञान में नहीं होता, अन्यथा ज्ञानोपयोग का अभाव होकर जीव का ही अभाव हो जाएगा। वह हमेशा प्रकाशमान, निरावरण रहता है अर्थात् इतना ज्ञान का अंश सदैव प्रगट रहता है।

इसके आगे पर्यायसमास के बाद अक्षर ज्ञान आता है, यह अर्थाक्षर सम्पूर्णश्रुत केवलरूप है। इसमें एक कम इकट्ठी का भाग देने से जो लब्ध आया, उतना ही अर्थाक्षर ज्ञान का प्रमाण है।

जो केवलज्ञान से जाने जावें किन्तु जिनका वचन से कथन न हो सके, ऐसे पदार्थ अनंतानंत हैं। उनके अनंतवें भागप्रमाण पदार्थ वचन से कहे जा सकते हैं उन्हें प्रज्ञापनीय भाव कहते हैं। जितने प्रज्ञापनीय पदार्थ हैं, उनका भी अनंतवां भाग श्रुत में निरूपित है।

अक्षर ज्ञान के ऊपर वृद्धि होते-होते अक्षरसमास, पद, पदसमास आदि बीस भेद तक पूर्ण होते हैं। इनमें जो उन्नीसवाँ 'पूर्व' भेद है, उसी के उत्पाद पूर्व आदि चौदह भेद होते हैं।

इन बीस भेदों में प्रथम के पर्याय, पर्यायसमास ये दो अनक्षरात्मक हैं और अक्षर से लेकर अठारह भेद तक ज्ञान अक्षरात्मक हैं। ये अठारह भेद द्रव्यश्रुत हैं। श्रुतज्ञान के दो भेद हैं—द्रव्यश्रुत और भावश्रुत। उसमें शब्दरूप और ग्रन्थरूप द्रव्यश्रुत हैं और ज्ञानरूप सभी भावश्रुत हैं।

ग्रन्थरूप श्रुत की विवक्षा से आचारांग आदि द्वादश अंग और उत्पादपूर्व आदि चौदह पूर्वरूप भेद होते हैं अथवा अंग बाह्य अंग प्रविष्ट में दो भेद करने से अंगप्रविष्ट के बारह और अंगबाह्य के सामायिक आदि चौदह प्रकीर्णक होते हैं।

द्वादशांग के नाम—आचारांग, सूत्रकृतांग, स्थानांग, समवायांग, व्याख्याप्रज्ञप्ति, धर्मकथांग, उपासबाध्ययनांग, अन्तःकृद्शां, अनुत्तरोपपादिकदशांग, प्रश्नव्याकरण, विपाकसूत्र और दृष्टिवादांग ऐसे बारह अंग हैं।

बारहवें दृष्टिवाद के पांच भेद हैं—परिकर्म, सूत्र, प्रथमानुयोग, पूर्वगत, चूलिका। परिकर्म के पांच भेद हैं—चंद्रप्रज्ञप्ति, सूर्यप्रज्ञप्ति, जंबूद्वीपप्रज्ञप्ति, द्वीपसागर प्रज्ञप्ति और व्याख्याप्रज्ञप्ति। सूत्र और प्रथमानुयोग में भेद नहीं हैं। पूर्वगत के चौदह भेद हैं। चूलिका के ५ भेद हैं—जलगता, स्थलगता, मायागता, आकाशगता, रूपगता।

इति षट्खंडागमप्रथमखंडे तृतीयग्रन्थे क्षेत्रानुगमनाम्नि तृतीयप्रकरणे
गणिनीज्ञानमतीकृतसिद्धान्तचिन्तामणिटीकायां ज्ञानमार्गणानाम
सप्तमोऽधिकारः समाप्तः।

चौदह पूर्वों के नाम — उत्पादपूर्व, अग्रायणीय, वीर्यप्रवाद, अस्तिनास्तिप्रवाद, ज्ञानप्रवाद, सत्यप्रवाद, आत्मप्रवाद, कर्मप्रवाद, प्रत्याख्यान, विद्यानुवाद, कल्याणवाद, प्राणावाद, क्रियाविशाल और लोकबिन्दुसार ये चौदह भेद हैं। द्वादशांग के समस्त पद एक सौ बारह करोड़, तिरासी लाख, अठ्ठावन हजार, पांच होते हैं। ११२,८३,५८,००५ हैं।

अंगबाह्य श्रुत के भेद — सामायिक, चतुर्विंशतिस्तव, वंदना, प्रतिक्रमण, वैयक्तिक, कृतिकर्म, दशवैकालिक, उत्तराध्ययन, कल्पव्यवहार, कल्पाकल्प, महाकल्प, पुंडरीक, महापुंडरीक, निषिद्धिका ये अंगबाह्य श्रुत के चौदह भेद हैं।

सुदकेवलं च णाणं, दौण्णिवि सरिसाणि होंति बोहादो।

सुदणाणं तु परोक्खं, पच्चक्खं केवलं णाणं॥ ३६९॥

अर्थात् ज्ञान की अपेक्षा श्रुतज्ञान तथा केवलज्ञान दोनों ही सदृश हैं। दोनों में अन्तर यही है कि श्रुतज्ञान परोक्ष है और केवलज्ञान प्रत्यक्ष है।

अवधिज्ञान — द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की अपेक्षा से जिसका विषय सीमित हो, वह अवधिज्ञान है। उसके भवप्रत्यय, गुणप्रत्यय दो भेद हैं। प्रथम देव, नारकी और तीर्थकरों के होता है तथा द्वितीय मनुष्य और तिर्यचों के भी हो सकता है।

मनःपर्ययज्ञान — चिंतित, अचिंतित और अर्धचिंतित इत्यादि अनेक भेदरूप दूसरे के मन में स्थित पदार्थ को मनःपर्यय ज्ञान जान लेता है, यह ज्ञान वृद्धिगत चारित्र वाले किन्हीं महामुनि के ही होता है। इसके ऋजुमति, विपुलमति नाम के दो भेद हैं। यह ज्ञान मनुष्य क्षेत्र में ही उत्पन्न होता है, बाहर नहीं।

केवलज्ञान — यह ज्ञान सम्पूर्ण, समग्र, केवल सम्पूर्ण द्रव्य की त्रैकालिक सम्पूर्ण पर्यायों को विषय करने वाला युगपत् लोकालोक प्रकाशी होता है। इस ज्ञान को प्राप्त करने के लिए ही सारे पुरुषार्थ किए जाते हैं।

आज मति, श्रुत ये दो ही ज्ञान हम और आपको हैं। इनमें भी श्रुतज्ञान में द्वादशांग का वर्तमान में अभाव हो चुका है। हाँ, मात्र बारहवें अंग के किंचित् अंश रूप से षट्खंडागम ग्रंथराज विद्यमान हैं तथा आज जितने भी शास्त्र हैं, वे सब उस द्वादशांग के अंशभूत होने से उसी के साररूप हैं। जैसे कि गंगानदी का जल एक कटोरी में निकालने पर भी गंगाजल ही है अतः श्री कुंदकुंददेव आदि सभी के वचन सर्वज्ञतुल्य प्रमाणभूत हैं। ऐसा समझकर द्वादशांग की पूजा करते हुए उपलब्ध श्रुत का पूर्णतया आदर, श्रद्धान और अभ्यास करके तदनुकूल प्रवृत्ति करके संसार की स्थिति को कम कर लेना चाहिए।

इस प्रकार षट्खंडागम ग्रंथ के प्रथम खंड में तृतीय ग्रंथ में क्षेत्रानुगम नामक
तृतीय प्रकरण में गणिनी ज्ञानमती कृत सिद्धान्तचिन्तामणि टीका में
ज्ञानमार्गणा नामक सातवाँ अधिकार समाप्त हुआ।



अथ संयममार्गणाधिकारः

अथ स्थलषट्केन नवभिः सूत्रैः संयममार्गणानाम् अष्टमोऽधिकारः प्रारभ्यते। तत्र प्रथमस्थले संयममार्गणायां सामान्यसंयम-सामायिकछेदोपस्थापनासंयमधारिणां क्षेत्रनिरूपणत्वेन “संजमाणुवादेण” इत्यादिसूत्रत्रयं। तदनु द्वितीयस्थले परिहारशुद्धिसंयतानां क्षेत्र प्रतिपादनत्वेन “परिहारसुद्धि” इत्यादिसूत्रमेकं। ततः परं तृतीयस्थले सूक्ष्मसांपरायसंयतक्षेत्रनिरूपणत्वेन “सुहुमसांपराइय” इत्यादि एकं सूत्रं। तत्पश्चात् चतुर्थस्थले यथाख्यातसंयतानां क्षेत्रकथनत्वेन “जहाक्खाद” इत्यादिसूत्रमेकं। तदनंतरं पंचमस्थले संयतासंयतानां क्षेत्रनिरूपणत्वेन “संजदासंजदा” इत्यादिसूत्रमेकं। ततः परं असंयतानां क्षेत्रकथनप्रतिपादनत्वेन “असंजदेसु” इत्यादिसूत्रद्वयम्, इति समुदाय पातनिका।

अधुना सामान्यसंयतानां क्षेत्रप्ररूपणाय सूत्रमवतरति —

संजमाणुवादेण संजदेसु पमत्तसंजदप्पहुडि जाव अजोगिकेवली ओघं।।५८।।

सूत्रं सुगमं। अत्र किमर्थं द्रव्यार्थिकनयदेशना क्रियते?

न, संयमसामान्ये प्रधानीकृते ओघं प्रति विशेषाभावात्। पर्यायार्थिकनयप्ररूपणा अत्र ज्ञात्वा वक्तव्या।

अथ संयममार्गणा अधिकार प्रारंभ

अब छह स्थलों में नौ सूत्रों के द्वारा संयममार्गणा नाम का आठवाँ अधिकार प्रारंभ होता है। उनमें से प्रथम स्थल में संयममार्गणा के अन्तर्गत सामान्यसंयम, सामायिक संयम और छेदोपस्थापना संयम को धारण करने वाले जीवों के क्षेत्र का निरूपण करने की मुख्यता से “संजमाणुवादेण” इत्यादि तीन सूत्र कहेंगे। उसके बाद द्वितीय स्थल में परिहारविशुद्धि संयम धारण करने वाले संयतों का क्षेत्र प्रतिपादन करने वाला एक सूत्र है। पुनः तृतीय स्थल में सूक्ष्मसांपराय संयम वाले महामुनियों का क्षेत्र निरूपण करने हेतु “सुहुमसांपराइय” इत्यादि एक सूत्र है। तत्पश्चात् चतुर्थस्थल में यथाख्यात संयमियों के क्षेत्र का कथन करने वाला “जहाक्खाद” इत्यादि एक सूत्र है। तदनंतर पंचमस्थल में संयतासंयत जीवों का क्षेत्र बतलाने हेतु “संजदासंजद” इत्यादि एक सूत्र है। उसके आगे छठे स्थल में असंयतों का क्षेत्र प्रतिपादन करने वाले “असंजदेसु” इत्यादि दो सूत्र हैं। इस प्रकार संयममार्गणा अधिकार के प्रारंभ में नौ सूत्रों की यह समुदायपातनिका कही गई है।

अब सामान्य संयतों का क्षेत्र प्ररूपण करने के लिए सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ —

संयममार्गणा के अनुवाद से संयतों में प्रमत्तसंयत गुणस्थान से लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती संयत जीव ओघ के समान लोक के असंख्यातवें भाग में रहते हैं।।५८।।

हिन्दी टीका — सूत्र का अर्थ सरल है। उसी का स्पष्टीकरण एक शंका-समाधान द्वारा करते हैं।

शंका — इस सूत्र में द्रव्यार्थिकनय की देशना किस लिए की जा रही है ?

समाधान — ऐसा नहीं कहना, क्योंकि संयमसामान्य को प्रधान करने पर ओघ क्षेत्रप्ररूपणा की अपेक्षा संयममार्गणा के अनुवाद से क्षेत्रप्ररूपणा में कोई विशेषता नहीं है।

यहाँ पर पर्यायार्थिकनय की प्ररूपणा जान करके कहनी चाहिए।

संप्रति सयोगिकेवलिक्षेत्रनिरूपणाय सूत्रावतारः क्रियते —

सजोगिकेवली ओघं॥५९॥

सूत्रं सुगमं।

संप्रति सामायिक-छेदोपस्थानसंयतानां क्षेत्रनिरूपणाय सूत्रमवतरति —

**सामादय-छेदोवट्टावणसुद्धिसंजदेसु पमत्तसंजदप्पहुडि जाव अणियट्टि
त्ति ओघं॥६०॥**

सूत्रस्यार्थः सुगमः।

एवं प्रथमस्थले सामान्यसंयतादिक्षेत्रप्ररूपणपराणि सूत्राणि त्रीणि गतानि।

संप्रति परिहारविशुद्धिसंयमिनां क्षेत्रप्ररूपणाय सूत्रमवतरति —

**परिहारसुद्धिसंजदेसु पमत्त-अप्पमत्तसंजदा केवडि खेत्ते? लोगस्स
असंखेज्जदिभागे॥६१॥**

सूत्रं सुगमं। एतस्यापि सूत्रस्यार्थः पूर्वं प्ररूपितः इति संप्रति नोच्यते। विशेषेण तु प्रमत्तसंयते तैजसाहारकौ न स्तः।

अब सयोगिकेवली भगवन्तों का क्षेत्र निरूपण करने के लिए सूत्र का अवतार करते हैं—

सूत्रार्थ —

**सयोगिकेवली भगवान ओघ के समान लोक के असंख्यातवें भाग में , लोक के
असंख्यात बहुभागों में और सर्वलोक में रहते हैं॥५९॥**

सूत्र का अर्थ सुगम है।

अब सामायिक और छेदोपस्थापना संयम के धारक मुनियों का क्षेत्र निरूपण करने हेतु सूत्र अवतरित होता है—

सूत्रार्थ —

**सामायिक और छेदोपस्थापनाशुद्धिसंयतों में प्रमत्तसंयत गुणस्थान से लेकर
अनिवृत्तिकरण गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती सामायिक और छेदोपस्थापना-
शुद्धिसंयत ओघ के समान लोक के असंख्यातवें भाग में रहते हैं ॥६०॥**

सूत्र का अर्थ सुगम है।

इस प्रकार प्रथम स्थल में सामान्य संयतादिकों का क्षेत्र प्ररूपण करने वाले तीन सूत्र पूर्ण हुए।

अब परिहारविशुद्धि संयमधारी महामुनियों का क्षेत्र बतलाने हेतु सूत्र का अवतार होता है—

सूत्रार्थ —

**परिहारविशुद्धि संयतों में प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत जीव कितने क्षेत्र में रहते
हैं? लोक के असंख्यातवें भाग में रहते हैं॥६१॥**

हिन्दी टीका — सूत्र का अर्थ सरल है। इस सूत्र की अर्थव्याख्या पूर्व में की जा चुकी है, इसलिए यहाँ

एवं द्वितीयस्थले परिहारशुद्धिसंयतानां क्षेत्रनिरूपणत्वेन एकं सूत्रं गतम्।

सूक्ष्मसांपरायसंयतानां क्षेत्रप्ररूपण हेतोः सूत्रमवतरति—

**सुहुमसांपराइयसुद्धिसंजदेसु सुहुमसांपराइयसुद्धिसंजदउवसमा खवगा
केवडि खेत्ते? लोगस्स असंखेज्जदिभागे॥६२॥**

सूत्रं सुगमं। 'सूक्ष्मसांपरायशुद्धिसंयतेषु' सूत्रे एष आधारनिर्देशः। तत्र सूक्ष्मसांपरायशुद्धिसंयताः द्विविधा भवन्ति—उपशामकाः क्षपकाश्चेति। इमे आत्मनः पदेषु वर्तमानाः चतुर्लोकानामसंख्यातभागे, मानुषक्षेत्रस्य संख्यातभागे च भवन्ति। विशेषतः मारणान्तिकपदे उपशामकाः मानुषक्षेत्रादसंख्यातगुणे भवन्ति। एवं तृतीयस्थले दशमगुणस्थानवर्तिनां क्षेत्रनिरूपणपरं एकं सूत्रं गतम्।

संप्रति यथाख्यातसंयमिनां क्षेत्रनिरूपणाय सूत्रावतारः क्रियते श्रीभूतबलिसूत्रिणा—

जहाक्खादविहारसुद्धिसंजदेसु चदुट्ठाणी ओघं॥६३॥

उपशान्तकषाय-क्षीणकषाय-सयोगि-अयोगिजिनानां यथाख्यातविहारशुद्धिसंयतानां स्वात्मनः गुणस्थानवत् प्ररूपणा भवति।

पर विशेष कथन नहीं किया जा रहा है। यहाँ एक विशेष मात्र से यह जानना चाहिए कि इन परिहारविशुद्धिसंयम वालों के प्रमत्तसंयत गुणस्थान में तैजस और आहारक समुद्घात नहीं होते हैं।

इस प्रकार द्वितीय स्थल में परिहारशुद्धिसंयमी मुनियों का क्षेत्र प्ररूपण करने वाला एक सूत्र पूर्ण हुआ।

अब सूक्ष्मसांपरायसंयमधारी महामुनियों के क्षेत्रकथन हेतु सूत्र अवतरित होता है—

सूत्रार्थ—

**सूक्ष्मसाम्परायिक शुद्धिसंयतों में सूक्ष्मसाम्परायिकशुद्धिसंयत उपशामक और क्षपक
जीव कितने क्षेत्र में रहते हैं? लोक के असंख्यातवें भाग में रहते हैं॥६२॥**

हिन्दी टीका—सूत्र का अर्थ सुगम है। “सूक्ष्मसाम्परायिकशुद्धिसंयतों में” इस पद से आधार का निर्देश किया गया। इस गुणस्थान में सूक्ष्मसाम्परायिकशुद्धिसंयत दो प्रकार के होते हैं—उपशामक और क्षपक। वे दोनों ही प्रकार के सूक्ष्मसाम्परायिकशुद्धिसंयत अपने यथासंभव पदों में रहते हुए सामान्यलोक आदि चार लोकों के असंख्यातवें भाग में और मानुषक्षेत्र के संख्यातवें भाग में रहते हैं। विशेष बात यह है कि मारणांतिकसमुद्घात पद में उपशामक जीव मानुषक्षेत्र से असंख्यातगुणे क्षेत्र में रहते हैं।

इस प्रकार तृतीय स्थल में दशवें गुणस्थानवर्ती मुनियों का क्षेत्र बताने वाला एक सूत्र पूर्ण हुआ।

अब यथाख्यातसंयमी महामुनियों के क्षेत्र का निरूपण करने हेतु श्रीभूतबली आचार्य सूत्र का अवतार करते हैं—

सूत्रार्थ—

**यथाख्यातविहारशुद्धि संयतों में उपशान्तकषाय गुणस्थान से लेकर अयोगिकेवली
गुणस्थान तक चारों गुणस्थान वाले संयतों का क्षेत्र ओघ के समान है॥६३॥**

हिन्दी टीका—उपशान्तकषाय, क्षीणकषाय, सयोगिकेवली और अयोगिकेवली गुणस्थानवर्ती यथाख्यातविहारशुद्धिसंयतों की क्षेत्रप्ररूपणा अपनी-अपनी गुणस्थानप्ररूपणा के समान होती है।

एवं चतुर्थस्थले यथाख्यातसंयमिनां क्षेत्रकथनपरं सूत्रमेकं गतम्।

संयतासंयतक्षेत्रप्रतिपादनाय सूत्रमवतरति—

संजदासंजदा केवडि खेत्ते? लोगस्स असंखेज्जदिभागे।।६४।।

एतस्यार्थः पूर्वं प्ररूपितः। एवं पंचमस्थले देशव्रतिक्षेत्रकथनत्वेन एकं सूत्रं गतं।

असंयतेषु मिथ्यादृष्टिक्षेत्रनिरूपणाय सूत्रमवतरति—

असंजदेसु मिच्छादिट्ठी ओघं।।६५।।

सूत्रस्यार्थः सुगमः।

असंयतेषु सासादनादिगुणस्थानवर्तिक्षेत्रप्रतिपादनाय सूत्रमवतरति—

सासणसम्मादिट्ठी सम्मामिच्छादिट्ठी असंजदसम्मादिट्ठी ओघं।।६६।।

सूत्रं सुगमं। इमे त्रयोऽपि गुणस्थानवर्तिनः चतुर्लोकानामसंख्यातभागे, मानुषक्षेत्रस्यासंख्यातगुणे च क्षेत्रे तिष्ठन्ति। एषां त्रयाणां क्षेत्रप्रत्यासत्तिर्वर्तते अनो एकस्मिन् सूत्रे योगः कृतः।

एतत्संयममार्गणां ज्ञात्वा संयमरत्नं लब्ध्वा सिद्धिकान्ता परिणेतव्या भवद्भिः इति।

इस प्रकार चतुर्थ स्थल में यथाख्यातसंयमियों का क्षेत्र कथन करने वाला एक सूत्र पूर्ण हुआ।

अब संयतासंयत जीवों का क्षेत्र प्रतिपादन करने हेतु सूत्र प्रगट होता है—

सूत्रार्थ—

संयतासंयत जीव कितने क्षेत्र में रहते हैं ? लोक के असंख्यातवें भाग में रहते हैं।।६४।।

इस सूत्र का अर्थ पूर्व में कहा जा चुका है अतः यहाँ पुनः कथन नहीं किया जा रहा है।

इस प्रकार पंचमस्थल में देशव्रतियों का क्षेत्र कथन करने वाला एक सूत्र पूर्ण हुआ।

अब असंयतों में मिथ्यादृष्टि जीवों का क्षेत्र कथन करने के लिए सूत्र का अवतार होता है—

सूत्रार्थ—

असंयतों में मिथ्यादृष्टि जीव ओघ के समान सर्वलोक में रहते हैं।।६५।।

सूत्र का अर्थ सरल है।

अब असंयतों में सासादनादि गुणस्थानवर्ती जीवों का क्षेत्र प्रतिपादन करने के लिए सूत्र अवतरित होता है—

सूत्रार्थ—

असंयतों में सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीव ओघ के समान लोक के असंख्यातवें भाग में रहते हैं।।६६।।

हिन्दी टीका—सूत्र का अर्थ सुगम है। इन तीनों ही गुणस्थानों का सामान्यलोक आदि चार लोकों के असंख्यातवें भाग के साथ और मानुषक्षेत्र से असंख्यातगुणे क्षेत्र के साथ प्रत्यासत्ति पाई जाती है, इसलिए उक्त तीनों गुणस्थानों का एक योग इस सूत्र में किया गया है।

इस संयममार्गणा को जानकर संयमरत्न को प्राप्त करके आप सभी को सिद्धिकान्ता का परिणय करना चाहिए, ऐसा अभिप्राय हुआ।

एवं षष्ठस्थले असंयतानां मिथ्यादृष्ट्यादीनां क्षेत्रप्ररूपणपरत्वेन द्वे सूत्रे गते।

इस प्रकार छठे स्थल में मिथ्यादृष्टि असंयत जीवों का क्षेत्र प्ररूपण करने वाले दो सूत्र पूर्ण हुए।

विशेषार्थ—अहिंसादि पंचमहाव्रतों को धारण करना, पाँच समितियों का पालना, क्रोधादि चार कषायों का निग्रह करना, मन-वचन-कायरूप दण्ड का त्याग तथा पाँच इन्द्रियों का जय, इसको संयम कहते हैं।

संयम के पाँच भेद हैं—सामायिक, छेदोपस्थापना, परिहारविशुद्धि, सूक्ष्मसांपराय और यथाख्यात। इसी में संयमासंयम और असंयम के मिलाने से संयममार्गणा के सात भेद हो जाते हैं।

संयममार्गणा में देशसंयम और असंयम को क्यों लिया? ऐसा प्रश्न होने पर बताया है कि उस-उस मार्गणा में उसके प्रतिपक्षी को भी ले लिया जाता है अथवा जैसे वन में आम्र की प्रधानता होने से आम्रवन कहलाता है किन्तु उसमें नींबू आदि के वृक्ष भी रहते हैं।

जो संयम की विरोधी नहीं हैं, ऐसी संज्वलन बादर कषाय के उदय से आरम्भ के तीन संयम होते हैं। सूक्ष्मसंज्वलन लोभ के उदय से सूक्ष्मसांपराय संयम और संपूर्ण मोहनीय कर्म के उपशम या क्षय से यथाख्यात संयम होता है। तीसरी प्रत्याख्यानावरण कषाय के उदय से संयमासंयम और दूसरी अप्रत्याख्यानावरण के उदय से असंयम भाव होता है।

सामायिक—“मैं सर्व सावद्य का त्यागी हूँ” इस तरह अभेदरूप से जो सम्पूर्ण सावद्य का त्याग करता है, वह अनुपम दुर्लभ सामायिक संयम का धारी है।

छेदोपस्थापना—प्रमाद के योग से सामायिकादि से च्युत होकर उसका विधिवत् छेदन करके अपनी आत्मा को पंच प्रकार के व्रतों में स्थापन करना।

परिहारविशुद्धि—जन्म से लेकर तीस वर्ष तक सुखी रहकर पुनः दीक्षा ग्रहण कर तीर्थकर के पादमूल में आठ वर्ष तक प्रत्याख्यान नामक नवमें पूर्व का अध्ययन करने वाले मुनि के यह संयम प्रगट होता है। इससे वे मुनि सन्ध्याकाल को छोड़कर प्रतिदिन दो कोस गमन करते हैं। इस संयम में वर्षाकाल में विहार का निषेध नहीं है। इसमें प्राणीपीड़ा का परिहार—त्याग होने से विशुद्धि है अतः ये संयमी जीवराशि में विहार करते हुए भी जल से भिन्न कमलवत् हिंसा से अलिप्त रहते हैं।

सूक्ष्मसांपराय—सूक्ष्मलोभ के उदय से दशवें गुणस्थान में सूक्ष्मसांपराय संयम होता है।

यथाख्यात—मोहनीयकर्म के सर्वथा उपशम या क्षय से यह संयम होता है। ग्यारहवें में उपशम से होता है और बारहवें, तेरहवें, चौदहवें गुणस्थान में कषाय के क्षय से होता है।

संयमासंयम—जो सम्यग्दृष्टि पाँच अणुव्रत, तीन गुणव्रत, चार शिक्षाव्रत ऐसे बारह व्रतों से युक्त हैं, वे देशव्रती अथवा संयमासंयमी हैं। इस देशव्रत से भी जीवों के असंख्यातगुणी कर्मों की निर्जरा होती है।

इस देशव्रत में दर्शनप्रतिमा से लेकर उद्दिष्टत्याग प्रतिमा तक ग्यारह भेद भी होते हैं।

असंयम—चौदह प्रकार के जीवसमास और अट्ठाईस प्रकार की इन्द्रियों से जो विरत नहीं है, उनको असंयम कहते हैं। पाँच रस, पाँच वर्ण, दो गंध, आठ स्पर्श और षड्ज, ऋषभ, गांधार, मध्यम, पंचम, धैवत, निषाद, ये सात स्वर तथा एक मन इस तरह इन्द्रियों के अट्ठाईस विषय हैं अर्थात् संयम के प्राणिसंयम-इन्द्रियसंयम की अपेक्षा दो भेद हैं। जीवसमासगत प्राणिहिंसा से विरत होना प्राणिसंयम और इन्द्रियविषयों से विरक्त होना इन्द्रियसंयम है। असंयम में दोनों प्रकार की विरति नहीं हैं।

इति षट्खंडागमप्रथमखंडे तृतीयग्रन्थे क्षेत्रानुगमनाम्नितृतीय-
प्रकरणे गणिनीज्ञानमतीकृत सिद्धान्तचिन्तामणिटीकायां
संयममार्गणानाम अष्टमोऽधिकारः समाप्तः।

संयमी जीवों की संख्या — छोटे गुणस्थान से लेकर चौदहवें तक सब संयमी हैं। उन सबकी संख्या तीन कम नव करोड़ प्रमाण है अर्थात् एक साथ अधिक से अधिक इतने संयमी रह सकते हैं।

प्रमत्तगुणस्थानवर्ती जीव ५,९३,९८,२०६, अप्रमत्त वाले २,९६,९९,१०३, उपशमश्रेणी वाले चारों गुणस्थानवर्ती १,१९६, क्षपकश्रेणी वाले चारों गुणस्थानवर्ती २,३९२, सयोगीजिन ८,९८,५०२, अयोगीजिन ५९८ इन सबका जोड़ ८,९९,९९,९९७ है। इन सबको मैं हाथ जोड़ सिर झुकाकर त्रिकरणशुद्धिपूर्वक नमस्कार करता हूँ।

आज पंचमकाल में मिथ्यात्व से लेकर चतुर्थ गुणस्थान तक असंयमी, देशसंयमी तथा मुनि अवस्था में सामायिक, छेदोपस्थापना संयमधारी मुनि होते हैं और पंचमकाल के अन्त तक होते रहेंगे, इसमें कोई संशय नहीं है, ऐसा श्री कुंदकुंदभगवान ने कहा है। ऐसा समझकर वर्तमान काल में मुनियों को भी भावलिंगी मानकर नमस्कार, भक्ति, आहारदान आदि करके अपने मनुष्यजीवन को सफल करना चाहिए। हाँ! यदि कोई साधु चारित्रभ्रष्ट हों, तो उनका स्थितिकरण-उपगूहन करना चाहिए अन्यथा उनकी उपेक्षा कर देनी चाहिए, उनकी निंदा करके अपने सम्यक्त्व को मलिन नहीं करना चाहिए और स्वयं असंयत जीवन से निकलकर देशसंयत या मुनि बनना चाहिए।

इस प्रकार षट्खंडागम ग्रंथ के प्रथम खंड में तृतीय ग्रंथ में क्षेत्रानुगम नामक
तृतीय प्रकरण में गणिनी ज्ञानमती कृत सिद्धान्तचिन्तामणि टीका में
संयममार्गणा नामक आठवाँ अधिकार समाप्त हुआ।



अथ दर्शनमार्गणाधिकारः

अथ स्थलद्वयेण पंचभिः सूत्रैः दर्शनमार्गणानाम नवमोऽधिकारः प्रारभ्यते। तत्र प्रथमस्थले चक्षुरचक्षुदर्शनवतां गुणस्थानापेक्षया क्षेत्रनिरूपणत्वेन “दंसणाणुवादेण” इत्यादिसूत्रत्रयं। तदनु द्वितीयस्थले अवधिकेवलदर्शनिनोः क्षेत्रप्रतिपादनत्वेन “ओहि” इत्यादिसूत्रद्वयं इति समुदायपातनिका।

अधुना चक्षुदर्शनिनां गुणस्थानेषु क्षेत्रनिरूपणाय सूत्रमवतरति —

**दंसणाणुवादेण चक्खुदंसणीसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव खीणकसायवीद-
रागछदुमत्था केवडि खेत्ते? लोगस्स असंखेज्जदिभागे।।६७।।**

सूत्रं सुगमं।

स्वस्थानस्वस्थान-विहारवत्स्वस्थान-वेदना-कषाय-वैक्रियिकसमुद्घातगताः चक्षुदर्शनवन्तः मिथ्यादृष्टयः त्रिलोकानामसंख्यातभागे, तिर्यग्लोकस्य संख्यातभागे, सार्धद्वयद्वीपादसंख्यातगुणे। एवं मारणान्तिक-समुद्घातगताः इमे ज्ञातव्याः विशेषेण तु इमे तिर्यग्लोकस्य असंख्यातगुणे क्षेत्रे तिष्ठन्ति। एवमेव उपपादगतानां क्षेत्रं ज्ञातव्यं।

अपर्याप्तकाले चक्षुदर्शनस्याभावे उपपादं नास्ति इति चेत्?

अथ दर्शनमार्गणा अधिकार प्रारंभ

अब दो स्थलों में पाँच सूत्रों के द्वारा दर्शनमार्गणा नाम का नवमां अधिकार प्रारम्भ होता है। उनमें से प्रथम स्थल में चक्षुदर्शन वाले और अचक्षुदर्शन वाले जीवों का गुणस्थान की अपेक्षा क्षेत्रनिरूपण करने हेतु “दंसणाणुवादेण” इत्यादि तीन सूत्र कहेंगे। उसके बाद द्वितीयस्थल में अवधिदर्शन और केवलदर्शन वालों का क्षेत्र प्रतिपादन करने वाले “ओहि” इत्यादि दो सूत्र हैं। यह सूत्रों की समुदायपातनिका हुई।

अब चक्षुदर्शनी जीवों का गुणस्थानों में क्षेत्र निरूपण करने के लिए सूत्र का अवतार होता है —

सूत्रार्थ —

दर्शनमार्गणा के अनुवाद से चक्षुदर्शनियों में मिथ्यादृष्टि गुणस्थान से लेकर क्षीणकषाय-वीतरागछद्मस्थ गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीव कितने क्षेत्र में रहते हैं? लोक के असंख्यातवें भाग में रहते हैं।।६७।।

हिन्दी टीका — सूत्र का अर्थ सुगम है।

स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात और वैक्रियिकसमुद्घात चक्षुदर्शनी मिथ्यादृष्टि जीव सामान्यलोक आदि तीन लोकों के असंख्यातवें भाग में, तिर्यग्लोक से संख्यातवें भाग में और अढ़ाईद्वीप से असंख्यातगुणे क्षेत्र में रहते हैं। इसी प्रकार मारणांतिकसमुद्घातगत मिथ्यादृष्टि चक्षुदर्शनियों का क्षेत्र है। विशेष बात यह है कि मारणांतिकसमुद्घातगत चक्षुदर्शनी मिथ्यादृष्टि जीव तिर्यग्लोक के असंख्यातगुणे क्षेत्र में रहते हैं, ऐसा कहना चाहिए। इसी प्रकार से उपपादगत मिथ्यादृष्टि चक्षुदर्शनियों का भी क्षेत्र जानना चाहिए।

अपर्याप्त काल में चक्षुदर्शन का अभाव होने से यहाँ पर उपपाद नहीं होता है ऐसी शंका उपस्थित होने पर कहते हैं कि —

नैतत्, अपर्याप्तकालेऽपि क्षयोपशमं प्रतीत्य चक्षुर्दर्शनोपलम्भात्।

यदि एवं, तर्हि लब्ध्यपर्याप्तानामपि चक्षुर्दर्शनित्वं प्रसज्यते? किंतु न च तत्रास्ति, चक्षुर्दर्शनि-
अवहारकालस्य प्रतरांगुलस्य असंख्येयभागमात्रप्रमाणप्रसंगात्?

नैष दोषः, निर्वृत्यपर्याप्तानां चक्षुर्दर्शनमस्ति, उत्तरकाले निश्चयेन चक्षुर्दर्शनोपयोगसमुत्पत्तेः
अविनाभावविचक्षुर्दर्शनक्षयोपशमदर्शनात्। चतुरिन्द्रिय-पंचेन्द्रियलब्ध्यपर्याप्तानां चक्षुर्दर्शनं नास्ति। तत्र
चक्षुर्दर्शनोपयोगसमुत्पत्त्या अविनाभावविचक्षुर्दर्शनक्षयोपशमाभावात्। एवं शेषगुणस्थानानां पर्यायार्थिकनय-
संबन्धिप्ररूपणा ज्ञात्वा वक्तव्या।

अचक्षुर्दर्शनिनां क्षेत्रप्रतिपादनाय सूत्रमवतरति—

अचक्षुदंसणीसु मिच्छादिद्वी ओघं।।६८।।

सुगममेतत्सूत्रं।

एषां सासादनादिगुणस्थानापेक्षया क्षेत्रनिरूपणाय सूत्रमवतरति—

सासणसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव खीणकसायवीदरागछदुमत्था ओघं।।६९।।

ऐसा नहीं है, क्योंकि अपर्याप्त काल में भी क्षयोपशम की अपेक्षा चक्षुर्दर्शन पाया जाता है।

शंका—यदि ऐसा है तो लब्ध्यपर्याप्त जीवों के भी चक्षुर्दर्शनीयपने का प्रसंग प्राप्त होता है किन्तु
लब्ध्यपर्याप्त जीवों के चक्षुर्दर्शन होता नहीं है। यदि लब्ध्यपर्याप्त जीवों के भी चक्षुर्दर्शन का सद्भाव माना
जाएगा, तो चक्षुर्दर्शनी जीवों के अवहारकाल प्रतरांगुल के असंख्यातवें भागप्रमाण प्राप्त होगा ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि निर्वृत्यपर्याप्त जीवों के चक्षुर्दर्शन होता है, इसका कारण
यह है कि उत्तरकाल में अर्थात् अपर्याप्तकाल समाप्त होने के पश्चात् निश्चय से चक्षुर्दर्शनोपयोग की समुत्पत्ति
का अविनाभावी चक्षुर्दर्शन का क्षयोपशम देखा जाता है। हाँ, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्त जीवों के
चक्षुर्दर्शन नहीं होता है, क्योंकि उनमें चक्षुर्दर्शनोपयोग की समुत्पत्ति का अविनाभावी चक्षुर्दर्शनावरणकर्म के
क्षयोपशम का अभाव है। इसी प्रकार सासादनसम्यग्दृष्टि आदि शेष गुणस्थानों की पर्यायार्थिकनयसम्बन्धी
प्ररूपणा जान करके कहनी चाहिए।

अब अचक्षुर्दर्शनी जीवों का क्षेत्र प्रतिपादन करने के लिए सूत्र अवतरित होता है—

सूत्रार्थ-

अचक्षुदर्शनियों में मिथ्यादृष्टि जीव ओघ के समान सर्वलोक में रहते हैं।।६८।।

यह सूत्र सरल है।

अब उन्हीं अचक्षुर्दर्शनी जीवों के सासादन आदि गुणस्थानों की अपेक्षा क्षेत्र निरूपण करने के लिए सूत्र
प्रगट हो रहा है—

सूत्रार्थ—

सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थान से लेकर क्षीणकषायवीतरागछद्मस्थ गुणस्थान तक
प्रत्येक गुणस्थानवर्ती अचक्षुर्दर्शनी जीव ओघ के समान लोक के असंख्यातवें भाग में
रहते हैं।।६९।।

सूत्रं सुगमं। क्षेत्रापेक्षया मिथ्यादृष्टि-अचक्षुदर्शनिभ्यः सह शेषगुणस्थानवर्ति अचक्षुदर्शनिनां प्रत्यासत्तेरभावात्। एवं प्रथमस्थले चक्षुरचक्षुदर्शनिनां क्षेत्रप्ररूपणत्वेन सूत्रत्रयं गतम्।

अधुना अवधिदर्शनिनां क्षेत्रनिरूपणाय सूत्रमवतरति—

ओहिदंसणी ओहिणाणिभंगो॥७०॥

सूत्रं सुगमं।

केवलदर्शनिनां क्षेत्रप्ररूपणाय सूत्रावतारो भवति—

केवलदंसणी केवलणाणिभंगो॥७१॥

एतदपि सूत्रं सुगमं अतो पर्यायार्थिकनयप्ररूपणा न क्रियते। एवं दर्शनमार्गणां ज्ञात्वा स्वात्मदर्शनलब्धये प्रयत्नो विधेयः।

इत्थं द्वितीयस्थले अवधिकेवलदर्शनिनोः क्षेत्रकथनत्वेन द्वे सूत्रे गते।

हिन्दी टीका—सूत्र का अर्थ सुगम है। विशेष बात यह है कि क्षेत्र की अपेक्षा मिथ्यादृष्टि अचक्षुदर्शनी जीवों के साथ शेष गुणस्थानवर्ती अचक्षुदर्शनी जीवों की प्रत्यासत्ति का अभाव है।

इस प्रकार प्रथम स्थल में चक्षु और अचक्षुदर्शनी जीवों का क्षेत्र प्ररूपण करने वाले तीन सूत्र पूर्ण हुए।

अब अवधिदर्शन वाले जीवों का क्षेत्र निरूपण करने हेतु सूत्र कहा जा रहा है—

सूत्रार्थ—

अवधिदर्शनी जीवों का क्षेत्र अवधिज्ञानियों के क्षेत्र के समान लोक का असंख्यातवाँ भाग है॥७०॥

सूत्र का अर्थ सरल है।

अब केवलदर्शनधारी भगवन्तों का क्षेत्र प्ररूपण करने हेतु सूत्र का अवतार होता है—

सूत्रार्थ—

केवलदर्शनी जीवों का क्षेत्र केवलज्ञानियों के क्षेत्र के समान लोक का असंख्यातवाँ भाग, लोक का असंख्यात बहुभाग और सर्वलोक है॥७१॥

हिन्दी टीका—यह सूत्र भी सरल है इसलिए पर्यायार्थिकनय के द्वारा विशेष प्ररूपणा नहीं की जा रही है।

इस प्रकार दर्शनमार्गणा को जानकर निजात्मदर्शन की प्राप्ति का प्रयत्न हम सभी को करना चाहिए।

इस प्रकार द्वितीय स्थल में अवधिदर्शन और केवलदर्शन वालों का क्षेत्र कथन करने वाले दो सूत्र पूर्ण हुए।

विशेषार्थ—इस दर्शनमार्गणा अधिकार में चारों दर्शन वाले जीवों का प्रमुखरूप से क्षेत्र बताया गया है अतः प्रसंगोपात् यहाँ दर्शनमार्गणा के विषय में विशेष वर्णन प्रस्तुत है। गोम्मटसार जीवकाण्ड में दर्शन का लक्षण श्रीनेमिचंद्राचार्य ने किया है—

जं सामण्णं गहणं, भावाणं णेव कट्टुमायारं ।

अविसेसदूण अट्टे, दंसणमिदि भण्णदे समये॥

अर्थात् सामान्य-विशेषात्मक पदार्थ के विशेष अंश को ग्रहण न करके केवल सामान्य अंश का जो निर्विकल्परूप से ग्रहण होता है, उसको परमागम में दर्शन कहते हैं। यद्यपि वस्तु सामान्य-विशेषात्मक है फिर भी उसमें आकार-भेद न करके जाति-गुण-क्रिया-आकार-प्रकार की विशेषता किए बिना ही जो स्व या

इति षट्खंडागमप्रथमखंडे तृतीयग्रन्थे क्षेत्रानुगमनाभितृतीयप्रकरणे
गणिनीज्ञानमतीकृतसिद्धान्तचिन्तामणिटीकायां दर्शन-
मार्गणानाम नवमोऽधिकारः समाप्तः।

पर का सत्तामात्र सामान्य ग्रहण होता है, वही दर्शनोपयोग है। उस दर्शनोपयोग के चार भेद हैं — चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन और केवलदर्शन। उनके क्रमशः लक्षण इस प्रकार हैं —

चक्षुषूण जं पयासइ, दिस्सइ तं चक्षुदंसणं वेति।

सेसिंदियप्पयासो, णायव्वो सो अचक्षु त्तिं ।।

अर्थात् चक्षुरिन्द्रियसम्बन्धी जो सामान्य प्रकाश-आभास अथवा देखना, अथवा वह ग्रहण विषय का प्रकाशनमात्र जिसके द्वारा हो — जिसके द्वारा वह देखा जाये, यद्वा उसके कर्ता — देखने वाले को चक्षुदर्शन कहते हैं और चक्षु के सिवाय दूसरी चार इन्द्रियों के द्वारा अथवा मन के द्वारा जो पदार्थ का सामान्यरूप ग्रहण होता है, उसको अचक्षुदर्शन कहते हैं।

परमाणुआदियाइं, अन्तिमखंडं ति मुत्तिदव्वाइं।

तं ओहिदंसणं पुण, जं पस्सइ ताइ पच्चक्खं।

अर्थात् अवधिज्ञान होने के पूर्व समय में अवधि के विषयभूत परमाणु से लेकर महास्कन्धपर्यन्त मूर्तद्रव्य का जो सामान्यरूप से प्रत्यक्ष-देखना-ग्रहण-प्रकाश-अवभासन होता है, उसको अवधिदर्शन कहते हैं। इस अवधिदर्शन के अनन्तर प्रत्यक्ष अवधिज्ञान होता है।

बहुविहबहुप्पयारा, उज्जोवा परिमियम्मि खेत्तम्मि।

लोगालोगवितिमिरो, जो केवलदंसणुज्जोओ।

अर्थात् तीव्र, मन्द, मध्यम आदि अनेक अवस्थाओं की अपेक्षा तथा चन्द्र-सूर्य आदि पदार्थों की अपेक्षा अनेक प्रकार के प्रकाश जगत में पाये जाते हैं परन्तु वे परिमित क्षेत्र में ही रहते और काम करते हैं किन्तु जो लोक और अलोक दोनों जगह प्रकाश करता है, ऐसे आत्मा के सामान्य आभासरूप प्रकाश को केवलदर्शन कहते हैं।

तीन इन्द्रिय जीवों तक अचक्षुदर्शन ही होता है। चार इन्द्रिय और पंचेन्द्रिय जीवों को दोनों दर्शन होते हैं। पंचेन्द्रिय सम्यग्दृष्टि में ही किन्हीं अवधिज्ञानी को अवधिदर्शन और केवली भगवान को ही केवलदर्शन होता है। संसारी जीवों के ज्ञान और दर्शन एक साथ नहीं होते हैं किन्तु केवली भगवान के दोनों एक साथ ही होते हैं।

इस प्रकार दर्शनमार्गणा को समझकर समस्त बाह्य संकल्प-विकल्प को छोड़कर अन्तर्मुख होकर निर्विकल्प समाधि में स्थिरता प्राप्त कर शुद्धात्मा का अवलोकन करना चाहिए।

इस प्रकार षट्खंडागम ग्रंथ के प्रथम खंड में तृतीय ग्रंथ में क्षेत्रानुगम नामक
तृतीय प्रकरण में गणिनी ज्ञानमती कृत सिद्धान्तचिन्तामणि टीका में
दर्शनमार्गणा नामक नवमां अधिकार समाप्त हुआ।



अथ लेश्यामार्गणाधिकारः

अथ स्थलद्वयेन पंचसूत्रैः लेश्यामार्गणानाम दशमोऽधिकारः प्रारभ्यते। तत्र प्रथमस्थले अशुभत्रिक-लेश्यानां क्षेत्रनिरूपणत्वेन “लेस्साणुवादेण” इत्यादिसूत्रद्वयं। तदनु द्वितीयस्थले शुभत्रिकलेश्यायां क्षेत्रकथनत्वेन “तेउलेस्सिय” इत्यादिसूत्रत्रयं, इति समुदाय पातनिका।

अधुना अशुभलेश्यायां मिथ्यादृष्टिक्षेत्रनिरूपणाय सूत्रमवतरति—

लेस्साणुवादेण किणहलेस्सिय-णीललेस्सिय-काउलेस्सिएसु मिच्छादिट्ठी ओघं।।७२।।

सूत्रं सुगमं। स्वस्थानस्वस्थान-वेदना-कषाय-मारणान्तिक-उपपादपदेः सर्वलोकावस्थानं अशुभ-लेश्यावतां मिथ्यादृष्टिजीवानां। वैक्रियिकपदः विहारवत्स्वस्थानपदैः त्रिलोकानामसंख्यातभागे, तिर्यग्लोकस्य संख्यातभागे, सार्धद्वयद्वीपादसंख्यातगुणे क्षेत्रे च तिष्ठन्ति। विशेषेण तु वैक्रियिकसमुद्घातगताः तिर्यग्लोकस्या-संख्यातभागे निवसन्ति।

इमे अशुभलेश्यावन्तः सासादनादित्रिगुणस्थानवर्तिनः क्षेत्रापेक्षया कियत्स्थाने तिष्ठन्तीति प्रतिपादनाय सूत्रमवतरति—

अथ लेश्यामार्गणा अधिकार प्रारंभ

अब दो स्थलों में पाँच सूत्रों के द्वारा लेश्यामार्गणा नाम का दशवाँ अधिकार प्रारम्भ होता है। उनमें से प्रथम स्थल में तीन अशुभ लेश्या वाले जीवों का क्षेत्र निरूपण करने हेतु “लेस्साणुवादेण” इत्यादि दो सूत्र कहेंगे। उसके पश्चात् द्वितीय स्थल में तीन शुभ लेश्या वाले जीवों के क्षेत्र कथन की मुख्यता से “तेउलेस्सिय” इत्यादि तीन सूत्र हैं। इस प्रकार अधिकार के प्रारंभ में यह सूत्रों की समुदायपातनिका हुई।

अब सर्वप्रथम अशुभ लेश्या वाले मिथ्यादृष्टि जीवों का क्षेत्र निरूपण करने हेतु सूत्र का अवतार होता है—

सूत्रार्थ—

लेश्यामार्गणा के अनुवाद से कृष्णलेश्या वाले, नीललेश्या वाले और कापोतलेश्या वाले जीवों में मिथ्यादृष्टि जीव ओघ के समान सर्वलोक में रहते हैं।।७२।।

हिन्दी टीका—सूत्र का अर्थ सुगम है। स्वस्थानस्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात, मारणांतिकसमुद्घात और उपपाद, इन पदों के साथ सर्वलोक में रहने की अपेक्षा, विहारवत्स्वस्थान और वैक्रियिकपद के साथ सामान्यलोक आदि तीन लोकों के असंख्यातवें भाग में, तिर्यग्लोक के संख्यातवें भाग में और अढ़ाईद्वीप से असंख्यातगुणे क्षेत्र में रहने की अपेक्षा तीनों अशुभलेश्या वाले मिथ्यादृष्टि जीव रहते हैं। विशेष बात यह है कि वैक्रियिकसमुद्घातगत तीनों अशुभलेश्या वाले मिथ्यादृष्टि जीव तिर्यग्लोक के असंख्यातवें भाग में रहते हैं।

अब उन अशुभ लेश्या वाले सासादन आदि तीन गुणस्थानवर्ती जीवों का क्षेत्र की अपेक्षा कितने स्थान में रहते हैं, ऐसा प्रतिपादन करने के लिए सूत्र का अवतार होता है—

सासणसम्मादिट्ठी सम्मामिच्छादिट्ठी असंजदसम्मादिट्ठी ओघं॥७३॥

सूत्रं सुगमं। इमे अशुभलेश्यावन्तः त्रिगुणस्थानवर्तिनः चतुर्लोकानामसंख्यातभागे, मानुषक्षेत्राद-
संख्यातगुणे च। विशेषतः मारणान्तिकोपपादगताः कृष्णनीलकापोतवन्तः असंयतसम्यग्दृष्टयः संख्याताः
अपि भूत्वा मानुषक्षेत्रादसंख्यातगुणे क्षेत्रे निवसन्ति, असंख्यातयोजनायामत्वात्।

एवं कृष्णादित्रिलेश्यायां क्षेत्रप्ररूपणपरे द्वे सूत्रे गते।

संप्रति पीतपद्मलेश्यायां गुणस्थानापेक्षया क्षेत्रनिरूपणाय सूत्रमवतरति—

तेजोलेस्सिय-पम्मलेस्सिएसु मिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव अप्पमत्तसंजदा केवडि
खेत्ते? लोगस्स असंखेज्जदिभागे॥७४॥

सूत्रं सुगमं।

तेजोलेश्यावन्तो मिथ्यादृष्टयः स्वस्थानस्वस्थान-विहारवत्स्वस्थान-वेदना-कषाय-वैक्रियिक-
समुद्घातगताः त्रिलोकानामसंख्यातभागे, तिर्यग्लोकस्य संख्यातभागे, सार्धद्वयद्वीपादसंख्यातगुणे क्षेत्रे च
तिष्ठन्ति। मारणान्तिकाः एवमेव विशेषेण तु तिर्यग्लोकादसंख्यातगुणे तिष्ठन्ति इति वक्तव्यं। एवं चैव
उपपादगतानां ज्ञातव्यं। अग्रिमगुणस्थानवर्तिनां तेजोलेश्यावतां क्षेत्रमोघवत्।

स्वस्थानस्वस्थान-विहारवत्स्वस्थान-वेदना-कषायसमुद्घातगताः पद्मलेश्यावन्तो मिथ्यादृष्टयः

सूत्रार्थ—

तीनों अशुभ लेश्या वाले सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि
जीव ओघ के समान लोक के असंख्यातवें भाग में रहते हैं॥७३॥

हिन्दी टीका—सूत्र का अर्थ सरल है। ये तीनों अशुभ लेश्या वाले तीन गुणस्थानवर्ती जीव चारों
लोकों के असंख्यातवें भाग में, मानुषक्षेत्र से असंख्यातगुणे क्षेत्र में रहते हैं। विशेषरूप से मारणांतिक
समुद्घात और उपपाद पद को प्राप्त कृष्ण-नील-कापोत लेश्या वाले असंयतसम्यग्दृष्टि जीव संख्यात हो
करके भी मानुषक्षेत्र से असंख्यातगुणे क्षेत्र में रहते हैं क्योंकि उनका आयाम असंख्यात योजन पाया जाता है।

इस प्रकार कृष्णादि तीन लेश्या वाले जीवों का क्षेत्र प्ररूपण करने वाले दो सूत्र पूर्ण हुए।

अब पीत और पद्म लेश्यायुक्त जीवों का गुणस्थान की अपेक्षा क्षेत्र निरूपण करने हेतु सूत्र का अवतार
होता है—

सूत्रार्थ—

तेजोलेश्या वाले और पद्मलेश्या वाले जीवों में मिथ्यादृष्टि गुणस्थान से लेकर
अप्रमत्तसंयत गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीव कितने क्षेत्र में रहते हैं ? लोक
के असंख्यातवें भाग में रहते हैं॥७४॥

हिन्दी टीका—सूत्र का अर्थ सुगम है। स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्घात,
कषायसमुद्घात और वैक्रियिकसमुद्घात को प्राप्त तेजोलेश्या वाले मिथ्यादृष्टि जीव सामान्यलोक आदि तीन
लोकों के असंख्यातवें भाग में, तिर्यग्लोक के संख्यातवें भाग में और अढ़ाईद्वीप से असंख्यातगुणे क्षेत्र में रहते
हैं। मारणांतिकसमुद्घातगत तेजोलेश्या वाले मिथ्यादृष्टि जीवों का क्षेत्र भी इसी प्रकार है। विशेष बात यह

त्रिलोकानामसंख्यातभागे, तिर्यग्लोकस्य संख्यातभागे, सार्धद्वयद्वीपादसंख्यातगुणे च तिष्ठन्ति, प्रधानी-भूततिर्यगराशित्वात्। वैक्रियिक-मारणान्तिक-उपपादगताः चतुर्लोकानामसंख्यातभागे, सार्धद्वयद्वीपाद-संख्यातगुणे च, प्रधानीकृतसानत्कुमार-माहेन्द्रस्वर्गराशित्वात्। अस्यां लेश्यायां सासादनादिअप्रमत्तसंयत-पर्यतानां क्षेत्रमोघवत्।

अधुना शुक्ललेश्यायां गुणस्थानापेक्षया क्षेत्रनिरूपणाय सूत्रमवतरति—

शुक्ललेस्सिएसु मिच्छादिद्विप्पहुडि जाव खीणकसायवीदरागछदुमत्था केवडि खेत्ते? लोगस्स असंखेज्जदिभागे।।७५।।

सूत्रार्थः सुगमः।

शुक्ललेश्यावन्तो मिथ्यादृष्टयः येन पल्योपमस्य असंख्यातभागमात्राः तेन स्वस्थानस्वस्थान-विहारवत्स्वस्थान-वेदना-कषाय-वैक्रियिक-मारणान्तिक-उपपादगताः चतुर्लोकानामसंख्यातभागे, सार्धद्वयद्वीपादसंख्यातगुणे क्षेत्रे च तिष्ठन्ति। शेषगुणस्थानानां क्षेत्रमोघवत्। विशेषेण तु अस्यां शुक्ललेश्यायां मिथ्यादृष्टिप्रभृति-सर्वगुणस्थानेषु मारणान्तिकोपपादपदेषु जीवाः संख्याताः इति।

कहना चाहिए कि वे तिर्यग्लोक से असंख्यातगुणे क्षेत्र में रहते हैं। इसी प्रकार उपपादपद को प्राप्त तेजोलेश्या वाले मिथ्यादृष्टि जीवों का क्षेत्र जानना चाहिए। अग्रिम गुणस्थानप्रतिपन्न तेजोलेश्या वाले जीवों का क्षेत्र ओघक्षेत्र के समान है। स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्घात और कषायसमुद्घात पद्मलेश्या वाले मिथ्यादृष्टि जीव सामान्यलोक आदि तीन लोकों के असंख्यातवें भाग में, तिर्यग्लोक के संख्यातवें भाग में और अढ़ाईद्वीप से असंख्यातगुणे क्षेत्र में रहते हैं क्योंकि यहाँ पर तिर्यचराशि की प्रधानता है। वैक्रियिकसमुद्घात, मारणांतिकसमुद्घात और उपपादपद को प्राप्त पद्मलेश्या वाले मिथ्यादृष्टि जीव सामान्यलोक आदि चार लोकों के असंख्यातवें भाग में और अढ़ाईद्वीप से असंख्यातगुणे क्षेत्र में रहते हैं, क्योंकि यहाँ पर सानत्कुमार-माहेन्द्र देवराशि की प्रधानता है। सासादनसम्यग्दृष्टि आदि गुणस्थान को प्राप्त जीवों से लेकर अप्रमत्तसंयत गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती पद्मलेश्यावाले जीवों का क्षेत्र ओघ के समान है।

अब शुक्ललेश्या वाले जीवों का गुणस्थान की अपेक्षा क्षेत्र निरूपण करने हेतु सूत्र का अवतार होता है—

सूत्रार्थ—

शुक्ललेश्या वाले जीवों में मिथ्यादृष्टि गुणस्थान से लेकर क्षीणकषायवीतरागछद्मस्थ गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती शुक्ललेश्या वाले जीव कितने क्षेत्र में रहते हैं? लोक के असंख्यातवें भाग में रहते हैं।।७५।।

हिन्दी टीका—सूत्र का अर्थ सुगम है। शुक्ललेश्या वाले मिथ्यादृष्टि जीव पल्योपम के असंख्यातवें भागप्रमाण हैं, इसलिये वे स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात, वैक्रियिकसमुद्घात, मारणांतिकसमुद्घात और उपपादपद की अपेक्षा सामान्यलोक आदि चार लोकों के असंख्यातवें भाग में और अढ़ाईद्वीप से असंख्यातगुणे क्षेत्र में रहते हैं। सासादनसम्यग्दृष्टि आदि शेष गुणस्थानवर्ती शुक्ललेश्या वाले जीवों का क्षेत्र ओघ के समान है। विशेष बात यह है कि मिथ्यादृष्टि गुणस्थान से लेकर क्षीणकषाय गुणस्थान तक सभी गुणस्थानों में मारणांतिकसमुद्घात और उपपाद, इन दोनों पदों में शुक्ललेश्या वाले जीव संख्यात ही होते हैं।

सयोगिनां क्षेत्रनिरूपणाय सूत्रावतारो भवति—

सजोगिकेवली ओघं।।७६।।

एतत्सूत्रं सुगमं।

कश्चिदाह—यथा कषायमार्गणायां अकषायिनः उक्ताः, तथात्र लेश्यामार्गणायां लेश्यारहिताः किन्नोक्ताः? नैतत्, यत्र द्रव्यं प्रधानीभूतं, तत्र भणितं भवति। यत्र पुनः पर्यायः प्रधानः, तत्र न भवति। लेश्यामार्गणा पुनः पर्यायप्रधानात्र कृता, तेन अलेश्यावन्तो न प्ररूपिताः।

तात्पर्यमत्र—अशुभलेश्याः त्यक्त्वा शुभलेश्याबलेन शुक्लध्यानं प्राप्तव्यं, येन निजशुद्धबुद्धनित्य-निरंजनपरमात्मपदं सुलभतया लभेत।

एवं द्वितीयस्थले शुक्ललेश्यासु क्षेत्रनिरूपणत्वेन सूत्राणि त्रीणि गतानि।

अब सयोगिकेवली जीवों का क्षेत्र निरूपण करने के लिये सूत्र का अवतार होता है—

सूत्रार्थ—

शुक्ललेश्या वाले सयोगिकेवली का क्षेत्र ओघ के समान है।।७६।।

हिन्दी टीका—इस सूत्र का अर्थ सुगम है।

यहाँ कोई शंका करता है कि—

जिस प्रकार कषायमार्गणा में क्षेत्रप्ररूपणा करते समय अकषायी जीव कहे गये हैं, उसी प्रकार यहाँ लेश्यामार्गणा में अलेश्य—लेश्या रहित जीवों का कथन क्यों नहीं किया गया है?

इसका समाधान करते हुए कहते हैं कि—

ऐसा नहीं है, जिस मार्गणा में द्रव्य की प्रधानता है, उस मार्गणा में तो वैसा कहा गया है किन्तु जिस मार्गणा में पर्याय प्रधान है, उस मार्गणा में वैसा नहीं कहा गया है पुनः लेश्यामार्गणा यहाँ पर्यायप्रधान कही गई है, इसलिए इस मार्गणा में अलेश्य जीव नहीं कहे गये हैं।

तात्पर्य यह है कि अशुभलेश्याओं को छोड़कर शुभलेश्याओं के बल से शुक्लध्यान को प्राप्त करना चाहिए, जिससे निज शुद्ध-बुद्ध, नित्य-निरंजन परमात्मपद सुलभतया प्राप्त हो जावे।

इस प्रकार द्वितीयस्थल में शुक्ललेश्या वाले जीवों का क्षेत्र निरूपण करने वाले तीन सूत्र पूर्ण हुए।

विशेषार्थ—लेश्या का वर्णन करते हुए गोम्मटसार में कहा है—

लिंपइ अप्पीकीरइ, एदीए णियअपुण्णपुण्णं च।

जीवो त्ति होदि लेस्सा, लेस्सागुणजाणयक्खादा।।

अर्थात् जो आत्मा को पुण्य-पाप से लिप्त करे, ऐसी कषायोदय से अनुरक्त योग (मन, वचन, काय) की प्रवृत्ति लेश्या है।

लेश्या के दो भेद हैं—द्रव्यलेश्या, भावलेश्या। द्रव्यलेश्या शरीर के वर्णरूप हैं और भावलेश्या आत्मा के परिणामस्वरूप हैं। लेश्या के छह भेद हैं—कृष्ण, नील, कापोत, पीत, पद्म, शुक्ल। इनके अवांतर भेद असंख्यात लोकप्रमाण हैं।

द्रव्यलेश्या का वर्णन—वर्ण नामकर्म के उदय से जीव के शरीर का वर्ण द्रव्यलेश्या है। सम्पूर्ण नारकी कृष्णवर्ण हैं। कल्पवासी देवों की द्रव्यलेश्या, भावलेश्या सदृश है। भवनवासी, व्यंतर, ज्योतिषी,

इति षट्खंडागमप्रथमखंडे तृतीयग्रन्थे क्षेत्रानुगमनाम्नितृतीयप्रकरणे गणिनीज्ञानमतीकृत
सिद्धान्तचिन्तामणिटीकायां लेश्यामार्गणानाम दशमोऽधिकारः समाप्तः।

मनुष्य, तिर्यच इनकी द्रव्यलेश्या छहों हैं। विक्रिया से रहित देवों के शरीर छहों वर्ण के हो सकते हैं। उत्तमभूमिया मनुष्य-तिर्यचों का वर्ण सूर्यमान, मध्यमभोगभूमि वालों का चन्द्र समान, जघन्य भोगभूमि वालों का हरित वर्ण है।

भावलेश्या का वर्णन — अशुभ तीन लेश्या में तीव्रतम, तीव्रतर और तीव्र ये तीन स्थान होते हैं। शुभ लेश्या में मन्द, मन्दतर, मन्दतम ये तीन स्थान होते हैं।

कृष्णलेश्या — तीव्र क्रोधी वैर न छोड़े, युद्धाभिलाषी, धर्म दया से शून्य, दुष्ट और किसी के वश में न होवे, यह कृष्णलेश्या के लक्षण हैं।

नीललेश्या — काम करने में मन्द हो, स्वच्छन्द हो, विवेक, चतुरता रहित हो, इन्द्रियलम्पट, मानी, मायाचारी, आलसी हो, गूढ़ अभिप्रायी, निद्रालु, वंचक, विषयों का लोलुपी हो, ये सब नीललेश्या के लक्षण हैं।

कापोत लेश्या — दूसरे पर क्रोध करना, निंदा करना, दुःख देना, वैर करना, शोकाकुलित रहना, भयग्रस्त होना, दूसरों के ऐश्वर्यादि को न सह सकना, दूसरे का तिरस्कार करना, अपनी प्रशंसा करना, स्तुति में सन्तुष्ट होना आदि इन लेश्या के लक्षण हैं।

पीतलेश्या — अपने कार्य-अकार्य, सेव्य-असेव्य को समझना, सबके विषय में समदर्शी होना, दया और दान में तत्पर होना, मन-वचन-काय से कोमल परिणामी होना, ये सब पीतलेश्या के चिन्ह हैं।

पद्मलेश्या — दान देने वाला हो, भद्र परिणामी, उत्तम कार्य करने का स्वभावी हो, कष्टरूप व अनिष्ट उपसर्गों का सहन करने वाला हो, मुनिजन, गुरुजन की पूजा में प्रीतियुक्त हो, ये सब पद्मलेश्या के लक्षण हैं।

शुक्ललेश्या — पक्षपात न करना, निदान को न बांधना, सब जीवों में समदर्शी होना, इष्ट से राग-अनिष्ट से द्वेष न करना, स्त्री-पुत्र आदि में स्नेह रहित होना, ये सब शुक्ललेश्या के लक्षण हैं।

कृष्णादि लेश्या वाले छह पथिक वन में मार्ग भूल जाने से एक फलों के भार से युक्त वृक्ष के पास जाकर इस प्रकार क्रिया करते हैं —

कृष्ण लेश्या वाला इस वृक्ष को जड़ से उखाड़कर फल खाने का इच्छुक होकर वृक्ष को जड़ से काटने लगा। नीललेश्या वाला वृक्ष के स्कन्ध को काटकर फल खाने का इच्छुक हो स्कन्ध काटने लगा। कापोत लेश्या वाला बड़ी-बड़ी शाखाओं को काटकर फल खाने लगा। पीतलेश्या वाला छोटी-छोटी शाखाओं को काटकर फल लेकर खाने लगा। पद्मलेश्या वाला फलों को वृक्ष से तोड़कर खाने लगा और शुक्ललेश्या वाला वृक्ष से स्वयं टूटकर पड़े हुए फलों को उठाकर खाने लगा। इस प्रकार से लेश्या के और भी उदाहरण समझना।

जो कृष्णादि छहों लेश्याओं से रहित हैं अतः जो पंचपरिवर्तनरूप संसार-समुद्र से पार हो गए हैं। अतीन्द्रिय, अनन्तसुख से तृप्त, आत्मोपलब्धिरूप सिद्धपुरी को पहुंच चुके हैं, वे अयोगकेवली या सिद्ध भगवान हैं।

लेश्याओं के प्रकरण को समझकर अशुभ लेश्या से बचकर शुभ लेश्या को धारण करते हुए लेश्या रहित शुद्धात्मा स्वरूप में स्थिर होने के लिए बार-बार प्रयत्न करना चाहिए। यह आत्मा वर्णादि से रहित शुद्ध परम स्वच्छ है। उसी का नित्यप्रति चिंतन करना चाहिए।

इस प्रकार षट्खंडागम ग्रंथ के प्रथम खंड में तृतीय ग्रंथ में क्षेत्रानुगम नामक
तृतीय प्रकरण में गणिनी ज्ञानमती कृत सिद्धान्तचिन्तामणि टीका में
लेश्यामार्गणा नामक दशवाँ अधिकार समाप्त हुआ।

अथ भव्यमार्गणाधिकारः

अथ स्थलद्वयेन द्वाभ्यां सूत्राभ्यां भव्यमार्गणानाम एकादशमोऽधिकारः कथ्यते। तत्र प्रथमस्थले भव्यजीवानां क्षेत्रनिरूपणत्वेन “भवियाणुवादेण” इत्यादिसूत्रमेकं। तदनु द्वितीयस्थले अभव्यजीवानां क्षेत्रकथनेन “अभव” इत्यादिसूत्रमेकं इति समुदायपातनिका।

भव्यमार्गणायां गुणस्थानापेक्षया क्षेत्रनिरूपणाय सूत्रावतारो भवति—

भवियाणुवादेण भवसिद्धिः सु मिच्छादिदृष्टिपुडि जाव अजोगिकेवली ओघं॥७७॥

सूत्रस्यार्थः सुगमः।

अस्यां भव्यमार्गणायां चतुर्दशगुणस्थानानि सन्ति ततः ओघवत् ज्ञातव्यं क्षेत्रं।

एवं प्रथमस्थले भव्यजीवक्षेत्रनिरूपणत्वेन एकं सूत्रं गतम्।

संप्रति अभव्यजीवानां क्षेत्रप्रतिपादनाय सूत्रमवतरति—

अभवसिद्धिः सु मिच्छादिदृष्टि केवडि खेत्ते? सव्वलोए॥७८॥

सूत्रं सुगमं वर्तते।

अथ भव्यमार्गणा अधिकार प्रारंभ

अब दो स्थलों में दो सूत्रों के द्वारा भव्यमार्गणा नाम का ग्यारहवाँ अधिकार प्रारम्भ होता है। उनमें से प्रथम स्थल में भव्यजीवों का क्षेत्र निरूपण करने हेतु “भवियाणुवादेण” इत्यादि एक सूत्र है। उसके बाद द्वितीय स्थल में अभव्य जीवों का क्षेत्रकथन करने हेतु “अभव” इत्यादि एक सूत्र है। अधिकार के प्रारंभ में यह सूत्रों की समुदायपातनिका हुई।

अब भव्यमार्गणा में गुणस्थान की अपेक्षा क्षेत्र निरूपण करने के लिए सूत्र का अवतार होता है—

सूत्रार्थ—

भव्यमार्गणा के अनुवाद से भव्यसिद्धिक जीवों में मिथ्यादृष्टि गुणस्थान से लेकर अयोगकेवली गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीवों का क्षेत्र ओघक्षेत्र के समान होता है॥७७॥

हिन्दी टीका—सूत्र का अर्थ सुगम है। इस भव्यमार्गणा में चौदहों गुणस्थान होते हैं इसलिए भव्यजीवों का क्षेत्र ओघवत्—गुणस्थान व्यवस्था के समान जानना चाहिए।

इस प्रकार प्रथम स्थल में भव्यजीवों का क्षेत्र निरूपण करने वाला एक सूत्र पूर्ण हुआ।

अब अभव्य जीवों का क्षेत्र प्रतिपादन करने हेतु सूत्र का अवतार हो रहा है—

सूत्रार्थ—

अभव्यसिद्धिक जीवों में मिथ्यादृष्टिजीव कितने क्षेत्र में रहते हैं? सम्पूर्ण लोक में रहते हैं॥७८॥

हिन्दी टीका—सूत्र का अर्थ सरल है। स्वस्थानस्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात,

स्वस्थानस्वस्थान-वेदना-कषाय-मारणान्तिक-उपपादगताः अभव्यसिद्धिकाः जीवाः सर्वलोके सन्ति। विहारवत्स्वस्थान-वैक्रियिकपदस्थिताः चतुर्लोकानामसंख्यातभागे, सार्धद्वयद्वीपादसंख्यातगुणे च।

कुतः एतज्ज्ञायते?

त्रसराशिमाश्रित्य कथितबंधसंबन्धि-अल्पबहुत्वानुयोगद्वारसूत्राद् ज्ञायते। तद्यथा — “सर्वस्तोकाः ध्रुवबंधकाः। सादिबंधकाः असंख्यातगुणाः। अनादिबंधकाः असंख्यातगुणाः। अध्रुवबंधका विशेषाधिकाः।

कियद्मात्र विशेषाधिकाः?

ध्रुवबंधकेन हीनसादिबंधकराशिमात्रेण अधिकाः सन्ति।

एष विशेषोऽत्र त्रसेषु अभव्यसिद्धिकाः जीवाः पल्योपमस्य असंख्यातभागमात्राः एव भवन्ति इति ज्ञातव्यं। तात्पर्यमत्र — ‘वयं भव्याः’ इति मत्वा निश्चयं च कृत्वा रत्नत्रयं संप्राप्य कथमपि प्रमादो न कर्तव्यः। एवं द्वितीयस्थले अभव्यमार्गणायां क्षेत्रप्रतिपादनत्वेन एकं सूत्रं गतम्।

मारणांतिकसमुद्घात और उपपादपद को प्राप्त अभव्यसिद्धिक जीव सर्वलोक में रहते हैं। विहारवत्स्वस्थान और वैक्रियिकपदस्थित अभव्यसिद्धिक जीव सामान्यलोक आदि चार लोकों के असंख्यातवें भाग में और अर्द्धद्वीप से असंख्यातगुणे क्षेत्र में रहते हैं।

शंका — यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान — त्रसराशि का आश्रय करके कहे गये बंधसम्बन्धी अल्पबहुत्वानुयोगद्वार के सूत्रों से यह जाना जाता है। वह इस प्रकार है — ध्रुवबंधक जीव सबसे कम हैं। उनसे सादिबंधक जीव असंख्यातगुणे हैं। उनसे अनादिबंधक जीव असंख्यातगुणे हैं। उनसे अध्रुवबंधक जीव विशेष अधिक हैं।

प्रश्न — कितने मात्र विशेष से अधिक हैं?

उत्तर — ध्रुवबंधकों से हीन सादिबंधकों की राशि के प्रमाण से अधिक हैं।

यहाँ विशेष यह जानना चाहिए कि त्रस जीवों में अभव्यसिद्धिक जीव पल्योपम के असंख्यातवें भाग-मात्र ही होते हैं।

तात्पर्य यह है कि हम सभी को “हम भव्य हैं” ऐसा समझकर और मन में दृढ़ निश्चय करके रत्नत्रय को प्राप्त करने में कभी भी प्रमाद नहीं करना चाहिए।

इस प्रकार द्वितीय स्थल में भव्यमार्गणा के अन्तर्गत अभव्यजीवों का क्षेत्र प्रतिपादन करने वाला एक सूत्र पूर्ण हुआ।

विशेषार्थ — जिन जीवों की अनन्तचतुष्टयरूप सिद्धि होने वाली हो अथवा जो उसकी प्राप्ति के योग्य हों, उनको भवसिद्ध कहते हैं। जिनमें इन दोनों में से कोई भी लक्षण घटित न हो, उन जीवों को अभव्यसिद्ध कहते हैं।

ऐसे भी बहुत से कनकोपल हैं जिनमें कि निमित्त मिलाने पर शुद्ध स्वर्णरूप होने की योग्यता तो है परन्तु उनकी इस योग्यता की अभिव्यक्ति कभी नहीं होगी अथवा जिस तरह अहमिन्द्र देवों में नरकादि में गमन करने की शक्ति है परन्तु उस शक्ति की अभिव्यक्ति कभी नहीं होती, इस ही तरह जिन जीवों में अनन्त-चतुष्टय को प्राप्त करने की योग्यता है परन्तु उनको वह कभी प्राप्त नहीं होगी, उनको भी भवसिद्ध कहते हैं। ये जीव भव्य होते हुए भी सदा संसार में ही रहते हैं।

पुनः मुक्त जीव का स्वरूप बताते हुए कहा है —

इति षट्खंडागमप्रथमखंडे तृतीयग्रन्थे क्षेत्रानुगमनाम्नि तृतीयप्रकरणे
गणिनीज्ञानमतीकृतसिद्धान्तचिन्तामणिटीकायां भव्य-
मार्गणानाम एकादशमोऽधिकारः समाप्तः।

ण य जे भव्वाभव्वा, मुत्तिसुहाती दणंतसंसार।

ते जीवा णायव्वा, णेव य भव्वा अभव्वा य।।

अर्थात् जिनका पाँच परिवर्तनरूप अनन्त संसार सर्वथा छूट गया है और इसीलिए जो मुक्तिसुख के भोक्ता हैं, उन जीवों को न तो भव्य समझना और न अभव्य समझना चाहिए क्योंकि अब उनको कोई नवीन अवस्था प्राप्त करना शेष नहीं रही है इसलिए वे भव्य भी नहीं हैं और अनन्तचतुष्टय को प्राप्त हो चुके हैं इसलिए अभव्य भी नहीं हैं।

जिसमें अनन्त चतुष्टय के अभिव्यक्त होने की योग्यता ही न हो, उसको अभव्य कहते हैं अतः मुक्तजीव अभव्य भी नहीं हैं क्योंकि इन्होंने अनन्तचतुष्टय को प्राप्त कर लिया है और “भवितुं योग्या भव्या” इस निरुक्ति के अनुसार भव्य उनको कहते हैं जिनमें कि अनन्तचतुष्टय को प्राप्त करने की योग्यता है किन्तु अब वे उस अवस्था को प्राप्त कर चुके इसलिए उनके भव्यत्व — उनकी उस योग्यता का परिपाक हो चुका अतएव उपरिपक्व अवस्था की अपेक्षा से भव्य भी नहीं हैं।

जघन्य युक्तानन्त प्रमाण अभव्य राशि है और भव्य राशि इससे बहुत ही अधिक है। काल के अनन्त समय हैं फिर भी ऐसा कोई समय नहीं आएगा कि जब भव्यराशि से संसार खाली हो जाए। अनन्तानन्त काल के बीत जाने पर भी अनन्तानन्त भव्यराशि संसार में विद्यमान ही रहेगी क्योंकि यह राशि अक्षय-अनन्त है।

यद्यपि छह महिना आठ समय में ६०८ जीव मोक्ष चले जाते हैं और छह महिना आठ समय में इतने ही जीव निगोदराशि से निकलते हैं फिर भी कभी संसार का अन्त नहीं हो सकता है और न निगोद राशि में ही घाटा आ सकता है।

जिनका पंचपरिवर्तनरूप अनन्त संसार सर्वथा छूट गया है और इसलिए जो मुक्तिसुख के भोक्ता हैं, उन जीवों को न तो भव्य समझना और न अभव्य समझना क्योंकि अब उनको कोई नवीन अवस्था प्राप्त करना शेष नहीं रहा इसलिए भव्य नहीं हैं और अनन्तचतुष्टय को प्राप्त हो चुके हैं इसलिए अभव्य नहीं हैं। ऐसे मुक्तिजीव भी अनन्तानन्त हैं।

उनको मेरा कोटि-कोटि नमस्कार होवे।

इस प्रकार षट्खंडागम ग्रंथ के प्रथम खंड में तृतीय ग्रंथ में क्षेत्रानुगम नामक
तृतीय प्रकरण में गणिनी ज्ञानमती कृत सिद्धान्तचिन्तामणि टीका में
भव्यमार्गणा नामक ग्यारहवाँ अधिकार समाप्त हुआ।



अथ सम्यक्त्वमार्गणाधिकारः

अथ स्थलचतुष्टयेन सप्तभिः सूत्रैः सम्यक्त्वमार्गणानाम् द्वादशोधिकारः प्रारभ्यते। तत्र प्रथमस्थले सामान्यसम्यक्त्व-क्षाधिकसम्यक्त्ववतां क्षेत्रप्ररूपणत्वेन “सम्मत्ताणुवादेण” इत्यादिसूत्रद्वयं। तदनु द्वितीयस्थले वेदकसम्यग्दृष्टीनां क्षेत्रनिरूपणत्वेन “वेदग” इत्यादिसूत्रमेकं। ततः परं तृतीयस्थले उपशमसम्यग्दृष्टीनां क्षेत्रकथनेन “उवसम” इत्यादिसूत्रमेकं। तत्पश्चात् चतुर्थस्थले सासादनादिक्षेत्रप्रतिपादनत्वेन “सासण” इत्यादिसूत्रत्रयं इति समुदायपातनिका।

अधुना सामान्यसम्यग्दृष्टि-क्षाधिकसम्यग्दृष्टिक्षेत्रप्ररूपणाय सूत्रमवतरति—

सम्मत्ताणुवादेण सम्मादिट्ठि-खइयसम्मादिट्ठीसु असंजदसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव अजोगिकेवली ओघं।।७९।।

सूत्रस्यार्थः सुगमः।

द्रव्यार्थिकनयप्ररूपणां प्रति विशेषो नास्तीति ओघवत् कथितं। पर्यायार्थिकनयप्ररूपणायामपि नास्ति विशेषः। केवलं तु क्षायिकसम्यग्दृष्टिषु संयतासंयतानां मनुष्यपर्याप्तसंयतासंयतप्ररूपणा एव ज्ञातव्या। मारणान्तिकोपपादपदयोः वर्तमानाः असंयतसम्यग्दृष्टिगुणस्थानवर्तिनः क्षायिकसम्यग्दृष्टयः संख्याताः सन्ति।

अथ सम्यक्त्वमार्गणा अधिकार प्रारंभ

अब चार स्थलों में सात सूत्रों के द्वारा सम्यक्त्वमार्गणा नाम का बारहवाँ अधिकार प्रारम्भ होता है। उनमें से प्रथम स्थल में सामान्यसम्यक्त्व और क्षायिक सम्यक्त्व को प्राप्त जीवों की क्षेत्रप्ररूपणा करने हेतु “सम्मत्ताणुवादेण” इत्यादि दो सूत्र कहेंगे। उसके पश्चात् द्वितीय स्थल में वेदकसम्यग्दृष्टि जीवों का क्षेत्र निरूपण करने हेतु “वेदग” इत्यादि एक सूत्र है। उसके आगे तृतीय स्थल में उपशम सम्यग्दृष्टि जीवों का क्षेत्रकथन करने हेतु “उवसम” इत्यादि एक सूत्र है। तत्पश्चात् चतुर्थस्थल में सासादन आदि गुणस्थानों में क्षेत्रकथन करने हेतु “सासण” इत्यादि तीन सूत्र हैं। इस प्रकार यह सूत्रों की समुदायपातनिका हुई है।

अब सामान्य सम्यग्दृष्टि और क्षायिक सम्यग्दृष्टि जीवों का क्षेत्र बतलाने के लिए सूत्र का अवतार होता है—

सूत्रार्थ—

सम्यक्त्वमार्गणा के अनुवाद से सम्यग्दृष्टि और क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीवों में असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान से लेकर अयोगकेवली गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती सम्यग्दृष्टि और क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीवों के क्षेत्र ओघ के समान हैं।।७९।।

हिन्दी टीका—सूत्र का अर्थ सरल है।

द्रव्यार्थिकनय के प्ररूपण की अपेक्षा सूत्र-प्रतिपादित जीवों के क्षेत्र में ओघ क्षेत्र से कोई विशेषता नहीं है, इसलिए सूत्र में ‘ओघ’ ऐसा पद कहा है। पर्यायार्थिकनय की प्ररूपणा में भी कोई विशेषता नहीं है, केवल क्षायिकसम्यग्दृष्टियों में संयतासंयत गुणस्थानवर्ती जीवों के मनुष्यपर्याप्त संयतासंयत ही क्षेत्रप्ररूपणा जानना चाहिए। मारणांतिकसमुद्घात और उपपाद, इन दो पदों में वर्तमान असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानवर्ती क्षायिक सम्यग्दृष्टि जीव संख्यात ही होते हैं।

एषां क्षेत्रापेक्षया सयोगिकेवलानां सूत्रमवतरति —

सजोगिकेवली ओघं॥८०॥

सूत्रं सुगमं वर्तते।

एवं प्रथमस्थले क्षायिकसम्यक्त्वक्षेत्रनिरूपणत्वेन द्वे सूत्रे गते।

संप्रति वेदकसम्यग्दृष्टीनां क्षेत्रकथनाय सूत्रमवतरति —

वेदगसम्मादिट्टीसु असंजदसम्मादिट्टिप्पहुडि जाव अप्पमत्तसंजदा केवडि खेत्ते? लोगस्स असंखेज्जदिभागे॥८१॥

सूत्रं सुगमं। अत्र ओघकथितपर्यायार्थिकनयप्ररूपणा निरवयवाः सर्वगुणस्थानेषु प्ररूपयितव्या विशेषाभावात्।

एवं द्वितीयस्थले वेदकसम्यग्दृष्टिनिरूपणपरमेकं सूत्रं गतं।

पुनश्च उपशमसम्यग्दृष्टिगुणस्थानापेक्षया क्षेत्रकथनाय सूत्रमवतरति —

**उवसमसम्मादिट्टीसु असंजदसम्मादिट्टिप्पहुडि जाव उवसंतकसायवीद-
रागछदुमत्था केवडि खेत्ते? लोगस्स असंखेज्जदिभागे॥८२॥**

अब क्षेत्र की अपेक्षा सयोगिकेवली भगवन्तों का वर्णन करने हेतु सूत्र का अवतार होता है —

सूत्रार्थ —

सयोगिकेवली भगवान का क्षेत्र ओघकथित क्षेत्र के समान है॥८०॥

सूत्र का अर्थ सुगम है।

इस प्रकार प्रथम स्थल में क्षायिक सम्यक्त्व वाले जीवों का क्षेत्र निरूपण करने वाले दो सूत्र पूर्ण हुए।

अब वेदकसम्यग्दृष्टि जीवों का कथन करने हेतु सूत्र का अवतार होता है —

सूत्रार्थ —

वेदकसम्यग्दृष्टियों में असंयत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान से लेकर अप्रमत्त संयत गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती वेदकसम्यग्दृष्टि जीव कितने क्षेत्र में रहते हैं? लोक के असंख्यातवें भाग में रहते हैं॥८१॥

हिन्दी टीका — सूत्र का अर्थ सुगम है। यहाँ पर गुणस्थानों में वर्णित पर्यायार्थिकनयसम्बन्धीरूपणा निरवयव — सम्पूर्ण पदों की अपेक्षा समस्त गुणस्थानों में प्ररूपण करना चाहिए क्योंकि उससे इसमें कोई विशेषता नहीं है।

इस प्रकार द्वितीय स्थल में वेदकसम्यग्दृष्टि जीवों का निरूपण करने वाला एक सूत्र पूर्ण हुआ।

पुनः अब उपशमसम्यग्दृष्टि जीवों का गुणस्थान की अपेक्षा से क्षेत्र कथन करने के लिए सूत्र का अवतार होता है —

सूत्रार्थ —

उपशमसम्यग्दृष्टि जीवों में असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान से लेकर उपशांत कषाय वीतरागद्वन्द्वस्थ गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती उपशमसम्यग्दृष्टि जीव कितने क्षेत्र में रहते हैं? लोक के असंख्यातवें भाग में रहते हैं॥८२॥

सूत्रं सुगमं।

स्वस्थानस्वस्थान-विहारवत्स्वस्थान-वेदना-कषाय-वैक्रियिकसमुद्घातगताः असंयतसम्यग्दृष्टि-उपशमसम्यग्दृष्टयः चतुर्लोकानामसंख्यातभागे, मानुषक्षेत्रादसंख्यातगुणे क्षेत्रे च तिष्ठन्ति। मारणान्तिक-उपपादपदयोः एष आलापश्चैव। विशेषेण तु द्वयोरेतयोः पदयोः स्थितजीवाः संख्यातश्चैव भवन्ति। उपशमश्रेण्याः अवतीर्य उपशमसम्यक्त्वेन सह असंयमं प्रतिपन्नजीवानां संख्यातत्वोपलंभात्।

शेष-उपशमसम्यग्दृष्टीनां किन्न मरणमस्ति इति चेत् ?

स्वभावात् इति वक्तव्यम्। एवं संयतासंयतानां अपि क्षेत्रं ज्ञातव्यं, तत्र उपपादपदं नास्ति। शेषगुणस्थानानां ओघवत्। विशेषेण तु प्रमत्तसंयतस्य उपशमसम्यक्त्वेन सह तेजसाहारौ न स्तः।

एवं तृतीयस्थले उपशमसम्यग्दृष्टिक्षेत्रप्ररूपणत्वेन एकं सूत्रं गतम्।

अधुना सासादनादिगुणस्थानत्रयवर्तिनां क्षेत्रकथनेन सूत्रत्रयमवतरति —

सासणसम्मादिट्ठी ओघं॥८३॥

सम्मामिच्छादिट्ठी ओघं॥८४॥

मिच्छादिट्ठी ओघं॥८५॥

एतानि त्रीण्यपि सूत्राणि सुगमानि सन्ति।

हिन्दी टीका—सूत्र का अर्थ सुगम है। स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात और वैक्रियिकसमुद्घात को प्राप्त असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानवर्ती उपशमसम्यग्दृष्टि जीव सामान्यलोक आदि चार लोकों के असंख्यातवें भाग में और मानुषक्षेत्र से असंख्यातगुणे क्षेत्र में रहते हैं। मारणांतिकसमुद्घात और उपपाद इन दोनों पदों में भी यही उक्त क्षेत्र आलाप जानना चाहिए। विशेष बात यह है कि उन दोनों पदों में वर्तमान जीव संख्यात ही होते हैं, क्योंकि उपशमश्रेणी से उतरकर उपशमसम्यक्त्व के साथ असंयमभाव को प्राप्त होने वाले जीवों की संख्या संख्यात ही पाई जाती है।

शंका—उपशमश्रेणी से उतरकर मरने वाले उपशमसम्यग्दृष्टि जीवों के अतिरिक्त शेष अन्य उपशमसम्यग्दृष्टि जीवों का मरण क्यों नहीं होता है ?

समाधान—स्वभाव से ही नहीं होता है। इसी प्रकार से संयतासंयत गुणस्थानवर्ती उपशमसम्यग्दृष्टि जीवों का क्षेत्र भी जानना चाहिए। उनके उपपादपद नहीं होता है। शेष गुणस्थानवर्ती उपशमसम्यग्दृष्टि जीवों का क्षेत्र ओघवर्णित क्षेत्र के समान है। विशेषता केवल इतनी है कि प्रमत्तसंयत के उपशमसम्यक्त्व के साथ तैजससमुद्घात और आहारकसमुद्घात नहीं होते हैं।

इस प्रकार तृतीयस्थल में उपशमसम्यग्दृष्टि जीवों का क्षेत्रप्ररूपण करने वाला एक सूत्र पूर्ण हुआ।

अब सासादन आदि तीन गुणस्थानवर्ती जीवों का क्षेत्रकथन करने हेतु तीन सूत्रों का कथन किया जा रहा है—

सूत्रार्थ—

सासादनसम्यग्दृष्टि जीवों का क्षेत्र ओघ के समान है ॥८३॥

सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवों का क्षेत्र ओघ के समान है ॥८४॥

मिथ्यादृष्टि जीवों का क्षेत्र ओघ के समान है ॥८५॥

हिन्दी टीका—इन तीनों सूत्रों का अर्थ भी सरल है अतः यहाँ विशेष व्याख्यान नहीं किया जा रहा है।

एवं सम्यक्त्वमार्गणां पठित्वा क्षायिकसम्यक्त्वभावनां भावयित्वा स्ववेदकसम्यग्दर्शनं निर्मलीकर्तव्यम्।
एवं चतुर्थस्थले सासादन-मिश्र-मिथ्यात्वनाम निरूपणपराणि त्रीणि सूत्राणि गतानि।

इस प्रकार सम्यक्त्व मार्गणा को पढ़कर क्षायिक सम्यक्त्व की भावना भाकर अपने वेदक—क्षयोपशम सम्यग्दर्शन को निर्मल करना चाहिए।

इस प्रकार चतुर्थस्थल में सासादन सम्यक्त्व, मिश्र—क्षयोपशम सम्यक्त्व और मिथ्यात्व का निरूपण करने वाले तीन सूत्र पूर्ण हुए।

विशेषार्थ—सम्यक्त्व का लक्षण बताते हुए कहा है—छह द्रव्य, पाँच अस्तिकाय, नव पदार्थ इनका जिनेन्द्रदेव के कहे अनुसार श्रद्धान करना सम्यक्त्व है। इसके दो भेद हैं। सूक्ष्मादि तत्त्वों में जिनेन्द्रदेव ने जो कहा, सो ठीक है अन्यथावादी नहीं है, ऐसा श्रद्धान करना आज्ञा सम्यक्त्व है और प्रमाण-नयादि से समझकर या परोपदेशपूर्वक श्रद्धान करना अधिगम सम्यक्त्व है।

सम्यक्त्व मार्गणा के छह भेद हैं—क्षायिक, वेदक, उपशमसम्यक्त्व, सासादन, मिश्र और मिथ्यात्व।

क्षायिकसम्यक्त्व—अनन्तानुबन्धी कषाय चार और दर्शन मोहनीय की तीन, ऐसी सात प्रकृतियों के अत्यन्त क्षय से जो निर्मल श्रद्धान होता है उसे क्षायिक सम्यक्त्व कहते हैं। यह सम्यक्त्व नित्य है और असंख्यातगुणश्रेणीरूप से कर्मों के क्षय में कारण है। क्षायिक सम्यक्त्व होने पर यह जीव उसी भव से मुक्त जो जाता अथवा देवायु का बन्ध हो गया है तो तीसरे भव से मुक्त हो जाता है। यदि सम्यक्त्व से पहले मिथ्यात्व अवस्था में मनुष्य या तिर्यचायु का बन्ध कर लिया है तो उत्तम भोगभूमि में मनुष्य या तिर्यच स्वर्ग जाकर पुनः मनुष्य होकर मुक्त होता है अतः चौथे भव से नियम से सिद्ध हो जाता है, उसका उलंघन नहीं करता है। सम्यक्त्व से पहले कदाचित् नरकायु का बन्ध कर ले, तो भी श्रेणिक के समान तृतीय भव से ही मोक्ष जाएगा अतः यह सम्यक्त्व सादि अनन्त है। कर्मभूमि का मनुष्य केवली के पादमूल में ही दर्शन-मोहनीय का क्षय प्रारम्भ करता है अन्यत्र नहीं अतः आजकल वह सम्यक्त्व नहीं है।

वेदक सम्यक्त्व—सम्यक्त्व मोहनीय प्रकृति के उदय से पदार्थों का जो चल-मलिन-अगाढ़रूप श्रद्धान होता है, वह वेदक सम्यक्त्व है। यद्यपि सभी तीर्थंकर समान हैं, पार्श्वनाथ संकट हरने वाले हैं, ऐसा जो भाव है, वह चल दोष है। कदाचित् अतिचार के लग जाने से मलिन दोष आता है, अपने बनाए हुए मंदिर में “यह मंदिर मेरा है” इत्यादि भावों से अगाढ़ दोष होता है। सम्यक्त्व प्रकृति के निमित्त से दोष हो जाया करते हैं। इसकी जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट स्थिति छ्यासठ सागर प्रमाण है।

उपशमसम्यक्त्व—पाँच अथवा सात प्रकृतियों के उपशम से जो सम्यक्त्व होता है, वह उपशम सम्यक्त्व है। कीचड़ के नीचे बैठ जाने से निर्मल जल के सदृश यह सम्यक्त्व भी निर्मल होता है। इसकी जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्त है। यह सम्यक्त्व अनादि मिथ्यादृष्टि के पाँच प्रकृतियों के उपशम से और सादि मिथ्यादृष्टि के सात प्रकृतियों के उपशम से होता है।

सम्यक्त्व उत्पत्ति में सामग्री—कोई भी जीव चारों गति में से किसी एक गति में हो, भव्य, संज्ञी, पर्याप्त, मन्दकषाय से युक्त, जागृत, ज्ञानोपयोग युक्त, शुभ लेश्या का धारक होकर करणलब्धिरूप परिणाम को प्राप्त करता है, तब सम्यक्त्व को प्राप्त करता है अर्थात् सम्यक्त्व प्राप्ति के लिए पाँच लब्धि हैं। क्षायोपशमिक, विशुद्धि, देशना, प्रायोग्य और करण। इनमें पहले चार तो सामान्य हैं, भव्य-अभव्य दोनों के

इति षट्खंडागमप्रथमखंडे तृतीयग्रन्थे क्षेत्रानुगमनाम्नितृतीयप्रकरणे
गणिनीज्ञानमतीकृतसिद्धान्तचिन्तामणिटीकायां सम्यक्त्व-
मार्गणानाम द्वादशोऽधिकारः समाप्तः।

सम्भव है किन्तु करणलब्धि होने पर नियम से सम्यक्त्व प्रकट हो जाता है। सबसे प्रथम अनादि मिथ्यादृष्टि को उपशम सम्यक्त्व ही होता है। अनन्तर वेदक और क्षायिक होते हैं।

सम्यग्दृष्टि जीव की विशेषता— चारों गति सम्बन्धी आयु के बन्ध हो जाने पर भी सम्यक्त्व हो सकता है किन्तु देवायु को छोड़कर शेष आयु का बन्ध होने पर अणुव्रत और महाव्रत नहीं हो सकते हैं।

सासादन सम्यक्त्व— जो जीव सम्यक्त्व से च्युत हो गया है किन्तु मिथ्यात्व को प्राप्त नहीं हुआ है, वह सासादन गुणस्थान वाला है।

मिश्र— विरताविरत की तरह जिसके तत्त्वों का श्रद्धान और अश्रद्धान दोनों हैं, वह मिश्र गुणस्थान वाला है।

मिथ्यात्व— जो जिनेन्द्रकथित आप्तादि का श्रद्धान नहीं करता है और कुदेव, कुतत्त्व आदि का श्रद्धान करता है वह मिथ्यादृष्टि है।

पुण्य-पाप जीव— मिथ्यादृष्टि और सासादन गुणस्थान वाले जीव पाप जीव हैं। मिश्र गुणस्थान वाले पुण्य-पाप के मिश्ररूप हैं तथा चौथे गुणस्थान के असंत से लेकर सभी पुण्य जीव हैं।

एक बार जिस जीव को सम्यग्दर्शन हो जाता है वह जीव नियम से मोक्ष को प्राप्त करता है। कम से कम अन्तर्मुहूर्त में और अधिक से अधिक अर्धपुद्गल परिवर्तन काल तक वह संसार में रह सकता है इसलिए करोड़ों उपाय करके सम्यक्त्वरूपी रत्न को प्राप्त करने का प्रयत्न करना चाहिए।

इस प्रकार षट्खंडागम ग्रंथ के प्रथम खंड में तृतीय ग्रंथ में क्षेत्रानुगम नामक
तृतीय प्रकरण में गणिनी ज्ञानमती कृत सिद्धान्तचिन्तामणि टीका में
सम्यक्त्व मार्गणा नामक बारहवाँ अधिकार समाप्त हुआ।



अथ संज्ञिमार्गणाधिकारः

अथ द्वयेनस्थलेन द्वाभ्यां सूत्राभ्यां संज्ञिमार्गणानाम् त्रयोदशोऽधिकारः प्रारभ्यते। तत्र प्रथमस्थले संज्ञिजीवानां क्षेत्रनिरूपणत्वेन “सण्णिया” इत्यादिसूत्रमेकं। तदनु द्वितीयस्थले असंज्ञिजीवानां क्षेत्रकथनेन “असण्णी” इत्यादिसूत्रमेकं इति समुदायपातनिका।

अधुना संज्ञिजीवानां गुणस्थानापेक्षया क्षेत्रप्रतिपादनाय सूत्रमवतरति—

**सण्णियाणुवादेण सण्णीसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव खीणकसायवीद-
रागछदुमत्था केवडि खेत्ते? लोगस्स असंखेज्जदिभागे।।८६।।**

सूत्रं सुगमं। स्वस्थानस्वस्थान-विहारवत्स्वस्थान-वेदना-कषाय-वैक्रियिकसमुद्घातगताः संज्ञिमिथ्यादृष्टयः त्रिलोकानामसंख्यातभागे, तिर्यग्लोकस्य संख्यातभागे, सार्धद्वयद्वीपादसंख्यातगुणे क्षेत्रे च तिष्ठन्ति। एवं मारणान्तिक-उपपादपदयोः अपि वक्तव्यं। विशेषेण तु अनयोः तिर्यग्लोकादसंख्यातगुणे इति ज्ञातव्यं। शेषगुणस्थानानामोघभंगो। ततः विशेषाभावात्।

एवं प्रथमस्थले संज्ञिनां क्षेत्रप्ररूपितत्वेन सूत्रमेकं गतम्।

अथ संज्ञिमार्गणा अधिकार प्रारंभ

अब यहाँ दो स्थलों में दो सूत्रों के द्वारा संज्ञिमार्गणा नाम का तेरहवाँ अधिकार प्रारम्भ होता है। उनमें से प्रथम स्थल में संज्ञी जीवों का क्षेत्र निरूपण करने हेतु “सण्णिया” इत्यादि एक सूत्र है। उसके बाद द्वितीय स्थल में असंज्ञी जीवों का क्षेत्र कथन करने वाला “असण्णी” इत्यादि एक सूत्र है। यह समुदायपातनिका हुई।

अब संज्ञी जीवों के गुणस्थान की अपेक्षा से क्षेत्र का प्रतिपादन करने के लिए सूत्र का अवतार होता है—
सूत्रार्थ—

**संज्ञिमार्गणा के अनुवाद से संज्ञी जीवों में मिथ्यादृष्टि गुणस्थान से लेकर क्षीणकषाय
वीतरागछद्मस्थ गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती संज्ञी जीव कितने क्षेत्र में रहते हैं?
लोक के असंख्यातवें भाग में रहते हैं।।८६।।**

हिन्दी टीका—सूत्र का अर्थ सुगम है। स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात और वैक्रियिकसमुद्घात, इन पाँचों पदों को प्राप्त संज्ञी मिथ्यादृष्टि जीव सामान्यलोक आदि तीन लोकों के असंख्यातवें भाग में, तिर्यग्लोक के संख्यातवें भाग में और अर्द्धद्वीप से असंख्यातगुणे क्षेत्र में रहते हैं। इसी प्रकार मारणांतिकसमुद्घात और उपपाद इन दो पदों में वर्तमान संज्ञी मिथ्यादृष्टि जीवों का भी क्षेत्र कहना चाहिए। केवल इतनी बात विशेष कहनी चाहिए कि ये तिर्यग्लोक से असंख्यातगुणे क्षेत्र में रहते हैं। सासादनादि शेष गुणस्थानवर्ती जीवों का क्षेत्र ओघक्षेत्र के समान है, क्योंकि ओघ के क्षेत्र से सासादनादि गुणस्थानों के संज्ञी जीवों के क्षेत्र में कोई विशेषता नहीं है।

इस प्रकार प्रथमस्थल में संज्ञी जीवों का क्षेत्र प्ररूपित करने वाला एक सूत्र पूर्ण हुआ।

असंज्ञिनां क्षेत्रप्रतिपादनाय सूत्रमवतरति —

असण्णी केवडि खेत्ते? सव्वलोगे।।८७।।

सूत्रं सुगमं। असंज्ञिजीवाः मिथ्यादृष्टयः एव अतो सर्वलोके निवसन्ति एकेन्द्रियादारभ्य आ असंज्ञिपंचेन्द्रियाः इति।

अतः संज्ञित्वमवाप्य मनुष्यपर्याये भेदाभेदरत्नत्रयमाराध्य निजशुद्धसिद्धपरमात्मपदं प्राप्तव्यमिति। एवं द्वितीयस्थले असंज्ञिक्षेत्रनिरूपणत्वेन एकं सूत्रं गतम्।

अब असंज्ञी जीवों का क्षेत्र प्रतिपादित करने के लिए सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ —

असंज्ञी जीव कितने क्षेत्र में रहते हैं? सम्पूर्ण लोक में रहते हैं।।८७।।

हिन्दी टीका — सूत्र का अर्थ सुगम है। असंज्ञी जीव मिथ्यादृष्टि ही होते हैं इसलिए वे सर्वलोक में निवास करते हैं। एकेन्द्रिय से लेकर असंज्ञी पंचेन्द्रिय तक सभी जीव मिथ्यादृष्टि ही होते हैं, ऐसा जानना चाहिए।

अतः यहाँ तात्पर्य यह है कि संज्ञीपने को प्राप्त करके मनुष्यपर्याय में भेदाभेद रत्नत्रय की आराधना करते हुए अपने शुद्ध-सिद्ध परमात्मपद को प्राप्त करना चाहिए।

इस प्रकार द्वितीय स्थल में असंज्ञी जीवों का क्षेत्र निरूपण करने वाला एक सूत्र पूर्ण हुआ।

विशेषार्थ — गोम्मटसार जीवकांड में संज्ञीमार्गणा का स्वरूप कहा है —

गोइंदिय आवरण खओवसमं तज्जबोहणं सण्णा।

सा जस्स सो दु सण्णी, इदरो सेसिंदिअवबोहो।।

अर्थात् नोइन्द्रियावरण कर्म के क्षयोपशम को या तज्जन्य ज्ञान को संज्ञा कहते हैं। यह संज्ञा जिसके हो, उसको संज्ञी कहते हैं और जिनके यह संज्ञा न हो किन्तु केवल यथासम्भव इन्द्रियजन्य ज्ञान हो उनको असंज्ञी कहते हैं।

जीव दो प्रकार के होते हैं — एक संज्ञी, दूसरे असंज्ञी। संज्ञी शब्द से मुख्यतया तीन अर्थ लिए जाते हैं — १. नाम निक्षेप, जो कि व्यवहार के लिए किसी का रख दिया जाता है। जैसे ऋषभ, भरत, बाहुबली, अर्ककीर्ति, महावीर आदि २. आहार, भय, मैथुन और परिग्रह की इच्छा। ३. धारणात्मक या ऊहापोहरूप विचारात्मक ज्ञानविशेष। प्रकृत में यह अन्तिम अर्थ ही विवक्षित है। यह दो प्रकार का हुआ करता है — लब्धिरूप और उपयोगरूप। प्रतिपक्षी नोइन्द्रियावरण कर्म के क्षयोपशम से प्राप्त विशुद्धि को लब्धि और अपने विषय में प्रवृत्ति को उपयोग कहते हैं। जिनके यह लब्धि या उपयोगरूप मन-ज्ञानविशेष पाया जाए उनको संज्ञी कहते हैं और जिनके यह मन न हो, उनको असंज्ञी कहते हैं। इन असंज्ञी जीवों के मानस ज्ञान नहीं होता, यथासम्भव इन्द्रियजन्य ज्ञान ही होता है।।

सिक्खाकिरियुवदेसा-लावग्गाही मणोवलंबेण।

जो जीवो सो सण्णी, तव्विवरीओ असण्णी दु।।

अर्थात् हित का ग्रहण और अहित का त्याग जिसके द्वारा किया जा सके, उसको शिक्षा कहते हैं। इच्छापूर्वक हाथ-पैर के चलाने को क्रिया कहते हैं। वचन अथवा चाबुक आदि के द्वारा बताए हुए कर्तव्य को उपदेश कहते हैं और श्लोक आदि के पाठ को आलाप कहते हैं।

इति षट्खंडागमप्रथमखंडे तृतीयग्रन्थे क्षेत्रानुगमनाम्नितृतीय-
प्रकरणे गणिनीज्ञानमतीकृतसिद्धान्तचिन्तामणिटीकायां
संज्ञिमार्गणानाम त्रयोदशोऽधिकारः समाप्तः।

जो जीव इन शिक्षादिक को मन के अवलम्बन से ग्रहण — धारण करता है, उसको संज्ञी कहते हैं और जिन जीवों में यह लक्षण घटित न हो, उनको असंज्ञी समझना चाहिए।

मीमंसदि जो पुव्वं, कज्जमकज्जं च तच्चमिदरं च।

सिक्खदि णामेणेदि य, समणो अमणो य विवरीदो।।

अर्थात् जो जीव प्रवृत्ति करने के पहले अपने कर्तव्य और अकर्तव्य का विचार करे तथा तत्त्व और अतत्त्व का स्वरूप समझ सके और उसका जो नाम रखा गया हो, उस नाम के द्वारा बुलाने पर आ सके, उन्मुख हो अथवा उत्तर दे सके, उसको समनस्क या संज्ञी जीव कहते हैं और इससे जो विपरीत हो, उसको अमनस्क या असंज्ञी कहते हैं।

सम्पूर्ण देव, नारकी, मनुष्य और मन सहित पंचेन्द्रिय तिर्यच संज्ञी हैं। शेष एकेन्द्रिय से लेकर असंज्ञी पंचेन्द्रिय तक सभी जीव असंज्ञी हैं। ये अनंत संसारी जीव असंज्ञी हैं।

तेरहवें, चौदहवें गुणस्थानवर्ती जीव और सिद्ध जीव संज्ञी, असंज्ञी अवस्था से रहित आत्मज्ञान से परिपूर्ण केवलज्ञानी हैं।

इस प्रकार षट्खंडागम ग्रंथ के प्रथम खंड में तृतीय ग्रंथ में क्षेत्रानुगम नामक
तृतीय प्रकरण में गणिनी ज्ञानमती कृत सिद्धान्तचिन्तामणि टीका में
संज्ञिमार्गणा नामक तेरहवाँ अधिकार समाप्त हुआ।



अथ आहारमार्गणाधिकारः

अथ स्थलद्वयेन पंचभिः सूत्रैः आहारमार्गणानाम् चतुर्दशोऽधिकारः प्रारभ्यते। तत्र प्रथमस्थले आहारकजीवानां क्षेत्रनिरूपणत्वेन “आहार” इत्यादिसूत्रद्वयं। तदनु द्वितीयस्थले अनाहारकजीवानां क्षेत्रनिरूपणत्वेन “अणाहार” इत्यादिसूत्रत्रयं इति समुदायपातनिका।

अधुना आहारमार्गणायां मिथ्यादृष्टिक्षेत्रप्रतिपादनाय सूत्रमवतरति—

आहाराणुवादेण आहारएसु मिच्छादिट्ठी ओघं।।८८।।

सूत्रस्यार्थः सुगमः।

संप्रति सासादनादिगुणस्थानवर्तिनां क्षेत्रप्ररूपणाय सूत्रमवतरति—

सासणसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव सजोगिकेवली केवडि खेत्ते? लोगस्स असंखेज्जदिभागे।।८९।।

सूत्रस्यार्थः सुगमः।

एतस्य सूत्रस्य पर्यायार्थिकनयप्ररूपणा ओघप्ररूपण्या तुल्या। विशेषेण तु उपपादः शरीरग्रहणप्रथमसमये वक्तव्यः। सयोगिकेवलिनोऽपि प्रतरलोकपूरणसमुद्घातौ न स्तः, तत्र आहारित्वाभावात्।

अथ आहारमार्गणा अधिकार प्रारंभ

अब दो स्थलों में पाँच सूत्रों के द्वारा आहारमार्गणा नाम का चौदहवाँ अधिकार प्रारम्भ होता है। उनमें से प्रथम स्थल में आहारक जीवों का क्षेत्र निरूपण करने हेतु “आहारा” इत्यादि दो सूत्र कहेंगे। उसके बाद द्वितीय स्थल में अनाहारक जीवों का क्षेत्र निरूपण करने हेतु “अणाहार” इत्यादि तीन सूत्र हैं। इस प्रकार यह सूत्रों की समुदायपातनिका हुई।

अब आहारमार्गणा में मिथ्यादृष्टि जीवों का क्षेत्र बतलाने हेतु सूत्र का अवतार होता है—

सूत्रार्थ—

आहारकमार्गणा के अनुवाद से आहारकजीवों में मिथ्यादृष्टियों का क्षेत्र ओघ के समान सर्वलोक है।।८८।।

सूत्र का अर्थ सुगम है।

अब सासादन आदि गुणस्थानवर्ती जीवों का क्षेत्र प्ररूपण करने के लिए सूत्र का अवतार होता है—

सूत्रार्थ—

सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थान से लेकर सयोगिकेवली गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती संज्ञी जीव कितने क्षेत्र में रहते हैं? लोक के असंख्यातवें भाग में रहते हैं।।८९।।

हिन्दी टीका—इस सूत्र की पर्यायार्थिकनयसम्बन्धी क्षेत्रप्ररूपणा ओघक्षेत्रप्ररूपणा के समान है। विशेष बात यह है कि आहारक जीवों के उपपादपद शरीर ग्रहण करने के प्रथम समय में कहना चाहिए, क्योंकि, तभी जीव आहारक होता है आहारक सयोगिकेवली के भी प्रतर और लोकपूरण समुद्घात नहीं होते

एवं प्रथमस्थले आहारजीवकथनत्वेन सूत्रद्वयं गतम्।

संप्रति अनाहारजीवेषु मिथ्यादृष्टिक्षेत्रप्रतिपादनाय सूत्रावतारो भवति—

अणाहारएसु मिच्छादिद्वी ओघं॥९०॥

सूत्रं सुगमं। द्रव्यार्थिकनयेन ओघवद् ज्ञातव्यं। पर्यायार्थिकनयेन पुनः उपपादपदमेकं चैवास्ति। शेषपदानि न सन्ति।

सासादनादिगुणस्थानवर्ति-अनाहारकजीवक्षेत्रनिरूपणाय सूत्रमवतरति—

सासणसम्मादिद्वी असंजदसम्मादिद्वी अजोगिकेवली केवडि खेत्ते?
लोगस्स असंखेज्जदिभागे॥९१॥

सूत्रस्यार्थः सुगमः।

पर्यायार्थिकनयेन उपपादगताः सासादनसम्यग्दृष्टयः चतुर्लोकानामसंख्यातभागे, सार्धद्वयद्वीपाद-संख्यातगुणे क्षेत्रे च तिष्ठन्ति। असंयतसम्यग्दृष्टीनां प्ररूपणा एवं चैव। अयोगिकेवलिनः चतुर्लोकानाम-संख्यातभागे, मानुषक्षेत्रस्य संख्यातभागे च निवसन्ति।

हैं, क्योंकि इन दोनों अवस्थाओं में केवली के आहारकने का अभाव है अर्थात् प्रतर और लोकपूरण समुद्घात की अवस्था में संयोगिकेवली भगवान अनाहारक रहते हैं।

इस प्रकार प्रथम स्थल में आहारक जीवों का क्षेत्र कथन करने वाले दो सूत्र पूर्ण हुए।

अब आहारमार्गणा में मिथ्यादृष्टि अनाहारक जीवों की क्षेत्रप्ररूपणा करने हेतु सूत्र का अवतार हो रहा है—

सूत्रार्थ—

अनाहारकों में मिथ्यादृष्टि जीवों का क्षेत्र ओघ के समान सर्वलोक है॥९०॥

हिन्दी टीका—सूत्र का अर्थ सुगम है। द्रव्यार्थिक नय से इनकी क्षेत्रप्ररूपणा ओघ के समान जानना चाहिए। पर्यायार्थिक नय से इनके एक उपपाद पद ही होता है। शेष पद नहीं होते हैं।

अब सासादन आदि गुणस्थानवर्ती अनाहारक जीवों का क्षेत्र निरूपण करने के लिए सूत्र का अवतार होता है—

सूत्रार्थ—

अनाहारक सासादनसम्यग्दृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि और अयोगिकेवली कितने क्षेत्र में रहते हैं? लोक के असंख्यातवें भाग में रहते हैं॥९१॥

हिन्दी टीका—सूत्र का अर्थ सरल है। पर्यायार्थिकनयसम्बन्धी क्षेत्रप्ररूपणा की अपेक्षा उपपाद को प्राप्त अनाहारक सासादनसम्यग्दृष्टि जीव सामान्यलोक आदि चार लोकों के असंख्यातवें भाग में और अढ़ाईद्वीप से असंख्यातगुणे क्षेत्र में रहते हैं। अनाहारक असंयतसम्यग्दृष्टि जीवों की क्षेत्रप्ररूपणा भी इसी प्रकार जाननी चाहिए। अनाहारक अयोगिकेवली भगवान सामान्यलोक आदि चार लोकों के असंख्यातवें भाग में और मनुष्य क्षेत्र के संख्यातवें भाग में रहते हैं।

संप्रति सयोगिविनेवलिनां अनाहारावस्थायां क्षेत्रप्रतिपादनाय सूत्रावतारः क्रियते श्रीभूतबलिभट्टारकेन —

सयोगिकेवली केवडि खेत्ते? लोगस्स असंखेज्जेसु वा भागेसु, सव्वलोगे वा।।९२।।

सयोगिकेवलिनः कियत् क्षेत्रे निवसन्ति? इति प्रश्ने सति उच्यते — लोकस्य असंख्यातेषु भागेषु वा सर्वलोके वा तिष्ठन्ति।

अस्यैव विस्तरः — प्रतरगतः सयोगिकेवली भगवान् लोकस्य असंख्यातभागेषु भागेषु भवति, लोकस्य समंतात् स्थितवातवलयव्यतिरिक्त सकललोकक्षेत्रं समापूर्य स्थितत्वात्। लोकपूरणसमुद्घाते पुनः सर्वलोके भवति, सर्वलोकमापूर्य स्थितत्वात्।

तात्पर्यमेतत् — अनाहारावस्थायां मिथ्यादृष्टि-सासादनसम्यग्दृष्टि-असंयतसम्यग्दृष्टयः सन्ति, प्रतरलोक-पूरणसमुद्घातगतसयोगिकेवलिनः अयोगिकेवलिनश्च सन्ति। षड्विधाहारभेदास्तु प्रागेव व्याख्याताः, एषु मिथ्यादृष्ट्यादिषु अनाहारेषु कर्माहारो विद्यते। विग्रहगतौ अपि अनाहारकाः। अत्र त्रिगुणस्थानानि।

उक्तं च — एकं द्वौ त्रीन्वानाहारकः।।३०।। इति सूत्रेण।

अब सयोगिकेवली भगवन्तों का अनाहारक अवस्था में क्षेत्र प्रतिपादन करने के लिए श्रीभूतबली आचार्य सूत्र का अवतार करते हैं —

सूत्रार्थ —

अनाहारक सयोगिकेवली भगवान् कितने क्षेत्र में रहते हैं? लोक के असंख्यात बहुभागों में और सम्पूर्ण लोक में रहते हैं।।९२।।

हिन्दी टीका — सयोगिकेवली भगवान् कितने क्षेत्र में रहते हैं? ऐसा प्रश्न होने पर कहते हैं — लोक के असंख्यात बहुभागों में अथवा सम्पूर्ण लोक में रहते हैं।

इसी का विस्तार किया जाता है —

प्रतरसमुद्घात सयोगिकेवलीजिन लोक के असंख्यात बहुभागों में रहते हैं, क्योंकि वे लोक के चारों ओर स्थित वातवलय के क्षेत्र को छोड़कर शेष समान लोक के क्षेत्र को समापूरित करके स्थित होते हैं पुनः लोकपूरणसमुद्घात में वे ही सयोगिकेवलीजिन सर्वलोक में रहते हैं क्योंकि उस समय वे सर्वलोक को आपूर्ण करके स्थित होते हैं।

तात्पर्य यह है कि अनाहारक अवस्था में मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि जीव होते हैं। प्रतर और लोकपूरण समुद्घात को प्राप्त सयोगिकेवली और अयोगिकेवली भगवान् अनाहारक होते हैं। आहार के छह भेद पूर्व में ही कहे जा चुके हैं।

मिथ्यादृष्टि अनाहारक जीवों में कर्माहार विद्यमान रहता है। विग्रहगति में भी जीव अनाहारक रहते हैं, यहाँ उनके तीन गुणस्थान होते हैं। कहा भी है —

“विग्रहगति में जीव एक, दो अथवा तीन समय तक अनाहारक रहता है” इस सूत्र के द्वारा जीव की अनाहारक अवस्था बताई गई है।

गाथायामपि — विग्रहगङ्गा-मावण्णा, केवलिणो समुहदा अजोगी य।

सिद्धा य अणाहारा, सेसा आहारया जीवा।।

तात्पर्यमेतत् — आहारावस्थाव्यतिरिक्तसिद्धपदप्राप्तानाहारावस्थाया उपलब्धये निजशुद्धपरमात्मानं ध्यात्वा कर्मभ्यः पृथक् शुद्धबुद्धिसिद्धपरमात्मा प्रकटीकर्तव्यः।

एवं द्वितीयस्थले अनाहाराणां क्षेत्रप्ररूपणत्वेन त्रीणि सूत्राणि गतानि।

इत्थं क्षेत्रानुगमे तृतीयप्रकरणे ओघेषु चत्वारि सूत्राणि। आदेशेषु चतुर्दशाधिकारैः अष्टाशीतिसूत्राणि गतानि। एवं समुदायेन द्विनवतिसूत्राणि गतानि।

गाथा में भी कहा है —

गाथार्थ — विग्रहगति को प्राप्त होने वाले चारों गतिसम्बन्धी जीव प्रतर और लोकपूरण समुद्घात करने वाले सयोगकेवली, अयोगकेवली एवं समस्त सिद्ध जीव तो अनाहारक होते हैं। इनको छोड़कर शेष जीव आहारक ही होते हैं।

तात्पर्य यह है कि आहारक अवस्था से अतिरिक्त सिद्धपद को प्राप्त अनाहारक अवस्था की उपलब्धि हेतु निज शुद्ध परमात्मा का ध्यान करके कर्मों से पृथक् शुद्ध-बुद्ध सिद्ध परमात्मा को प्रकट करना चाहिए।

इस प्रकार द्वितीय स्थल में अनाहारक जीवों का क्षेत्र प्रतिपादन करने वाले तीन सूत्र पूर्ण हुए।

इस प्रकार क्षेत्रानुगम नामक तृतीय प्रकरण में गुणस्थानों में क्षेत्र का कथन करने वाले चार सूत्र हैं। मार्गणाओं में चौदह अधिकारों के द्वारा अट्ठासी सूत्र कहे गये हैं। ऐसे कुल बानवे (९२) सूत्र हैं।

विशेषार्थ — चौदह मार्गणाओं में से अन्तिम मार्गणा है आहारमार्गणा। उसका वर्णन करते हुए क्षेत्रानुगम प्रकरण को समाप्त किया जा रहा है। सैद्धांतिकदृष्टि से यहाँ आहार का अर्थ समझना चाहिए कि जीव के दो भेद हैं — आहारक और अनाहारक। अथवा इसे इस प्रकार भी कहा जा सकता है कि संसारी जीवों की दो अवस्थाएँ होती हैं — आहारक और अनाहारक।

गोम्मतसार जीवकाण्ड में आचार्य श्रीनेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती ने कहा है —

उदयावण्णसरीरोदयेण, तद्देहवयणचित्ताणं।

णोकम्मवग्गणाणं, गहणं आहारयं णाम।।

अर्थात् शरीर नामकर्म के उदय से औदारिक आदि किसी शरीर के योग्य तथा वचन, मन के योग्य वर्गणाओं का यथासंभव ग्रहण होना आहार है, उसको ग्रहण करने वाला जीव आहारक है। इसके विपरीत अर्थात् नोकर्म वर्गणाओं को ग्रहण न करने वाले जीव अनाहारक हैं। **अनाहारक जीव** — विग्रहगति वाले जीव, केवली समुद्घात में प्रतर और लोकपूरण समुद्घात वाले सयोगकेवली जीव तथा अयोगकेवली और सभी सिद्ध अनाहारक होते हैं। **आहारक जीव** — उपर्युक्त अनाहारक से अतिरिक्त शेष सभी जीव आहारक होते हैं। आहार के छह भेद हैं — कवलाहार, कर्माहार, नोकर्माहार, लेपाहार, ओजआहार और मानसिक आहार।

ग्रास उठाकर खाना कवलाहार है। यह सभी मनुष्य और तिर्यच आदि में होता है। आठ कर्मयोग्य वर्गणाओं को ग्रहण करना कर्माहार है, यह विग्रहगति में भी होता है। शरीर और पर्याप्ति के योग्य नोकर्म वर्गणाओं का ग्रहण करना नोकर्माहार है, यह केवली भगवान के भी होता है, उनके भी शरीर के योग्य

जंबूद्वीपेऽत्र यावन्तोऽर्हद्गणभृद्-यतीश्वराः।

सिद्धाः सिद्ध्यन्ति सेत्स्यन्ति, तान् तत्क्षेत्राणि च स्तुवे॥

अस्मिन् मांगीतुंगीसिद्धक्षेत्रे पर्वतस्योपरि विराजमानं महाआर्यिकासतीसीतायाः चरणयुगलं सदाकालं जयतुतरां। या महासंयतिका रत्नत्रयबलेन घोरतपश्चरणेन च स्त्रीलिंगं छित्वा अच्युतस्वर्गे प्रतीन्द्रो बभूव। पुनश्चाग्रे दशमुखचरजीवो यदा तीर्थकरो भविष्यति, तस्य समवसरणे गणधरो भूत्वा मोक्षं गमिष्यति,

वर्गणायें आ रही हैं, वे आहारक हैं। फिर भी वे कवलाहार नहीं करते हैं। जो लेप से पोषण होता है वह लेपाहार है, यह वृक्षों में पाया जाता है। जो शरीर की गर्मी से पोषण करता है, वह ओजाहार है। जैसे मुर्गी अण्डे को सेकर गर्मी देती है। देवों के मन में इच्छा होते ही कंठ से अमृत झर कर तृप्ति हो जाती है, यह मानसिक आहार है। देव लोग बलि या मांस भक्षण अथवा सुरापान आदि नहीं करते हैं।

अनाहारक का उत्कृष्ट काल तीन समय और जघन्यकाल एक समय है। आहारक का जघन्यकाल तीन समय कम श्वास के अठारवें भागप्रमाण है और उत्कृष्ट काल सूच्यंगुल के असंख्यातवें भागप्रमाण है।

आहारक मार्गणा को समझकर कवलाहार के त्यागपूर्वक उपवास तपश्चरण करते हुए कर्म-नोकर्माहार से रहित अनाहारक सिद्ध पद प्राप्त करना चाहिए।

श्लोकार्थ — इस जम्बूद्वीप में जितने भी अर्हन्त भगवान, गणधर, एवं मुनिराज जहाँ-जहाँ से सिद्ध हुए हैं, हो रहे हैं और होंगे, उन सभी को एवं उनके मोक्ष से पवित्र सिद्धक्षेत्रों की मैं स्तुति करता हूँ।

इस मांगीतुंगी सिद्धक्षेत्र में पर्वत के ऊपर विराजमान महासती आर्यिका सीताजी के चरणयुगल सदाकाल जयशील हों, जिन्होंने महासंयतिका के रूप में रत्नत्रय के बल से घोर तपश्चरण के द्वारा स्त्रीलिंग को छेदकर अच्युत स्वर्ग में प्रतीन्द्र का पद प्राप्त किया है पुनः उस प्रतीन्द्र का जीव आगे दशानन — रावण जब तीर्थकर होगा, तब उनके समवसरण में गणधर होकर मोक्षधाम को प्राप्त करेगा। उन भावी तीर्थकर और भावी गणधर देव को मेरा नमस्कार होवे।

भावार्थ — षट्खण्डागम ग्रंथ की इस सिद्धान्तचिन्तामणि संस्कृत टीका की लेखिका पूज्य गणिनी प्रमुख आर्यिका शिरोमणि श्री ज्ञानमती माताजी ने प्रस्तुत ग्रंथ की टीका चूँकि सन् १९९६ में मांगीतुंगी सिद्धक्षेत्र पर चातुर्मास के मध्य लिखी है, इसलिए प्रसंगोपात् यहाँ इस क्षेत्रानुगम प्रकरण के समापन में उस पर्वत पर विराजमान महाआर्यिका सती सीता माता के चरणयुगल का स्मरण किया है। वह वीर निर्वाण संवत् २५२२ के संवत्सर में श्रावण कृष्ण दशमी-गुरुवार के दिन (८ अगस्त १९९६) उन्होंने इस महाधिकार को लिखकर पूर्ण किया, यह उनकी हस्तलिखित प्रति से ज्ञात होता है।

टीकाकर्त्री ने भगवान रामचंद्र आदि ९९ करोड़ मुनियों की उस निर्वाणभूमि के साथ सीताजी का स्मरण करते हुए उनके भविष्य को भी बताया है कि वे स्वर्ग से मध्यलोक में आकर भावी तीर्थकर रावण के समवसरण में गणधर का पद प्राप्त करके मोक्षधाम को प्राप्त करेंगी। अर्थात् भव्यात्माओं देखो! जैनधर्म के सर्वोदय शासन की उदारता और महानता! कि यहाँ वैर, प्रतिशोध, कषाय को महत्त्व न देकर सभी को अपने शुभाशुभ कर्मों का चिन्तन करके शुभ कर्म करने की ही प्रेरणा आचार्यों ने प्रदान की है। यही उदाहरण सती सीता के कथानक में देखने को मिलता है कि अपने विरोधी रावण के प्रति भी उन्होंने प्रतिशोध की भावना नहीं रखी, प्रत्युत उसके इस उपकार का स्मरण किया कि रावण ने मेरा

तस्मै भावितीर्थकराय गणधरदेवाय च नमो नमः।

एवं आहारमार्गणा समाप्ता।

इति श्रीमद्भगवत्पुष्पदन्त भूतबलिप्रणीत षट्खण्डागमग्रन्थस्य प्रथमखण्डे तृतीयग्रन्थे
श्रीभूतबलिसूरिकृतक्षेत्रानुगमनाम्नि तृतीयप्रकरणे धवलाटीकाप्रमुखानेकग्रन्थाधारेण
विंशतितमे शताब्दे प्रथमाचार्यचारित्रचक्रवर्तिश्रीशांतिसागरस्य प्रथमपट्टाधीशः
श्रीवीरसागराचार्यस्तस्य शिष्या-जंबूद्वीपरचनाप्रेरिकागणिनीज्ञानमती-
कृतसिद्धान्तचिन्तामणिटीकायां मार्गणासु क्षेत्रप्ररूपकः

चतुर्थो महाधिकारः समाप्तः।

समाप्तोऽयं क्षेत्रानुगमो ग्रन्थः।

शीलभंग नहीं किया और इसी उपकार के प्रतिफल में वे प्रतीन्द्र के पद में नरक में स्थित रावण को सम्बोधित करने गई, वहाँ उसे सम्यक्त्व ग्रहण कराया पुनः आगे वे दोनों ही तीर्थकर और गणधर बनकर मोक्ष जाएँगे। इसलिए उनकी भावी सिद्धपर्याय को मन-वचन-कायपूर्वक नमस्कार करके हमें भी किसी के प्रति शत्रुता की भावना न रखते हुए अपने सम्यग्दर्शन को दृढ़ करना चाहिए ताकि शीघ्र कर्मों का नाश हो और अविनश्वर मोक्षपद की प्राप्ति होवे।

॥ इस प्रकार आहारमार्गणा समाप्त हुई ॥

इस प्रकार श्रीमान् भगवत्पुष्पदन्त-भूतबली आचार्य प्रणीत षट्खण्डागम ग्रन्थ के प्रथमखंड में तृतीय ग्रंथ में श्री भूतबली आचार्य द्वारा रचित क्षेत्रानुगम नाम के तृतीय प्रकरण में धवला टीका को प्रमुख करके तथा अन्य अनेक ग्रंथों के आधार से बीसवीं सदी के प्रथमाचार्य चारित्रचक्रवर्ती श्रीशांतिसागर महाराज के प्रथम पट्टाधीश आचार्य श्री वीरसागर महाराज की शिष्या हस्तिनापुर में निर्मित जम्बूद्वीप रचना की प्रेरिका गणिनी ज्ञानमती कृत सिद्धान्तचिन्तामणि टीका में मार्गणाओं के अन्दर क्षेत्र की प्ररूपणा करने वाला चतुर्थ महाधिकार समाप्त हुआ।

॥ इति क्षेत्रानुगम समाप्त ॥



षट्खण्डागमतृतीयग्रंथस्य प्रशस्तिः

महाव्रतं मुक्तिपथं दधानः, प्राप्तः प्रमुक्तिं मुनिसुव्रतस्त्वम्।

बोधिः समाधिः परिणामशुद्धिः, भूयात् सदा मे हि नमोऽस्तु तुभ्यम्॥

अस्मिन् मध्यलोके असंख्यातद्वीपसमुद्राणां मध्ये प्रथमो द्वीपो जंबूद्वीपोऽस्ति। अस्य द्वीपस्य मध्ये सुदर्शनमेरुः वर्तते। तस्य मेरोर्दक्षिणभागे भरतक्षेत्रं। अस्मिन् भरतक्षेत्रे षट्खण्डाः सन्ति। तेषु दक्षिणभागस्य मध्यवर्ति-आर्यखण्डोऽस्ति।

अस्मिन् आर्यखण्डे दक्षिणभागे महाराष्ट्रप्रदेशे श्रीरामचन्द्रादिनवनवतिकोटिमुनीश्वराणां निर्वाणक्षेत्रं मांगीतुंगीनामपर्वतमस्ति। अत्र तीर्थक्षेत्रे श्रीमुनिसुव्रतनाथजिनेन्द्रादिजिनप्रतिमानां पंचकल्याणकप्रतिष्ठानन्तरं अस्माकं वर्षायोगो भवन्नास्ते।

वैशाख शुक्लाद्वादश्यां वीरनिर्वाणसंवत् द्वाविंशत्यधिकपंचविंशतिशततमे मया तृतीयग्रन्थस्य द्रव्यप्रमाणानुगम-क्षेत्रानुगमसमन्वितस्य सिद्धान्तचिन्तामणिटीकां लिखितुं प्रारब्धा। अज्ञानवरतं निराबाधं मम लेखनकार्यमभवत्।

अन्तिमतीर्थकरभगवत्सर्वज्ञश्रीमहावीरस्वामिनां शासने श्रीगौतमस्वामिप्रभृतिमहाचार्याणां परंपरायां श्रीकुन्दकुन्दाम्नाये मूलसंघे सरस्वतीगच्छे बलात्कारगणे बहवः आचार्याः संजाताः। अस्मिन् विंशतिशताब्दौ मुनिपरंपरायाः पुनरुद्धारकचारित्रचक्रवर्ती श्रीशांतिसागराचार्यो बभूव। तस्य प्रथमशिष्यः प्रथमपट्टाधीशः श्रीवीरसागराचार्यः चतुर्विधसंघनायकः आसीत्। तस्यैव गुरुदेवस्य करकमलाभ्यां ममार्यिका दीक्षाभवत्।

षट्खण्डागम तृतीय ग्रंथ की प्रशस्ति

श्लोकार्थ—हे मुनिसुव्रत भगवान ! आपने मुक्तिपथरूप महाव्रत को धारण करके परमनिर्वाणधाम को प्राप्त कर लिया है, इसलिए अपने बोधि और समाधि को सिद्धि के लिए तथा परिणामों की विशुद्धि के लिए सदा आपको मेरा नमस्कार है॥

इस मध्यलोक में असंख्यात द्वीप-समुद्रों के मध्य प्रथम द्वीप जम्बूद्वीप है। इस द्वीप के मध्य में सुदर्शनमेरु पर्वत है। उस मेरुपर्वत के दक्षिणभाग में भरतक्षेत्र है। भरतक्षेत्र में छहखंड हैं, छहों खंडों में दक्षिण भाग का मध्यवर्ती क्षेत्र आर्यखण्ड कहलाता है।

उस आर्यखंड के दक्षिणभाग में महाराष्ट्र प्रदेश है, जहाँ श्री रामचंद्र आदि निन्यानवे करोड़ मुनीश्वरों का निर्वाण क्षेत्र मांगीतुंगी नाम का पर्वत है। इस तीर्थक्षेत्र पर श्री मुनिसुव्रतनाथ जिनेन्द्र भगवान आदि अनेक जिनप्रतिमाओं की पंचकल्याणक प्रतिष्ठा के अनन्तर हमारा वर्षायोग हुआ था।

वीरनिर्वाण संवत् २५२२ (ईसवी सन् १९९६) में वैशाख शुक्ला द्वादशी तिथि को मैंने षट्खण्डागम द्रव्यप्रमाणानुगम और क्षेत्रानुगम से समन्वित इस तृतीय ग्रंथ की सिद्धान्तचिन्तामणि टीका लिखना प्रारंभ किया। वहाँ मेरा लेखनकार्य निराबाध निरन्तर चला।

अंतिम तीर्थकर सर्वज्ञ भगवान श्री महावीर स्वामी के शासन में श्री गौतमगणधर स्वामी आदि की महान आचार्य परम्परा में श्रीकुन्दकुन्द आम्नाय के मूलसंघ, सरस्वतीगच्छ, बलात्कारगण में बहुत से आचार्य हुए हैं। उनमें से इस युग की बीसवीं सदी में मुनिपरम्परा के पुनरुद्धारक चारित्रचक्रवर्ती आचार्य

वैशाखकृष्णा द्वितीयां वीरनिर्वाणसंवत्सरेद्वयशीत्यधिकचतुर्विंशतिशततमेमहामष्टाविंशतिमूलगुणान् प्रदाय 'ज्ञानमती' नाम्नालंकृत्य यथानाम तथागुणा भूयादिति आशीर्वादं दत्त्वा प्रेरणा च प्रदत्ता गुरुवर्येण।

अस्यामेवाचार्यापरंपरायां द्वितीयपट्टाधीशः श्रीशिवसागराचार्योऽभवत्। तस्य पट्टं श्री धर्मसागराचार्यो विभूषयामास। तस्य पट्टाधीशः श्रीअजितसागराचार्योऽभवत्। तस्य पट्टं श्री श्रेयांससागराचार्योऽलंकृतः। अस्य पट्टाचार्यो वर्तमानकाले श्रीअभिनंदनसागरोऽस्ति। इयमाचार्यपरंपरा सदाकालं अविच्छिन्न श्रीवीरांगजनामान्ति-महामुनिपर्यंतं भूयादिति भावयामहे।

संप्रति द्वाविंशत्यधिकपंचविंशतिशततमे वीराब्दे श्रावणकृष्णादशम्यां मयायं तृतीयो ग्रन्थः पूर्यते। इयं सिद्धान्तचिन्तामणिः टीका मम चिन्तितफलदाने सफला भविष्यतीति आशां करोम्यहं। ममचतुर्विधसंघस्य च श्रुतज्ञानवर्द्धिं दद्यात्।

यावच्छ्रीरामचन्द्रस्य, कीर्तिर्जगति वत्स्यते।

ज्ञानमत्याः कृतिश्चैषा, तावज्जगति नंद्यताम्॥१॥

॥ इति भद्रं भूयात् ॥

श्री शांतिसागर महाराज हुए। उनके प्रथमशिष्य एवं प्रथम पट्टाधीश आचार्य श्री वीरसागर महाराज चतुर्विधसंघ के नायक थे। उन्हीं गुरुदेव के करकमलों से मेरी आर्यिका दीक्षा हुई। वीर निर्वाण संवत् चौबिस सौ ब्यासी (२४८२), ईसवी सन् १९५६ में वैशाख कृष्णा द्वितीय के दिन गुरुवर्य ने मुझे अट्ठाईस मूलगुणों को प्रदान कर "ज्ञानमति" नाम से अलंकृत करके "नाम के अनुसार गुण प्रगट होवें" ऐसा आशीर्वाद देकर प्रेरणा प्रदान की।

इसी आचार्य परम्परा में द्वितीय पट्टाधीश आचार्य श्री शिवसागर जी महाराज हुए। उनके पट्ट को श्री धर्मसागर आचार्य ने विभूषित किया। उनके पट्टाधीश श्री अजितसागर आचार्य हुए। उनके पट्ट को श्रीश्रेयांससागर महाराज ने अलंकृत किया। उनके वर्तमान पट्टाचार्य श्री अभिनंदनसागर महाराज हैं। यह आचार्य परंपरा हमेशा अविच्छिन्न रूप से श्रीवीरांगज नामक अंतिम महामुनि तक चलती रहे, यही भावना है।

इस समय वीर निर्वाण संवत् पच्चीस सौ बाईस (२५२२) चल रहा है उस संवत्सर में श्रावण कृष्णा दशमी के दिन मैंने इस तृतीय ग्रंथ को लिखकर परिपूर्ण किया है इसकी यह सिद्धान्तचिन्तामणि टीका मुझे चिन्तित फल की प्राप्ति कराने में सफल होगी, ऐसी मैं आशा करती हूँ तथा मेरे चतुर्विध संघ को श्रुतज्ञान की ऋद्धि-लक्ष्मी प्रदान करे, यही भावना है।

श्लोकार्थ — जब तक इस धरातल पर भगवान श्रीरामचन्द्र की कीर्ति रहेगी, तब तक ज्ञानमती की यह कृति भी संसार में सबको ज्ञान का आनन्द प्रदान करे।

इति भद्रं भूयात्

“सबका कल्याण होवे”



हिन्दी टीकाकर्त्री की प्रशस्ति

(दोहा)

हस्तिनापुर शुभ तीर्थ को, नमन करूँ शत बार।

शांति-कुंथु-अरनाथ ने, लिया जहाँ अवतार॥१॥

इन तीनों जिनराज के, चार-चार कल्याण।

इसी धरा पर थे हुए, अति पावन यह धाम॥२॥

चौबीसों भगवान में, मात्र तीन भगवान।

कामदेव चक्री बने, उन पद करूँ प्रणाम॥३॥

तीर्थकर चक्री मदन, तीनों पद के ईश।

शांति-कुंथु-अरनाथ हैं, नमूँ उन्हें नतशीश॥४॥

ऋषभदेव के काल से, है यह तीर्थ प्रसिद्ध।

अन्य कई इतिहास से, गजपुर कीर्ति प्रसिद्ध॥५॥

इस तीर्थ पर बन गया, जम्बूद्वीप विशाल।

गणिनी माता ज्ञानमति, का है यह उपकार॥६॥

इसी तीर्थ पर मिल गया, कुछ प्रवास का योग।

अतः ज्ञान आराधना, का पाया संयोग॥७॥

षट्खण्डागम सूत्र का, है तृतीय यह ग्रंथ।

द्रव्यप्रमाणानुगम अरु, क्षेत्रानुगम प्रबंध॥८॥

गणिनी ज्ञानमती रचित, संस्कृत टीका शुद्ध।

उसका ही अनुवाद यह, हिन्दी में सुप्रसिद्ध॥९॥

ज्ञानमती जी मात की, शिष्या हूँ अज्ञान।

नाम चन्दनामति मिला, पद आर्थिका महान॥१०॥

गुरु से ज्ञानामृत मिला, मिली कृपा की दृष्टि।

जिससे यह अनुवाद कर, मिली मुझे कुछ तृप्ति॥११॥

वीर संवत् पच्चीस सौ, तेंतिस का है वर्ष।

माघ सुदी षष्ठी तिथी, पूर्ण किया यह ग्रंथ॥१२॥

दो हजार अरु सात का, ईसवी सन् विख्यात।

चौबिस जनवरि का दिवस, मानो नया प्रभात॥१३॥

इस टीका से जो मिला, ज्ञानामृत का स्वाद।
उसका क्या वर्णन करूँ, शब्द नहीं हैं पास॥१४॥

गुरु चरणों की छांव में, हुआ पूर्ण अनुवाद।
आगे भी मिलता रहे, उनका आशिर्वाद॥१५॥

अभिलाषा मन में यही, करूँ सदा श्रुतभक्ति।
अन्य ग्रंथ अनुवाद की, माँ! मुझको दो शक्ति॥१६॥

कठिन विषय भी हों सरल, ऐसा दो वरदान।
षट्खण्डागम सूत्र हों, हृदयंगम भगवान॥१७॥

शांतिनाथ का तीर्थ यह, देवे शांति अपार।
मन अज्ञान विनाशकर, भरे सौख्य भण्डार॥१८॥



परिशिष्ट

षट्खंडागम का विषय

-गणिनी ज्ञानमती

णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं।

णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं॥१॥

षट्खण्डागम की प्रथम पुस्तक सत्प्ररूपणा में सर्वप्रथम 'णमोकार महामंत्र' से मंगलाचरण किया है। इसमें १७७ सूत्र हैं। इस ग्रंथ की रचना श्रीमत्पुष्पदंत आचार्य ने की है। इसके आगे के संपूर्ण सूत्र श्रीमद् भूतबलि आचार्य प्रणीत हैं।

इस मंगलाचरण की धवला टीका में पांचों परमेष्ठी के लक्षण बताये हैं।

यह मंत्र अनादि है या श्री पुष्पदन्ताचार्य द्वारा रचित सादि है?

मैंने 'सिद्धान्तचिन्तामणि' टीका में इसका स्पष्टीकरण किया है। धवला टीका में इसे 'निबद्धमंगल' कहकर आचार्यदेव रचित 'सादि' स्वीकार किया है। इसी मुद्रित प्रथम पुस्तक के टिप्पण में जो पाठ का अंश उद्धृत है वह धवलाटीका का ही अंश माना गया है। उसके आधार से यह मंगलाचरण 'अनादि' है। आचार्य श्री पुष्पदंत द्वारा रचित नहीं है, ऐसा स्पष्ट होता है। इस प्रकरण को मैंने दिया है। यथा —

अयं महामंत्र सादिरनादिर्वा?

अथवा षट्खण्डागमस्य मु प्रतौ पाठांतरं। यथा — (मुद्रितमूलग्रन्थस्य प्रथमावृत्तौ)

“जो सुत्तस्सादीए सुत्तकत्तरेण णिबद्धदेवदाणमोक्कारो तं णिबद्धमंगलं। जो सुत्तस्सादीए सुत्तकत्तरेण कयदेवदाणमोक्कारो तमणिबद्धमंगलं”^१।

अस्यायमर्थः—यः सूत्रस्यादौ सूत्रकर्त्रा निबद्धः—संग्रहीतः न च ग्रथितः देवतानमस्कारः स निबद्धः मंगलं। यः सूत्रस्यादौ सूत्रकर्त्रा कृतः—ग्रथितः देवतानमस्कारः स अनिबद्धमंगलं। अनेन एतज्ज्ञायते—अयं महामंत्रः मंगलाचरणरूपेणात्र संग्रहीतोऽपि अनादिनिधनः, न तु केनापि रचितो ग्रथितो वा।

उक्तं च णमोकारमंत्रकल्पे श्रीसकलकीर्तिभट्टारकैः —

महापंच गुरोर्नाम नमस्कारसुसम्भवम्। महामंत्रं जगज्जेष्ट-मनादिसिद्धमादिदम्॥६३॥

महापंचगुरुणां पंचत्रिंशदक्षरप्रमम्। उच्छ्वासैस्त्रिभिरेकाग्र-चेतसा भवहानये^२॥६८॥

श्रीमदुमास्वामिनापि प्रोक्तम् —

ये केचनापि सुषमाद्यरका अनन्ता, उत्सर्पिणी-प्रभृतयः प्रययुर्विवर्ताः।

तेष्वप्ययं परतरः प्रथितप्रभावो, लब्ध्वामुमेव हि गताः शिवमत्र लोकाः^३॥३॥

यह महामंत्र सादि है अथवा अनादि?

अथवा, मुद्रितमूल प्रति में (प्रथम आवृत्ति में) पाठान्तर है। जैसे —

जो सूत्र की आदि में सूत्रकर्ता के द्वारा देवता नमस्कार निबद्ध किया जाता है, वह निबद्धमंगल है और जो सूत्र की आदि में सूत्रकर्ता के द्वारा देवता नमस्कार किया जाता है—रचा जाता है, वह अनिबद्धमंगल है।

१. षट्खण्डागम पुस्तक १, भाग १, पृ. ४२, टिप्पणौ। २. आदिदं—प्रथममित्यर्थः। ३-४. णमोकारमंत्रकल्पे।

इसका अर्थ यह है—सूत्र ग्रंथ के प्रारंभ में ग्रंथकार जो देवता नमस्काररूप मंगल कहीं से संग्रहीत करते हैं, स्वयं नहीं रचते हैं वह तो निबद्धमंगल है और सूत्र के प्रारंभ में ग्रंथकर्ता के द्वारा जो देवतानमस्कार स्वयं रचा जाता है, वह अनिबद्धमंगल है। इससे यह ज्ञात होता है कि यह णमोकार महामंत्र मंगलाचरणरूप से यहाँ संग्रहीत होते हुए भी अनादिनिधन है, वह मंत्र किसी के द्वारा रचित या गूँथा हुआ नहीं है। प्राकृतिक रूप से अनादिकाल से चला आ रहा है।

“णमोकार मंत्रकल्प” में श्री सकलकीर्ति भट्टारक ने कहा भी है —

श्लोकार्थ — नमस्कार मंत्र में रहने वाले पाँच महागुरुओं के नाम से निष्पन्न यह महामंत्र जगत में ज्येष्ठ — सबसे बड़ा और महान है, अनादिसिद्ध है और आदि अर्थात् प्रथम है॥६३॥

पाँच महागुरुओं के पैंतीस अक्षर प्रमाण मंत्र को तीन श्वासोच्छ्वासों में संसार भ्रमण के नाश हेतु एकाग्रचित होकर सभी भव्यजनों को जपना चाहिए अथवा ध्यान करना चाहिए॥६८॥

श्रीमत् उमास्वामी आचार्य ने भी कहा है —

श्लोकार्थ — उत्सर्पिणी, अवसर्पिणी आदि के जो सुषमा, दुःषमा आदि अनन्त युग पहले व्यतीत हो चुके हैं उनमें भी यह णमोकार मंत्र सबसे अधिक महत्त्वशाली प्रसिद्ध हुआ है। मैं संसार से बहिर्भूत (बाहर) मोक्ष प्राप्त करने के लिए उस णमोकार मंत्र को नमस्कार करता हूँ॥३॥

मैंने ‘सिद्धान्तचिन्तामणि टीका’ में सर्वत्र सूत्रों का विभाजन एवं समुदायपातनिका आदि बनाई हैं। यहाँ मैंने ‘समयसार’ ‘प्रवचनसार’ ‘पंचास्तिकाय’ ग्रंथों की ‘तात्पर्यवृत्ति’ टीका का अनुसरण किया है। श्री जयसेनाचार्य की टीका में सर्वत्र गाथासूत्रों की संख्या एवं विषयविभाजन से स्थल-अन्तरस्थल बने हुए हैं। उनकी टीका के अनुसार ही मैंने यहाँ स्थल-अन्तरस्थल विभाजित किये हैं।

सर्वत्र मंगलाचरणरूप में मैंने कहीं पद्य, कहीं गद्य का प्रयोग किया है। तीर्थ और विशेष स्थान की अपेक्षा से प्रायः वहाँ-वहाँ के तीर्थकरों को नमस्कार किया है।

यहाँ पर उनके कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं—

जिनेन्द्रदेवमुखकमलविनिर्गत-गौतमस्वामिमुखकुण्डावतरित-पुष्पदन्ताचार्यादिविस्तारितगंगायाः जलसदृशं “नद्या नवघटे भृतं जलमिव” इयं टीका सर्वजनमनांसि संतर्पिष्यत्येवेतिमया विश्वस्यते।

अथाधुना श्रीमत्पुष्पदन्ताचार्यदेवविनिर्मिते गुणस्थानादिविंशतिप्ररूपणान्तर्गर्भितसत्प्ररूपणा — नाम ग्रंथे अधिकारशुद्धिपूर्वकत्वेन पातनिका व्याख्यानं विधीयते। तत्रादौ ‘णमो अरिहंताणं’ इति पंचनमस्कारगाथामादिं कृत्वा सूत्रपाठक्रमेण गुणस्थानमार्गणा-प्रतिपादनसूचकत्वेन ‘एत्तो इमेसिं’ इत्यादिसूत्रसप्तकं। ततः चतुर्दशगुणस्थाननिरूपणपरत्वेन “संतपरूवणदाए” इत्यादि-षोडशसूत्राणि। ततः परं चतुर्दशमार्गणासु गुणस्थानव्यवस्था-व्यवस्थापन-मुख्यत्वेन “आदेसेण गदिगणुवादेण” इत्यादिना चतुःपञ्चाशदधिक-एकशतसूत्राणि सन्ति। एवं अनेकान्तरस्थलगर्भित-सप्त-सप्तत्यधिकएकशतसूत्रैः एते त्रयो महाधिकारा भवन्तीति सत्प्ररूपणायाः व्याख्याने समुदायपातनिका भवति।

अत्रापि प्रथममहाधिकारे ‘णमो’ इत्यादि मंगलाचरणरूपेण प्रथमस्थले गाथासूत्रमेकं। ततो गुणस्थानमार्गणा-कथनप्रतिज्ञारूपेण द्वितीयस्थले ‘एत्तो’ इत्यादि सूत्रमेकम्। ततश्च चतुर्दशमार्गणानां नामनिरूपणरूपेण तृतीयस्थले सूत्रद्वयं। ततः परं गुणस्थानप्रतिपादनार्थं अष्टानुयोगनामसूचनपरत्वेन चतुर्थस्थले ‘एदेसिं’ इत्यादिसूत्रत्रयं। एवं षट्खण्डागमग्रन्थराजस्य, सत्प्ररूपणायाः पीठिकाधिकारे

चतुर्भिर्न्तरस्थलैः सप्तसूत्रैः समुदायपातनिका सूचितास्ति।

अथ श्रीमद्भगवद्धरसेनगुरुमुखादुपलब्धज्ञानभव्यजनानां वितरणार्थं पंचमकालान्त्य-वीरांगजमुनिपर्यन्तं गमयितुकामेन पूर्वाचार्यव्यवहारपरंपरानुसारेण शिष्टाचारपरिपालनार्थं निर्विघ्नसिद्धान्तशास्त्रपरिसमाप्त्यादिहेतोः श्रीमत्पुष्पदन्ताचार्येण णमोकारमहामन्त्रमंगलगाथा-सूत्रावतारः क्रियते —

णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं।

णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सब्ब-साहूणं॥१॥

जिनेन्द्रदेव के मुखकमल से निकलकर जो गौतमस्वामी के मुखरूपी कुण्ड में अवतरित गिरी है तथा पुष्पदन्त आचार्य आदि के द्वारा विस्तारित गंगाजल के समान “नदी से भरे हुए नये घड़े के जल सदृश” यह टीका सभी प्राणियों के मन को संतृप्त करेगी, ऐसा मेरा विश्वास है।

अब यहाँ श्रीमान् पुष्पदन्त आचार्यदेव द्वारा रचित गुणस्थान आदि बीस प्ररूपणाओं में अन्तर्गर्भित इस सत्प्ररूपणा नामक ग्रंथ में अधिकारशुद्धिपूर्वक पातनिका का व्याख्यान किया जाता है। उसमें सबसे पहले “णमो अरिहंताणं” इत्यादि इस पञ्चनमस्कार गाथा को आदि में करके सूत्र पाठ के क्रम से गुणस्थान, मार्गणा के प्रतिपादन की सूचना देने वाले “एत्तो इमेसिं” इत्यादि सात सूत्र हैं। उसके बाद चौदह गुणस्थानों के निरूपण की मुख्यता से “ओघेण अत्थि” इत्यादि सोलह सूत्र हैं। पुनः आगे चौदह मार्गणाओं में गुणस्थान व्यवस्था की मुख्यता से “आदेसेण गदियाणुवादेण” इत्यादि एक सौ चौव्वन (१५४) सूत्र हैं। इस प्रकार अनेक अन्तर्स्थलों से गर्भित एक सौ सत्तर (१७७) सूत्रों के द्वारा ये तीन महाधिकार हो गए हैं। सत्प्ररूपणा के व्याख्यान में यह समुदायपातनिका हुई।

यहाँ भी प्रथम महाधिकार में “णमो” इत्यादि मंगलाचरणरूप से प्रथम स्थल में एक गाथा सूत्र है पुनः द्वितीय स्थल में गुणस्थान-मार्गणा के कथन की प्रतिज्ञारूप से “एत्तो” इत्यादि एक सूत्र है और उसके बाद चौदह मार्गणाओं के नाम निरूपण रूप से तृतीय स्थल में दो सूत्र हैं। उसके आगे गुणस्थानों के प्रतिपादन हेतु आठ अनुयोग के नाम सूचना की मुख्यता से चतुर्थ स्थल में ‘एदेसिं’ इत्यादि तीन सूत्र हैं।

इस प्रकार षट्खण्डागम ग्रंथराज की सत्प्ररूपणा के पीठिका अधिकार में चार अन्तरस्थलों के द्वारा सूत्रों में समुदायपातनिका सूचित — प्रदर्शित की गई है।

अब श्रीमत् भगवान् धरसेनाचार्य गुरु के मुख से उपलब्ध ज्ञान को भव्यजनों में वितरित करने के लिए पंचमकाल के अन्त में वीरांगज मुनिपर्यन्त इस ज्ञान को ले जाने की इच्छा से, पूर्वाचार्यों की व्यवहार परम्परा के अनुसार, शिष्टाचार का परिपालन करने के लिए, निर्विघ्न सिद्धान्त शास्त्र की परिसमाप्ति आदि हेतु को लक्ष्य में रखते हुए श्रीमत्पुष्पदन्ताचार्य के द्वारा णमोकार महामन्त्र मंगल गाथा सूत्र का अवतार किया जाता है —

णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं।

णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सब्बसाहूणं॥१॥

अतिशय क्षेत्र महावीर जी में मैंने ‘तृतीय महाधिकार’ प्रारंभ किया था अतः श्री महावीर स्वामी को नमस्कार किया है। यथा —

महावीरो जगत्स्वामी, सातिशायीति विश्रुतः।

तस्मै नमोऽस्तु मे भक्त्या, पूर्णसंयमलब्धये॥१॥

श्री वीरसेनाचार्य ने कहा है—

“सुत्तमोदिणं अत्थदो तित्थयरादो, गंथदो गणहरदेवादोत्ति”॥

ये सूत्र अर्थप्ररूपणा की अपेक्षा से तीर्थकर भगवान से अवतीर्ण हुए हैं और ग्रंथ की अपेक्षा श्री गणधर देव से अवतीर्ण हुए हैं।

अथवा ‘जिनपालित’ शिष्य को निमित्त कहा है।

श्री पुष्पदंताचार्य ने अपने भानजे ‘जिनपालित’ को दीक्षा देकर प्रारंभिक १७७ सूत्रों की रचना करके भूतबलि आचार्य के पास भेजा था। ऐसा ‘धवलाटीका’ में एवं श्रुतावतार में वर्णित है।

इस मंगलाचरण को सूत्र १ संज्ञा दी है। आगे द्वितीय सूत्र का अवतार हुआ है—

एत्तो इमेसिं चोदसण्हं जीवसमासाणं मगणडुदाए तत्थ इमाणि चोदस चेवट्टाणाणि णादव्वाणि भवंति॥२॥

इस द्रव्यश्रुत और भावश्रुतरूप प्रमाण से इन चौदह गुणस्थानों के अन्वेषणरूप प्रयोजन के लिए यहाँ से चौदह ही मार्गणास्थान जानने योग्य हैं।

ऐसा कहकर पहले चौदह मार्गणाओं के नाम बताए हैं। यथा— गति, इंद्रिय, काय, योग, वेद, कषाय, ज्ञान, संयम, दर्शन, लेश्या, भव्यत्व, सम्यक्त्व, संज्ञी और आहार ये चौदह मार्गणा हैं।

पुनः पांचवें सूत्र में कहा है—

इन्हीं चौदह गुणस्थानों का निरूपण करने के लिए आगे कहे जाने वाले आठ अनुयोगद्वार जानने योग्य हैं॥६॥

इन आठों के नाम— १. सत्प्ररूपणा २. द्रव्यप्रमाणानुगम ३. क्षेत्रानुगम ४. स्पर्शनानुगम ५. कालानुगम ६. अन्तरानुगम ७. भावानुगम और ८. अल्पबहुत्वानुगम।

आगे प्रथम ‘सत्प्ररूपणा’ का वर्णन करते हुए ओघ और आदेश की अपेक्षा निरूपण करने को कहा है।

इसी में ओघ की अपेक्षा चौदह गुणस्थानों का वर्णन है और आगे चौदह मार्गणाओं का वर्णन करके उनमें गुणस्थानों को भी घटित किया है। मार्गणाओं के नाम ऊपर लिखे गये हैं। गुणस्थानों के नाम—

१. मिथ्यात्व २. सासादन ३. मिश्र ४. असंयतसम्यग्दृष्टि ५. देशसंयत ६. प्रमत्तसंयत ७. अप्रमत्तसंयत ८. अपूर्वकरण ९. अनिवृत्तिकरण १०. सूक्ष्मसांपराय ११. उपशांतकषाय १२. क्षीणकषाय १३. सयोगिकेवली और १४. अयोगिकेवली ये चौदह गुणस्थान हैं।

इस ग्रंथ में मैंने तीन महाधिकार विभक्त किये हैं। प्रथम महाधिकार में सात सूत्र हैं जो कि ग्रंथ की पीठिका— भूमिकारूप हैं। दूसरे महाधिकार सत्प्ररूपणा के अंतर्गत १६ सूत्रों में चौदह गुणस्थानों का वर्णन है एवं तृतीय महाधिकार में मार्गणाओं में गुणस्थानों की व्यवस्था करते हुए विस्तार से १५४ सूत्र लिए हैं।

इस प्रथम ग्रंथ में प्रारंभ में पंच परमेष्ठियों के वर्णन में एक सुन्दर प्रश्नोत्तर धवला टीका में आया है जिसे मैंने जैसे का तैसा लिया है। यथा—

“संपूर्णरत्नानि देवो न तदेकदेश इति चेत् ?

न, रत्नैकदेशस्य देवत्वाभावे समस्तस्यापि तदसत्त्वापत्तेः.....। इत्यादि।

शंका—संपूर्णरत्न—पूर्णता को प्राप्त रत्नत्रय ही देव है, रत्नों का एकदेश देव नहीं हो सकता है?

समाधान—ऐसा नहीं कहना, क्योंकि रत्नत्रय के एकदेश में देवपने का अभाव होने पर उसकी संपूर्णता में भी देवपना नहीं बन सकता है।

शंका—आचार्य आदि में स्थित रत्नत्रय समस्त कर्मों का क्षय करने में समर्थ नहीं हो सकते, क्योंकि उसमें एकदेशपना ही है, पूर्णता नहीं है?

समाधान—यह कथन समुचित नहीं है, क्योंकि पलालराशि—घास की राशि को जलाने का कार्य अग्नि के एक कण में भी देखा जाता है इसलिए आचार्य, उपाध्याय और साधु भी देव हैं।^१

यह समाधान श्री वीरसेनाचार्य ने बहुत ही उत्तम बताया है।

प्रथम पुस्तक 'सत्प्ररूपणाग्रंथ' की टीका को पूर्ण करते समय मैंने उस स्थान का विवरण दे दिया है। यथा—

“वीराब्दे द्वाविंशत्यधिकपंचविंशतिशततमे फाल्गुनशुक्लासप्तम्यां ख्रिष्टाब्दे षण्णवत्यधि-
कैकोनविंशतिशततमे पंचविंशे दिनांके द्वितीयमासि (२५-२-१९९६) राजस्थान प्रान्ते
'पिडावानामग्रामे' श्री पार्श्वनाथसमवसरणमंदिरशिलान्यासस्य मंगलावसरे एतत्सत्प्ररूपणाग्रन्थस्य
'सिद्धान्तचिन्तामणिटीकां' पूरयन्त्या मया महान् हर्षोऽनुभूयते। टीकासहितोऽयं ग्रन्थो मम श्रुतज्ञानस्य
पूर्वै भूयात्।”

पुनः वीर निर्वाण संवत् पच्चीस सौ बाईसवें वर्ष में ही फाल्गुन शुक्ला सप्तमी तिथि को ईसवी सन् १९९६ के द्वितीय मास की २५ तारीख को राजस्थान प्रान्त के पिडावा ग्राम में श्रीपार्श्वनाथ समवसरण मंदिर के शिलान्यास के मंगल अवसर पर इस 'सत्प्ररूपणा' ग्रंथ की 'सिद्धान्तचिन्तामणिटीका' को पूर्ण करते हुए मुझे अत्यंत हर्ष की अनुभूति हो रही है। टीका सहित यह सत्प्ररूपणा नामक 'षट्खण्डागम' ग्रंथ मेरे श्रुतज्ञान की पूर्ति के लिए होवे, यही मेरी प्रार्थना है।

पुस्तक २ — आलाप अधिकार

यह द्वितीय ग्रंथ सत्प्ररूपणा के ही अंतर्गत है। इसमें सूत्र नहीं हैं।

“संपहि संत-सुतविवरण-समत्ताणंतरं तेसिं परुवणं भणिस्सामो।”

सत्प्ररूपणा के सूत्रों का विवरण समाप्त हो जाने पर अनंतर अब उनकी प्ररूपणा का वर्णन करते हैं—

शंका—प्ररूपणा किसे कहते हैं?

समाधान—सामान्य और विशेष की अपेक्षा गुणस्थानों में, जीवसमासों में, पर्याप्तियों में, प्राणों में, संज्ञाओं में, गतियों में, इन्द्रियों में, कार्यों में, योगों में, वेदों में, कषायों में, ज्ञानों में, संयमों में, दर्शनों में, लेश्याओं में, भव्यों में, अभव्यों में, संज्ञी-असंज्ञियों में, आहारी-अनाहारियों में और उपयोगों में पर्याप्त और अपर्याप्त विशेषणों से विशेषित करके जो जीवों की परीक्षा की जाती है, उसे प्ररूपणा कहते हैं। कहा भी है—

गुणस्थान, जीवसमास, पर्याप्ति, प्राण, संज्ञा, चौदह मार्गणाएं और उपयोग, इस प्रकार क्रम से बीस प्ररूपणाएं कही गई हैं।

इनके कोष्ठक गुणस्थानों के एवं मार्गणाओं के बनाये गये हैं।

गुणस्थान १४ हैं, जीवसमास १४ हैं — एकेन्द्रिय के बादर-सूक्ष्म ऐसे २, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय ऐसे ३, पंचेन्द्रिय के संज्ञी-असंज्ञी ऐसे २, ये ७, हुए इन्हें पर्याप्त-अपर्याप्त से गुणा करने पर १४ हुए। पर्याप्ति ६ — आहार, शरीर, इन्द्रिय, श्वासोच्छ्वास, भाषा और मन। प्राण १० हैं — पांच इन्द्रिय, मनोबल, वचनबल, कायबल, आयु और श्वासोच्छ्वास। संज्ञा ४ हैं — आहार, भय, मैथुन और परिग्रह। गति ४ हैं — नरकगति, तिर्यचगति, मनुष्यगति और देवगति। इन्द्रियां ५ हैं — एकेन्द्रियजाति, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रियजाति। काय ६ हैं — पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति और त्रसकाय। योग १५ हैं — सत्यमनोयोग, असत्यमनोयोग, उभयमनोयोग, अनुभयमनोयोग, सत्यवचनयोग, असत्यवचनयोग, उभयवचनयोग, अनुभयवचनयोग, औदारिककाययोग, औदारिकमिश्र, वैक्रियिक, वैक्रियिकमिश्र, आहारक, आहारकमिश्र और कार्मणकाय योग। वेद ३ हैं — स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुंसकवेद। कषाय ४ हैं — क्रोध, मान, माया, लोभ। ज्ञान ८ हैं — मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय, केवलज्ञान, कुमति, कुश्रुत और विभंगावधि। संयम ७ हैं — सामायिक, छेदोपस्थापना, परिहारविशुद्धि, सूक्ष्मांपराय, यथाख्यात, देशसंयम और असंयम। दर्शन ४ हैं — चक्षुर्दर्शन, अचक्षुर्दर्शन, अवधिदर्शन और केवलदर्शन। लेश्या ६ हैं — कृष्ण, नील, कापोत, पीत, पद्म और शुक्ल। भव्य मार्गणा २ हैं — भव्यत्व और अभव्यत्व। सम्यक्त्व ६ हैं — औपशमिक, क्षायोपशमिक, क्षायिक, मिथ्यात्व, सासादन और मिश्र। संज्ञी मार्गणा के २ भेद हैं — संज्ञी, असंज्ञी। आहार मार्गणा २ हैं — आहार, अनाहार। उपयोग के २ भेद हैं — साकार और अनाकार।

इस ग्रंथ को मैंने दो महाधिकारों में विभक्त किया है। इसमें कुल ५४५ कोष्ठक — चार्ट हैं। उदाहरण के लिए पाँचवें गुणस्थान का एक चार्ट दिया जा रहा है —

नं. १३

संयतासंयतों के आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१	१	६	१०	४	२	१	१	९	३	४	३	१	३	द्र.३	१	३	१	१	२
सं.प.					म.	पंचे.	त्रस.	म.४			मति.	मि.	के.द.	भा.३	भ.	औ.	सं.	आहार	साकार
					ति.			व. ४			श्रुत.	वि.	विना.	शुभ.		क्षा.			अनाकार
								औ.१			अव.					क्षायो.			

इनमें से संयतासंयत के कोष्ठक में —

गुणस्थान १ है — पाँचवाँ देशसंयत। जीवसमास १ है — संज्ञीपर्याप्त। पर्याप्तियाँ छहों हैं, अपर्याप्तियाँ नहीं हैं। प्राण १० हैं। संज्ञायें ४ हैं। गति २ हैं — मनुष्य, तिर्यच। इन्द्रिय १ है — पंचेन्द्रिय। काय १ है — त्रसकाय। योग ९ हैं — ४ मनोयोग, ४ वचनयोग, १ औदारिक काययोग। वेद ३ हैं। कषाय ४ हैं। ज्ञान ३ हैं — मति, श्रुत, अवधि। संयम १ है — संयमासंयम। दर्शन ३ हैं — केवलदर्शन के बिना। लेश्या द्रव्य से — वर्ण से छहों हैं, भावलेश्या शुभ ३ हैं। भव्यत्व १ है। सम्यक्त्व ३ हैं — औपशमिक, क्षायिक और क्षायोपशमिक। संज्ञीमार्गणा १ है — संज्ञी। आहार मार्गणा १ है — आहारक। उपयोग २ हैं — साकार और अनाकार। यही सब चार्ट में दिखाया गया है।

इस प्रकार यह दूसरी पुस्तक का सार अतिसंक्षेप में बताया गया है।

पुस्तक ३ — द्रव्यप्रमाणानुगम

इस ग्रंथ में श्री भूतबलि आचार्य वर्णित सूत्र हैं अब यहाँ से संपूर्ण 'षट्खण्डागम' सूत्रों की रचना इन्हीं श्रीभूतबलि आचार्य द्वारा लिखित है। कहा भी है —

“संपहि चोद्दसण्हं जीवसमासाणमत्थित्तमवगदाणं सिस्साणं तेसिं चेव पदिमाणपडिबोहणट्ठं भूदबलियाइरियो सुत्तमाहं — ”

जिन्होंने चौदहों गुणस्थानों के अस्तित्व को जान लिया है, ऐसे शिष्यों को अब उन्हीं के चौदहों गुणस्थानों के — चौदहों गुणस्थानवर्ती जीवों के परिमाण — संख्या के ज्ञान को कराने के लिए श्रीभूतबलि आचार्य आगे का सूत्र कहते हैं —

इसमें प्रथम सूत्र —

“द्वपमाणाणुगमेण दुविहो णिद्देसो ओघेण आदेसेण य।।१।।

द्रव्यप्रमाणानुगम की अपेक्षा निर्देश दो प्रकार का है, ओघ निर्देश और आदेशनिर्देश। ओघ — गुणस्थान और आदेश — मार्गणा इन दोनों की अपेक्षा से उन-उन में जीवों का वर्णन किया गया है।

इस ग्रंथ में भी मैंने दो अनुयोगद्वारा लिये हैं — द्रव्यप्रमाणानुगम और क्षेत्रानुगम। अतः इन दोनों में चार महाधिकार किये हैं। क्षेत्रानुगम में तृतीय महाधिकार में ४ सूत्र एवं चतुर्थ महाधिकार में ८८ सूत्र हैं, ऐसे कुल सूत्र ९२ हैं। दोनों अनुयोगद्वारों में सूत्र १९२+९२=२८४ हैं। द्रव्यप्रमाणानुगम में प्रथम महाधिकार में १४ सूत्र हैं एवं द्वितीय में १७८ हैं, ऐसे कुल सूत्र १९२ हैं।

चौदह गुणस्थानों में जीवों की संख्या बतलाते हैं —

प्रथम गुणस्थान में जीव अनंतानंत हैं। द्वितीय गुणस्थान में ५२ करोड़ हैं। तृतीय गुणस्थान में १०४ करोड़ हैं। चतुर्थ गुणस्थान में सात सौ करोड़ हैं। पाँचवे गुणस्थान में १३ करोड़ हैं।

प्रमत्तसंयत नाम के छठे गुणस्थान से लेकर अयोगकेवली नाम के चौदहवें गुणस्थान के महामुनि एवं अरहंत भगवान 'संयत' कहलाते हैं। उन सबकी संख्या मिलाकर 'तीन कम नव करोड़' है। धवला टीका में कहा है —

“एवं परुविदसव्वसंजदरासिमैकट्ठे कदे अट्ठकोडीओ णवणउदिलक्खा णवणउदिसहस्स-णवसद-सत्ताणउदिमेत्तो होदि१।”

इसी तृतीय पुस्तक में दूसरा एक और मत प्राप्त हुआ है —

“एदे सव्वसंजदे एयट्ठे कदे सत्तरसद-कम्मभूमिगद-सव्वरिसओ भवंति। तेसिं पमाणं छक्कोडीओ णवणउदिलक्खा णवणउदिसहस्सा णवसयछण्णउदिमेत्तं हवदि२।” सर्वसंयतों की संख्या छह करोड़, निन्यानवे लाख, निन्यानवे हजार, नव सौ छयानवे है।

इन दोनों मतों को श्री वीरसेनाचार्य ने उद्धृत किया है।

वर्तमान में प्रसिद्धि में 'तीन कम नव करोड़' संख्या ही है।

इन सर्वमुनियों को नमस्कार करके यहाँ इस ग्रंथ का किंचित् सार दिया है। इसकी सिद्धान्तचिंतामणि टीका में मैंने अधिकांश गणित प्रकरण छोड़ दिया है, जो कि धवलाटीका में द्रष्टव्य है।

श्री वीरसेनाचार्य ने आकाश को क्षेत्र कहा है। आकाश का कोई स्वामी नहीं है, इस क्षेत्र की उत्पत्ति में १. षट्खण्डागम, धवलाटीकासमन्वित, पु. ३, पृ. ९७। २. षट्खण्डागम, धवलाटीकासमन्वित, पु. ३, पृ. ९२।

कोई निमित्त भी नहीं है यह स्वयं में ही आधार-आधेयरूप है। यह क्षेत्र अनादिनिधन है और भेद की अपेक्षा लोकाकाश-अलोकाकाश ऐसे दो भेद हैं। इस प्रकार निर्देश, स्वामित्व, साधन, अधिकरण, स्थिति और विधान से क्षेत्र का वर्णन किया है।

क्षेत्र में गुणस्थानवर्ती जीवों को घटित करते हुए कहा है —

“ओघेण मिच्छाङ्गुटी केवडि खेत्ते? सव्वलोगे॥२॥

मिथ्यादृष्टि जीव कितने क्षेत्र में हैं? सर्वलोक में हैं॥२॥

सासणसम्मोड्ढिप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि त्ति केवडि खेत्ते? लोगस्स असंखेज्जदिभाए॥३॥

सासादनसम्यग्दृष्टि से लेकर अयोगिकेवलीपर्यंत कितने क्षेत्र में हैं? लोक के असंख्यातवें भाग में हैं॥३॥

इसमें एक प्रश्न हुआ है —

लोकाकाश असंख्यातप्रदेशी है, उसमें अनंतानंत जीव कैसे समायेंगे?

यद्यपि लोक असंख्यात प्रदेशी है फिर भी उसमें अवगाहनशक्ति विशेष है जिससे उसमें अनंतानंत जीव एवं अनंतानंत पुद्गल समाविष्ट हैं। जैसे मधु से भरे हुए घड़े में उतना ही दूध भर दो, उसी में समा जायेगा^१।

इस अनुयोगद्वार में स्वस्थान, समुद्घात और उपपाद ऐसे तीन भेदों द्वारा जीवों के क्षेत्र का वर्णन किया है।

इस ग्रंथ की पूर्ति मैंने मांगीतुंगी तीर्थ पर श्रावण कृ. १० को ईसवी सन् १९९६ में की है।

पुस्तक ४ — स्पर्शन-कालानुगम

इस चतुर्थ ग्रंथ — पुस्तक में स्पर्शनानुगम एवं कालानुगम इन दो अनुयोगद्वारों का वर्णन है।

इन दोनों की सूत्र संख्या १८५+३४२=५२७ है।

स्पर्शनानुगम — इसमें भी मैंने गुणस्थान और मार्गणा की अपेक्षा दो महाधिकार किये हैं। यह स्पर्शन भूतकाल एवं वर्तमानकाल के स्पर्श की अपेक्षा रखता है। पूर्व में जिसका स्पर्श किया था और वर्तमान में जिसका स्पर्श कर रहे हैं, इन दोनों की अपेक्षा से स्पर्शन का कथन किया जाता है।

स्पर्शन में छह प्रकार के निक्षेप घटित किये हैं — नाम, स्थापना, द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावस्पर्शन।

‘तत्र स्पर्शनशब्दः’ नाम स्पर्शनं निक्षेपः, अयं द्रव्यार्थिकनयविषयः।

सोऽयं इति बुद्ध्या अन्यद्रव्येण सह अन्यद्रव्यस्य एकत्वकरणं स्थापनास्पर्शनं यथा घटपिठरादिषु अयं ऋषभोऽजितः संभवोऽभिनन्दनः इति। एषोऽपि द्रव्यार्थिकनयविषयः^२।”

स्पर्शन शब्द नामस्पर्शन है। यह द्रव्यार्थिकनय का विषय है। यह वही है, ऐसी बुद्धि से अन्य द्रव्य के साथ अन्यद्रव्य का एकत्व करना स्थापनास्पर्शन निक्षेप है जैसे घट आदि में ये ऋषभभदेव हैं, अजितनाथ हैं, संभवनाथ हैं, अभिनन्दननाथ हैं इत्यादि। यह भी द्रव्यार्थिक नय का विषय है। इत्यादि निक्षेपों का वर्णन है।

पर्यायार्थिक नय की अपेक्षा से प्ररूपणा करते हुए कहा है —

स्वस्थानस्वस्थान-वेदना-कषाय-मारणांतिक-उपपादगतमिथ्यादृष्टियों ने भूतकाल एवं वर्तमानकाल से सर्वलोक को स्पर्श किया है।

इसी प्रकार गुणस्थान और मार्गणाओं में जीवों के भूतकालीन, वर्तमानकालीन स्पर्शन का वर्णन किया है।

१. षट्खण्डागम (धवलाटीकासमन्वित) पु. ४, पृ. २३। २. षट्खण्डागम (धवलाटीकासमन्वित) पु. ४, पृ. १४२।

कालानुगम— इसमें भी गुणस्थान और मार्गणा की अपेक्षा दो महाधिकार कहे हैं। काल को नाम, स्थापना, द्रव्य और भाव ऐसे चार भेद रूप से कहा है पुनश्च — ‘नो आगमभावकाल’ से इस ग्रंथ में वर्णन किया है।

यह काल अनादि अनंत है, एक विध है, यह सामान्य कथन है। काल के भूत, वर्तमान और भविष्यत् की अपेक्षा तीन भेद हैं।

एक प्रश्न आया है—

स्वर्गलोक में सूर्य के गति की अपेक्षा नहीं होने से वहां मास, वर्ष आदि का व्यवहार कैसे होगा?

तब आचार्यदेव ने समाधान दिया है—

यहाँ के व्यवहार की अपेक्षा ही वहाँ पर ‘काल’ का व्यवहार है। जैसे जब यहाँ ‘कार्तिक’ आदि मास में आष्टान्हिक पर्व आते हैं, तब देवगण नंदीश्वर द्वीप आदि में पूजा करने पहुँच जाते हैं इत्यादि।

नाना जीव की अपेक्षा मिथ्यादृष्टि का सर्वकाल है॥२॥

एकजीव की अपेक्षा किसी का अनादिअनंत है, किसी का अनादिसांत है, किसी का सादिसांत है। इनमें से जो सादि और सांत काल है, उसका निर्देश इस प्रकार है। एक जीव की अपेक्षा मिथ्यादृष्टि जीव का सादिसांत काल जघन्य से अंतर्मुहूर्त है*॥३॥

वह इस प्रकार है—

कोई सम्यग्मिथ्यादृष्टि अथवा असंयतसम्यग्दृष्टि अथवा संयतासंयत, अथवा प्रमत्तसंयतजीव, परिणामों के निमित्त से मिथ्यात्व को प्राप्त हुआ। सर्वजघन्य अंतर्मुहूर्त काल रह करके, फिर भी सम्यक्त्वमिथ्यात्व को अथवा असंयम के साथ सम्यक्त्व को, अथवा संयमासंयम को, अथवा अप्रमत्तभाव के साथ संयम को प्राप्त हुआ। इस प्रकार से प्राप्त होने वाले जीव के मिथ्यात्व का सर्वजघन्य काल होता है*।

इस प्रकार यह कालानुगम का संक्षिप्त सार दिखाया है।

इस ग्रंथ की टीका मैंने मांगीतुंगी क्षेत्र पर भाद्रपद शु. ३, वी.सं. २५२२, दिनांक १५-९-१९९६ को लिखकर पूर्ण की है।

पुस्तक ५ — अन्तर-भाव-अल्पबहुत्वानुगम

इस ग्रंथ में अन्तरानुगम में ३९७ सूत्र हैं, भावानुगम में ९३ सूत्र हैं एवं अल्पबहुत्वानुगम में ३८२ सूत्र हैं। इस प्रकार ३९७+९३+३८२=८७२ सूत्र हैं।

अन्तरानुगम— इस ग्रंथ की सिद्धान्तचिन्तामणि टीका में मैंने दो महाधिकार विभक्त किये हैं। प्रथम महाधिकार में गुणस्थानों में अंतर का निरूपण है। द्वितीय महाधिकार में मार्गणाओं में अंतर दिखाया गया है।

नाम, स्थापना, द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव के भेद से छहविध निक्षेप हैं। अंतर, उच्छेद, विरह, परिणामान्तरगमन, नास्तित्वगमन और अन्यभावव्यवधान, ये सब एकार्थवाची हैं। इस प्रकार के अन्तर के अनुगम को अन्तरानुगम कहते हैं।

एक जीव की अपेक्षा जघन्य अन्तर काल अन्तर्मुहूर्त है॥३॥

जैसे एक मिथ्यादृष्टि जीव, सम्यग्मिथ्यात्व, अविरतसम्यक्त्व, संयमासंयम और संयम में बहुत बार परिवर्तित होता हुआ परिणामों के निमित्त से सम्यक्त्व को प्राप्त हुआ और वहाँ पर सर्वलघु अंतर्मुहूर्त काल

तक सम्यक्त्व के साथ रहकर मिथ्यात्व को प्राप्त हुआ। इस प्रकार सर्वजघन्य अंतर्मुहूर्त प्रमाण मिथ्यात्वगुणस्थान का अंतर प्राप्त हो गया।

मिथ्यात्व का उत्कृष्ट अंतर कुछ कम दो छयासठ सागरोपम काल है॥४॥

इन ग्रंथों के स्वाध्याय में जो आल्हाद उत्पन्न होता है, वह असंख्यात गुणश्रेणीरूप से कर्मों की निर्जरा का कारण है। यहाँ तो मात्र नमूना प्रस्तुत किया जा रहा है।

भावानुगम — इसमें भी महाधिकार दो हैं। नाम, स्थापना, द्रव्य और भाव इनकी अपेक्षा यह भाव चार प्रकार का है। इसमें भी भावनिक्षेप के आगमभाव एवं नोआगमभाव ऐसे दो भेद हैं। नोआगमभाव नामक भावनिक्षेप के औदयिक, औपशमिक, क्षायिक, क्षायोपशमिक और पारिणामिक ये पाँच भेद हैं।

असंयतसम्यग्दृष्टि में कौन सा भाव है?

औपशमिकभाव भी है, क्षायिकभाव भी है और क्षायोपशमिक भाव भी है॥५॥

यहाँ सम्यग्दर्शन की अपेक्षा से ये भाव कहे हैं। यद्यपि यहाँ औदयिक भावों में से गति, कषाय आदि भी हैं किन्तु उनसे सम्यक्त्व उत्पन्न नहीं होता इसलिए उनकी यहाँ विवक्षा नहीं है।

अल्पबहुत्वानुगम — इस अनुयोगद्वार के प्रारंभ में मैंने गद्यरूप में श्री महावीर स्वामी को नमस्कार किया है। इसमें भी दो महाधिकार विभक्त किये हैं।

इस अल्पबहुत्व में गुणस्थान और मार्गणाओं में सबसे अल्प कौन हैं? और अधिक कौन हैं? यही दिखाया गया है। यथा —

सामान्यतया — गुणस्थान की अपेक्षा से अपूर्वकरण आदि तीन गुणस्थानों में उपशामक जीव प्रवेश की अपेक्षा परस्पर तुल्य हैं तथा अन्य सब गुणस्थानों के प्रमाण से अल्प हैं^१॥२॥

और 'मिथ्यादृष्टि सबसे अधिक अनंतगुणे हैं'^२॥१४॥

इस ग्रंथ में भी बहुत से महत्वपूर्ण विषय ज्ञातव्य हैं। जैसे कि—“दर्शन मोहनीय का क्षपण करने वाले — क्षायिक सम्यक्त्व प्रगट करने वाले जीव नियम से मनुष्यगति में होते हैं।”

जिन्होंने पहले तिर्यचायु का बंध कर लिया है ऐसे जो भी मनुष्य क्षायिक सम्यक्त्व के साथ तिर्यचों में उत्पन्न होते हैं उनके संयमासंयम नहीं होता है, क्योंकि भोगभूमि को छोड़कर उनकी अन्यत्र उत्पत्ति असंभव है^३।”

यह सभी साररूप अंश मैंने यहाँ दिये हैं। अपने ज्ञान के क्षयोपशम के अनुसार इन-इन ग्रंथों का स्वाध्याय श्रुतज्ञान की वृद्धि एवं आत्मा में आनंद की अनुभूति के लिए करना चाहिए।

इस ग्रंथ की टीका की पूर्ति मैंने अंकलेश्वर-गुजरात में मगसिर कृ. ७, वीर नि. सं. २५२३, दिनांक २-१२-१९९६ को की है।

पुस्तक ६ — जीवस्थान चूलिका

इस ग्रंथ में चूलिका के नौ भेद हैं — १. प्रकृतिसमुत्कीर्तन, २. स्थान समुत्कीर्तन ३. प्रथम महादण्डक ४. द्वितीय महादण्डक ५. तृतीय महादण्डक ६. उत्कृष्टस्थिति ७. जघन्यस्थिति ८. सम्यक्त्वोत्पत्ति एवं ९. गत्यागती चूलिका।

१-२. षट्खण्डागम (धवलाटीकासमन्वित) पु. ५, पृ. २४३-२५२।

३. षट्खण्डागम (धवलाटीकासमन्वित) पु. ५, पृ. २५६।

इसमें क्रमशः सूत्रों की संख्या — ४६+११७+२+२+४४+४३+१६+२४३=५१५ है।

चूलिका—पूर्वोक्त आठों अनुयोगद्वारों के विषय—स्थलों के विवरण के लिए यह चूलिका नामक अधिकार आया है।

१. प्रकृतिसमुत्कीर्तन—इस चूलिका में ज्ञानावरणीय आदि आठ प्रकृतियों का वर्णन करके उनके १४८ भेदों का भी निरूपण किया है।

२. स्थानसमुत्कीर्तन—स्थान, स्थिति और अवस्थान ये तीनों एकार्थक हैं। समुत्कीर्तन, वर्णन और प्ररूपण इनका भी अर्थ एक ही है। स्थान की समुत्कीर्तना—स्थान समुत्कीर्तन है।

पहले प्रकृति समुत्कीर्तन में जिन प्रकृतियों का निरूपण कर आये हैं, उन प्रकृतियों का क्या एक साथ बंध होता है? अथवा क्रम से होता है? ऐसा पूछने पर इस प्रकार होता है। यह बात बतलाने के लिए यह स्थान समुत्कीर्तन है।

वह प्रकृतिस्थान मिथ्यादृष्टि के अथवा सासादन के, सम्यग्मिथ्यादृष्टि के, असंयतसम्यग्दृष्टि के, संयतासंयत के और संयत के होता है। ऐसे यहाँ छह स्थान ही विवक्षित हैं। क्योंकि 'संयत' पद से छठे, सातवें, आठवें, नवमें, दशवें, ग्यारहवें, बारहवें और तेरहवें गुणस्थानवर्ती संयतों को लिया है। अयोगकेवली गुणस्थान में बंध का ही अभाव है अतः उन्हें नहीं लिया है।

जैसे ज्ञानावरण की पाँचों प्रकृतियों का बंध छहों स्थानों में अर्थात् दशवें गुणस्थान तक संयतों में बंध होता है इत्यादि।

३. प्रथम महादण्डक—प्रथमोपशम सम्यक्त्व को ग्रहण करने के लिए अभिमुख मिथ्यादृष्टि जीवों के द्वारा बंधने वाली प्रकृतियों का ज्ञान कराने के लिए यहाँ तीन महादण्डकों की प्ररूपणा आई है।

इसमें प्रथम महादण्डक का कथन सम्यक्त्व के अभिमुख जीवों के द्वारा बध्यमान प्रकृतियों की समुत्कीर्तना करने के लिए हुआ है। विशेषता यह है कि—

“एदस्सवगमेण महापावक्खयस्सुवलंभादो”।”

क्योंकि इसके ज्ञान से महापाप का क्षय पाया जाता है।

४. द्वितीय महादण्डक—प्रकृतियों के भेद से और स्वामित्व के भेद से इन दोनों दण्डकों में भेद कहा गया है।

५. तृतीय महादण्डक—प्रथमोपशम सम्यक्त्व के अभिमुख ऐसा नीचे सातवीं पृथ्वी का नारकी मिथ्यादृष्टि जीव, पाँचों ज्ञानावरण, नवों दर्शनावरण, साता वेदनीय, मिथ्यात्व, अनंतानुबंधी आदि १६ कषाय, पुरुषवेद, हास्य, रति, भय, जुगुप्सा इन प्रकृतियों को बांधता है इत्यादि।

६. उत्कृष्ट कर्मस्थिति—कर्मों की उत्कृष्ट स्थिति को बांधने वाला जीव प्रथमोपशमसम्यक्त्व को नहीं प्राप्त करता है, इस बात का ज्ञान कराने के लिए कर्मों की उत्कृष्ट स्थिति का निरूपण किया जा रहा है।

७. जघन्यस्थिति—उत्कृष्ट विशुद्धि के द्वारा जो स्थिति बंधती है, वह जघन्य होती है। इत्यादि का विस्तार से कथन है।

८. सम्यक्त्वोत्पत्ति चूलिका—जिन प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेशों को बाँधता हुआ, जिन प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेशों के द्वारा सत्त्वस्वरूप होते हुए और उदीरणा को प्राप्त होते हुए यह जीव

सम्यक्त्व को प्राप्त करता है, उनकी प्ररूपणा की गई है।

“प्रथमोपशम सम्यक्त्व को प्राप्त करने वाला जीव पंचेन्द्रिय, संज्ञी, मिथ्यादृष्टि, पर्याप्त और सर्वविशुद्ध होता है^१॥४॥”

आगे — “दर्शनमोहनीय कर्म का क्षपण करने के लिए आरंभ करता हुआ यह जीव कहाँ पर आरंभ करता है? अढ़ाई द्वीप समुद्रों में स्थित पंद्रह कर्मभूमियों में जहाँ जिस काल में जिनकेवली और तीर्थकर होते हैं, वहाँ उस काल में आरंभ करता है^२॥११॥”

ऐसे दो नमूने प्रस्तुत किये हैं।

९. गत्यागती चूलिका — इसमें सम्यक्त्वोत्पत्ति के बाह्य कारणों को विशेषरूप से वर्णित किया है — प्रश्न हुआ — “तिर्यच मिथ्यादृष्टि कितने कारणों से सम्यक्त्व उत्पन्न करते हैं?॥२१॥

तीन कारणों से — कोई जातिस्मरण से, कितने ही धर्मोपदेश सुनकर, कितने ही जिनबिंबों के दर्शन से॥२२॥

पुनः प्रश्न होता है — जिनबिंब दर्शन प्रथमोपशमसम्यक्त्वोत्पत्ति में कारण कैसे है? उत्तर देते हैं —

“जिणबिंबदंसणेण णिधत्तणिकाचिदस्स वि मिच्छत्तादिकम्मकलावस्स खयदंसणादो। तथा चोक्तं —

दर्शनेन जिनेन्द्राणां पापसंघातकुंजरम्। शतधा भेदमायाति गिरिर्वज्रहतो यथा^३॥१॥”

जिनप्रतिमाओं के दर्शन से निधत्त और निकाचितरूप भी मिथ्यात्वादि कर्मकलाप का क्षय देखा जाता है, जिससे जिनबिंब का दर्शन प्रथम सम्यक्त्व की उत्पत्ति में कारण देखा जाता है। कहा भी है — जिनेन्द्रदेवों के दर्शन से पापसंघातरूपी कुंजरपर्वत के सौ-सौ टुकड़े हो जाते हैं, जिस प्रकार वज्र के गिरने से पर्वत के सौ-सौ टुकड़े हो जाते हैं।

२१६ सूत्र की टीका में अन्य ग्रंथों के उद्धरण भी दिये गये हैं। नमूने के लिए प्रस्तुत हैं —

आत्मज्ञातृतया ज्ञानं, सम्यक्त्वं चरितं हि सः। स्वस्थो दर्शनचारित्रमोहाभ्यामनुपप्लुतः^४॥

इस प्रथमखण्ड ‘जीवस्थान’ की छठी पुस्तक की टीका मैंने अपनी दीक्षाभूमि “माधोराजपुरा” राजस्थान में पूर्ण की है। उसमें मैंने संक्षेप में तीन श्लोक दिये हैं —

देवशास्त्रगुरुन् नत्वा, नित्य भक्त्या त्रिशुद्धितः। षट्खण्डागमग्रंथोऽयं, वन्द्यते ज्ञानवृद्धये॥१॥

द्वित्रिपंचद्विवीराब्दे, फाल्गुनेऽसितपक्षाके। माधोराजपुराग्रामे, त्रयोदश्यां जिनालये॥२॥

नमः श्रीशांतिनाथाय, सर्वसिद्धिप्रदायिने। यस्य पादप्रसादेन, टीकेयं पर्यपूर्यत॥३॥

मैंने शरदपूर्णिमा को वी.सं. २५२१ में हस्तिनापुर में यह टीका लिखना प्रारंभ किया था। मुझे प्रसन्नता है कि फाल्गुन कृष्णा १३, वी. नि. सं. २५२३, दि. ७-३-१९९७ को माधोराजपुरा में मैंने यह प्रथम खंड की टीका पूर्ण की है। यह टीका मांगीतुंगी यात्रा विहार के मध्य आते-जाते लगभग ३६ सौ किमी. के मध्य में मार्ग में अधिकरूप में लिखी गई है।

मैंने इसे सरस्वती देवी की अनुकंपा एवं माहात्म्य ही माना है। इसमें स्वयं में मुझे ‘आश्चर्य’ हुआ है। जैसा कि मैंने लिखा है —

१. षट्खण्डागम (धवलाटीकासमन्वित) पु. ६, पृ. २०६। २. षट्खण्डागम (धवलाटीकासमन्वित) पु. ६, पृ. २४२।

३. षट्खण्डागम (धवलाटीकासमन्वित) पु. ६, पृ. ४२८। ४. तत्त्वार्थसार का उद्धरण।

“पुनश्च हस्तिनापुरतीर्थक्षेत्रे विनिर्मितकृत्रिमजंबूद्वीपस्य सुदर्शनमेवादिपर्वतामुपरि विराजमान-सर्वजिनबिंबानि मुहुर्मुहुः प्रणम्य यत् सिद्धान्तचिन्तामणिटीकालेखनकार्यं एकविंशत्युत्तरपंचविंशतिशततमे मया प्रारब्धं, तदधुना मांगीतुंगी सिद्धक्षेत्रस्य यात्रायाः मंगलविहारकाले त्रयोविंशत्युत्तरपंचविंशतिशततमे वीराब्दे मार्गे एव निर्विघ्नतया जिनदेवकृपाप्रसादेन महद्दुर्घोल्लासेन समाप्यते। एतत् सरस्वत्या देव्यः अनुकंपामाहात्म्यमेव विज्ञायते, मयैव महदाश्चर्यं प्रतीयते।”

इस खंड में कुल सूत्र संख्या १७७+१२८४+५२७+८७२+५१५=२३७५ है।

मेरे द्वारा लिखित पेजों की संख्या १६१+८८+१३०+१८९+१९३+१८७=९४८ है।

इस प्रकार ‘जीवस्थान’ नामक प्रथम खण्ड (अंतर्गत छह पुस्तकों) का यह संक्षिप्त सार मैंने लिखा है।

द्वितीय खण्ड — क्षुद्रकबंध

इसे प्राकृत भाषा में ‘खुदाबंध’ कहते हैं एवं संस्कृत भाषा में ‘क्षुद्रकबंध’ नाम है।

इसे क्षुद्रक बंध कहने का अभिप्राय यह है कि —

आगे स्वयं भूतबलि आचार्य ने ‘तीस हजार’ सूत्रों में ‘महाबंध’ नाम से छठा खण्ड स्वतंत्र बनाया है। इसीलिए १५८९ सूत्रों में रचित यह ग्रंथ ‘क्षुद्रकबंध’ नाम से सार्थक है।

इस ग्रंथ की टीका को मैंने ‘पद्मपुरा’ तीर्थ पर प्रारंभ किया था अतः मंगलाचरण में श्रीपद्मप्रभ भगवान को नमस्कार किया है। यथा —

श्रीपद्मप्रभदेवस्य, विश्वातिशयकारिणे।

नमोऽभीप्सितसिद्ध्यर्थ, ते च दिव्यध्वनिं नुमः॥१॥

इस खण्ड में जीवों की प्ररूपणा स्वामित्वादि ग्यारह अनुयोगों द्वारा गुणस्थान विशेषण को छोड़कर मार्गणा स्थानों में की गई है। इन ग्यारह अनुयोगद्वारों के नाम — १. एक जीव की अपेक्षा स्वामित्व २. एक जीव की अपेक्षा काल ३. एक जीव की अपेक्षा अन्तर ४. नाना जीवों की अपेक्षा भंगविचय ५. द्रव्यप्रमाणानुगम ६. क्षेत्रानुगम ७. स्पर्शनानुगम ८. नाना जीवों की अपेक्षा काल ९. नाना जीवों की अपेक्षा अन्तर १०. भागाभागानुगम और ११. अल्पबहुत्वानुगम। अंत में ग्यारहों अनुयोगद्वारों की चूलिका रूप से ‘महादण्डक’ दिया गया है। यद्यपि इसमें अनुयोगद्वारों की अपेक्षा ११ अधिकार ही हैं फिर भी प्रारंभ में प्रस्तावनारूप में ‘बंधक सत्त्वप्ररूपणा’ और अंत में चूलिकारूप में महादण्डक ऐसे १३ अधिकार भी कहे जा सकते हैं।

बंधक सत्त्वप्ररूपणा — इसमें ४३ सूत्र हैं। जिनमें चौदह मार्गणाओं के भीतर कौन जीव कर्मबंध करते हैं और कौन नहीं करते, यह बतलाया गया है।

१. एक जीव की अपेक्षा स्वामित्व — इस अधिकार में मार्गणाओंसंबंधी गुण व पर्याय कौन से भावों से प्रगत होते हैं, इत्यादि विवेचन है।

२. एक जीव की अपेक्षा काल — इस अनुयोगद्वार में प्रत्येकगति आदि मार्गणा में जीव की जघन्य और उत्कृष्ट कालस्थिति का निरूपण किया गया है।

३. एक जीव की अपेक्षा अंतर — एक जीव का गति आदि मार्गणाओं के प्रत्येक अवान्तर भेद से जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल — विरहकाल कितने समय का होता है?

४. नाना जीवों की अपेक्षा भंगविचय — भंग-प्रभेद, विचय-विचारणा, इस अधिकार में भिन्न-भिन्न मार्गणाओं में जीव नियम से रहते हैं या कभी रहते हैं या कभी नहीं भी रहते हैं, इत्यादि विवेचना है।

५. द्रव्यप्रमाणानुगम — भिन्न-भिन्न मार्गणाओं में जीवों का संख्यात, असंख्यात और अनंतरूप से अवसर्पिणी-उत्सर्पिणी आदि काल प्रमाणों की अपेक्षा वर्णन है।

६. क्षेत्रानुगम — सामान्यलोक, अधोलोक, ऊर्ध्वलोक, तिर्यक्लोक और मनुष्यलोक, इन पाँचों लोकों के आश्रय से स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, सात समुद्रघात और उपपाद की अपेक्षा वर्तमान क्षेत्र की प्ररूपणा की गई है।

७. स्पर्शनानुगम — चौदह मार्गणाओं में सामान्य आदि पाँचों लोकों की अपेक्षा वर्तमान और अतीतकाल के निवास को दिखाया है।

८. नाना जीवों की अपेक्षा कालानुगम — नाना जीवों की अपेक्षा अनादि अनंत, अनादिसांत, सादि अनंत और सादि सान्त काल भेदों को लक्ष्य करके जीवों की काल प्ररूपणा की गई है।

९. नाना जीवों की अपेक्षा अन्तरानुगम — मार्गणाओं में नाना जीवों की अपेक्षा बंधकों के जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल का निरूपण किया गया है।

१०. भागाभागानुगम — इसमें मार्गणाओं के अनुसार सर्वजीवों की अपेक्षा बंधकों के भागाभाग का वर्णन है।

११. अल्पबहुत्वानुगम — चौदह मार्गणाओं के आश्रय से जीवसमासों का तुलनात्मक प्रमाण प्ररूपित किया है।

अनन्तर चूलिकारूप 'महादण्डक' अधिकार में गर्भोपक्रांतिक मनुष्य पर्याप्त से लेकर निगोद जीवों तक के जीवसमासों का 'अल्पबहुत्व' निरूपित है।

इस प्रकार क्रमशः इस द्वितीय खण्ड में सूत्रों की संख्या —

४३+९१+२१६+१५१+२३+१७१+१२४+२७४+५५+६८+८८+२०५+७९=१५९४ है।

मेरे द्वारा सिद्धांतचिंतामणि टीका में पृष्ठ संख्या — २८१ है।

महत्वपूर्ण विषय — इस ग्रंथ में एक महत्वपूर्ण विषय आया है, जिसे यहाँ उद्धृत किया जा रहा है —

“बादरणिगोदपदिद्विदअपदिद्विदाणमेत्थ सुत्ते वणप्फदिसण्णा किण्ण णिहिट्ठा?

गोदमो एत्थ पुच्छेयत्त्वो। अम्हेहि गोदमो बादरणिगोदपदिद्विदाणं वणप्फदिसण्णं णेच्छदि त्ति तस्स अहिप्पाओ कहिओ१।”

शंका — वनस्पति नामकर्म के उदय से संयुक्त जीवों के वनस्पति संज्ञा देखी जाती है। बादरनिगोद प्रतिष्ठित और अप्रतिष्ठित जीवों को यहाँ सूत्र में 'वनस्पतिसंज्ञा' क्यों नहीं निर्दिष्ट की?

समाधान — 'गौतम गणधर से पूछना चाहिए।' गौतम गणधरदेव बादर निगोद प्रतिष्ठित जीवों की वनस्पति संज्ञा नहीं मानते। हमने यहाँ उनका अभिप्राय व्यक्त किया है।

इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि जहाँ सूत्रों में जैन ग्रंथों में दो मत आये हैं, वहाँ टीकाकारों ने अपना अभिमत न देकर दोनों ही रख दिये हैं।

इस ग्रंथ की टीका का समापन मैंने हस्तिनापुर में 'रत्नत्रयनिलयवसतिका' में मगसिर शुक्ला त्रयोदशी,

वीर नि. संवत् २५२४, दिनांक-१२-१२-१९९७ को पूर्ण की है।

उसकी संक्षिप्त प्रशस्ति इस प्रकार है —

वीराब्दे दिग्द्विखट्वयंके, शांतिनाथस्य सन्मुखे। रत्नत्रयनिलयेऽस्मिन्, हस्तिनागपुराभिधे ॥१॥

षट्खण्डागमग्रंथेऽस्मिन्, खण्डद्वितीयकस्य हि। क्षुद्रकबंधनाम्नोऽस्य, टीकेयं पर्यपूर्यत ॥२॥

गणिन्या ज्ञानमत्येयं, टीकाग्रन्थश्च भूतले। जीयात् ज्ञानर्द्धये भूयात् भव्यानां मे च संततम् ॥३॥

तृतीय खण्ड — बंधस्वामित्वविचय

पुस्तक ८ —

इस तृतीय खण्ड में नाम के अनुसार ही बंध के स्वामी के बारे में विचार किया गया है। यथा —

“जीवकम्पाणं मिच्छत्तासंजमकसायजोगेहि एयत्तपरिणामो बंधो^१।”

जीव और कर्मों का मिथ्यात्व, असंयम, कषाय और योगों से जो एकत्व परिणाम होता है, वह बंध है और बंध के वियोग को मोक्ष कहते हैं।

बंध के स्वामित्व के विचय — विचारणा, मीमांसा और परीक्षा ये एकार्थक शब्द हैं।

वर्तमान में जो साधु या विद्वान् मिथ्यात्व को बंध में ‘अकिंचित्कर’ कहते हैं उन्हें इन षट्खण्डागम की पंक्तियों पर ध्यान देना चाहिए। अनेक स्थलों पर आचार्यों ने कहा है — “मिच्छत्तासंजमकसायजोगभेदेण चत्तारि मूलपच्चया^२।” मिथ्यात्व, असंयम, कषाय और योग ये चार बंध के मूलप्रत्यय — मूलकारण हैं।

यहाँ भी गुणस्थानों में बंध के स्वामी का विचार करके मार्गणाओं में वर्णन किया गया है।

सूत्रों में बंध-अबंध का प्रश्न करके उत्तर दिया है। यथा—“पाँच ज्ञानावरणीय, चार दर्शनावरणीय, यशःकीर्ति, उच्चगोत्र और पाँच अंतराय इनका कौन बंधक है और कौन अबंधक है?^३ ॥५॥

सूत्र में ही उत्तर दिया है —

“मिथ्यादृष्टि से लेकर सूक्ष्मसांपरायिक शुद्धसंयत उपशमक व क्षपक तक पूर्वोक्त ज्ञानावरणादि प्रकृतियों के बंधक हैं। सूक्ष्मसांपरायिक काल के अंतिम समय में जाकर इन प्रकृतियों का बंध व्युच्छिन्न होता है। ये बंधक हैं, शेष अबंधक हैं^४ ॥६॥

यहाँ पाँचवें प्रश्नवाचक सूत्र में टीकाकार ने इस सूत्र को देशामर्शक मानकर तेईस पृच्छायें की हैं —

१. यहाँ क्या बंध की पूर्व में व्युच्छिति होती है? २. क्या उदय की पूर्व में व्युच्छिति होती है? ३. या क्या दोनों की साथ में व्युच्छिति होती है? ४. क्या अपने उदय के साथ इनका बंध होता है? ५. क्या पर प्रकृतियों के उदय के साथ इनका बंध होता है? ६. क्या अपने और पर दोनों के उदय के साथ इनका बंध होता है? ७. क्या सांतर बंध होता है? ८. क्या निरंतर बंध होता है? ९. या क्या सांतर-निरंतर बंध होता है? १०. क्या सनिमित्तक बंध होता है? ११. या क्या अनिमित्तक बंध होता है? १२. क्या गति संयुक्तबंध होती है? १३. या क्या गति संयोग से रहित बंध होता है? १४. कितनी गति वाले जीव स्वामी हैं? १५. और कितनी गति वाले स्वामी नहीं हैं? १६. बंधाध्वान कितना है — बंध की सीमा किस गुणस्थान से किस गुणस्थान तक है? १७. क्या अंतिम समय में बंध की व्युच्छिति होती है? १८. क्या प्रथम समय में बंध की व्युच्छिति होती है?

१-२. षट्खण्डागम (धवलाटीकासमन्वित) पु. ८, पृ. २-१६१।

३-४. षट्खण्डागम (धवलाटीकासमन्वित) पु. ८, पृ. ७-१३।

१९. या अप्रथम अचरिम समय में बंध की व्युच्छित्ति होती है? २०. क्या बंध सादि है? २१. या क्या अनादि है? २२. क्या बंध ध्रुव ही होता है? २३. या क्या अध्रुव होता है?

इस प्रकार ये २३ पृच्छायें पूछी गई इस पृच्छा में अंतर्भूत हैं, ऐसा जानना चाहिए।

पुनः इनका उत्तर दिया गया है।

इस प्रकार इस ग्रंथ में कुल ३२४ सूत्र हैं।

इस ग्रंथ की संस्कृत टीका मैंने मार्गशीर्ष कृ. १३ को (दिनांक १२-१२-९७) हस्तिनापुर में प्रारंभ की थी। उस समय 'श्री ऋषभदेव समवसरण श्रीविहार' की योजना बनाई थी। भगवान ऋषभदेव का धातु का एक सुंदर ८'x८' फुट का समवसरण बनवाया गया था। इसके उद्घाटन की तैयारियाँ चल रही थीं। इसी संदर्भ में मैंने मंगलाचरण में तीन श्लोक लिखे थे। यथा —

सिद्धान् नष्टाष्टकर्माग्निं, नत्वा स्वकर्महानये। बंधस्वामित्वविचयो, ग्रंथः संकीर्त्यते मया॥१॥

श्रीमत्-ऋषभदेवस्य, श्रीविहारोऽस्ति सौख्यकृत्। जगत्यां सर्वजीवाना-मतो देव! जयत्वह॥२॥

यास्त्यनन्तार्थगर्भस्था, द्रव्यभावश्रुतान्विता। सापि सूत्रार्थयुङ्मान्ये! श्रुतदेवि! प्रसीद नः॥३॥

पुनः दिल्ली में मैंने द्वि. ज्येष्ठ शु. ५ श्रुतपंचमी वीर नि.सं. २५२५ को (दि. १८-६-१९९९ को) डेढ़ वर्ष में प्रीतविहार में श्रीऋषभदेव कमलमंदिर में पूर्ण किया है।

इस ग्रंथ के अंत में मैंने ध्यान करने के लिए १४८ कर्मप्रकृतियों से विरहित १४८ सूत्र बनाये हैं। यथा —

“मतिज्ञानावरणीयकर्मरहितोऽहं शुद्धचिन्मयचित्तामणिस्वरूपोऽहम् ॥१॥

पूर्णता का अंतिम श्लोक —

ग्रन्थोऽयं बंधस्वामित्व-विचयो मंगलं क्रियात्।

श्री शान्तिनाथतीर्थेशः, कुर्यात् सर्वत्र मंगलम् ॥८॥

इस प्रकार संक्षेप में इस तृतीय खण्ड का सार दिया है।

चतुर्थ — वेदना खण्ड

पुस्तक १ —

इस चतुर्थ और पंचम खण्ड में जो विषय विभाजित हैं, उनका विवरण इस प्रकार है —

अग्रायणीय पूर्व के अर्थाधिकार चौदह हैं — १. पूर्वात २. अपरान्त ३. ध्रुव ४. अध्रुव ५. चयनलब्धि ६. अध्रुवसंप्रणिधान ७. कल्प ८. अर्थ ९. भौमावयाद्य, १०. कल्पनिर्याण ११. अतीतकाल १२. अनागतकाल १३. सिद्ध और १४. बुद्ध^१।

यहाँ 'चयनलब्धि' नाम के पाँचवें अधिकार में 'महाकर्म प्रकृतिप्राभृत' संगृहीत है। उसमें ये चौबीस अनुयोगद्वार ज्ञातव्य हैं। १. कृति २. वेदना ३. स्पर्श ४. कर्म ५. प्रकृति ६. बंधन ७. निबंधन ८. प्रक्रम ९. उपक्रम १०. उदय ११. मोक्ष १२. संक्रम १३. लेश्या १४. लेश्याकर्म १५. लेश्या परिणाम १६. सातासात १७. दीर्घ-ह्रस्व १८. भवधारणीय १९. पुद्गलात् २०. निधत्तानिधत्त २१. निकाचितानिकाचित २२. कर्मस्थिति २३. पश्चिमस्कंध और २४. अल्पबहुत्व^२।

इन चौबीस अनुयोगद्वारों को षट्खण्डागम की मुद्रित नवमी पुस्तक से लेकर सोलहवीं तक में 'वेदना'

और 'वर्गणा' नाम के दो खंडों में विभक्त किया है। वेदना खण्ड में ९, १०, ११ और १२ ऐसे चार ग्रंथ हैं। इस नवमी पुस्तक में मात्र प्रथम 'कृति' अनुयोग द्वारा ही वर्णित है। छ्यालिसवें सूत्र में कृति के सात भेद किये हैं—

१. नामकृति २. स्थापनाकृति ३. द्रव्यकृति ४. गणनकृति ५. ग्रन्थकृति ६. करणकृति और ७. भावकृति।

इन कृतियों का विस्तार से वर्णन करके अंत में कहा है कि— यहाँ 'गणनकृति' से प्रयोजन है^१।

इस ग्रंथ में श्रीभूतबलि आचार्य ने 'णमो जिणाणं' आदि गणधरवलय मंत्र लिए हैं जो कि श्री गौतमस्वामी द्वारा रचित हैं। यहाँ "णमो जिणाणं" से लेकर "णमो वड्डमाणबुद्धरिसिस्स।" चवालीस मंत्र लिए हैं। अन्यत्र 'पाक्षिक प्रतिक्रमण' एवं 'प्रतिक्रमणग्रन्थत्रयी' टीकाग्रंथ तथा भक्तामर स्तोत्र ऋद्धिमंत्र आदि में अड़तालीस मंत्र लिये गये हैं।

इन ४८ मंत्रों को 'श्रीगौतमस्वामी' द्वारा रचित कृतियों में इसी ग्रंथ में दिया गया है।

इस नवमी पुस्तक में टीकाकार श्री वीरसेनाचार्य ने बहुत ही विस्तार से इन मंत्रों का अर्थ स्पष्ट किया है। अनंतर 'सिद्धान्त ग्रंथों' के स्वाध्याय के लिए द्रव्यशुद्धि, क्षेत्रशुद्धि, कालशुद्धि और भावशुद्धि का विवेचन विस्तार से किया है।

इस ग्रंथ की 'सिद्धान्तचिन्तामणि' टीका मैंने शरदपूर्णिमा वी.नि.सं. २५२५ को (२४-१०-९९ को) दिल्ली में राजाबाजार के दिगम्बर जैन मंदिर में प्रारंभ की थी।

श्री गौतमस्वामी के मुखकमल से विनिर्गत गणधरवलय मंत्रों की टीका लिखने समय मुझे एक अपूर्व ही आल्हाद प्राप्त हुआ है। इसकी पूर्णता मैंने आश्विन शु.१५—शरदपूर्णिमा वीर.नि.सं. २५२६ को (१३-१०-२००० को) दिल्ली में ही प्रीतविहार-श्रीऋषभदेव कमलमंदिर में की है। जिसका अंतिम श्लोक स्मिलिखित है—

अहिंसा परमो धर्मो, यावद् जगति वत्स्यते।

यावन्मेरुश्च टीकेयं, तावन्नंद्याच्च नः श्रियै॥१॥

इस प्रकार नवमी पुस्तक का किंचित् सार लिखा गया है।

पुस्तक १०—

इस ग्रंथ में 'वेदना' नाम का द्वितीय अनुयोगद्वार है। इस वेदानुयोग द्वार के १६ भेद हैं—

१. वेदनानिक्षेप २. वेदनानयविभाषणता ३. वेदनानामविधान ४. वेदनाद्रव्यविधान ५. वेदनाक्षेत्रविधान ६. वेदनाकालविधान ७. वेदनाभावविधान ८. वेदनाप्रत्ययविधान ९. वेदनास्वामित्वविधान १०. वेदनावेदनाविधान ११. वेदनागतिविधान १२. वेदनाअनंतरविधान १३. वेदनासन्निकर्षविधान १४. वेदनापरिमाणविधान १५. वेदनाभागाभागविधान और १६. वेदनाअल्पबहुत्वविधान^२।

इस दशवीं पुस्तक में प्रारंभ के ५ अनुयोगद्वारों का वर्णन है। सूत्र संख्या ३२३ है। आगे ११वीं और १२वीं पुस्तक में सभी वेदनाओं का वर्णन होने से इस तृतीय खण्ड को वेदनाखण्ड कहा है।

यहाँ प्रथम 'वेदना निक्षेप' के भी नामवेदना, स्थापनावेदना, द्रव्यवेदना और भाववेदना ऐसे निक्षेप की अपेक्षा चार भेद हैं।

दूसरे 'वेदनानयविभाषणा' में नयों की अपेक्षा वेदना को घटित किया है। तीसरे 'वेदनानामविधान' के

१. षट्खण्डागम (धवलाटीकासमन्वित) पु. ९, पृ. ४५२। २. षट्खण्डागम (धवलाटीकासमन्वित) पु. १०, सूत्र १।

ज्ञानावरण आदि आठ कर्मों की अपेक्षा आठ भेद कर दिये हैं^१।

वेदना द्रव्यविधान के तीन अधिकार किये हैं — पदमीमांसा, स्वामित्व और अल्पबहुत्व। इस ग्रंथ में इनका विस्तार से वर्णन है।

इस ग्रंथ में वेदनाक्षेत्रविधान के भी पदमीमांसा, स्वामित्व और अल्पबहुत्व ऐसे तीन भेद किये हैं।

आश्विन शु. १५ — शरदपूर्णिमा (१३-१०-२०००) को दिल्ली में मैंने टीका लिखना प्रारंभ किया था पुनः

इस ग्रंथ की टीका का समापन शौरीपुर भगवान नेमिनाथ की जन्मभूमि में वैशाख कृ. ७, वी.सं. २५२८, दिनांक ३-५-२००२ को किया है। मेरे द्वारा लिखित पृ. संख्या ११८ हैं।

इस प्रकार संक्षिप्त सार दिया गया है।

पुस्तक नं. ११ —

इस ११वें ग्रंथ में वेदनाकाल विधान और वेदनाभाव विधान का वर्णन है। सूत्र इसमें ५९३ हैं और पृ. संख्या २०० है। इसके पूर्वाद्ध की पूर्णता “तीर्थंकर ऋषभदेव तपस्थली प्रयाग” श्री ऋषभदेव दीक्षा तीर्थ पर की है एवं उद्धारार्थ को अर्थात् पूरे ग्रंथ का समापन पावापुरी-भगवान महावीर की निर्वाणभूमि पर श्रावण शु. ७, वी.सं. २५२९, दिनांक ४-८-२००३ को किया है।

पुस्तक १२ —

इस ग्रंथ में वेदनाअनुयोगद्वार के १६ भेदों में से ८वें से लेकर १६वें तक भेद वर्णित हैं — ८. वेदनाप्रत्ययविधान ९. वेदनास्वामित्वविधान १०. वेदनावेदनाविधान ११. वेदनागतिविधान १२. वेदनाअनंतरविधान १३. वेदनासन्निकर्षविधान १४. वेदनापरिमाणविधान १५. वेदनाभागाभागविधान और १६. वेदनाअल्पबहुत्वविधान।

इन नव वेदना अनुयोगद्वारों का इस ग्रंथ में विस्तार से वर्णन है। इसमें सूत्र संख्या ५३३ है।

‘वेदनाप्रत्ययविधान’ में जीवहिंसा, असत्य आदि प्रत्यय — निमित्त से ज्ञानावरण आदि कर्मों की वेदना होती है। जैसे कि —

मुसावादपच्चए॥३॥

.....मिथ्यात्व, असंयम, कषाय और प्रमाद से उत्पन्न वचनसमूह असत् वचन है इत्यादि।

ऐसे संपूर्ण वेदनाओं का वर्णन किया गया है।

इसमें सूत्र ५३३ हैं, पृ. १७५ हैं।

इस ग्रंथ की टीका मैंने कुण्डलपुर तीर्थ पर पौष कृ. ११ वी.नि.सं. २५३० के दिन पूर्ण की है। इसी संदर्भ में मैंने लिखा है —

अस्यां पौषकृष्णैकादश्यां तिथौ काशीदेशे वाराणस्यां नगर्या महानृपतेः अश्वसेनस्य महाराज्यः वामादेव्यो गर्भात् भगवान् पार्श्वनाथो जज्ञे। उग्रवंशशिरोमणिः मरकतमणिसन्निभः त्रयस्त्रिंशत्-मस्तीर्थकरोऽयं अस्मात् वीरनिर्वाणसंवत्सरात् द्विसहस्र-अष्टशताशीतिवर्षपूर्वं अवततार।

उक्तं च तिलोयपण्णत्तिग्रंथे —

अट्टत्तरिअधियाए वेसदपरिमाणवासअदिरित्ते।

पासजिणुप्पत्तीदो उप्पत्तीवड्डमाणस्स ॥५७७॥

भगवान् पार्श्वनाथ की उत्पत्ति के २७८ वर्ष बाद वर्धमान भगवान् की उत्पत्ति हुई है तथा भगवान् महावीर को जन्म लिये २६०२ वर्ष हुए अतः २७८ में वह संख्या जोड़ देने से २७८+२६०२=२८८० वर्ष हो गये अतः मैंने यह घोषणा की थी कि आगे आने वाले पौष कृ. ११ (६-१-२००५) को भगवान् पार्श्वनाथ का 'तृतीय सहस्राब्दि महोत्सव' प्रारंभ करें पुनः एक वर्ष तक सारे भारत में भगवान् पार्श्वनाथ का गुणगान करें। इस प्रकार इस बारहवीं पुस्तक का विषय संक्षेप में लिखा है।

पंचम खण्ड — वर्गणाखण्ड

पुस्तक १३ —

नवमीं पुस्तक में चयनलब्धि के 'महाकर्मप्रकृतिप्राभृत' के 'कृति, वेदना, स्पर्श, कर्म, प्रकृति आदि चौबीस अनुयोगद्वार कहे गये हैं। वेदना खण्ड में मात्र 'कृति और वेदना' ये दो अनुयोगद्वार आये हैं। शेष २२ अनुयोगद्वार इस 'वर्गणाखण्ड' नाम के पांचवें खण्ड में वर्णित हैं। इस खण्ड में भी १३वीं, १४वीं, १५वीं एवं १६वीं ऐसी चार पुस्तकें हैं। इस खण्ड में 'बंधनीय' का आलंबन लेकर वर्गणाओं का सविस्तार वर्णन किया गया है अतः इसे 'वर्गणाखण्ड' नाम दिया है।

इस तेरहवीं पुस्तक में 'स्पर्श, कर्म और प्रकृति' इन तीन अनुयोगद्वारों का वर्णन है।

इसमें 'स्पर्श अनुयोगद्वार' के सोलह अनुयोगद्वार ज्ञातव्य हैं—स्पर्शनिक्षेप, स्पर्शनयविभाषणता, स्पर्शनामविधान, स्पर्शद्रव्यविधान, स्पर्शक्षेत्रविधान, स्पर्शकालविधान, स्पर्शभावविधान, स्पर्शप्रत्ययविधान, स्पर्शस्वामित्वविधान, स्पर्शस्पर्शविधान, स्पर्शगतिविधान, स्पर्शअनंतरविधान, स्पर्शसन्निकर्षविधान, स्पर्शपरिमाणविधान, स्पर्शभागाभागविधान और स्पर्शअल्पबहुत्व।^१

पुनश्च प्रथम भेद 'स्पर्शनिक्षेप' के १३ भेद किये हैं — नामस्पर्श, स्थापनास्पर्श, द्रव्यस्पर्श, एकक्षेत्रस्पर्श, अनंतरक्षेत्रस्पर्श, देशस्पर्श, त्वक्स्पर्श, सर्वस्पर्श, स्पर्शस्पर्श, कर्मस्पर्श, बंधस्पर्श, भव्यस्पर्श और भावस्पर्श।^२

इस तेरहवें ग्रंथ में सूत्र की टीका के अनंतर मैंने प्रायः 'तात्पर्यार्थ' दिया है। जैसे कि — स्पर्श अनुयोगद्वार में सूत्र २६ में टीका के अनंतर लिखा है।

“अत्र तात्पर्यमेतत्-अष्टसु कर्मसु मोहनीयकर्म एव संसारस्य मूलकारणमस्ति। दर्शनमोहनीय-निमित्तेन जीवा मिथ्यात्वस्य वंशगताः सन्तः अनादिसंसारे परिभ्रमन्ति। चारित्रमोहनीयबलेन तु असंयताः सन्तः कर्माणि बध्नन्ति।

उक्तं च श्री पूज्यपादस्वामिना —

बध्यते मुच्यते जीवः सममः निर्ममः क्रमात् ।

तस्मात् सर्वप्रयत्नेन निर्ममत्वं विचिन्तयेत् ॥

एतज्ज्ञात्वा कर्मस्पर्शकारणभूतमोहरागद्वेषादिविभावभावान् व्यक्त्वा स्वस्मिन् स्वभावे स्थिरीभूय स्वस्थो भवन् स्वात्मोत्थपरमानंदामृतं सुखमनुभवनीयमिति।”

कर्म अनुयोगद्वार में भी प्रथम ही १६ अनुयोगद्वाररूप भेद कहे हैं — कर्मनिक्षेप, कर्मनयविभाषणता, कर्मनाम विधान आदि। पुनश्च कर्मनिक्षेप के दश भेद किये हैं—नामकर्म, स्थापनाकर्म, द्रव्यकर्म, प्रयोगकर्म, समवदानकर्म, अव्यःकर्म, ईर्यापथकर्म, तपःकर्म, क्रियाकर्म और भावकर्म।

१. षट्खण्डागम (धवलाटीकासमन्वित) पु. १२, पृ. २७९। २. षट्खण्डागम (धवलाटीकासमन्वित) पु. १३, सूत्र २।

३. षट्खण्डागम (धवलाटीकासमन्वित) पु. १३, सूत्र ४।

इसमें 'तपःकर्म' के बारह भेदों का विस्तार से वर्णन किया गया है। इसी प्रकार 'क्रियाकर्म' में —
 “तमादाहीणं पदाहीणं तिक्खुत्तं तियोणदं, चदुसिरं बारसावत्तं तं सव्वं किरियाकम्मं णाम^१।।२८।।”

यह क्रियाकर्म विधिवत् सामायिक — देववंदना में घटित होता है। इसी सूत्र को उद्धृत करके अनगारधर्माभूत, चारित्रसार आदि ग्रंथों में साधुओं की सामायिक को 'देववंदना' रूप में सिद्ध किया है। इसका स्पष्टीकरण मूलाचार, आचारसार आदि ग्रंथों में भी है। 'क्रियाकलाप' जिसका संपादन पं. पन्नलाल सोनी ब्यावर वालों ने किया था उसमें तथा मेरे द्वारा संकलित (लिखित) 'मुनिचर्या' में भी यह विधि सविस्तार वर्णित है। इन प्रकरणों को लिखते हुए, पढ़ते हुए मुझे एक अद्भुत ही आनंद का अनुभव हुआ है।

तृतीय 'प्रकृति' अनुयोगद्वार में भी सोलह अधिकार कहे हैं — प्रकृतिनिक्षेप, प्रकृतिनयविभाषणता, प्रकृतिनामविधान, प्रकृतिद्रव्यविधान आदि।

इसमें प्रथम प्रकृतिनिक्षेप के चार भेद किये हैं — नामप्रकृति, स्थापनाप्रकृति, द्रव्यप्रकृति और भावप्रकृति।

इसमें द्रव्यप्रकृति के दो भेद हैं — आगमद्रव्यप्रकृति और नोआगमद्रव्यप्रकृति। नोआगमद्रव्यप्रकृति के भी दो भेद हैं — कर्मप्रकृति और नोकर्म प्रकृति।

कर्मप्रकृति के ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र और अंतराय कर्म प्रकृति।

इस तेरहवीं पुस्तक में प्रकृति अनुयोगद्वार में व्यंजनावग्रहावरणीय के ४ भेद किये हैं। धवला टीका में श्री वीरसेनस्वामी ने श्रोत्रेन्द्रिय के विषयभूत शब्दों के अनेक भेद करके कहा है —

“सहपोग्गला सगुप्पत्तिपदेसादो उच्छलिय दसदिसासु गच्छमाणा उक्कस्सेण जाव लोगंतं ताव गच्छंति।

कुदो एदं णव्वदे?

सुत्ताविरूद्धाइरियवयणादो। ते किं सव्वे सहपोग्गला लोगंतं गच्छंति आहो ण सव्वे इति पुच्छिदे सव्वे ण गच्छंति, थोवा चेव गच्छंति।.....

जहण्णेण अंतोमुहुत्तकालेण लोगंतपत्ती होदि त्ति उवदेसादो^२।”

शब्द पुद्गल अपने उत्पत्ति प्रदेश से उछलकर दशों दिशाओं में जाते हुए उत्कृष्टरूप से लोक के अंतभाग तक जाते हैं।

यह किस प्रमाण से जाना जाता है?

यह सूत्र के अविरुद्ध व्याख्यान करने वाले आचार्यों के वचन से जाना जाता है।

क्या वे सब शब्दपुद्गल लोक के अंत तक जाते हैं या सब नहीं जाते?

सब नहीं जाते हैं, थोड़े ही जाते हैं। यथा — शब्द पर्याय से परिणत हुए प्रदेश में अनंत पुद्गल अवस्थित रहते हैं। दूसरे आकाश प्रदेश में उनसे अनंतगुणे हीन पुद्गल अवस्थित रहते हैं।

इस तरह वे अनंतरोपनिधा की अपेक्षा वातवलयपर्यंत सब दिशाओं में उत्तरोत्तर एक-एक प्रदेश के प्रति अनंतगुणे हीन होते हुए जाते हैं।

आगे क्यों नहीं जाते?

१. षट्खण्डागम (धवलाटीकासमन्वित) पु. १३, सूत्र २८, पृ. ८८ ।

२. षट्खण्डागम (धवलाटीकासमन्वित) पु. १३, पृ. २२२।

धर्मास्तिकाय का अभाव होने से वे वातवलय के आगे नहीं जाते हैं। ये सब शब्द पुद्गल एक समय में ही लोक के अंत तक जाते हैं, ऐसा कोई नियम नहीं है। किन्तु ऐसा उपदेश है कि कितने ही शब्द पुद्गल कम से कम दो समय से लेकर अंतर्मुहूर्त काल के द्वारा लोक के अंत को प्राप्त होते हैं।

अष्टसहस्री ग्रंथ में भी शब्द पुद्गलों का आना, पकड़ना, टकराना आदि सिद्ध किया है क्योंकि ये पौद्गलिक हैं—पुद्गल की पर्याय हैं।

इन सभी प्रकरणों के अध्ययन से यह स्पष्ट है कि—

आज जो शब्द टेलीविजन—दूरदर्शन, रेडियो—आकाशवाणी, टेलीफोन—दूरभाष आदि के द्वारा हजारों किमी. दूर से सुने जाते हैं। टेलीफोन से कई हजार किमी. दूर से वार्तालाप किया जाता है। टेपेकार्ड, वी.डी.ओ. आदि में भरे जाते हैं, महीनों, वर्षों तक ज्यों की त्यों सुने जाते हैं। यह सब पौद्गलिक चमत्कार है।

वास्तव में ये शब्द मुख से निकलने के बाद लोक के अंत तक फैल जाते हैं। इसीलिए इनका पकड़ना, दूर तक पहुँचाना, भेजना, यंत्रों में भर लेना आदि संभव है।

इन्हीं भावनाओं के अनुसार मैंने ३० वर्ष पूर्व भगवान 'शांतिनाथ स्तुति' में यह उद्गार लिखे थे। यथा—

सुभक्तिवरयंत्रतः स्फुटरवा ध्वनिक्षेपकात्। सुदूरजिनपार्श्वगा भगवतःस्पृशन्ति क्षणात्।

पुनः पतनशीलतोऽवपतिता नु ते स्पर्शनात्। भवन्त्यभिमतार्थाः स्तुतिफलं ततश्चाप्यते^१॥२०॥

हे भगवन्! आपकी श्रेष्ठ भक्ति वो ही हुआ ध्वनिविक्षेपण यंत्र, (रेडियो आदि) उससे स्फुट—प्रगट हुई शब्द वर्गणाएं बहुत ही दूर सिद्धालय में—लोक के अग्रभाग में विराजमान आपके पास जाती हैं और वहाँ आपका स्पर्श करती हैं। पुनः पुद्गलमयी शब्दवर्गणाएँ पतनशील होने से यहाँ आकर—भक्त के पास आकर आपसे स्पर्शित होने से ही भव्यजीवों के मनोरथ को सफल कर देती हैं, यही कारण है कि इस लोक में स्तुति का फल पाया जाता है अन्यथा नहीं पाया जा सकता था।

इसमें ज्ञानावरण के अंतर्गत श्रुतज्ञानावरण के विषय में कहते हुए 'श्रुतज्ञान' के विषय में बहुत ही विस्तृत वर्णन किया है।

प्रश्न हुआ है—“श्रुतज्ञानावरणीय कर्म की कितनी प्रकृतियाँ हैं?

उत्तर दिया है—श्रुतज्ञानावरणीय कर्म की संख्यात प्रकृतियाँ हैं।

जितने अक्षर हैं और जितने अक्षर संयोग हैं उतनी प्रकृतियाँ हैं।^२”

पुनश्च—श्रुतज्ञानावरणीयकर्म के बीस भेद किये हैं—पर्यायावरणीय, पर्यायसमासावरणीय, अक्षरावरणीय, अक्षरसमासावरणीय, पदावरणीय, पदसमासावरणीय, आदि से पूर्वसमासावरणीय पर्यंत ये बीस भेद हैं।^३ इनसे पहले श्रुतज्ञान के बीस भेद हैं, जिनके ये आवरण हैं।

उन श्रुतज्ञान के नाम—पर्याय, पर्यायसमास, अक्षर अक्षरसमास, पद, पदसमास, संघात, संघातसमास, प्रतिपत्ति, प्रतिपत्तिसमास, अनुयोगद्वार, अनुयोगद्वारसमास, प्राभृतप्राभृत, प्राभृतप्राभृतसमास, प्राभृत, प्राभृतसमास, वस्तु, वस्तुसमास, पूर्व और पूर्वसमास, ये श्रुतज्ञान के बीस भेद हैं।

१. जिनस्तोत्रसंग्रह (वीर ज्ञानोदय ग्रंथमाला से प्रकाशित) पृ. १५१। २. षट्खण्डागम (धवलाटीकासमन्वित)

पु. १३, सूत्र ४३-४४-४५, पृ. २४५ से। ३. षट्खण्डागम (धवलाटीकासमन्वित) पु. १३, सूत्र ४८, पृ. २६१।

इस ग्रंथ की टीका के लेखन में मैंने जो परम आल्हाद प्राप्त किया है, वह मेरे जीवन में अचिन्त्य ही रहा है। एक तो षट्खण्डागमरूपी परम ग्रंथराज, दूसरे श्रीभूतबलि महान आचार्य के सूत्र, तीसरे श्रीवीरसेनाचार्य की ध्वला टीका और चौथा भगवान महावीर तीर्थ त्रिवेणी का संगम। यही कारण है कि यह ग्रंथ मेरा यहाँ 'तीर्थ त्रिवेणी संगम' में अतिशीघ्र मात्र नव माह में पूर्ण हुआ है।

इस ग्रंथ में श्री वीरसेनाचार्य ने अगणित रत्न भर दिये हैं। यथा — 'श्रुतज्ञानमन्तरेण चारित्रानुत्पत्तेः।'

“द्वादशांगस्य सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राविनाभाविनो मोक्षमार्गत्वेनाभ्युपगमात्।

श्रुतज्ञान के बिना चारित्र की उत्पत्ति नहीं होती है इसलिए चारित्र की अपेक्षा श्रुत की प्रधानता है।

सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र के अविनाभावी द्वादशांग को मोक्षमार्गरूप से स्वीकार किया गया है।

यहाँ पर ५०वें सूत्र में श्रुतज्ञान के इकतालीस (४१) पर्याय शब्द बताये हैं। जैसे — प्रावचन, प्रवचनीय आदि।

इस ग्रंथ में श्रुतज्ञान के पर्याय, पर्यायसमास आदि बीस भेद किये हैं और उन्हीं का विस्तार किया है।

तब प्रश्न यह हुआ है कि — उन्नीसवां 'पूर्व' और बीसवां 'पूर्वसमास' भेद तो इन बीस भेदों में आ गया है पुनः —

अंगबाह्य चौदह प्रकीर्णकाध्याय, आचारांग आदि ग्यारह अंग, परिकर्म, सूत्र, प्रथमानुयोग और चूलिका, इनका किस श्रुतज्ञान में अन्तर्भाव होगा?

तब श्रीवीरसेनस्वामी ने समाधान दिया है कि —

इनका अनुयोगद्वार और अनुयोगद्वारसमास में अन्तर्भाव होता है अथवा प्रतिपत्तिसमास श्रुतज्ञान में इनका अन्तर्भाव कहना चाहिए परंतु पश्चादानुपूर्वी की विवक्षा करने पर इनका 'पूर्वसमास' श्रुतज्ञान में अन्तर्भाव होता है, ऐसा कहना चाहिए।

इस प्रकार इस ग्रंथ में मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्याय और केवलज्ञान का बहुत ही सुन्दर विवेचन है। अनन्तर सर्व कर्मों का वर्णन करके अंत में कहा है कि यहाँ 'कर्म प्रकृति' से ही प्रयोजन है।

यहाँ तक इन १३ ग्रंथों में ५६३० सूत्रों की मेरे द्वारा लिखित संस्कृत टीका के पृष्ठों की संख्या—
२८१+१९१+१४०+८३+१२४+२८७+२५७=१३५६+९४८=२३०४ है।

इस प्रकार संक्षेप में इस ग्रंथ का सार दिया है।

पुस्तक १४ —

इस ग्रंथ में 'कृति, वेदना' आदि २४ अनुयोगद्वारों में से छठे बंधन अनुयोगद्वार का निरूपण है। सूत्र संख्या ५८० है। इसमें बंध, बंधक, बंधनीय और बंधविधान ये भेद किये हैं। पुनश्च बंध के नामबंध, स्थापनाबंध, द्रव्यबंध और भावबंध ये चार भेद कहे हैं।

भावबंध के आगमभावबंध और नोआगमभावबंध दो भेद हैं।

आगम भावबंध के स्थित, जित, परिजित, वाचनोपगत, सूत्रसम, अर्थसम, ग्रंथसम, नामसम और घोषसम ये नव भेद हैं। इनके विषय में वाचना, पृच्छना, प्रतीच्छना, परिवर्तना, अनुप्रेक्षणा, स्तव, स्तुति, धर्मकथा तथा इनसे लेकर जो अन्य उपयोग हैं उनमें भावरूप से जितने उपयुक्त भाव हैं, वे सब आगमभावबंध हैं।^१

१. षट्खण्डागम (ध्वलाटीकासमन्वित) पु. १३, पृ. २७६। २. षट्खण्डागम (ध्वलाटीकासमन्वित) पु. १४, पृ. ७।

नोआगमभावबंध के भी दो भेद हैं — जीव भावबंध और अजीव भावबंध।

इनमें से जीवभावबंध के ३ भेद हैं — विपाकप्रत्ययिक जीवभावबंध, अविपाकप्रत्ययिकजीवभावबंध और तदुभयप्रत्ययिकजीवभावबंध।

इनमें देवभाव, मनुष्यभाव आदि विपाकप्रत्ययिक जीव भावबंध हैं।

अविपाकप्रत्ययिक जीवभावबंध के औपशमिक अविपाकप्रत्ययिकजीवभावबंध और क्षायिकअविपाक-प्रत्ययिकजीवभावबंध, ऐसे दो भेद हैं।

औपशमिक के उपशांत क्रोध, उपशांत मान आदि भेद हैं।

क्षायिक के क्षीणक्रोध, क्षीणमान आदि भेद हैं।

तदुभयप्रत्ययिक जीवभावबंध के क्षायोपशमिक एकेन्द्रियलब्धि, क्षायोपशमिक द्वीन्द्रियलब्धि आदि बहुत भेद हैं।

इस प्रकार सूत्र १३ से १९ तक इन सबका विस्तार है।

ऐसे ही अजीव भावबंध के भी तीन भेद हैं — विपाकप्रत्ययिक, अविपाकप्रत्ययिक और तदुभयप्रत्ययिक अजीवभावबंध। विपाकप्रत्ययिक अजीव भावबंध के प्रयोगपरिणतवर्ण, प्रयोगपरिणतशब्द आदि भेद हैं।

अविपाकप्रत्ययिक अजीव भावबंध के विस्त्रसापरिणतवर्ण आदि भेद हैं।

तथा तदुभयप्रत्ययिक अजीव भावबंध के प्रयोग परिणत वर्ण और विस्त्रसापरिणतवर्ण आदि भेद हैं।

इसके अनंतर द्रव्यबंध के आगम, नोआगम आदि भेद-प्रभेद किये हैं।

इस प्रकार 'बंध' भेद का प्ररूपण किया गया है।

अनंतर 'बंधक' अधिकार में मार्गणाओं में बंधक-अबंधक को विचार करने का कथन है।

अनंतर —

बंधनीय के प्रकरण में — वेदनस्वरूप पुद्गल है, पुद्गल स्कंधस्वरूप हैं और स्कंध वर्गणास्वरूप हैं^१, ऐसा कहा है।

वर्गणाओं का अनुगमन करते हुए आठ अनुयोगद्वार ज्ञातव्य हैं —

वर्गणा, वर्गणाद्रव्य समुदाहार, अनंतरोपनिधा, परंपरोपनिधा, अवहार, यवमध्य, पदमीमांसा और अल्पबहुत्व।

वर्गणा के प्रकरण होने से यहां वर्गणा के १६ अनुयोगद्वार बताये हैं— १. वर्गणा निक्षेप २. वर्गणानयविभाषणता ३. वर्गणाप्ररूपणा ४. वर्गणानिरूपणा ५. वर्गणाध्रुवाध्रुवानुगम ६. वर्गणासांतरनिरंतरानुगम ७. वर्गणाओजयुग्मानुगम ८. वर्गणाक्षेत्रानुगम ९. वर्गणास्पर्शनानुगम १०. वर्गणाकालानुगम ११. वर्गणाअनंतरानुगम १२. वर्गणाभावानुगम १३. वर्गणाउपनयनानुगम १४. वर्गणापरिमाणानुगम १५. वर्गणाभागाभागानुगम और १६. वर्गणा अल्पबहुत्वानुगम।

पुस्तक १५ —

इस ग्रंथ में 'बंधनअनुयोगद्वार' की चूलिका को लिया है जिसमें ५८१ से ७९७ तक सूत्र हैं जो कि २१७ हैं। पुनश्च निबंधन अनुयोगद्वार के सूत्र २० ऐसे कुल २१७+२०=२३७ सूत्र हैं।

बंधन अनुयोगद्वार की चूलिका के अंत में ७९७वें सूत्र में 'बंध विधान' के चार भेद किये हैं — प्रकृतिबंध, स्थितिबंध, अनुभागबंध और प्रदेशबंध॥७९७॥

इस सूत्र की टीका में श्री वीरसेनाचार्य ने कह दिया है कि — ‘श्री भूतबलिभट्टारक’ ने ‘महाबंध’ खण्ड में इन चारों भेदों को विस्तार से लिखा है अतः मैंने यहाँ नहीं लिखा है। यथा —

यहाँ ‘भट्टारक’ पद से महान पूज्य अर्थ विवक्षित है। ये भूतबलि आचार्य महान दिगम्बर आचार्य थे, ऐसा समझना।

“एदेसिं चदुण्णं बंधाणं विहाणं भूदबलिभट्टारएण महाबंधे सप्पवंचेण लिहिदं त्ति अम्मेहिं एत्थ ण लिहिदं। तदो सयले महाबंधे एत्थ परूविदे बंधविहाणं समप्पदि^१।”

इस ग्रंथ में चौबीस अनुयोगद्वारों में से ७वाँ निबंधन, ८वाँ प्रक्रम, ९वाँ उपक्रम, १०वाँ उदय और १२वाँ मोक्ष इन ५ अनुयोगद्वारों का कथन है। सूत्र संख्या ‘निबंधन’ अनुयोगद्वार तक है।

आगे प्रक्रम, उपक्रम, उदय और मोक्ष अनुयोगद्वारों में सूत्रसंख्या नहीं है।

इसमें मंगलाचरण में श्रीवीरसेनाचार्य ने प्रथम निबंधन अनुयोगद्वार में ‘श्री अरिष्टनेमि’ भगवान को नमस्कार किया है।

द्वितीय ‘प्रक्रम’ अनुयोगद्वार में श्री शांतिनाथ भगवान को, तृतीय ‘उपक्रम’ अनुयोगद्वार में श्री अभिनंदन भगवान को एवं चौथे ‘उदय’ अनुयोगद्वार में पुनरपि श्रीशांतिनाथ भगवान को नमस्कार किया है।

निबंधन — ‘निबध्यते तदस्मिन्निति निबंधनम्’ इस निरुक्ति के अनुसार जो द्रव्य जिसमें संबद्ध है, उसे ‘निबंधन’ कहा जाता है। उसके नाम निबंधन, स्थापना, द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावनिबंधन ऐसे छह भेद हैं।

इनमें से नाम, स्थापना को छोड़कर शेष सब निबंधन प्रकृत हैं। यह निबंधन अनुयोगद्वार यद्यपि छहों द्रव्यों के निबंधन की प्ररूपणा करता है तो भी यहाँ उसे छोड़कर कर्मनिबंधन को ही ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि यहाँ अध्यात्म विद्या का अधिकार^२ है।

प्रश्न — निबंधनानुयोगद्वार किसलिए आया है?

उत्तर — द्रव्य, क्षेत्र, काल और योगरूप प्रत्ययों की भी प्ररूपणा की जा चुकी है, उनके मिथ्यात्व, असंयम, कषाय और योगरूप प्रत्ययों की भी प्ररूपणा की जा चुकी है तथा उन कर्मों के योग्य पुद्गलों की भी प्ररूपणा की जा चुकी है। आत्मलाभ को प्राप्त हुए उन कर्मों के व्यापार का कथन करने के लिए निबंधनानुयोग द्वार आया है^३।

उनमें मूलकर्म आठ हैं, उनके निबंधन का उदाहरण देखिये — “उनमें ज्ञानावरण कर्म सब द्रव्यों में निबद्ध है और नो कर्म सर्वपर्यायों में अर्थात् असर्वपर्यायों में — कुछ पर्यायों में वह निबद्ध है^४॥१॥”

यहाँ ‘सब द्रव्यों में निबद्ध है’ यह केवल ज्ञानावरण का आश्रय करके कहा गया है क्योंकि वह तीनों कालों को विषय करने वाली अनंत पर्यायों से परिपूर्ण ऐसे छह द्रव्यों को विषय करने वाले केवलज्ञान का विरोध करने वाली प्रकृति है। ‘असर्व — कुछ पर्यायों में निबद्ध है’ यह कथन शेष चार ज्ञानावरणीय प्रकृतियों की अपेक्षा कहा गया है।

इत्यादि विषयों का इस अनुयोग में विस्तार है।

२. प्रक्रम अनुयोगद्वार के भी नाम, स्थापना आदि की अपेक्षा छह भेद हैं। द्रव्य प्रक्रम के प्रभेदों में कर्म-प्रक्रम आठ प्रकार का है। नोकर्म प्रक्रम सचित्त, अचित्त और मिश्र के भेद से तीन प्रकार का है।

१. षट्खण्डागम (धवलाटीकासमन्वित) सूत्र ७९७ पृ. ५६४। २. षट्खण्डागम (धवलाटीकासमन्वित) पु. १५, पृ. ३।

३. षट्खण्डागम (धवलाटीकासमन्वित) पु. १५, पृ. ३। ४. षट्खण्डागम (धवलाटीकासमन्वित) पु. १, पृ. ४।

क्षेत्रप्रक्रम ऊर्ध्वलोक, अधोलोक और तिर्यग्लोकप्रक्रम के भेद से तीन प्रकार का है। इत्यादि विस्तार को धवला टीका से समझना चाहिए।

३. उपक्रम अनुयोगद्वार में भी पहले नाम, स्थापना आदि से छह भेद किये हैं पुनः द्रव्य उपक्रम के भेद में कर्मोपक्रम के आठ भेद, नो कर्मोपक्रम के सचित्त, अचित्त और मिश्र की अपेक्षा तीन भेद हैं पुनः क्षेत्रोपक्रम — जैसे ऊर्ध्वलोक उपक्रांत हुआ, ग्राम उपक्रांत हुआ व नगर उपक्रांत हुआ आदि।

काल उपक्रम में — बसंत उपक्रांत हुआ, हेमंत उपक्रांत हुआ आदि। यहाँ ग्रंथ में कर्मोपक्रम प्रकृत होने से उसके चार भेद हैं — बंधन उपक्रम, उदीरणा उपक्रम, उपशामना उपक्रम और विपरिणाम उपक्रम।

इसी प्रकार इन सबका इस अनुयोगद्वार में विस्तार है।

४. उदय अनुयोगद्वार में नामादि छह निक्षेप घटित करके 'नोआगमकर्मद्रव्य उदय' प्रकृत है, ऐसा समझना चाहिए।

वह कर्मद्रव्य उदय चार प्रकार का है — प्रकृति उदय, स्थितिउदय, अनुभाग उदय और प्रदेश उदय।

इन सभी में स्वामित्व की प्ररूपणा करते हुए कहते हैं। जैसे —

प्रश्न — पांच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण और पाँच अंतराय इनके वेदक कौन हैं?

उत्तर — इनके वेदक सभी छद्मस्थ जीव होते हैं,^१ इत्यादि। इस प्रकार से यहाँ संक्षेप में इन अनुयोगद्वारों के नमूने प्रस्तुत किये हैं।

५. **मोक्ष** — इसमें श्री मल्लिनाथ भगवान को नमस्कार करके टीकाकार ने मोक्ष के चार निक्षेप कहकर नोआगम द्रव्यमोक्ष के तीन भेद किये हैं — मोक्ष, मोक्षकारण और मुक्त।

जीव और कर्मों का पृथक् होना मोक्ष है। ज्ञान, दर्शन और चारित्र्य ये मोक्ष के कारण हैं। समस्त कर्मों से रहित अनंत दर्शन, ज्ञान आदि गुणों से परिपूर्ण, कृतकृत्य जीव को मुक्त कहा गया है।^२

इस १५वें ग्रंथ की टीका को मैंने आश्विन शु. १५, वी.सं. २५३२, हस्तिनापुर में पूर्ण किया है।

पुस्तक १६ —

'कृति, वेदना, स्पर्श, कर्म, प्रकृति, बंधन, निबंधन, प्रक्रम, उपक्रम, उदय और मोक्ष ये ग्यारह अनुयोगद्वार नवमी पुस्तक से पंद्रहवीं पुस्तक तक आ चुके हैं। अब आगे के १२. संक्रम, १३. लेश्या, १४. लेश्या कर्म १५. लेश्या परिणाम १६. सातासात १७. दीर्घ-ह्रस्व, १८. भवधारणीय, १९. पुद्गलात्त २०. निधत्तानिधत्त २१. निकाचितानिकाचित २२. कर्मस्थिति २३. पश्चिमस्कंध और २४. अल्पबहुत्व ये १३ अनुयोगद्वार शेष हैं। इस सोलहवीं पुस्तक में इन सबका वर्णन है।

इस ग्रंथ में सूत्र नहीं हैं, मात्र धवला टीका में ही इन अनुयोगद्वारों का विस्तार है।

१. **संक्रम** — अनुयोग द्वार के भी छह भेद करके पुनः कर्मसंक्रम के प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेश संक्रम भेद किये हैं।

विस्तृत वर्णन करते हुए कहा है कि — चार आयु कर्मों का संक्रम नहीं होता है, क्योंकि ऐसा स्वभाव है, आदि।

२. **लेश्या** — इसके भी नामलेश्या, स्थापनालेश्या, द्रव्यलेश्या और भावलेश्या भेद किये हैं।

१. षट्खण्डागम (धवलाटीकासमन्वित) पु. १५, पृ. २८५। २. षट्खण्डागम (धवलाटीकासमन्वित) पु. १६।

कर्म पुद्गलों के ग्रहण में कारणभूत जो मिथ्यात्व, असंयम और कषाय से अनुरंजित योग प्रवृत्ति होती है उसे नो आगमभाव लेश्या कहते हैं।^१

भावलेश्या के कृष्ण, नील, कापोत, पीत, पद्म, शुक्ल ये छह भेद हैं।

३. **लेश्याकर्म** — इसमें छहों लेश्याओं के लक्षण — ‘चंडो ण मुवइ वेरं’ इत्यादि बताये गये हैं।

४. **लेश्यापरिणाम** — कौन लेश्याएं किस स्वरूप से और किस वृद्धि अथवा हानि के द्वारा परिणमन करती हैं, इस बात के ज्ञापनार्थ ‘लेश्या परिणाम’ अनुयोगद्वार प्राप्त हुआ है।

इसमें ‘षट्स्थान पतित’ का स्वरूप कहा गया है।

५. **सातासात अनुयोगद्वार** — इसके समुत्कीर्तना, अर्थपद, परमीमांसा, स्वामित्व और अल्पबहुत्व, ऐसे पांच अवान्तर अनुयोगद्वार हैं। समुत्कीर्तना में—एकांत सात, अनेकांत सात, एकांत असात और अनेकांत असात।

अर्थ पद में — सातास्वरूप से बांधा गया जो कर्म संक्षेप व प्रतिक्षेप से रहित होकर सातास्वरूप से वेदा जाता है वह एकांतसात है। इससे विपरीत अनेकांत सात है^२ इत्यादि।

६. **दीर्घ-ह्रस्व** — इन अनुयोगद्वार के भी चार भेद हैं — प्रकृतिदीर्घ, स्थितिदीर्घ, अनुभागदीर्घ और प्रदेशदीर्घ।

आठ प्रकृतियों का बंध होने पर प्रकृति दीर्घ और उनसे कम का बंध होने पर नो प्रकृतिदीर्घ होता है^३।

ऐसे ही ह्रस्व में प्रकृति ह्रस्व, स्थिति ह्रस्व आदि चार भेद हैं।

एक-एक प्रकृति को बांधने वाले के प्रकृति ह्रस्व है इत्यादि।

७. **भवधारणीय** — इस अनुयोगद्वार में भव के तीन भेद हैं — ओघभव, आदेशभव और भवग्रहण भव।

आठ कर्मजनित जीव के परिणाम का नाम ओघभव है। चारगति नामकर्मों का या उनसे उत्पन्न जीव परिणामों को आदेश भव कहते हैं।

भुज्यमान आयु को निर्जीण करके जिससे अपूर्व आयु कर्म उदय को प्राप्त हुआ है, उसके प्रथम समय में उत्पन्न ‘व्यंजन’ संज्ञा वाले जीव परिणाम को अथवा पूर्व शरीर के परित्यागपूर्वक उत्तरशरीर के ग्रहण करने को ‘भवग्रहणभव’ कहा जाता है। उनमें यहाँ भवग्रहण भव प्रकरण प्राप्त है।^४

८. **पुद्गलात्त** — इस अनुयोगद्वार में नामपुद्गल, स्थापनापुद्गल, द्रव्यपुद्गल और भावपुद्गल ऐसे चार भेद हैं।

यहाँ आत्त-शब्द का अर्थ गृहीत है अतः यहाँ ‘पुद्गलात्त’ पद से आत्मसात् किये गये पुद्गलों का ग्रहण है। वे पुद्गल छह प्रकार से ग्रहण किये जाते हैं — ग्रहण से, परिणाम से, उपभोग से, आहार से, ममत्व से और परिग्रह से। इत्यादि।

९. **निधत्तानिधत्त** — इस अनुयोगद्वार में भी प्रकृतिनिधत्त, स्थितिनिधत्त, अनुभागनिधत्त और प्रदेशनिधत्त ऐसे चार भेद हैं।

जो प्रदेशाग्र निधत्तीकृत हैं — अर्थात् उदय में देने के लिए शक्य नहीं है, अन्य प्रकृति में संक्रमण करने के लिए शक्य नहीं है, किन्तु अपकर्षण व उत्कर्षण करने के लिए शक्य हैं ऐसे प्रदेशाग्र की निधत्त संज्ञा है।

१. षट्खण्डागम (धवलाटीकासमन्वित) पु. १६, पृ. ४८५। २. षट्खण्डागम (धवलाटीकासमन्वित) पु. १६, पृ. ४९८।

३. षट्खण्डागम (धवलाटीकासमन्वित) पु. १६, पृ. ५०७। ४. षट्खण्डागम (धवलाटीकासमन्वित) पु. १६, पृ. ५१२।

अनिवृत्तिकरण गुणस्थान में प्रविष्ट मुनि के सब कर्म अनिधत्त हैं, इत्यादि।

१०. निकाचितानिकाचित — इस अनुयोगद्वार में प्रकृति निकाचित आदि चार भेद हैं। जो प्रदेशाग्र, अपकर्षण, उत्कर्षण, संक्रमण और उदय में देने के लिए भी शक्य नहीं हैं, वे निकाचित हैं। अनिवृत्तिकरणवर्ती मुनि के सर्वकर्म अनिकाचित हैं, इत्यादि।

११. कर्मस्थिति — इस अनुयोग में जघन्य और उत्कृष्ट स्थितियों के प्रमाण की प्ररूपणा कर्मस्थिति 'प्ररूपणा है, ऐसा श्री 'नागहस्तीश्रमण' कहते हैं किन्तु आर्यमंक्षु क्षमाश्रमण का कहना है कि — 'कर्मस्थिति संचित सत्कर्म की प्ररूपणा का नाम 'कर्मस्थिति' प्ररूपणा है। यहाँ दोनों उपदेशों के द्वारा प्ररूपणा करना चाहिए, ऐसा श्री वीरसेनस्वामी ने कहा^१ है।

१२. पश्चिमस्कंध — इस अनुयोगद्वार में ओघभव, आदेशभव और भवग्रहणभव ऐसे तीन भेद करके यहाँ भवग्रहण भव प्रकरण प्राप्त है। जो अंतिम भव है उसमें उस जीव के सब कर्मों की बंधमार्गणा, उदयमार्गणा, उदीरणामार्गणा, संक्रममार्गणा और सत्कर्ममार्गणा ये पाँच मार्गणाएं पश्चिम स्कंध अनुयोगद्वार में की जाती हैं।

प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेशाग्र का आश्रय करके इन पांच मार्गणाओं की प्ररूपणा कर चुकने पर तत्पश्चात् पश्चिम भव ग्रहण में सिद्धि को प्राप्त होने वाले जीव की यह अन्य प्ररूपणा करना चाहिए^२ इत्यादि।

१३. अल्पबहुत्व — इस अनुयोगद्वार में 'नागहस्तिमहामुनि' सत्कर्म की मार्गणा करते हैं और यह उपदेश प्रवाहस्वरूप से आया हुआ परंपरागत है। सत्कर्म चार प्रकार का है — प्रकृतिसत्कर्म, स्थिति सत्कर्म, अनुभाग सत्कर्म और प्रदेश सत्कर्म। इनमें से प्रकृति सत्कर्म के मूल और उत्तर की अपेक्षा दो भेद करके मूल प्रकृतियों के स्वामी को लेकर कहते हैं — "पाँच ज्ञानावरणीय, चार दर्शनावरणीय और पाँच अंतराय प्रकृतियों के सत्कर्म का स्वामी कौन है? इनके सत्कर्म के स्वामी सब छद्मस्थ जीव हैं। इत्यादि रूप से अल्पबहुत्व का विस्तार से कथन किया गया है।^३

इस प्रकार यहाँ सोलहवें ग्रंथ में इन उपर्युक्त कथित शेष १३ अनुयोगद्वारों को पूर्ण किया है।

उपसंहार यह है कि — कृति, वेदना, स्पर्श आदि चौबीस अनुयोगद्वारों में से 'कृति और वेदना' नाम के मात्र दो अनुयोगद्वारों में 'वेदनाखण्ड' नाम से चौथा खण्ड विभक्त है। पुनश्च 'स्पर्श' आदि से लेकर अल्पबहुत्व तक २२ अनुयोगद्वारों में 'वर्गणाखण्ड' नाम से पांचवां खण्ड लिया गया है। यहाँ तक पाँच खंडों को सोलह पुस्तकों में विभक्त किया है। छठे महाबंध खण्ड में सात पुस्तकें विभक्त हैं जो कि हिन्दी अनुवाद होकर छप चुकी हैं।

भगवान महावीर की वाणी से संबंध — इन 'षट्खण्डागम' सूत्र ग्रंथराज का भगवान महावीर की वाणी से सीधा संबंध स्वीकार किया गया है। जैसा कि श्री वीरसेनाचार्य ने नवमी पुस्तक में लिखा है —

“लोहाड़िए सगगलोगं गदे^४.....।

इस प्रकरण को मैंने प्रारंभ में ही उद्धृत किया है।

जयउ धरसेणणाहो जेण महाकम्मपयडिपाहुडसेलो। बुद्धिसिरेणुद्धरिओ समप्पिओ पुप्फयंतस्स।।

श्रीधरसेनाचार्य महामुनिन्द्र जयवंत होवें कि जिन्होंने 'महाकर्मप्रकृतिप्राभृत' नाम के शैल — पर्वत को

१. षट्खण्डागम (धवलाटीकासमन्वित) पु. १६, पृ. ५१८। २. षट्खण्डागम (धवलाटीकासमन्वित) पु. १६, पृ. ५१९।

३. षट्खण्डागम (धवलाटीकासमन्वित) पु. १६, पृ. ५२२। ४. षट्खण्डागम (धवलाटीकासमन्वित) पु. ९, पृ. १३३।

बुद्धिरूपी मस्तक से उद्धृत करके — उठा करके श्रीपुष्पदंत एवं श्री भूतबलि ऐसे दो महामुनियों को समर्पित किया है। अनंतर —

जो टीकाएं उपलब्ध नहीं हैं उनके रचयिता सभी टीकाकारों को मेरा कोटि-कोटि नमन है कि जिनके प्रसाद से श्रीवीरसेनस्वामी ने ज्ञान प्राप्त किया होगा। पुनश्च —

श्री वीरसेनस्वामी के हम सभी पर आज अनंत उपकार हैं कि जिनकी इस धवल-शुभ्र-उज्ज्वल-धवलाटीका के किंचित् मात्र अंश को मैंने समझा है।

इसमें पूर्वजन्म के संस्कार, वर्तमान में सरस्वती की महती कृपा, प्रथम क्षुल्लिका दीक्षागुरु श्री आचार्य देशभूषण जी एवं आर्यिका दीक्षा के गुरु के गुरु इस बीसवीं सदी के प्रथमाचार्य चारित्रचक्रवर्ती श्री शांतिसागराचार्य एवं उनके प्रथम शिष्य पट्टाचार्य श्री वीरसागर जी महाराज (आर्यिका दीक्षा के गुरु) का मंगल आशीर्वाद ही मेरे इस श्रुतज्ञान में निमित्त है, ऐसा मैं मानती हूँ।

इस ग्रंथ की टीका-सिद्धान्तचिंतामणि को मैंने वैशाख कृ. २, वी.नि.सं. २५३३, दिनांक ४-४-२००७ को पूर्ण की है। इस षट्खण्डागम के प्रथम खण्ड में २३७५, द्वितीय खण्ड में १५९४, तृतीय खण्ड में ३२४, चतुर्थ खण्ड में १५२५ और पाँचवें खण्ड में १०२३ ऐसे १६ ग्रंथों में कुल ६८४१ सूत्र हैं और मेरे द्वारा लिखित सिद्धान्तचिंतामणि टीका के ३१०१ पृष्ठ हैं। आज मैंने अपनी आर्यिका दीक्षा के ५१ वर्ष पूर्ण कर इस चिंतामणि टीका को पूर्ण करके अपने आध्यात्मिक जीवन पर कलशारोहण किया है। भगवान् शांतिनाथ की कृपा प्रसाद से साढ़े ग्यारह वर्ष में इस टीका को पूर्णकर आनंद का अनुभव करते हुए भावश्रुत की प्राप्ति के लिए 'महाग्रंथराज षट्खण्डागम' को अनंत-अनंत बार नमस्कार करती हूँ।

अष्टादशमहाभाषा, लघुसप्तशतान्विता।

द्वादशांगमयी देवी, सा चित्ताब्जेऽवतार्यते^१।



द्व्यपरूवणासुत्ताणि

सूत्र सं.	सूत्र	पृष्ठ सं.
१.	द्व्यपमाणाणुगमेण दुविहो णिहेसो ओघेण आदेसेण य।	७
२.	ओघेण मिच्छाइट्टी द्व्यपमाणेण केवडिया, अणंता।	१४
३.	अणंताणंताहि ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीहि ण अवहिरंति कालेण।	१७
४.	खेत्तेण अणंता लोगा।	२०
५.	तिण्हं पि अधिगमो भावपमाणं।	२२
६.	सासणसम्माइट्ठिप्पहुडि जाव संजदासंजदा त्ति द्व्यपमाणेण केवडिया? पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो। एदेहि पलिदोवमामवहिरदि अंतोमुहुत्तेण।	२४
७.	पमतसंजदा द्व्यपमाणेण केवडिया? कोडिपुधत्तं।	२५
८.	अप्पमतसंजदा द्व्यपमाणेण केवडिया? संखेज्जा।	२६
९.	चदुण्हमुवसामगा द्व्यपमाणेण केवडिया? पवेसेण एक्को वा दो वा तिण्णि वा, उक्कस्सेण चउवणं।	२६
१०.	अद्धं पडुच्च संखेज्जा।	२७
११.	चउण्हं खवा अजोगिकेवली द्व्यपमाणेण केवडिया? पवेसेण एक्को वा दो वा तिण्णि वा, उक्कस्सेण अट्ठोत्तरसदं।	२९
१२.	अद्धं पडुच्च संखेज्जा।	२९
१३.	सजोगिकेवली द्व्यपमाणेण केवडिया? पवेसणेण एक्को वा दो वा तिण्णि वा, उक्कस्सेण अट्ठोत्तरसयं।	३१
१४.	अद्धं पडुच्च सदसहस्सपुधत्तं।	३२
१५.	आदेसेण गदियाणुवादेण णिरयगईए णेरइएसु मिच्छाइट्टी द्व्यपमाणेण केवडिया? असंखेज्जा।	३८
१६.	असंखेज्जासंखेज्जाहि ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीहि अवहिरंति कालेण।	३९
१७.	खेत्तेण असंखेज्जाओ सेढीओ जगपदरस्स असंखेज्जदिभागमेत्ताओ। तासिं सेढीणं विक्खंभसूची अंगुलवग्गमूलं विदियवग्गमूलगुणिदेण।	४१
१८.	सासणसम्माइट्ठिप्पहुडि जाव असंजदसम्माइट्ठि त्ति द्व्यपमाणेण केवडिया? ओघं।	४२
१९.	एवं पढमाए पुढवीए णेरइयाणं।	४६
२०.	विदियादि जाव सत्तमाए पुढवीए णेरइएसु मिच्छाइट्टी द्व्यपमाणेण केवडिया? असंखेज्जा।	४६
२१.	असंखेज्जासंखेज्जाहि ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीहि अवहिरंति कालेण।	४७
२२.	खेत्तेण सेढीए असंखेज्जदिभागो। तिस्से सेढीए आयामो असंखेज्जाओ जोयणकोडीओ पढमादियाणं सेढिवग्गमूलाणं संखेज्जाणं अण्णोण्णब्भासो।	४७
२३.	सासणसम्माइट्ठिप्पहुडि जाव असंजदसम्माइट्ठि त्ति ओघं।	५०
२४.	तिरिक्खगईए तिरिक्खेसु मिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव संजदासंजदा त्ति ओघं।	५२

सूत्र सं.	सूत्र	पृष्ठ सं.
२५.	पंचिंदियतिरिक्खा मिच्छाइट्ठी दव्वपमाणेण केवडिया? असंखेज्जा।	५३
२६.	असंखेज्जासंखेज्जाहि ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीहि अवहरंति कालेण।	५३
२७.	खेत्तेण पंचिंदियतिरिक्खमिच्छाइट्ठीहि पदरमवहिरदि देव-अवहारकालादो असंखेज्जगुणहीणेण कालेण।	५४
२८.	सासणसम्माइट्ठिप्पहुडि जाव संजदासंजदा त्ति तिरिक्खोघं।	५७
२९.	पंचिंदियतिरिक्खपज्जत्तमिच्छाइट्ठी दव्वपमाणेण केवडिया? असंखेज्जा।	५७
३०.	असंखेज्जासंखेज्जाहि ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीहि अवहरंति कालेण।	५८
३१.	खेत्तेण पंचिंदियतिरिक्खपज्जत्तमिच्छाइट्ठीहि पदरमवहिरदि देवअवहारकालादो संखेज्जगुणहीणेण कालेण।	५८
३२.	सासणसम्माइट्ठिप्पहुडि जाव संजदासंजदा त्ति ओघं।	५९
३३.	पंचिंदियतिरिक्खजोणिणीसु मिच्छाइट्ठी दव्वपमाणेण केवडिया? असंखेज्जा।	५९
३४.	असंखेज्जासंखेज्जाहि ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीहि अवहरंति कालेण।	६०
३५.	खेत्तेण पंचिंदियतिरिक्ख जोणिणिमिच्छाइट्ठीहि पदरमवहिरदि देवअवहारकालादो संखेज्जगुणेण कालेण।	६१
३६.	सासणसम्माइट्ठिप्पहुडि जाव संजदासंजदा त्ति ओघं।	६२
३७.	पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्ता दव्वपमाणेण केवडिया? असंखेज्जा।	६२
३८.	असंखेज्जासंखेज्जाहि ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीहिं अवहरंति कालेण।	६३
३९.	खेत्तेण पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्तेहि पदरमवहिरदि देवअवहारकालादो असंखेज्जगुणहीणेण कालेण।	६३
४०.	मणुसगईए मणुस्सेसु मिच्छाइट्ठी दव्वपमाणेण केवडिया? असंखेज्जा।	६६
४१.	असंखेज्जासंखेज्जाहि ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीहि अवहरंति कालेण।	६६
४२.	खेत्तेण सेढीए असंखेज्जदिभागो। तिस्से सेढीए आयामो असंखेज्जाओ जोयणकोडीओ। मणुसमिच्छाइट्ठीहि रूवा-पक्खित्तएहि सेढी अवहिरदि अंगुलवग्गमूलं तदियवग्गमूलगुणिदेण।	६७
४३.	सासणसम्माइट्ठिप्पहुडि जाव संजदासंजदा दव्वपमाणेण केवडिया? संखेज्जा।	६८
४४.	पमत्तसंजदप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि त्ति ओघं।	६९
४५.	मणुसपज्जत्तेसु मिच्छाइट्ठी दव्वपमाणेण केवडिया? कोडाकोडाकोडीए उवरि कोडाकोडाकोडाकोडीए हेट्टदो छण्हं वग्गाणमुवरि सत्तण्हं वग्गाणं हेट्टदो।	७०
४६.	सासणसम्माइट्ठिप्पहुडि जाव संजदासंजदा दव्वपमाणेण केवडिया? संखेज्जा।	७०
४७.	पमत्तसंजदप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि त्ति ओघं।	७१
४८.	मणुसिणीसु मिच्छाइट्ठी दव्वपमाणेण केवडिया? कोडाकोडाकोडीए उवरि कोडाकोडाकोडाकोडीए हेट्टदो छण्हं वग्गाणमुवरि सत्तण्हं वग्गाणं हेट्टदो।	७१

सूत्र सं.	सूत्र	पृष्ठ सं.
४९.	मणुसिणीसु सासनसम्माइट्टिप्पहुडि जाव अजोगिकेवलित्ति दव्वपमाणेण केवडिया? संखेज्जा।	७२
५०.	मणुसअपज्जत्ता दव्वपमाणेण केवडिया? असंखेज्जा।	७२
५१.	असंखेज्जासंखेज्जाहि ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीहि अवहरंति कालेण।	७३
५२.	खेत्तेण सेढीए असंखेज्जदिभागो। तिस्से सेढीए आयामो असंखेज्जाओ जोयणकोडीओ। मणुस-अपज्जत्तेहि रूवा-पक्खित्तेहि सेढिमवहरिदि अंगुलवग्गमूलं तदियवग्गमूलगुणिदेव।	७३
५३.	देवगइए देवेसु मिच्छाइट्ठी दव्वपमाणेण केवडिया? असंखेज्जा।	७६
५४.	असंखेज्जासंखेज्जाहि ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीहि अवहरंति कालेण।	७७
५५.	खेत्तेण पदरस्स वेछप्पणंगुलसयवग्गपडिभागेण।	७७
५६.	सासनसम्माइट्टि-सम्मामिच्छाइट्टि-असंजदसम्माइट्ठीणं ओघं।	७८
५७.	भवणवासियदेवेसु मिच्छाइट्ठी दव्वपमाणेण केवडिया? असंखेज्जा।	७८
५८.	असंखेज्जासंखेज्जाहि ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीहि अवहरंति कालेण।	७९
५९.	खेत्तेण असंखेज्जाओ सेढीओ पदरस्स असंखेज्जदिभागो।। तेसिं सेढीणं विक्खंभसूई अंगुलं अंगुलवग्गमूलगुणिदेण।	७९
६०.	सासनसम्माइट्टि-सम्मामिच्छाइट्टि-असंजदसम्माइट्ठिपरूवणा ओघं।	७९
६१.	वाणवेंतरदेवेसु मिच्छाइट्ठी दव्वपमाणेण केवडिया? असंखेज्जा।	८०
६२.	असंखेज्जासंखेज्जाहि ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीहि अवहरंति कालेण।	८०
६३.	खेत्तेण पदरस्स संखेज्जजोयणसदवग्गपडिभाएण।	८०
६४.	सासनसम्माइट्टि-सम्मामिच्छाइट्टि-असंजदसम्माइट्ठी ओघं।	८०
६५.	जोइसियदेवा देवगईणं भंगो।	८१
६६.	सोहम्मीसाणकप्पवासियदेवेसु मिच्छाइट्ठी दव्वपमाणेण केवडिया? असंखेज्जा।	८१
६७.	असंखेज्जासंखेज्जाहि ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीहि अवहरंति कालेण।	८२
६८.	खेत्तेण असंखेज्जाओ सेढीओ पदरस्स असंखेज्जदिभागो। तासिं सेढीणं विक्खंभसूई अंगुल-विदियवग्गमूलं तदियवग्गमूलगुणिदेण।	८२
६९.	सासनसम्माइट्टि-सम्मामिच्छाइट्टि-असंजदसम्माइट्ठी ओघं।	८३
७०.	सणक्कुमारप्पहुडि जाव सदार-सहस्सारकप्पवासियदेवेसु जहा सत्तमाए पुढवीए णेरइयाणं भंगो।	८३
७१.	आणद-पाणद जाव णवगेवेज्जविमाणवासियदेवेसु मिच्छाइट्टिप्पहुडि जाव असंजदसम्माइट्टि दव्वपमाणेण केवडिया? पलितोवमस्स असंखेज्जदिभागो। एदेहि पलितोवममवहरिदि अंतोमुहुत्तेण।	८४

सूत्र सं.	सूत्र	पृष्ठ सं.
७२.	अणुद्विस जाव अवराइदविमाणवासियदेवेसु असंजदसम्माइट्टी दव्वपमाणेण केवडिया? पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो। एदेहि पलिदोवममवहिरदि अंतोमुहुत्तेण।	८५
७३.	सव्वट्टुसिद्धिविमाणवासियदेवा दव्वपमाणेण केवडिया? संखेज्जा।	८५
७४.	इंदियाणुवादेण एइंदिया बादरा सुहुमा पज्जत्ता अपज्जत्ता दव्वपमाणेण केवडिया? अणंता।	९३
७५.	अणंताणंताहि ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीहि ण अवहिरंति कालेण।	९४
७६.	खेत्तेण अणंताणंता लोगा।	९५
७७.	वेइंदिय-तीइंदिय-चउरिंदिया तस्सेव पज्जत्ता अपज्जत्ता दव्वपमाणेण केवडिया? असंखेज्जा।	९५
७८.	असंखेज्जाहि ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीहि अवहिरंति कालेण।	९६
७९.	खेत्तेण वेइंदिय-तीइंदिय-चउरिंदिय तस्सेव पज्जत्त-अपज्जत्तेहि पदरमवहिरदि अंगुलस्स असंखेज्जदि-भागवग्गपडिभाएण अंगुलस्स संखेज्जदिभागवग्ग-पडिभाएण अंगुलस्स संखेज्जदिभागवग्गपडिभाएण।	९६
८०.	पंचिंदिय-पंचिंदियपज्जत्तएसु मिच्छाइट्टी दव्वपमाणेण केवडिया? असंखेज्जा।	९७
८१.	असंखेज्जासंखेज्जाहि ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीहि अवहिरंति कालेण।	९७
८२.	खेत्तेण पंचिंदिय-पंचिंदियपज्जत्तएसु मिच्छाइट्टीहि पदरमवहिरदि अंगुलस्स असंखेज्जदि भागवग्गपडिभाएण अंगुलस्स संखेज्जदिभागवग्गपडिभाएण।	९७
८३.	सासणसम्माइट्टिप्पहुडि जाव अजोगिकेवली ओघं।	९८
८४.	पंचिंदियअपज्जत्ता दव्वपमाणेण केवडिया? असंखेज्जा।	९८
८५.	असंखेज्जासंखेज्जाहि ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीहि अवहिरंति कालेण।	९८
८६.	खेत्तेण पंचिंदियअपज्जत्तएहि पदरमवहिरदि अंगुलस्स असंखेज्जदिभागवग्गपडिभाएण।	९९
८७.	कायाणुवादेण पुढविकाइया आउकाइया तेउकाइया वाउकाइया बादरपुढविकाइया बादरआउकाइया बादरतेउकाइया बादरवाउकाइया बादरवणप्फइकाइया पत्तेयसरीरा तस्सेव अपज्जत्ता सुहुमपुढविकाइया सुहुमआउकाइया सुहुमतेउकाइया सुहुमवाउकाइया तस्सेव पज्जत्ता अपज्जत्ता दव्वपमाणेण केवडिया? असंखेज्जा लोगा।	१०१
८८.	बादरपुढविकाइय-बादरआउकाइय-बादरवणप्फइकाइय-पत्तेयसरीरपज्जत्ता दव्वपमाणेण केवडिया? असंखेज्जा।	१०५
८९.	असंखेज्जासंखेज्जाहि ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीहि अवहिरंति कालेण।	१०५
९०.	खेत्तेण बादरपुढविकाइय-बादरआउकाइय-बादरवणप्फइकाइय-पत्तेयसरीरपज्जत्तएहि पदरमवहिरदि अंगुलस्स असंखेज्जदिभागवग्गपडिभाएण।	१०५
९१.	बादरतेउपज्जत्ता दव्वपमाणेण केवडिया? असंखेज्जा। असंखेज्जावलियवग्गो आवलिघणस्स अंतो।	१०६
९२.	बादरवाउकाइयपज्जत्ता दव्वपमाणेण केवडिया? असंखेज्जा।	१०७
९३.	असंखेज्जासंखेज्जाहि ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीहि अवहिरंति कालेण।	१०७

सूत्र सं.	सूत्र	पृष्ठ सं.
९४.	खेत्तेण असंखेज्जाणि जगपदराणि लोगस्स संखेज्जदि भागो।	१०७
९५.	वणप्फइकाइया णिगेदजीवा बादरा सुहुमा पज्जत्ता अपज्जत्ता दव्वपमाणेण केवडिया? अणंता।	१०८
९६.	अणंताणंताहि ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीहि ण अवहिरंति कालेण।	१०८
९७.	खेत्तेण अणंताणंता लोगा।	१०९
९८.	तसकाइय-तसकाइयपज्जत्तएसु मिच्छाइट्ठी दव्वपमाणेण केवडिया? असंखेज्जा।	१०९
९९.	असंखेज्जासंखेज्जाहि ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीहि अवहिरंति कालेण।	१०९
१००.	खेत्तेण तसकाइय-तसकाइयपज्जत्तएसु मिच्छाइट्ठीहि पदरमवहिरदि अंगुलस्स असंखेज्जदिभाग-वगगपडिभागेण अंगुलस्स संखेज्जदिभागवगगपडिभाएण।	११०
१०१.	सासणसम्माइट्ठिप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि त्ति ओघं।	११०
१०२.	तसकाइयअपज्जत्ता पंचिंदियअपज्जत्ताणं भंगो।	११०
१०३.	जोगाणुवादेण पंचमणजोगि-तिण्णिवचिजोगीसु मिच्छाइट्ठी दव्वपमाणेण केवडिया? देवाणं संखेज्जदिभागो।	११४
१०४.	सासणसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव संजदासंजदा त्ति ओघं।	११५
१०५.	पमत्तसंजदप्पहुडि जाव सजोगिकेवलि त्ति दव्वपमाणेण केवडिया? संखेज्जा।	११५
१०६.	वचिजोगि-असच्चमोसवचिजोगीसु मिच्छाइट्ठी दव्वपमाणेण केवडिया? असंखेज्जा।	११६
१०७.	असंखेज्जासंखेज्जाहि ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीहि अवहिरंति कालेण।	११७
१०८.	खेत्तेण वचिजोगि-असच्चमोसवचिजोगीसु मिच्छाइट्ठीहि पदरमवहिरदि अंगुलस्स संखेज्जदिभागवग-पडिभागेण।	११७
१०९.	सेसाणं मणजोगिभंगो।	११७
११०.	कायजोगि-ओरालियकायजोगीसु मिच्छाइट्ठी ओघं।	११८
१११.	सासणसम्माइट्ठिप्पहुडि जाव सजोगिकेवलि त्ति जहा मणजोगिभंगो।	११८
११२.	ओरालियमिस्सकायजोगीसु मिच्छाइट्ठी मूलोघं।	११८
११३.	सासणसम्माइट्ठी ओघं।	११९
११४.	असंजदसम्माइट्ठी सजोगिकेवली दव्वपमाणेण केवडिया? संखेज्जा।	११९
११५.	वेउव्वियकायजोगीसु मिच्छाइट्ठी दव्वपमाणेण केवडिया? देवाणं संखेज्जदिभागूणे।	१२०
११६.	सासणसम्माइट्ठी सम्मामिच्छाइट्ठी असंजदसम्माइट्ठी दव्वपमाणेण केवडिया? ओघं।	१२१
११७.	वेउव्वियमिस्सकायजोगीसु मिच्छाइट्ठी दव्वपमाणेण केवडिया? देवाणं संखेज्जदि भागो।	१२१
११८.	सासणसम्माइट्ठी असंजदसम्माइट्ठी दव्वपमाणेण केवडिया? ओघं।	१२२
११९.	आहारकायजोगीसु पमत्तसंजदा दव्वपमाणेण केवडिया? चदुवणं।	१२३
१२०.	आहारमिस्सकायजोगीसु पमत्तसंजदा दव्वपमाणेण केवडिया? संखेज्जा।	१२३
१२१.	कम्मइकायजोगीसु मिच्छाइट्ठी दव्वपमाणेण केवडिया? मूलोघं।	१२४
१२२.	सासणसम्माइट्ठी असंजदसम्माइट्ठी दव्वपमाणेण केवडिया? ओघं।	१२४

सूत्र सं.	सूत्र	पृष्ठ सं.
१२३.	सजोगिकेवली दव्वपमाणेण केवडिया? संखेज्जा।	१२५
१२४.	वेदानुवादेण इत्थिवेदएसु मिच्छाइट्ठी दव्वपमाणेण केवडिया? देवेहि सादियेयं।	१२९
१२५.	सासणसम्मोइट्ठिप्पहुडि जाव संजदासंजदा त्ति ओघं।	१३०
१२६.	पमत्तसंजदप्पहुडि जाव अणियट्ठिबादरसांपराइयपविट्ठ उवसमा खवा दव्वपमाणेण केवडिया? संखेज्जा।	१३०
१२७.	पुरिसवेदएसु मिच्छाइट्ठी दव्वपमाणेण केवडिया? देवेहि सादियेयं।	१३१
१२८.	सासणसम्मोइट्ठिप्पहुडि जाव अणियट्ठिबादरसांपराइयपविट्ठ उवसमा खवा दव्वपमाणेण केवडिया? ओघं।	१३१
१२९.	णवुंसयवेदेसु मिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव संजदासंजदा त्ति ओघं।	१३२
१३०.	पमत्तसंजदप्पहुडि जाव अणियट्ठिबादरसांपराइयपविट्ठ उवसमा खवा दव्वपमाणेण केवडिया? संखेज्जा।	१३२
१३१.	अपगदवेदएसु तिण्हं उवसामगो दव्वपमाणेण केवडिया? पवेसेण एक्को वा दो वा तिण्णि वा, उक्कस्सेण चउवण्णं।	१३३
१३२.	अद्धं पडुच्च संखेज्जा।	१३३
१३३.	तिण्णि खवा अजोगिकेवली ओघं।	१३४
१३४.	सजोगिकेवली ओघं।	१३४
१३५.	कसायाणुवादेण कोधकसाइ-माणकसाइ-मायकसाइ-लोभकसाईसु मिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव संजदासंजदा त्ति ओघं।	१३६
१३६.	पमत्तसंजदप्पहुडि जाव अणियट्ठि त्ति दव्वपमाणेण केवडिया? संखेज्जा।	१३७
१३७.	णवरि लोभकसाईसु सुहुमसांपराइयसुद्धिसंजदा उवसमा खवा मूलोघं।	१३७
१३८.	अकसाईसु उवसंतकसायवीदरागछदुमत्था ओघं।	१३८
१३९.	खीणकसायवीदरागछदुमत्था अजोगिकेवली ओघं।	१३८
१४०.	सजोगिकेवली ओघं।	१३९
१४१.	णाणाणुवादेण मदिअण्णाणि-सुदअण्णाणीसु मिच्छाइट्ठी सासणसम्मोइट्ठी दव्वपमाणेण केवडिया? ओघं।	१४२
१४२.	विभंगणाणीसु मिच्छाइट्ठी दव्वपमाणेण केवडिया? देवेहि सादियेयं।	१४३
१४३.	सासणसम्मोइट्ठी ओघं।	१४३
१४४.	आभिणिबोहियणाणि-सुदणाणि-ओहिणाणीसु असंजदसम्मोइट्ठिप्पहुडि जाव खीणकसाय-वीदरागछदुमत्था त्ति ओघं।	१४४
१४५.	णवरि विसेसो, ओहिणाणिसु पमत्तसंजदप्पहुडि जाव खीणकसायवीयरायछदुमत्था त्ति दव्वपमाणेण केवडिया? संखेज्जा।	१४४

सूत्र सं.	सूत्र	पृष्ठ सं.
१४६.	मणपज्जवणाणीसु पमत्तसंजदप्पहुडि जाव खीणकसायवीदरागछदुमत्था त्ति दव्वपमाणेण केवडिया? संखेज्जा।	१४५
१४७.	केवलणाणीसु सजोगिकेवली अजोगिकेवली ओघं।	१४५
१४८.	संजमाणुवादेण संजदेसु पमत्तसंजदप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि त्ति ओघं।	१४९
१४९.	सामाइय-छेदोवट्ठावणसुद्धिसंजदेसु पमत्तसंजदप्पहुडि जाव अणियट्ठिबादर-सांपराइयपविट्ठ उवसमा खवा त्ति ओघं।	१५०
१५०.	परिहारसुद्धिसंजदेसु पमत्तापमत्तसंजदा दव्वपमाणेण केवडिया? संखेज्जा।	१५१
१५१.	सुहुमसांपराइयसुद्धिसंजदेसु सुहुमसांपराइयसुद्धिसंजदा उवसमा खवा दव्वपमाणेण केवडिया? ओघं।	१५१
१५२.	जहाक्खादविहारसुद्धिसंजदेसु चउट्ठाणं ओघं।	१५२
१५३.	संजदासंजदा दव्वपमाणेण केवडिया? ओघं।	१५२
१५४.	असंजदेसु मिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव असंजदसम्माइट्ठि त्ति दव्वपमाणेण केवडिया? ओघं।	१५३
१५५.	दंसणाणुवादेण चक्खुदंसणीसु मिच्छाइट्ठी दव्वपमाणेण केवडिया? असंखेज्जा।	१५४
१५६.	असंखेज्जासंखेज्जाहि ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीहि अवहिरंति कालेण।	१५४
१५७.	खेत्तेण चक्खुदंसणीसु मिच्छाइट्ठीहि पदरमवहिरदि अंगुलस्स संखेज्जदि भागवग्गपडिभाएण।	१५५
१५८.	सासणसम्माइट्ठिप्पहुडि जाव खीणकसायवीदरागछदुमत्था त्ति ओघं।	१५५
१५९.	अचक्खुदंसणीसु मिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव खीणकसायवीदरागछदुमत्था त्ति ओघं।	१५६
१६०.	ओहिदंसणी ओहिणाणिभंगो।	१५६
१६१.	केवलदंसणी केवलणाणिभंगो।	१५६
१६२.	लेस्साणुवादेण किण्हलेस्सिय-णीललेस्सिय-काउलेस्सिएसु मिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव असंजदसम्माइट्ठि त्ति ओघं।	१५८
१६३.	तेउलेस्सिएसु मिच्छाइट्ठी दव्वपमाणेण केवडिया? जोइसियदेवेहि सादिरेयं।	१५९
१६४.	सासणसम्माइट्ठिप्पहुडि जाव संजदासंजदा त्ति ओघं।	१६०
१६५.	पमत्त-अप्पमत्तसंजदा दव्वपमाणेण केवडिया? संखेज्जा।	१६०
१६६.	पम्मलेस्सिएसु मिच्छाइट्ठी दव्वपमाणेण केवडिया? सण्णिपंचिंदियतिरिक्खजोणिणीणं संखेज्जदिभागो।	१६१
१६७.	सासणसम्माइट्ठिप्पहुडि जाव संजदासंजदा त्ति ओघं।	१६१
१६८.	पमत्त-अप्पमत्तसंजदा दव्वपमाणेण केवडिया? संखेज्जा।	१६१
१६९.	सुक्कलेस्सिएसु मिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव संजदासंजदा त्ति दव्वपमाणेण केवडिया? पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो। एदेहि पलिदोवममवहिरदि अंतोमुहुत्तेण।	१६२
१७०.	पमत्त-अप्पमत्तसंजदा दव्वपमाणेण केवडिया? संखेज्जा।	१६३
१७१.	अपुव्वकरणप्पहुडि जाव सजोगिकेवलि त्ति ओघं।	१६३

सूत्र सं.	सूत्र	पृष्ठ सं.
१७२.	भविष्याणुवादेण भवसिद्धिणसु मिच्छाइटिप्पहुडि जाव अजोगिकेवल त्ति ओघं।	१६६
१७३.	अभवसिद्धिया दव्वपमाणेण केवडिया? अणंता।	१६६
१७४.	सम्मत्ताणुवादेण सम्माइट्टीसु असंजदसम्माइट्टिप्पहुडि जाव अजोगिकेवल त्ति ओघं।	१६८
१७५.	खइयसम्माइट्टीसु असंजदसम्माइट्टी ओघं।	१६९
१७६.	संजदासंजदप्पहुडि जाव उवसंतकसायवीदरागछदुमत्था दव्वपमाणेण केवडिया? संखेज्जा।	१६९
१७७.	चउण्हं खवा अजोगिकेवली ओघं।	१७०
१७८.	सजोगिकेवली ओघं।	१७०
१७९.	वेदगसम्माइट्टीसु असंजदसम्माइट्टिप्पहुडि जाव अप्पमत्तसंजदा त्ति ओघं।	१७१
१८०.	उवसमसम्माइट्टीसु असंजदसम्माइट्टि-संजदासंजदा ओघं।	१७१
१८१.	पमत्तसंजदप्पहुडि जाव उवसंतकसायवीदरागछदुमत्था त्ति दव्वपमाणेण केवडिया? संखेज्जा।	१७१
१८२.	सासणसम्माइट्टी ओघं।	१७२
१८३.	सम्मामिच्छाइट्टी ओघं।	१७२
१८४.	मिच्छाइट्टी ओघं।	१७२
१८५.	सण्णियाणुवादेण सण्णीसु मिच्छाइट्टी दव्वपमाणेण केवडिया? देवेहिं सादियेयं।	१७४
१८६.	सासणसम्माइट्टिप्पहुडि जाव खीणकसायवीदरागछदुमत्था त्ति ओघं।	१७४
१८७.	असण्णी दव्वपमाणेण केवडिया? अणंता।	१७५
१८८.	अणंताणंताहि ओसप्पिणी-उस्सप्पिणीहि ण अवहिरंति कालेण।	१७५
१८९.	खेत्तेण अणंताणंता लोगा।	१७५
१९०.	आहाराणुवादेण आहारणसु मिच्छाइट्टिप्पहुडि जाव सजोगिकेवल त्ति ओघं।	१७६
१९१.	अणाहारणसु कम्मइयकायजोगिभंगे।	१७६
१९२.	अजोगिकेवली ओघं।	१७७

खेत्तपरुवणासुत्ताणि

१.	खेत्ताणुगमेण दुविहो णिहेसो, ओघेण आदेसेण य।	१८०
२.	ओघेण मिच्छाइट्टी केवडि खेत्ते? सव्वलोगे।	१८२
३.	सासणसम्माइट्टिप्पहुडि जाव अजोगिकेवल त्ति केवडि खेत्ते? लोगस्स असंखेज्जक्खिआए।	१८९
४.	सजोगिकेवली केवडि खेत्ते? लोगस्स असंखेज्जदिभागे, असंखेज्जेसु वा भागेसु, सव्वलोगे वा।	१९२
५.	आदेसेण गदियाणुवादेण णिरयगदीए णेरइणसु मिच्छाइट्टिप्पहुडि जाव असंजदसम्माइट्टि त्ति केवडि खेत्ते? लोगस्स असंखेज्जदिभागे।	१९५
६.	एवं सत्तसु पुढवीसु णेरइया।	१९७
७.	तिरिक्खगदीए तिरिक्खेसु मिच्छादिट्टी केवडि खेत्ते? सव्वलोए।	१९७
८.	सासणसम्माइट्टिप्पहुडि जाव संजदासंजदा त्ति केवडि खेत्ते? लोगस्स असंखेज्जदिभागे	१९८

सूत्र सं.	सूत्र	पृष्ठ सं.
९.	पंचिंदियतिरिक्ख-पंचिंदियतिरिक्खपज्जत्त-पंचिंदियतिरिक्खजोणिणीसु मिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव संजदासंजदा केवडि खेत्ते? लोगस्स असंखेज्जदिभागे।	१९९
१०.	पंचिंदियतिरिक्ख-अपज्जत्ता केवडि खेत्ते? लोगस्स असंखेज्जदिभागे।	२००
११.	मणुसगदीए मणुस-मणुसपज्जत्त-मणुसिणीसु मिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव अजोगिकेवली केवडि खेत्ते? लोगस्स असंखेज्जदिभागे।	२००
१२.	सजोगिकेवली केवडि खेत्ते? ओघं।	२०२
१३.	मणुसअपज्जत्ता केवडि खेत्ते? लोगस्स असंखेज्जदिभागे।	२०२
१४.	देवगदीए देवेसु मिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव असंजदसम्मादिट्ठि त्ति केवडि खेत्ते? लोगस्स असंखेज्जदिभागे।	२०३
१५.	एवं भवणवासियप्पहुडि जाव उवरिम-उवरिमगेवज्जविमाणवासियदेवा त्ति।	२०३
१६.	अणुदिसादि जाव सव्वट्ठसिद्धि विमाणवासियदेवा असंजदसम्मादिट्ठी केवडि खेत्ते? लोगस्स असंखेज्जदिभागे।	२०५
१७.	इंदियाणुवादेण एइंदिया बादरा सुहुमा पज्जत्ता अपज्जत्ता केवडि खेत्ते? सव्वलोगे।	२०८
१८.	वीइंदिय-तीइंदिय-चउरिंदिया-तस्सेव पज्जत्ता अपज्जत्ता य केवडि खेत्ते? लोगस्स असंखेज्जदिभागे।	२०९
१९.	पंचिंदिय-पंचिंदियपज्जत्तएसु मिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि त्ति केवडि खेत्ते? लोगस्स असंखेज्जदिभागे।	२१०
२०.	सजोगिकेवली ओघं।	२११
२१.	पंचिंदियअपज्जत्ता केवडि खेत्ते? लोगस्स असंखेज्जदिभागे।	२११
२२.	कायाणुवादेण पुढविकाइया आउकाइया तेउकाइया वाउकाइया, बादरपुढविकाइया बादरआउकाइया बादरतेउकाइया बादरवाउकाइया, बादरवणप्फदिकाइयपत्तेयसरीरा तस्सेव अपज्जत्ता, सुहुमपुढविकाइया सुहुमआउकाइया सुहुमतेउकाइया सुहुमवाउकाइया तस्सेव पज्जत्ता अपज्जत्ता य केवडि खेत्ते? सव्वलोगे।	२१४
२३.	बादरपुढविकाइया बादरआउकाइया बादरतेउकाइया बादरवणप्फदिकाइयपत्तेयसरीरा पज्जत्ता केवडि खेत्ते? लोगस्स असंखेज्जदिभागे।	२१९
२४.	बादरवाउकाइयपज्जत्ता केवडि खेत्ते? लोगस्स संखेज्जदिभागे।	२२५
२५.	वणप्फदिकाइय-णिगोदजीवा बादरा सुहुमा पज्जत्तापज्जत्ता केवडि खेत्ते? सव्वलोगे।	२२६
२६.	तसकाइय-तसकाइयपज्जत्तएसु मिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि त्ति केवडि खेत्ते? लोगस्स असंखेज्जदिभागे।	२२८
२७.	सजोगिकेवली ओघं।	२२८
२८.	तसकाइय-अपज्जत्ता पंचिंदिय अपज्जत्ताणं भंगो।	२२८

सूत्र सं.	सूत्र	पृष्ठ सं.
२९.	जोगाणुवादेण पंचमणजोगि-पंचवचिजोगीसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव सजोगिकेवली केवडि खेत्ते? लोगस्स असंखेज्जदिभागे।	२३१
३०.	कायजोगीसु मिच्छाइट्ठी ओघं।	२३२
३१.	सासणसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव खीणकसायवीदरागछदुमत्था केवडि खेत्ते? लोगस्स असंखेज्जदिभागे।	२३३
३२.	सजोगिकेवली ओघं।	२३३
३३.	ओरालियकायजोगीसु मिच्छाइट्ठी ओघं।	२३३
३४.	सासणसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव सजोगिकेवली लोगस्स असंखेज्जदिभागे।	२३४
३५.	ओरालियमिस्सकायजोगीसु मिच्छादिट्ठी ओघं।	२३५
३६.	सासणसम्मादिट्ठी असंजदसम्मादिट्ठी सजोगिकेवली केवडि खेत्ते? लोगस्स असंखेज्जदिभागे।	२३५
३७.	वेउव्वियकायजोगीसु मिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव असंजदसम्मादिट्ठी केवडि खेत्ते? लोगस्स असंखेज्जदिभागे।	२३६
३८.	वेउव्वियमिस्सकायजोगीसु मिच्छाइट्ठी सासणसम्मादिट्ठी असंजदसम्मादिट्ठी केवडि खेत्ते? लोगस्स असंखेज्जदि भागे।	२३७
३९.	आहारकायजोगीसु आहारमिस्सकायजोगीसु पमत्तसंजदा केवडि खेत्ते? लोगस्स असंखेज्जदिभागे।	२३७
४०.	कम्मइयकायजोगीसु मिच्छाइट्ठी ओघं।	२३८
४१.	सासणसम्मादिट्ठी असंजदसम्माइट्ठी ओघं।	२३८
४२.	सजोगिकेवली केवडि खेत्ते? लोगस्स असंखेज्जेसु भागेसु सव्वलोगे वा।	२३९
४३.	वेदानुवादेण इत्थिवेद-पुरिसवेदेसु मिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव अणियट्ठि ति केवडि खेत्ते? लोगस्स असंखेज्जदिभागे।	२४१
४४.	णवुंसयवेदेसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव अणियट्ठि ति ओघं।	२४२
४५.	अवगदवेदएसु अणियट्ठिप्पहुडि जाव अजोगिकेवली केवडि खेत्ते? लोगस्स असंखेज्जदिभागे।	२४३
४६.	सजोगिकेवली ओघं।	२४४
४७.	कसायाणुवादेण कोधकसाइ-माणकसाइ-मायकसाइ-लोभकसाईसु मिच्छादिट्ठी ओघं।	२४६
४८.	सासणसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव अणियट्ठि ति केवडि खेत्ते? लोगस्स असंखेज्जदिभागे।	२४७
४९.	णवरि विसेसो, लोभकसाईसु सुहुमसांपराइयसुद्धिसंजदा उवसमा खवा केवडि खेत्ते? लोगस्स असंखेज्जदिभागे।	२४८
५०.	अकसाईसु चटुट्ठाणमोघं।	२४८
५१.	णाणाणुवादेण मदिअण्णाणि-सुदअण्णाणीसु मिच्छादिट्ठी ओघं।	२५०
५२.	सासणसम्मादिट्ठी ओघं।	२५०
५३.	विभंगण्णाणीसु मिच्छादिट्ठी सासणसम्मादिट्ठी केवडि खेत्ते? लोगस्स असंखेज्जदिभागे।	२५१

सूत्र सं.	सूत्र	पृष्ठ सं.
५४.	आभिणिबोहिय-सुद-ओहिणाणीसु असंजदसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव खीणकसायवीदराग छदुमत्था केवडि खेत्ते? लोगस्स असंखेज्जदिभागे।	२५२
५५.	मणपज्जवणाणीसु पमत्तसंजदप्पहुडि जाव खीणकसायवीदरागछदुमत्था लोगस्स असंखेज्जदिभागे।	२५४
५६.	केवलणाणीसु सजोगिकेवली ओघं।	२५५
५७.	अजोगिकेवली ओघं।	२५६
५८.	संजमाणुवादेण संजदेसु पमत्तसंजदप्पहुडि जाव अजोगिकेवली ओघं।	२५९
५९.	सजोगिकेवली ओघं।	२६०
६०.	सामाइय-च्छेदोवट्ठावणसुद्धिसंजदेसु पमत्तसंजदप्पहुडि जाव अणियट्ठि त्ति ओघं।	२६०
६१.	परिहारसुद्धिसंजदेसु पमत्त-अप्पमत्तसंजदा केवडि खेत्ते? लोगस्स असंखेज्जदिभागे।	२६०
६२.	सुहुमसांपराइयसुद्धिसंजदेसु सुहुमसांपराइयसुद्धिसंजदउवसमा खवगा केवडि खेत्ते? लोगस्स असंखेज्जदिभागे।	२६१
६३.	जहाक्खादविहारसुद्धिसंजदेसु चदुट्ठाणी ओघं।	२६१
६४.	संजदासंजदा केवडि खेत्ते? लोगस्स असंखेज्जदिभागे।	२६२
६५.	असंजदेसु मिच्छादिट्ठी ओघं।	२६२
६६.	सासणसम्मादिट्ठी सम्मामिच्छादिट्ठी असंजदसम्मादिट्ठी ओघं।	२६२
६७.	दंसणाणुवादेण चक्खुदंसणीसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव खीणकसायवीदरागछदुमत्था केवडि खेत्ते? लोगस्स असंखेज्जदिभागे।	२६५
६८.	अचक्खुदंसणीसु मिच्छादिट्ठी ओघं।	२६६
६९.	सासणसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव खीणकसायवीदरागछदुमत्था ओघं।	२६६
७०.	ओहिदंसणी ओहिणाणिभंगो।	२६७
७१.	केवलदंसणी केवलणाणिभंगो।	२६७
७२.	लेस्साणुवादेण किण्हलेस्सिय-णीललेस्सिय-काउलेस्सिएसु मिच्छादिट्ठी ओघं।	२६९
७३.	सासणसम्मादिट्ठी सम्मामिच्छादिट्ठी असंजदसम्मादिट्ठी ओघं।	२७०
७४.	तेउलेस्सिय-पम्मलेस्सिएसु मिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव अप्पमत्तसंजदा केवडि खेत्ते? लोगस्स असंखेज्जदिभागे।	२७०
७५.	सुक्कलेस्सिएसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव खीणकसायवीदरागछदुमत्था केवडि खेत्ते? लोगस्स असंखेज्जदिभागे।	२७१
७६.	सजोगिकेवली ओघं।	२७२
७७.	भविyaणुवादेण भवसिद्धिएसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव अजोगिकेवली ओघं।	२७४
७८.	अभवसिद्धिएसु मिच्छादिट्ठी केवडि खेत्ते? सव्वलोए।	२७४
७९.	सम्मत्ताणुवादेण सम्मादिट्ठी-खइयसम्मादिट्ठीसु असंजदसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव अजोगिकेवली ओघं।	२७७

सूत्र सं.	सूत्र	पृष्ठ सं.
८०.	सजोगिकेवली ओघं।	२७८
८१.	वेदगसम्मादिट्टीसु असंजदसम्मादिट्टिप्पहुडि जाव अप्पमतसंजदा केवडि खेत्ते? लोगस्स असंखेज्जदिभागे।	२७८
८२.	उवसमसम्मादिट्टीसु असंजदसम्मादिट्टिप्पहुडि जाव उवसंतकसायवीदरागछदुमत्था केवडि खेत्ते? लोगस्स असंखेज्जदिभागे।	२७८
८३.	सासणसम्मादिट्टी ओघं।	२७९
८४.	सम्मामिच्छादिट्टी ओघं।	२७९
८५.	मिच्छादिट्टी ओघं।	२७९
८६.	सण्णियाणुवादेण सण्णीसु मिच्छादिट्टिप्पहुडि जाव खीणकसायवीदरागछदुमत्था केवडि खेत्ते? लोगस्स असंखेज्जदिभागे।	२८२
८७.	असण्णी केवडि खेत्ते? सव्वलोगे।	२८३
८८.	आहाराणुवादेण आहारएसु मिच्छादिट्टी ओघं।	२८५
८९.	सासणसम्मादिट्टिप्पहुडि जाव सजोगिकेवली केवडि खेत्ते? लोगस्स असंखेज्जदिभागे।	२८५
९०.	अणाहारएसु मिच्छादिट्टी ओघं।	२८६
९१.	सासणसम्मादिट्टी असंजदसम्मादिट्टी अजोगिकेवली केवडि खेत्ते? लोगस्स असंखेज्जदिभागे।	२८६
९२.	सजोगिकेवली केवडि खेत्ते? लोगस्स असंखेज्जेसु वा भागेसु, सव्वलोगे वा।	२८७



सिद्धान्तचिंतामणिटीका में प्रयुक्त गाथाएँ

१. नयोपनयैकान्तानां त्रिकालानां समुच्चयः।
अविभ्राद्भावसम्बन्धो द्रव्यमेकमनेकधा॥१०७॥ (आप्तमीमांसा, कारिका १०७)
२. लोगागासपदेसे, एक्केक्के णिक्खिवेवि तह दिट्ठिं।
एवं गणिज्जमाणे, हवन्ति लोगा अणंता दुं॥
(षट्खण्डागम पु. ३ (धवला टीका समन्वित) पृ. ३३)
३. तिसदं वदन्ति केइं, चउरुत्तरमत्थपंचयं केइं।
उवसामगेसु एदं, खवगाणं जाण तददुगुणं॥
४. चउरुत्तरतिणिसयं, पमाणमुवसामगाण केइं तु।
तं चेव य पंचूणं, भणन्ति केइं तु परिमाणं॥
५. एक्केक्कगुणट्ठाणे, अट्ठसु समयेसु संचिदाणं तु।
अट्ठसय सत्तणवदी, उवसम-खवगाण परिमाणं॥
(षट्खण्डागम पु. ३ (धवला टीका समन्वित) पृ. ९४-९५)
६. सत्ताइं अट्ठंता-च्छण्णवमज्झा य संजदा सब्बे।
अंजुलिमउलियहत्थो, तियरणसुद्धो णमंसांमि॥ (गोम्मटसार जीवकांड, ६३३)
७. “पंचेव सयसहस्सा, होंति सहस्सा तहेव उणतीसा।
छच्च सया अडयाला, जोगिजिणाणं हवदि संखा॥
८. गुरुभक्त्या वयं सार्ध-द्वीपद्वितयवर्तिनः।
वंदामहे त्रिसंख्योन-नवकोटिमुनीश्वरान्॥
९. सुहुमं तु हवदि खेत्तं, तत्तो सुहुमं खु जायदे दव्वं।
दव्वंगुलमिह एक्के, हवन्ति खेत्तंगुलाणंता॥
(षट्खण्डागम पु. १ (धवला टीका समन्वित) पृ. १३०)
१०. पुरिसिच्छिसंढवेदोदयेण पुरिसिच्छिसंढओ भावे।
णामोदयेण दव्वे पाएण समा कहिं विसमा॥ (गोम्मटसारजीवकांड, गाथा २७१)
११. सामण्णा पंचिंदी, पज्जत्ता जोणिणी अपज्जत्ता।
तिरिया णरा तहा वि य, पंचिंदियभंगदो हीणा॥ (गोम्मटसार जीवकाण्ड गाथा १५०)
१२. तेरह कोडी देसे बावण्णं सासणे मुणेदव्वा।
मिस्से वि य तददुगुणा असंजदे सत्तकोडिसया॥
१३. तेरह कोडी देसे पण्णासं सासणे मुणेयव्वा।
मिस्से वि य तददुगुणा असंजदे सत्तकोडिसया॥
(षट्खण्डागम पु. ३ (धवलाटीका समन्वित) पृ. २५२)
१४. बीजे जोणीभूदे, जीवो वक्कमइ सो व अण्णो वा।
जे वि य मूलादीया, ते पत्तेया पढमदाए॥
(षट्खण्डागम पु. ३ (धवलाटीका समन्वित), पृ. ३४८)

१५. आवलियाए वग्गो, आवलिया-संखभागगुणिदो दु।
तम्हा घणस्स अंतो, बादरपज्जत्ततेऊणं।।
(षट्खण्डागम पु. ३ (धवला टीका समन्वित), पृ. ३५५)
१६. जगसेढीए वग्गो, जगसेढीसंखभागसंगुणिदो।
तम्हा घणलोगंतो, बादरपज्जत्तवाऊणं।।
(षट्खण्डागम पु. ३, पृ. ३५६)
१७. अट्टेव सयसहस्सा, णवणउदिसहस्स चेव णवयसया।
सत्ताणउदी य तहा, जहक्खादा होंति ओघेण।।
(षट्खण्डागम पु. ३ (धवला टीका समन्वित), पृ. ९७)
१८. मुनीनां मनोवार्धिंराकासुधांशुः, मनोभूविजेता मनोध्वान्तहारी।
चलच्चित्तसंचारहान्यै सदा तं, मुदा स्तौमि चन्द्रप्रभं चन्द्रकान्तं।।१।।
१९. नमोऽस्तु जिनसद्मने त्रितयलोकसंपद्भृते!
नमोऽस्तु परमात्मने सकललोकचूडामणे।
नमोऽस्तु जिनमूर्तये सकलदोषविच्छित्तये!
पुनीहि मम रागमोहसहितं मनोऽज्ञानवत्।।१।।
२०. लोगो अकट्टिमो खलु, अणाइणिहणो सहावणिव्वत्तो।
जीवाजीवेहि फुडो, णिच्चो तलरुक्खसंठाणो।।
(षट्खण्डागम पु. ४ (धवला टीका समन्वित) पृ. ११)
२१. वेदणकसायवेउव्वियओ य मरणंतिओ समुग्घादो।
तेजाहारो छट्ठो, सत्तमओ केवलीणं तु।।
२२. संखो पुण बारह जोयणाणि गोम्ही भव तिकोसं तु।
भमरो जोयणमेगं, मच्छो पुण जोयणसहस्सो।।
२३. तिहुवणमुड्डारूढा, ईसिपभारा धरट्टमी रून्दा।
दिग्घा इगिसगरज्जू, अडयोजनपमिदबाहल्ला।।५५६।। (त्रिलोकसार)
२४. तम्मज्झे रूप्पमयं, छत्तायारं मणुस्समहिवासं।
सिद्धक्खेत्तं मज्झड-वेडं कमहीण बेहुलियं।।५५७।। (त्रिलोकसार)
२५. उत्ताणट्ठिमंते पत्तं व तणु तदुवरि तणुवादे।
अट्टगुणट्ठा सिद्धा, चिट्ठंति अणंतसुहर्त्तिन्ता।।५५८।। (त्रिलोकसार)
२६. विग्गहगइ-मावण्णा, केवलिणो समुहदा अजोगी य।
सिद्धा य अणाहारा, सेसा आहारया जीवा।।
२७. जंबूद्वीपेऽत्र यावन्तोऽर्हद्गणभृद्-यतीश्वराः।
सिद्धाः सिद्ध्यन्ति सेत्स्यन्ति, तान् तत्क्षेत्राणि च स्तुवे।।

